Barcode - 5990010042265
Title - Krittyvasi-Bangala-Ramayan aour Ram charit manas ka Tulnatmak Aadhyayan
Subject - Literacture
Author - Rama Nath Tripathhi
Language - hindi
Pages - 365
Publication Year - 1963
Creator - Fast DLI Downloader
https://github.com/cancerian0684/dli-downloader
Barcode EAN.UCC-13
5 990010 042265

कृत्तिवासी-बँगला-रामायण और रामचरित मानस

का

तुलनात्मक अध्ययन

232

डा० रमानाथ त्रिपाठी

भारत प्रकाशन मन्दिर

अलीगढ़

[ॐ]

* श्री जानकीवल्लभो विजयते *

कृत्तिवासी-बँगला-रामायण और रामचरित-मानस

का

तुलनात्मक अध्ययन

(आगरा-विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत प्रबन्ध)

लेखक

डा० रमानाथ त्रिपाठी

प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग,

विक्रमाजीतसिंह, सनातन-धर्म कालेज, कानपुर ।

प्रकाशक

भारत प्रकाशन मन्दिर

अलीगढ़ ।

प्रकाशक—
बद्रीप्रसाद शर्मा
भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़ ।

मूल्य—दस रुपया

मुद्रक—
चन्द्रप्रकाश शर्मा
आदर्श प्रेस, अलीगढ़ ।

मानस-भक्त

श्री ए० पी० वरान्निकोव

की

पुण्य-स्मृति में

दो शब्द

पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत अपना शोध-प्रबन्ध अत्यल्प परिवर्त्तन के साथ ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर रहा हूँ। चूँकि दो भाषाओं की रामायणों का तुलनात्मक अध्ययन हुआ है, अतएव इसमें दोनों भाषाओं के एक-एक विद्वान् डाक्टर की भूमिका जोड़ दी गयी। डा० अग्रवाल ने नेत्र-कष्ट से पीड़ित होने पर भी भूमिका लिखी, मैं उनके प्रति तथा डा० दासगुप्त के प्रति नम्र आभार-प्रदर्शन करता हूँ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की सामग्री का कुछ अंश पन्द्रह-बीस लेखों के रूप में विभिन्न-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुका है। इन लेखों में एक 'नारी प्रसाधन-अलकातिलका' (दे० अध्याय ३) साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' में छपा था। अनेक पाठकों एवं मौखिक-परीक्षा के समय डा० अग्रवाल ने इस शब्द के अर्थोद्धार के लिए प्रस्तुत लेखक को बधाई दी थी।

शोध-कार्य के निरीक्षक पूज्य गुरुदेव डा० भगीरथ मिश्र की प्रेरणा से डी० लिट० उपाधि के लिए मैं अब असमिया, बँगला, उड़िया और हिन्दी रामचरित-काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन कर रहा हूँ, उनके आशीर्वाद से यह कार्य शीघ्र ही समाप्त कर सकूँगा।

अन्त में अपने प्रकाशक श्री बद्रीप्रसाद शर्मा के प्रति धन्यवाद सहित—

दि० १-१-६३ **रमानाथ त्रिपाठी**

भूमिका*

प्राय: समसामयिक-काल में आविर्भूत हुए थे रामायण के दो कवि—पूर्वी-भारत के बंगाल देश में कवि कृत्तिवास और उत्तर-भारत में कवि तुलसीदास। तुलसीदास का 'रामचरित-मानस' निस्संदिग्ध रूप से उत्तर-भारत का सर्वाधिक जनप्रिय काव्य है, काव्य-ग्रन्थ के रूप में भी और धर्म-ग्रन्थ के रूप में भी। धर्मग्रन्थ के रूप में कृत्तिवासी-रामायण की जनप्रियता 'रामचरित-मानस' के तुल्य नहीं है, तथापि यह सत्य है कि मध्यकालीन बँगला-साहित्य-समूह के मध्य कृत्तिवास की रामायण ही बंगाल देश में सर्वाधिक जनप्रिय काव्य है। मध्य-युग के इन दोनों जन-प्रिय कवियों एवं उनके काव्यों की तुलनात्मक-आलोचना का विशेष प्रयोजन था। डाक्टर रमानाथ त्रिपाठी एम० ए०, पी-एच० डी० महाशय इस कार्य में उद्योगी होकर धन्यवादार्ह हुए हैं।

पहले इस प्रकार के रामायण काव्य-समूह को किसी-किसी ने अनुवाद-साहित्य के नाम से आख्यात किया है; किन्तु अब विश्लेषण एवं विचार द्वारा स्पष्ट हो गया है कि इस प्रकार के रामायण-काव्य-समूह को अनुवाद-साहित्य नाम से आख्यात करना ठीक नहीं है। वास्तव में ये सब वाल्मीकि-रामायण अथवा संस्कृत में रचित किसी रामायण के भी ठीक-ठीक अनुवाद नहीं हैं। राम-कथा का आदि उत्समूल क्या है, इस विषय में हम अभी भी संपूर्ण-रूप से निःसंशय नहीं हैं, किसी एक ही विशेष उत्समूल से संपूर्ण कथाएँ प्रसारित हुई हैं ऐसा प्रतीत नहीं होता; वरंच यही सत्य प्रतीत होता है कि विभिन्न उत्समूल से उत्सारित विविध कथा-धाराओं ने कालक्रम से मिश्रित हो होकर बहुपल्लवित एक रामायण-कथा की सृष्टि की है। राम-कथा चिर-दिन ही भारतवर्ष में जनप्रिय है; युग-युग में पल्लवित एवं आंचलिक वैशिष्ट्य द्वारा रूपांतरित इस कहानी को एक सामाजिक-उत्तराधिकार के रूप में उपलब्ध कर इसके आधार पर विभिन्न-युग एवं विभिन्न-अंचल के अधिवासी-गण ने नूतन-प्रकार से काव्य-रचना की है। अनेक स्थलों पर इस काव्य के साथ पूर्व-रचित काव्य के घटनावर्णन का प्रत्यक्ष-योग लक्ष्य किया जा सकता है—यहाँ तक कि स्थान-स्थान पर किसी-किसी मूल का भावानुवाद है—आक्षरिक अनुवाद भी लक्ष्य किया जा सकता है, किन्तु इस कारण मूल प्रकृति में इन्हें अनुवाद कह कर आख्यात करना भूल होगी, ऐसा प्रतीत होता है।

वस्तुत: हम यह कहना चाहते हैं कि रामायण की कथा का आधार लेकर, लिखित होने पर भी कृत्तिवास की रामायण एवं तुलसीदास के 'रामचरित मानस' का स्वातंत्र्य स्वीकार करना ही होगा। उभय-क्षेत्र में ही कवि-मानस विशिष्ट आंचलिक-परिवेश एवं बृहत्तर-युगधर्म के द्वारा प्रभावान्वित है। व्यापक समाज-जीवन एवं युगधर्म की पृष्ठभूमि के ऊपर ही इस समस्त-कार्य को स्थापित कर उसका विचार-विश्लेषण एवं

---

* बंगला से अनूदित

ग्रहण करना होगा। आंचलिक-प्रवणता एवं युग-धर्म इन सकल रामायण-काव्य के अनेक स्थलों पर कितने प्रबल हो उठे हैं, इसका एक संक्षिप्त नमूना कृत्तिवास की रामायण से दे रहा हूँ। कृत्तिवासी रामायण की प्रारम्भ-कथा में मिलता है कि वाल्मीकि प्रथम जीवन में नर-हत्याकारी दुर्वृत्त-दस्यु थे, उनका नाम था रत्नाकर दस्यु, बाद में उनकी मति-परिवर्त्तित हुई और वे अनेक दिन एकासन पर बैठकर रामनाम-जप करते रहे; एकासन पर नाम-जप करते हुए उनकी सर्व-देह वल्मीक के स्तूप से आवृत हो गयी; राम-नाम में रूपांतरित देह-मन लेकर वल्मीक के स्तूप के भीतर से आविर्भूत होकर ही वे वाल्मीकि-मुनि कहलाये; तत्पश्चात् ही उनके रामायण-काव्य की रचना हुई। इस कथा के भीतर विशेष लक्षणीय-विषय यह है कि ब्राह्मणवेश-धारी ब्रह्मा और नारद ने रत्नाकर दस्यु को जब प्रथम-बार रामनाम-जप का उपदेश दिया, तब रत्नाकर दस्यु 'पापे जड़ जिह्वा राम वलिते ना पारे'। (पाप से जड़ हुई जीभ से राम न कह सका)। ब्रह्मा और नारद ने रत्नाकर दस्यु को 'राम' नाम उलट कर 'मरा' 'मरा' जप करने को कहा, 'मरा' 'मरा' ने ही 'राम' 'राम' में पर्यवसित होकर रत्नाकर दस्यु को वाल्मीकि-मुनि में रूपांतरित किया। 'मरा' 'मरा' जप करके रत्नाकर दस्यु के मुक्ति-लाभ की कथा कृत्तिवास ने कहाँ से प्राप्त की? संस्कृत में प्रचलित रामायणों में 'अध्यात्म रामायण' एवं 'आनन्द रामायण' में इसका उल्लेख है। किन्तु ये सब ग्रन्थ ही कृत्तिवास-रचित रत्नाकर-दस्यु-उपाख्यान के आकर ग्रंथ हैं कि नहीं, इस विषय में मुझे घोर संशय रह गया है। 'अध्यात्म रामायण' में आया है—

इत्युक्त्वा राम ते नाम व्यत्यस्ताक्षर पूर्वकम्।
एकाग्र मनसात्रैव मरेति जय सर्वदा॥ २-६

ब्रह्मा और नारद ने रत्नाकर दस्यु को 'मरा' शब्द का उच्चारण करने के लिये कहा था, संभवतः इस बात का ध्यान रख कर कि, जिस दस्यु ने अनेक लोगों को मार कर जीवन-यापन किया है उसके लिये 'मरा' कहना ही अधिक सहज होगा; किन्तु यह बात सभी स्वीकार करेंगे कि मृत के अर्थ में 'मरा' एकदम परवर्त्ती काल का तद्भव प्रयोग है; अध्यात्म-रामायण के इस प्रसंग में इस 'मरा' शब्द का व्यवहार हमारे मन में स्वाभाविक-रूप से संदेह जाग्रत करता है कि यह उपाख्यान आधुनिक भारतीय भाषा के साहित्य में प्रथम गठित हुआ था, वहाँ से अपेक्षाकृत अर्वाचीन संस्कृत-ग्रन्थों में गृहीत हुआ। हम इस उपाख्यान की रचना का कृतित्व कृत्तिवास को ही अधिक देने के पक्षपाती हैं।[1]

हम देखते हैं कि कृत्तिवास के ठीक पश्चात् बंगाल-देश में श्री चैतन्यदेव का आविर्भाव हुआ; उन्होंने केवल प्रेम-मार्गीय वैष्णव-धर्म का ही प्रचार नहीं किया था,

---

१ डा० दासगुप्त की विद्वत्ता के आगे श्रद्धानत होकर भी मैं उनके इस मत का पूर्ण समर्थन नहीं करता। अध्यात्म-रामायण का रचना काल ज्ञात नहीं, किन्तु उसकी रचना संभवतः कृत्तिवासी-रामायण से पूर्व हुई थी। (लेखक)

विशेष रूप से लक्षणीय बात यह है कि उन्होंने नाम-जप अथवा नाम-कीर्त्तन के ऊपर ही सर्वापेक्षा अधिक जोर दिया। वे और उनके अनुरागी-भक्त बार-बार कह गये हैं कि कलियुग में नाम-जप एवं नाम-कीर्त्तन को छोड़कर अन्य-गति नहीं है। इसीलिए कहा जाता है कि चैतन्यदेव ने देखा कि पहले जिस यज्ञ का प्रचलन था वह कलि के जीवों के लिए संभव नहीं है, अतएव कलि के जीवों के लिए उन्होंने नूतन-यज्ञ का प्रचलन किया; वह था 'नाम-यज्ञ'। चैतन्यदेव ने नाम-यज्ञ पर ही विशेष-रूप से जोर देकर जिस धर्म का प्रचलन किया, निश्चय ही उस धर्म की प्रस्तुति का कुछ इतिहास रहा है। हमारा विश्वास है कि इस इतिहास का संधान मिलेगा कृत्तिवास-रचित रत्नाकर दस्यु के 'मरा' 'मरा' जप कर वाल्मीकित्व-लाभ के उपाख्यान में। इसके पीछे कवि-मन क एक दृढ़-विश्वास था कि नाम की ऐसी महिमा है कि ज्ञात अथवा अज्ञात रूप में, समझे या बिना समझे, सीधे अथवा उलटे किसी भी रूप में नाम क्यों न लिया जाय उससे ही अचिंत्यपूर्व फल लाभ होगा। सुतराँ हम यहाँ देखते हैं कि चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी के बंगाल-देश की वैष्णव-धारा के साथ ओत-प्रोत भाव से युक्त होकर ही रामायण-कथा ने कृत्तिवास के हाथ विवर्त्तन-लाभ किया है। तुलसीदास का 'रामचरित-मानस' तत्कालीन विपर्यस्त धर्म-जीवन, राष्ट्र-जीवन एवं समाज-जीवन की पृष्ठभूमि पर लिखित है, यह बात आज किसी को भी अविदित नहीं है। ग्रन्थ के मध्य लेखक ने इस विषय पर विशद् आलोचना की है।

वर्त्तमान ग्रंथ के लेखक ने कृत्तिवास और तुलसीदास की इस युग-सचेतनता के सम्बन्ध में सम्यक् अभिहित होकर ग्रन्थ की रचना की है, इसमें उनकी समालोचना-दृष्टि ने व्यापकता एव गभीरता-लाभ की है। इस प्रकार की तुलनात्मक आलोचना के सर्व-प्रथम प्रयास का उन्होंने जो सविनय दावा किया है उसका मैं समर्थन करता हूँ। उन्होंने संपूर्ण तथ्यों का जिस आलोक में विश्लेषण एवं विचार किया है एवं उस सम्बन्ध में जो मतामत प्रकाश किया है, उसके साथ हम सर्वत्र एवं सर्वतोभाव से एकमत नहीं भी हो सकते हैं। इस प्रकार के मतानैक्य का अवकाश सर्वदा ही रहता है—वह ग्रन्थ की विशेष मर्यादा-हानि नहीं करता। लेखक की गवेषणा प्रचेष्टा एवं पद्धति दोनों ही प्रशंसार्ह हैं, इसके लिए मैं जिज्ञासु-पाठक की ओर से उनके ग्रन्थ का स्वागत-भाषण करता हूँ। इस प्रकार की तुलनात्मक-आलोचना द्वारा विभिन्न भारतीय-साहित्य का वैशिष्ट्य एवं ऐक्य दोनों ही लब्ध होंगे, एवं सकल पार्थक्य एवं वैशिष्ट्य के मध्य भारतीय-मन के अंतर्निहित ऐक्य का भी संधान मिलेगा।

श्री शशिभूषण दासगुप्त
(श्री डा० शशिभूषण दासगुप्त,
प्रोफेसर, बँगला-विभाग,
अध्यक्ष, भारतीय-भाषा-विभाग
कलकत्ता विश्वविद्यालय।)

४१/३५ बी, चारु ऐवेन्यू,
कलकत्ता, ३३।

भूमिका

श्री रमानाथ त्रिपाठी ने बँगला कृत्तिवासी-रामायण और हिन्दी रामचरित-मानस का तुलनात्मक-अध्ययन प्रस्तुत करके रामायण के समीक्षात्मक-अध्ययन को एक नई दिशा प्रदान की है। वस्तुतः वाल्माकि के हृदय में जब राम-चरित को काव्य-बद्ध करने की पहली प्रेरणा स्फुरित हुई और इस कार्य के लिए उन्होंने चार समाक्षर-पदों में बद्ध वर्णिक श्लोक-छन्द के महत्त्व को पहचाना, तब उन्हें आवश्यकता प्रतीत हुई कि रामकथा से परिचय प्राप्त करें। वाल्मीकि का आश्रम अयोध्या से नौ मील दूर तमसा नदी के तट पर कोसल जनपद में था। अतएव यह मानना उचित है कि रामकथा की कोई कोसलीय-परम्परा उन्हें ज्ञात थी, जिसकी ओर उनका मन पहले गया। किन्तु एक सम्मानित कवि के रूप में उन्होंने अपना कर्त्तव्य समझा कि कथा की और अधिक छानबीन करलें। इसके लिए वाल्मीकि-रामायण में स्पष्ट लिखा है कि उन्होंने लोक में रामकथा के जो रूप प्रचलित थे, उनका अन्वेषण किया—

श्रुत्वा वस्तु समग्रं तद्धर्मात्मा धर्मसंहितम्।
व्यक्तमन्वेषते भूयो तद्वृत्तं तस्य धीमतः।।

(वाल्मीकि रामायण बड़ौदा संस्करण १/३/१)

यद्यपि अनुश्रुति वाल्मीकि को राम का समकालीन मानती है और लव-कुश के द्वारा रामायण के प्रथम गान की बात कहती है, परन्तु ज्ञात होता है कि अन्य अनेक आख्यानों की भाँति रामकथा भी लोक में विद्यमान थी। निश्चयपूर्वक उसके अनेक रूप थे। जैसे—उत्तर रामकथा में सीता के दूसरे वनवास का कारण धोबी का प्रवाद कहा जाता है, पर कुरु जनपद से लेकर उड़िया प्रदेश तक लोक-गीतों में आता है कि राम की बहन शान्ता ने सीता से रावण का चित्र लिखवा कर राम के मन को सन्देह में डाल दिया और सीता को बन में जाना पड़ा। इसका अर्थ यह है कि एक ओर भवभूति आदि ने प्रजा के एक जन को सीता की विपत्ति का कारण माना, दूसरी ओर प्रजा में राजमहल को ही उस कुचक्र का कारण माना जाता था। रामकथा सच्चे अर्थों में राष्ट्र-कथा है। उसके नाना-रूप लोक में और साहित्य में उपलब्ध हैं। इससे रामकथा के अध्ययन की गन्तव्य-दिशा सूचित होती है। श्री साधु कामिल बुल्के ने सब प्रदेशों में राम-साहित्य के अध्ययन का अग्रपद उठाया था। 'राम कथा' नामक उनका ग्रन्थ उपयोगी सूचनाओं से भरा हुआ है। उसके दूसरे पदन्यास के रूप में श्री त्रिपाठी जी के इस अध्ययन का महत्त्व है। इसी प्रकार जितने भी रामायण के संस्करण अपने देश के साहित्य में संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश और प्रादेशिक भाषाओं में विद्यमान हैं उन सबके प्रामाणिक संस्करण और समीक्षात्मक-अध्ययन नए युग की माँग है। ऐसे अध्ययन की कई दृष्टियाँ सम्भव हैं, जैसे रामकथा का रूप, वाल्माकि से साम्य और भेद, स्थानीय-विशेषताएँ, भाषा और छन्द, संस्कृति और जीवन की पृष्ठभूमि, उनके प्राचीन-वर्णन और-सामयिक अंश, ऐतिहासिक तथ्य आदि। इसी के साथ लोक-गीतों और लोक-वार्त्ताओं में अनुश्रुतियों का संग्रह और उनकी तुलना इस अध्ययन का आवश्यक अंग है।

श्री रमानाथ जी ने कृत्तिवासीय बँगला-रामायण के सम्बन्ध में इसी दृष्टि से कार्य किया है, जो स्वागत के योग्य है। रामायण को जितने भी साहित्यिक-रूप प्राप्त हैं उनमें राम-चरित मानस का विशिष्ट-स्थान है। अतएव जो तुलनात्मक-अध्ययन प्रस्तुत करने हों उनमें वाल्मीकि या तुलसी को तुलना का आधार बनाना समुचित है। यह तुलना तथ्यात्मक-विवरण के लिए ही हो सकती है, किसी अन्य काव्य का आपेक्षिक पद बताने के लिए नहीं। जैसे हिन्दी के लिए तुलसी है, वैसे ही बँगला के लिए कृत्तिवास और तमिल के लिए कम्बन हैं। सभी लोक की अनुभूति में ओत-प्रोत होगए हैं और अपने-अपने गुणों को लिए हुए हैं।

कृत्तिवास ने १५ वीं शती के आरंभ में गोसाईं जी से लगभग १५० वर्ष पूर्व अपनी रामायण लिखी। जैसा उन्होंने स्वयं कहा है, वाल्मीकि उनके उपजीव्य थे—

एइ सब गाइल गीत जैमिनी भारते।
सम्प्रति जे कछु गाइ वाल्मीकिर मते॥ (उत्तर० पृ० ५६९)

तुलसी का आधार अध्यात्म्य-रामायण थी, जैसा उन्होंने मानस के अंत में संकेत द्वारा कहा है और दोनों को मिलाने से ही ज्ञात होता है—

यत्पूर्वं प्रभुणाकृतं सुकविना श्री शम्भुना दुर्गमं।
श्री मद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम्॥

किन्तु दोनों महाकवि थे और उनके लिए प्रकाश और वायु के दीप्तिपट पृथ्वी और आकाश के बीच में चारों ओर खुले हुए थे। दोनों के हृदय में मानव की प्रतिष्ठा थी। कृत्तिवास ने राम को अति-मानव के रूप में देखा है और गोसाईं जी ने ब्रह्मरूपी राम को ज्ञान-भक्ति और कर्म्म के आदर्शों की समन्वित-प्रतिष्ठा करने वाले ऐसे मानव के रूप में चित्रित किया है जो भारद्वाज–याज्ञवल्क्य, शिव-पार्वती, काकभुशुण्डि-गरुड़ के ज्ञान-कर्म और भक्ति के घाटों से बहती हुई त्रिवेणी के प्रभाव को लेकर संतों के उस घाट पर आते हैं जहाँ तीनों धाराएँ मिलती हैं और जहाँ वक्ता-रूप में गोस्वामीजी ने संसार के तापों से संतप्त मानवों के उद्धार के लिए रचा है—

श्री मद्रामचरित्र मानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये।
ते संसार पतंग घोर किरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः॥

ब्रह्म-निरूपण, भक्ति-चर्चा और सुकर्म-दुष्कर्म कथा जैसी गोसाईं जी को इष्ट है, वैसे ही कृत्तिवास को भी; हाँ, दोनों की शैली के तारतम्य भिन्न-भिन्न हैं। दोनों कवियों ने अपने पाण्डित्य-दर्शन के लिए कविता नहीं की, किन्तु लोकमंगल के लिए। वही कविता नित्य श्रेयस्करी है जिसमें रस अर्थ छन्द और शब्द इन चारों का सदुपयोग जगमंगल के भाव से किया गया हो। इस दृष्टि से दोनों कवि पूरे उतरते हैं। 'सुरसरि सम सब कर हित होई', यही दोनों की वाग्देवी का आवाहन-मंत्र है। हमारी अभिलाषा है कि अन्य-भाषाओं की रामायणों को लेकर ऐसे ही अध्ययन प्रस्तुत किये जायं।

कार्त्तिक कृष्ण १४
संवत् १९१९ वि०
२६-१०-१९६२

वासुदेव शरण अग्रवाल
काशी-विश्व-विद्यालय

उपोद्घात

तुलनात्मक-अध्ययन की आवश्यकता

प्राचीन-काल में भारत देश कई जनपदों में विभाजित था। यदि कोई प्रबल-विक्रम सम्राट् समस्त-भारत को जीत कर एक-छत्र राज्य स्थापित न कर पाता था, तो ये जनपद अपनी स्वतंत्र-सत्ता बना लेते थे। इनमें राज्य-विस्तार के लिए परस्पर संघर्ष भी होते रहते थे। सम्राट् भी इन जनपदों का अस्तित्व स्वीकार कर ही शासन कर पाता था। उस समय यातायात के साधनों के अभाव में इसी प्रकार की सामंती-व्यवस्था की आवश्यकता थी। भिन्न-भिन्न जनपदों में एवं भिन्न-भिन्न युगों में विभिन्न-मतावलंबी राजाओं का उदय देखा जाता है, किन्तु भारत में अनेक प्रकार की भिन्नताओं के मध्य एक प्रकार की एकता सदैव विद्यमान रही है और वह है सांस्कृतिक-एकता। भाषा रामायणों के रचना-काल के बंगाल एवं हिंन्दी-भाषी-क्षेत्र की संस्कृति में भी विशेष अन्तर न होकर बहुत कुछ समानता ही थी।

सांस्कृतिक-ऐक्य में साहित्य एक प्रमुख साधन है। प्राचीनकाल में समस्त-भारत के विद्वान् अपने विचारों का प्रकाशन मुख्यतः संस्कृत-भाषा में किया करते थे। समस्त-देश की एक साहित्यक-भाषा होने के कारण विचारों का आदान-प्रदान सुगमता से हो जाता था। अनेक देशी-भाषाओं के विकास के समय भी संस्कृत-भाषा में सृजन होता रहा, तथा ये भाषाएँ भी संस्कृत से प्रेरणा लेने के कारण परस्पर समानता धारण किये रहीं।

स्वतंत्र-भारत में देश की सांस्कृतिक-एकता के अक्षुण्ण रखने का भार हिन्दी के कंधों पर आ गया है। इस उत्तरदायित्व के लिए हिन्दी को समर्थ बनाने के लिए उसे इतना सशक्त करना है कि वह सारे भारत एवं भारत की समस्त चिंताधाराओं तथा विशेषताओं का प्रतिनिधित्व कर सके। हिन्दी के अतिरिक्त कई भारतीय-भाषाओं का साहित्य प्रचुर सम्पन्न है। इन भाषाओं के साथ योग-सूत्र स्थापित करने के लिए दो कार्यों की आवश्यकता है—१. प्रांतीय-भाषाओं के प्रमुख-ग्रंन्थों का हिन्दी में अनुवाद और २. हिन्दी-साहित्य के साथ उनका तुलनात्मक-अध्ययन।

भारतीयों के पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन पर राम के चरित्र का गंभीर प्रभाव है। उत्तर-भारत का वृहदंश तुलसी की रामायण से प्रभावित है, उनके मानस में उत्तर-भारतीय-संस्कृत का चित्रण है। दूसरी ओर कृत्तिवासी-रामायण बंगाल-प्रांत की संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है। बंगाल में शताधिक छोटी बड़ी रामायणें लिखी गयीं, किन्तु आज तक कृत्तिवास का स्थान पूर्ववत् महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत प्रबन्ध में दो समृद्ध-भाषाओं के दो प्रमुख रामकथाकारों के नाते कृत्तिवास एवं तुलसी का तुलनात्मक अध्ययन उपस्थित करने का प्रयास किया गया है।

आज कृत्तिवासी-रामायण अपने मूल रूप में उपलब्ध नहीं है। लोकप्रियता के कारण भाषा में बहुत परिवर्तन हुआ है, कथा-प्रसंग भी वर्द्धित और वर्जित हुए हैं। कथा-प्रसंगों के परिवर्द्धन से हानि यह हुई कि कृत्तिवासी-रामायण का मूल-रूप छिप गया किन्तु लाभ यह हुआ कि यह ग्रंथ बंगाल-प्रांत की अनेक विशेषताओं का अपने में समाहार करता गया।

अध्यायानुसार-सामग्री

प्रथम-अध्याय में कई ऐतिहासिक ग्रंथों का आधार लेकर प्रागैतिहासिक-काल से लेकर मुस्लिम-शासन-काल तक के बंगाली-समाज के विवर्त्तनों का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत कर कृत्तिवास-कालीन परिस्थतियों एवं समस्याओं पर विचार किया गया है। कृत्तिवास के पश्चात् लिखे जाने वाले चैतन्य-साहित्य से भी सहायता ली है। इस साहित्य में वर्णित ऐतिहासिक एवं सामाजिक परिस्थितियों से कृत्तिवास-काल का भी परिचय मिल जाता है। तुलसीदास की पृष्ठ-भूमि प्रस्तुत करने के लिए मैंने अफीफ, मिनहाज, खुसरो, बर्नी, फरिश्ता, अबुलफजल आदि अनेक मध्य-कालीन मुस्लिम इतिहास-लेखकों तथा वर्तमान इतिहास-वेत्ताओं के ग्रंथों के आधार पर मुस्लिम-शासकों की नीति पर प्रकाश डाला है। मुसलमानों के सत्ताधिकार से भारतीय-समाज में भयंकर उथल-पुथल मच गयी थी। दो भिन्न संस्कृतियों के संघात के प्रभाव से रामायण-ग्रंथ अछूते नहीं रहे। दोनों के ग्रन्थों ने संकट-ग्रस्त जनता को भक्त-वत्सल भगवान् के उदार-चरित द्वारा आश्वस्त करने की चेष्टा की है।

द्वितीय-अध्याय में वैष्णव-भक्ति की विकास-धारा में राम-भक्ति का स्थान दिखाते हुए दोनों रामायणों के क्षेत्रों में उसके विकास का अध्ययन किया है। बौद्ध एवं तांत्रिक साधनाओं से प्रभावित बंगाल की तत्कालीन-प्रचलित धर्म-साधनाओं पर भी प्रकाश डाला है। बंगला-साहित्य का आदि एवं मध्य काल मनसा एवं धर्म ठाकुर से अनुप्राणित है। राम-भक्ति का महत्त्व प्रतिपादित करने के लिए इन अनोखी धर्म-साधनाओं के मध्य उसका मूल्य आँकने की चेष्टा की है। तत्पश्चात् अपने-अपने क्षेत्रों में राम-भक्ति के विकास में दोनों ग्रन्थों के योग का वर्णन है। बंगाल के अध्ययन के लिए मुझे जिन प्रमुख बंगाली-विद्वानों के ग्रन्थों से सहायता मिली है उनका पद-टिप्पणी में यथा-स्थान उल्लेख है।

तृतीय-अध्याय में रामायणों के युगीन समाज एवं संस्कृति का तुलनात्मक-अध्ययन प्रस्तुत करने में विशेष आयास करना पड़ा है। प्रथम एवं द्वितीय अध्यायों के आधार पर ही रामायणों में प्रतिबिंबित राजनीतिक-प्रतिक्रियाओं एवं धार्मिक-मान्यताओं का वर्णन किया है। दोनों लेखकों ने मुसलमानी-अत्याचारों में राक्षसों की झलक देखी है। दोनों के ग्रन्थों में पंच-देवों की उपासना एवं गर्हित अनार्य-साधनाओं की ओर उपेक्षा का भाव दिखायी पड़ता है। सामाजिक-चित्रण में वर्ण-व्यवस्था की स्थिति, दोनों कवियों द्वारा वर्ण-संगठन के समान प्रयास, समाज में नारी का स्थान, नारी के प्रति दोनों के दृष्टिकोण में अंतर, पर्दा-प्रथा, उसका कारण आदि विषयों का वर्णन है। तत्पश्चात् रामायणों में वर्णित संस्कार तथा उन्हें संपन्न करने की तत्कालीन वैदिक एवं लौकिक रीतियों का उल्लेख किया है। बंगाल की लोक-रीतियाँ समझने में श्रम करना पड़ा है। साथ ही दोनों रामायणों

में चित्रित स्नान-प्रसाधन के ढंग और सामग्री, विविध-प्रकार के वस्त्राभूषण एवं उत्सवादि मंगल-विधान के समारोहों आदि का वर्णन है।

चौथे अध्याय में केवल कृत्तिवास की मौलिकता-सिद्धि का प्रयास है। अनेक बंगाली विद्वान् उन्हें अनुवाद मानते हैं। कथा-वस्तु एवं चरित्र-चित्रण की भिन्नता तथा युगीन धर्म-साधनाओं एवं स्थानीय-प्रथाओं के चित्रण आदि की दृष्टि से वाल्मीकि-रामायण से कृत्तिवास की भिन्नता सिद्ध की है। कृत्तिवास के अनेक प्रसंगों के आधार-भूत-ग्रन्थ कई काव्य-नाटकों का उल्लेख कर सिद्ध किया है कि वे केवल वाल्मीकि के प्रति ऋणी नहीं हैं।

पाँचवें अध्याय में दोनों की कथा-वस्तु का तुलनात्मक-अध्ययन कर मूल से अंतर और उसका कारण दिखाने की चेष्टा की है। मूल से भिन्न दोनों के प्रसंगों की समानता एवं परस्पर नूतनता का भी कारण-निर्देश किया है। यही दृष्टिकोण छठे अध्याय के तुलनात्मक चरित्र-चित्रण में रहा है। चरित्र-चित्रण की भिन्नता का एक प्रमुख कारण तुलसी का आदर्शवाद एवं कृत्तिवास की सहृदयता है।

सातवें अध्याय में भक्ति-सम्बन्धी कई समानताएँ होते हुए भी कृत्तिवासी-रामायण में दार्शनिक-सिद्धांतों के प्रतिपादन का अभाव होने के कारण पूर्णतः तुलनात्मक-अध्ययन न हो सका।

तुलसी के काव्य-सौष्ठव पर बहुत लिखा जा चुका है। रसों का विधिवत शास्त्रीय-अध्ययन करने पर पिष्ठपेषण हो सकता था, अतएव आठवें अध्याय में कुछ गिने-चुने विषय लेकर तथा अन्य लेखकों द्वारा उल्लिखित चित्रणों से यथा-शक्य बच निकल कर काव्य-सौंदर्य का तुलनात्मक-विवेचन करने का प्रयास किया है।

अध्ययन में प्रयुक्त रामायणों के संस्करण—

कृत्तिवास एवं तुलसीदास के तुलनात्मक-अध्ययन में मैंने रामानंद चट्टोपाध्याय संपादित कृतिवासी-रामायण तथा गीता-प्रेस द्वारा प्रकाशित रामचरित-मानस का विशेष उपयोग किया है। कलकत्ता-विश्वविद्यालय के दो विद्वान् श्री शशिभूषण दासगुप्त एवं श्री सुकुमार सेन के आदेशानुसार मैंने चट्टोपाध्याय का संस्करण चुना। श्री सुकुमार सेन ने बताया, दे ब्रदर्स संपादित संस्करण सर्वाधिक उपयोगी रहेगा, किन्तु अप्राप्य है। उसके स्थान पर चट्टोपाध्याय के संस्करण से कार्य लिया जा सकता है, हुआ भी ऐसा ही, बहुत प्रयत्न करने पर और कलकत्ता के अनेक पुस्तकालय छानने पर भी मुझे वह न मिल सका। मेरे एक शिष्य असित बोस ने कृतिवासी-रामायण की एक प्रति लाकर दी थी। उसमें लंबी भूमिका भी थी, किंतु उसके प्रथम दो-तीन पृष्ठ फटे होने के कारण उसके प्रकाशक एवं संपादक के सम्बन्ध में न जान सका, हो सकता है यही दे ब्रदर्श संपादित रामायण हो। मैंने यत्र-तत्र उसका भी उपयोग किया है तथा इसे ही 'अनाम-संस्करण' लिखा है।

श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी ने बंगला एवं हिन्दी रामायणों के उपर्युक्त-संस्करणों के उपयोग को ठीक बताते हुए भी मानस के कुछ और भी संस्करण पढ़ने का आदेश दिया।

श्री विश्वनाथप्रसाद जी मिश्र ने गीता-प्रेस के संस्करण को अपेक्षाकृत श्रेष्ठ बताया, अतएव मैं निश्चित-मन उपर्युक्त पुस्तकों से ही तुलनात्मक-प्रबंध लिखने में जुट गया। वैसे मैंने मानस के अन्य संस्करण भी देख लिये हैं।

कृत्तिवासी-रामायण के संबंध में

बंगला-रामायणके संबंध में कुछ कठिनाइयाँ थीं। श्री रामपुर के मिशनरी प्रेस से कैरो साहब के प्रयत्न से कृत्तिवासी-रामायण सर्व प्रथम १८०२-१८०३ ई० में प्रकाशित हुई। द्वितीय संस्करण का संपादन श्री जयगोपाल तर्कालंकार ने (१८३०-३४ ई. में) किया था। उन्होंने रामायण की भाषा जन-प्रिय बनाने के लिए उसमें पर्याप्त संशोधन कर दिया। शुद्ध-पाठ की दृष्टि से प्रथम-संस्करण ही महत्त्वपूर्ण था किंतु अब वह अप्राप्य है। वटतला-प्रेस से भी जो संस्करण निकला वह भी संशोधित बताया जाता है। इसके पश्चात् बंगाल के कई प्रेसों से अनेक संस्करण निकले, ये सब जयगोपाल-संशोधित संस्करणों पर आधारित हैं। मैंने बंगला-रामायणके कई संस्करण देखे हैं। अनेक संस्करणों की भूमिका में संपादक लोग लिखते हैं कि परिवार में आबाल-वृद्धि-बनिता सभी के पठनीय बनाने के लिए इसके अश्लील अंश हटा दिए गये हैं।[1] इस प्रकार संपादकों की काट-छाँट और मिलावट के पश्चात् यह रामायण बाजारों में उपलब्ध हो रही है।

दो विद्वान् श्री हीरेन्द्रनाथदत्त और नलिनीकांत भट्टशाली ने कृत्तिवासी-रामायण के सभी संस्करणों को प्रक्षिप्त बता कर कृत्तिवासी-रामायण के आदिकांड, अयोध्याकांड एवं उत्तरकांड संपादित किये।[2] उन्होंने दावे के साथ लिखा है कि ये संस्करण प्राचीन एवं मौलिक प्रतियों पर आधारित हैं। डा० सुकुमार सेन से भेंट करने पर उन्होंने इनकी मौलिकता का खंडन किया और बताया कि इनमें से अनेक पोथियों पर जो संवत् पड़ा है वह इतना पुराना नहीं है। सच पूछा जाय तो इन विद्वानों ने कई पोथियाँ सामने रखकर अपनी दृष्टि से कुछ इसका और कुछ उसका लेकर आवश्यकता से अधिक संपादन कर दिया है। यदि पोथियों की प्राचीनता स्वीकार कर ली जाय तो भी ये संपादित संस्करण[3] मौलिक नहीं हो सकते। कुछ हो, मैंने उनका भी अध्ययन किया है, यद्यपि इनका अधिक उपयोग नहीं कर सका। इस समय दो संस्करण ही सर्वाधिक मान्य हुए हैं। चट्टोपाध्याय के अतिरिक्त श्री दीनेशचन्द्र सेन का संस्करण भी ख्याति अर्जित कर सका है। सीता-जन्म, अहल्या-शाप एवं जयंत-दंड प्रसंग में चट्टोपाध्याय महाशय ने भी अश्लीलता के भय-वश कुछ अंशों की काट-छांट की है। इन स्थानों पर मानस से तुलना करते समय मैंने

---

१. विभूति भूषण मित्र संपादित कृत्तिवासी-रामायण की भूमिका।

२. आदिकांड-नलिनीकांत भट्टशाली १९३६ ई०
अयोध्याकांड-हीरेन्द्रनाथ दत्त–१३०७ बंगाब्द
उत्तरकांड······वही······१३१० बंगाब्द

३. इसीलिए डा० सुकुमार सेन इन्हें Composite text कहते हैं। ब. सा. इति (१) सुकुमार सेन, पृ० १०५

श्री दीनेशचन्द्र सेन एवं सुबोध मजुमदार संपादित संस्करणों से सहायता ली है, मुझे इन दोनों रामायणों के ये वर्णन सत्य जान पड़े।

कृत्तिवास पर अलग से आलोचनात्मक ग्रन्थ नहीं लिखे गये। संपादकों ने भूमिका में कृत्तिवास के जीवन के संबंध में कुछ विचार किया है तथा साहित्य के इतिहास-लेखकों ने भी स्वल्प वर्णन ही किया है। रामायणों की लगभग सभी भूमिकाएँ संक्षिप्त हैं, आलोचना की दृष्टि से बहुत अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। वाल्मीकि से कृत्तिवास की भिन्नता देखकर कुछ लोगों ने अटकलबाजी की है, ऐसे प्रसंगों में वे कृत्तिवास की मौलिकता देखते हैं, जबकि कृत्तिवास ने उन्हें वाल्मीकि रामायण के गौड़ीय-संस्करण से लिया है। भूमिका-लेखकों ने संभवतः वाल्मीकि-रामायण का दाक्षिणात्य-संस्करण पढ़ कर ऐसी धारणा बना ली है। इसी प्रकार रघुवंश आदि काव्य एवं पुराणों से तुलना किये बिना ही कृत्तिवासी-रामायण के प्रसंगों के संबंध में विचार प्रकट किये गये हैं।[1]

कृत्तिवास पर प्राप्य कुछ सामग्री इन पुस्तकों में हैं–

१. वङ्ग भाषा ओ साहित्य दीनेशचन्द सेन।
२. बेंगाली रामायन्स-दीनेशचन्द्र सेन (अँग्रेजी)।
३. बाङ्गाला साहित्येर इतिहास (१) सुकुमार सेन।
४. बंगाली लिटरेचर–जे० सी० घोष (अँग्रेजी)।
५. कृत्तिवास-परिचय-संग्रह–हरिश्चन्द्र मित्र।
६. आशुतोष मुखोपाध्याय का प्रकाशित भाषण।
७. बाङ्गला साहित्येर रूपरेखा- गोपाल हाल्दार।
८. कृत्तिवासी रामायण की भूमिका–संपादक पूर्णचन्द दे।
९. ………वही…………नटवर चक्रवर्ती।
१०. ………वही…………सुबलचन्द मित्र।
११. ………वही…………असित बोस।
१२. ………वही…………उपेन्द्र मुखोपाध्याय।
१३. ………वही…………योगेन्द्रनाथ वसु।
१४. ………वही…………दीनेशचन्द सेन।
१५. साहित्य पाठकेर डायरी……हरप्रसाद मित्र।
१६. वसुमती मासिक की फाइलें १३५४ एवं १३६० बंगाब्द।

बंगालियों के लिए कृतिवासी-रामायण के आधार पर तत्कालीन समाज और संस्कृति के अध्ययन की आवश्यकता नहीं थी। क्योंकि वह उनके घर की वस्तु है तथा इस प्रकार की सामग्री उपलब्ध करने के अन्य उत्तम साधन भी हैं। अतएव कृतिवास की आलोचना करने की अपेक्षा बंगाली-विद्वान् उनकी जन्म-तिथि ज्ञात करने में अधिक प्रयत्नवान् रहे हैं, सफलता

१. देखिए बंगाली रामायन्स-दीनेशचन्द सेन रघुदान-प्रसंग, पृ० १२३

अभी भी नहीं मिली है। हिन्दी आलोचना-साहित्य अपेक्षाकृत अधिक संपन्न है। हिन्दी साहित्य का अतीत संपन्न, वर्तमान समृद्ध और भविष्य उज्ज्वल है। हिन्दी के आदिकाल से लेकर अति आधुनिक-काल तक के लेखकों पर समीक्षात्मक ग्रंथ उपलब्ध हो जाते हैं। बंगला का वर्तमान जितना संपन्न है, अतीत उतना नहीं था। संभवतः इसीलिए आधुनिक लेखकों विशेषतः रवीन्द्र, शरत् आदि पर आलोचनात्मक-साहित्य बहुत अच्छा मिल जाता है कृतिवासी-रामायण पर आलोचनात्मक ग्रंथ न मिलने का एक कारण इसके शुद्ध-पाठ का अभाव भी है। विद्वान् इसके लिए भी चेष्टा करते रहे हैं।[१]

योग्यता एवं सफलता का दावा नहीं करता, किंतु जहाँ तक कृतिवास के अध्ययन की बात है, नम्र-स्वर में कहूँगा कि संभवतः इस अध्ययन के संबंध में मेरा ही यह प्रथम व्यवस्थित प्रयास है। तुलसीदास के साथ उनका तुलनात्मक-अध्ययन तो अभी तक हुआ ही नहीं है, अतएव दोनों के तुलनात्मक-अध्ययन का प्रयास इस प्रबंध में सर्वथा मौलिक एवं नवीन है।

---

१. डा० शशिभूषण दासगुप्त से वार्त्तालाप होने पर ज्ञात हुआ कि वे इसका शुद्ध-पाठ प्रकाशित करने के लिए प्रयत्नशील हैं। किन्तु इसके लिए भी अभी बहुत समय लगेगा।

कृतज्ञता-प्रकाश

शोध-कार्य के निरीक्षक पूज्य गुरुवर पंडित भगीरथ मिश्र ने मेरा समस्त-प्रबंध समय-समय पर पढ़कर यथा-स्थान श्रमपूर्वक संशोधन किया है। प्रत्येक अध्याय के लिए उनके अमूल्य सुझाव मेरे लिए बड़े उपयोगी हुए हैं। श्रद्धेय गुरुवर अयोध्यानाथ जी शर्मा के चरणों की छाया में रह कर ही मैं कार्य पूर्ण कर सका हूँ। उनकी पैनी दृष्टि से भी प्रबंध का कुछ भाग गुजर चुका है। भेंट होते ही शोध-कार्य की प्रगति पूछ कर तथा निरन्तर प्रोत्साहित कर उन्होंने मुझे कार्य की शीघ्र-समाप्ति के योग्य बनाया। आदरणीय डा० मुंशीराम शर्मा एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट० ने भी कुछ अध्यायों का संशोधन कर मुझे आलोचक का दृष्टिकोण प्रदान किया। मैं अग्रज-तुल्य श्री रामसुरेश त्रिपाठी एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्० का भी विशेष ऋणी हूँ, घर पास में होने के कारण किसी भी प्रकार की शंका एवं जिज्ञासा होने पर उनके पास दौड़ लगाता रहा हूँ। सूचना, संमति एवं पुस्तक आदि देकर उन्होंने मुझे बहुत सहायता प्रदान की है।

बंगला के विद्वानों से मुझे कम सहायता नहीं मिली है। श्री शशिभूषण दासगुप्त[1] के चारुचंद्र एवेन्यू वाले घर पर कई बार घंटों बैठकर कृत्तिवास पर विचार-विमर्श किया है। निरंतर पत्र-व्यवहार के द्वारा मैं उनसे शंका-समाधान कराता रहा हूँ। सुकुमार दा (डा० सुकुमार सेन)[2] को तो न जाने कितने पत्र लिख-लिख कर मैंने अपनी जिज्ञासाओं का समाधान कराया है। उनसे भी उनके गोया-बागान वाले निवास स्थान पर भेंट कर अमूल्य परामर्श ग्रहण किया है। सुन रखा था श्री सुनीतिकुमार चटर्जी अत्यधिक व्यस्तता के कारण प्रत्येक छोटे-मोटे जिज्ञासु को भेंट का समय सहज रूप में नहीं देते, किन्तु मेरे साथ तीन घंटे तक वार्त्तालाप कर तथा मेरे बंगला-ज्ञान की प्रशंसा द्वारा मुझे यही कार्य पूर्ण करने का प्रोत्साहन ही नहीं दिया अपितु अन्य कई विषयों का सुझाव देकर आगे भी इस प्रकार के तुलनात्मक-अध्ययन की प्रेरणा दी है।

अन्य विद्वान् श्री प्रबोधचंद सेन (विश्वभारती, शांतिनिकेतन) अगरचंद नाहटा (बीकानेर), श्री कामताप्रसाद जैन (अलीगंज, एटा) ने अनेक प्रकार की सूचनाओं के संग्रह में मुझे साहाय्य प्रदान किया।

अपने प्रबन्ध के लिखने में मुझे कई प्रकार की सूचनाओं एवं पुस्तकों की आवश्यकता पड़ी। उपर्युक्त विद्वानों के अतिरिक्त यदि कलकत्ता-वासी निम्न-बन्धुओं का सहयोग प्राप्त

1 Shashi Bhusan Das-Gupta, M. A., Ph., D., Ramtanu Lahiri Prof. of Bengali & Head of the Dept. of Modern Indian Languages. Calcutta University.

2 Sukumar Sen, M. A. Ph. D., Khaira Prof. of Indian Linguistics & Head of the Dept. of Comparative Philology, Calcutta University.

न होता तो मैं कृत्तिवास के बंगाल को भली भाँति न समझ पाता—सर्वश्री अनिल विहारी भादुड़ी, कालीदास वसु (स्वस्तिक साप्ताहिक), रमेश माथुर (विद्यार्थी, कलकत्ता विश्वविद्यालय), प्रभाकर फैजपुरकर, अमल वसु एवं राधाकृष्ण मिश्र। कानपुर के श्री क्षितिलाल गांगुली एवं सुहासकुमार मित्र ने बंगाली संस्कृति से सम्बन्धित सूचनाओं तथा श्री रामचन्द्र गुप्त, प्रो० अर्जुनप्रसाद मिश्र एवं जगतनारायण त्रिपाठी ने पुस्तकों के संग्रह द्वारा मुझे अध्ययन-विषयक सुविधाएँ प्रदान की हैं। टाइप के सम्बन्ध में अनेक बाधाएँ उपस्थित हुईं। यदि श्री दत्तात्रय शंकर भालेराव ने ठीक समय पर सहयोग न दिया होता तो टाइप का कार्य इतने शीघ्र न समाप्त होता।

धन्यवाद शब्द में शिष्टाचार-भाव अधिक है। अपने श्रद्धाभाजन गुरुजन एवं स्नेहास्पद बन्धुवर्ग के प्रति इस शब्द का प्रयोग कैसे करूँ! इनसे इस प्रकार की सहायता प्राप्त करने का मुझे सर्वथा अधिकार था, फिर भी मैं उनके प्रति सत्य-हृदय से कृतज्ञता-प्रकाश करता हूँ।

मैंने निम्न-संस्थाओं से पुस्तकों की सहायता प्राप्त की है, उनके अधिकारियों एवं कर्मचारियों के प्रति भी मैं आभार-प्रदर्शन करता हूँ।

कलकत्ता—१. नैशनल-लाइब्रेरी।
२. रायल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बेंगाल।
३. वंगीय-साहित्य-परिषद्।
४. कलकत्ता-विश्वविद्यालय-पुस्तकालय।
५. मदनमोहन लाइब्रेरी (विवेकानन्द रोड)।
६. पैट्रियोटिक लाइब्रेरी (कार्नवालिस स्ट्रीट)।

लखनऊ— ७. गौड़ीय-मठ (गणेशगंज)।

कानपुर— ८. आर्यनगर साधारण पाठागार (बंगला)।
९. वंग-साहित्य-समाज (कराची खाना)।

बंगाल से सम्बन्धित पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकें प्राप्त करने में मुझे कष्ट नहीं उठाना पड़ा। सौभाग्य से हमारे महाविद्यालय (विक्रमाजीतसिंह सनातन-धर्म कालेज) के पुस्तकालय के हिन्दी, संस्कृत, इतिहास, धर्म तथा अन्य विभाग पुस्तकों से प्रचुर संपन्न हैं। पुस्तकालय के सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों से मुझे पूरा-पूरा सहयोग मिला है।

विषय-सूची

अध्याय १

पृष्ठ-संख्या

कृत्तिवासी-रामायण एवं रामचरित-मानस कालीन राजनीतिक-परिस्थिति १–३८

(अ) १. बंगाल; मुस्लिम-आक्रमण से पूर्व; गुप्त, पाल एवं सेन-वंश। २. मुस्लिम-आक्रमण एवं साहित्य। ३. कृत्तिवास के समसामयिक शासक और उनके आश्रयदाता। ४. कृत्तिवास का व्यक्तित्व और रामायण लिखने की प्रेरणा। (आ) १. उत्तरी-भारत पर मुस्लिम-आक्रमण एवं नीति। २. तुलसी के समसामयिक-शासक, मुस्लिम-अत्याचारों का कारण—(१) शासकों की अपनी महत्त्वाकांक्षाएं एवं युगप्रवृत्ति, (२) इस्लाम की असहिष्णुता ३. हिन्दू-धर्म-भावना पर प्रभाव और मानस।

अध्याय २

राम-भक्ति का विकास एवं उसमें कृत्तिवासी-रामायण एवं मानस का स्थान ३९–७०

१. विष्णु की स्थिति, भक्ति का विकास और बंगाल में वैष्णव-धर्म। २. राम-भक्ति, आलवार, रामानुजाचार्य, रामानन्द। ३. बंगाल की साधनाएं:—(अ) लौकिक उपासना, धर्म-ठाकुर, लौकिक-स्त्री देवता-मनसा; आर्य किन्तु अब्राह्मण्य-धर्म एवं ब्राह्मण्य-धर्म। (आ) राम के चरित्र का महत्त्व। (इ) राम-भक्ति के विकास में कृत्तिवासी-रामायण का योग। ४. रामभक्ति-शाखा में मानस का स्थान।

अध्याय ३

रामायणों में युगीन समाज एवं संस्कृति का चित्रण ७१–१२५

१. राजनीतिक-परिस्थिति:— मुसलमानों में राक्षसत्व की झलक देखना, कृत्तिवासी-रामायण में तस्लीम एवं सिरोपाव की प्रथाएं २. धार्मिक-परिस्थिति:—पंच-देव, शैव-वैष्णव-समन्वय, शिव का रूप, शक्ति, गणेश, कृष्ण-भक्ति। अब्राह्मण्य-धर्म-साधनों की उपेक्षा, सामान्य-विश्वास ३. सामाजिक परिस्थिति (अ) वर्ण-व्यवस्था। (१) ब्राह्मणों को शीर्ष-स्थानीय मानकर वर्ण-संगठन, (२) अछूतों के प्रति अपनत्व की भावना—१. उच्च-वर्गीयपात्रों और चंडाल का स्नेह-मिलन, २. अछूतों को भी राम-भक्ति का अधिकारप्रदान। संस्कृतज्ञ-ब्राह्मण-विरोध। (आ) नारी-चित्रण, पर्दा-प्रथा, (इ) संस्कार:—कृत्तिवासी रामायण में वर्णित संस्कार, विवाह-संस्कार (ई) उत्सवादि-

मंगल-विधान (उ) स्नान-प्रसाधनः—पुरुषों का शृङ्गार, नारी का शृङ्गार, अलका-तिलका, हिंगुल। वस्त्रः—नेत (नेत्र), पाटेर-पाछड़ा, पीत-पिछौरी पियर-उपरना, गंगा-जल वस्त्र, वीर-धटि। अलंकारः—शंखचूड़ी, स्वर्ण ताड़, पाशुलि-आदि। (ऊ) कुछ अन्य सामग्री १. भोजन, २. मनोरंजन, ३. वाद्य, ४. अस्त्र-शस्त्र।

अध्याय ४

कृत्तिवास की मौलिकता १२६–१४८

१. कृत्तिवास एवं रामायण के सम्बन्ध में बंगाली लेखकों की धारणाएँ—असंस्कृतज्ञ, अनुवादक, भ्रम का प्रारम्भ, खंडन, स्वमत। २. कृत्तिवास की मौलिकता—(अ) वाल्मीकि से अंतर का कारण, (१) भक्ति, (२) कथकता का आधार, (३) तत्कालीन-परिस्थिति (४) पात्रों की कलंकमुक्ति एवं (५) लोक-प्रचलित-कथानक। (आ) चरित्र-चित्रण। (इ) राम का ब्रह्मत्व एवं भक्ति की प्रधानता। ३. बंगाली-प्रभाव—(१) भाव-प्रवणता, (२) संस्कारादि पद्धतियाँ एवं लोक-व्यवहार, उलुध्वनि (३) धर्म-साधनाएँ ४. कृत्तिवास के आधार-भूत-ग्रन्थ, (१) आनंद-रामायण, (२) हनुमन्नाटक, (३) पदमपुराण, ४. रघुवंश, ५. जैमिनी-भारत, ६. श्री मद्भागवत-पुराण और ७. अध्यात्म-रामायण।

अध्याय ५

कृत्तिवासी-रामायण एवं मानस की कथावस्तु १४९–२३२

(तुलनात्मक विवेचन)

१. बाल-कांड, २. अयोध्या-कांड, ३. अरण्य-कांड, ४. किष्किंधा-कांड ५. सुन्दर-कांड, ६. युद्ध-कांड और ७. उत्तर-कांड।

अध्याय ६

तुलनात्मक चरित्र-चित्रण २३३–२६४

१. चरित्र-चित्रण में दोनों का दृष्टिकोण एवं मूल से अंतर २. प्रमुख-पात्रों के चरित्र का तुलनात्मक-विवेचन—राम, भरत, लक्ष्मण, दशरथ, विश्वामित्र, हनुमान, अंगद, बालि और रावण। सीता, कौशल्या और कैकेयी।

अध्याय ७

दोनों के दार्शनिक-सिद्धान्त एवं भक्ति-भावना २६५–२८२

१. सगुण-निर्गुण; निर्गुण-सगुण समन्वय; सगुण; दशावतार। २. राम-सीता के सम्बन्ध में धारणाएँ—क्या वे विष्णु-लक्ष्मी मात्र ! राम—विष्णु, विष्णु से भिन्नत्व, सीता, ३. राम के ब्रह्मत्व का मानस में उन्नयन। ४. ज्ञान और भक्ति, कृत्तिवास की भक्ति में विह्वलता, तुलसी की भक्ति में विवेक-पक्ष सबल। ५. नाम-महात्म्य, सगुण-निर्गुण समन्वय, महत्त्व वर्द्धन की कथाएँ।

अध्याय ८

काव्य-सौष्ठव का तुलनात्मक-अध्ययन २८३–३१८

१. कथा-संगठन। २. भाव-व्यंजना। ३. प्रकृति-सौंदर्य—षट्-ऋतु-वर्णन, अलंकरण के लिए प्रकृति-चित्रण, उद्दीपन, सहानुभूति-दर्शन, आलंबन-स्वरूप चित्रण। ४. सौंदर्य-भावना—राम-रूप-वर्णन, सीता का रूप, रूप-सौकुमार्य, प्रभाव, चेष्टा-सौंदर्य। ५. रचना-कौशल—भाषा-अरबी फ़ारसी के शब्द, भाषा-सौंदर्य, विशेष-उक्तियाँ। छंद—महाकाव्य में प्रयुक्त छंद, दोनों के प्रमुख छंद, छंद-परिवर्त्तन का कारण। अलंकार—अप्रस्तुत-विधान और सूक्ष्म-निरीक्षण।

अध्याय ९

उपसंहार ३१९-३२०

परिशिष्ट

कृत्तिवास का जीवन-परिचय ३२१–३२३

चित्र-परिचयः—

१. प्राचीन-बंगाल का जनपद-विभाग पृष्ठ ४
२. कृत्तिवासी-रामायण की पोथी का एक पृष्ठ, ६२
३. फुलिया ग्राम में कृत्तिवास का स्मारक, पृष्ठ ६४

अध्याय 1

युगीन-पृष्ठ-भूमि

कृत्तिवासी-रामायण एवं रामचरित-मानस कालीन

राजनीतिक-परिस्थिति

एवं

ग्रंथ-निर्माण की प्रेरणा

(अ) १—बंगाल:—मुस्लिम आक्रमण से पूर्व; गुप्त, पाल एवं सेन वंश

प्राचीन-काल में बंगाल कई प्रदेशों में विभाजित था—(१) वरेन्द्र (अथवा पुंड्र अथवा गौड़), (२) वंग एवं (३) राढ़[1]। मुसलमानों ने सर्व प्रथम समस्त प्रदेश का नाम बंगाल अथवा बंगाला प्रचारित किया। यह नाम उनका दिया हुआ नहीं है। 'सदुक्ति कर्णामृत' नामक ग्रंथ में बंगाल नामक एक कवि का नाम आया है, साथ ही बंगाल देश का भी नाम है।[2]

बंगाल की अधिकांश भूमि दल-दल एवं मच्छरों से पूर्ण थी। यहाँ के रहने वाले कुरूप, काले, कुरुचियुक्त, भक्ष्याभक्ष्य-ग्राही एवं असभ्य जंगली थे। जान पड़ता है कि ये दुष्ट-प्रकृति के थे, क्योंकि जैनों के प्राचीनतम ग्रंथ 'आचारांग-सूत्र' में उल्लेख है कि जब महावीर जी (छठी शताब्दी ई० पू०) राढ़ एवं सुह्म प्रदेश में धर्म प्रचार के लिये गये तो वहाँ के निवासियों ने 'छू छू' ध्वनि करते हुए इनके पीछे कुत्ते दौड़ा दिये। अहिंसा-प्रिय जैन-भिक्षुओं को भी दुश्चर राढ़ देश-वासियों एवं कुत्तों के डर से बाँस की लाठी लेकर चलना पड़ता था।[3] प्राचीन वैदिक एवं लौकिक ग्रंथों में इन्हें पक्षी[4], दस्यु[5], संकीर्ण-

१. उत्तरी बंगाल वरेंद्र भूमि कहलाता था। वंग केवल पूर्वी बंगाल को कहते थे जो कि अब पाकिस्तान में है। इसी के दक्षिण-अंचल के भाग समतट एवं हरिकेल कहलाते थे। दक्षिण की समुद्रतट-भूमि उपवंग कही जाती थी। पश्चिम एवं दक्षिणी-पश्चिमी बंगाल राढ़-देश कहलाता था। उत्तरी राढ़ को ब्रह्म और दक्षिणी-राढ़ को सुह्म भी कहते थे। वरेंद्र-भूमि को ही गौड़ कहते थे। कभी-कभी वंग को छोड़कर सारा प्रदेश ही गौड़ कहलाता था। देखिए, दि ओरिजन एंड डेवलपमेंट आफ बेंगाली लेंग्वेज, सुनीतिकुमार चटर्जी, पृ० ६७।

२. बाङ्गाला साहित्येर इतिहास, सुकुमारसेन, पृ० २७।

३. अह दुच्चरलाढमचारी वज्जभूमिं च सुब्भभूमिं च।
पंतं सिज्जं सेविंसु आसणगाणि चेव पंताणि॥ ८३
लाढेहिं तस्सुवस्सग्गा बहवे जाणवया लूसिंसु।
अह लूह देसिए भत्ते कुक्कुरा तत्थ हिंसिंसु निवइंसु॥ ८४
अप्पे जणे निवारेइ लूसणए सुणए दसमाणे।
छुच्छुकारिंति आहंसु समणं कुक्कुरा दसंतुत्ति॥ ८६ आचारांग सूत्र १–१–६–४।

४. ऐतरेय-आरण्यक (२–१–१) 'वयांसि वङ्गा वगधाश्चेरपादाः।' पक्षी टोटम होने के कारण अथवा पक्षियों जैसी अस्पष्ट भाषा बोलने के कारण।

५. ऐतरेय-ब्राह्मण—एतेन्धाः पुण्ड्राः शबराः पुलिन्दा मूतिबा इत्युदन्त्या बहवो वैश्वामित्रा दस्युना भूयिष्ठाः। ७–१८।

योनि[1], म्लेच्छ[2], अनार्य[3] आदि कहा गया है। पुंड्र, वंग और कलिंग जाने वालों को प्रायश्चित करना पड़ता था।[4] नृतत्व-विशारद-लोग (Anthropologists) बंगाल की निम्न-जातियों—बाँस-फोड़, बाग्दी, संथाल, मुंडा, हांड़ी, डोम, कावरा आदि को बंगाल की आदि-जातियाँ मानते हैं; तथा इनके अंग-प्रत्यंग की नाप-जोख कर इन्हें आस्ट्रिक, द्रविड़, मंगोल एवं नीग्रो जातियों की संतान बताते हैं।[5]

दूसरी ओर आर्यग्रन्थों से यह भी प्रमाणित होता है कि ये लोग आर्यों की ही संतान थे। ऐतरेय-ब्राह्मण (७-८) के अनुसार ये विश्वामित्र के अभिशप्त पुत्र की संतान हैं। महाभारत के आदि-पर्व (अ० १०४-५३-५६) में कहा गया है कि बलि की पत्नी सुदेष्णा के गर्भ से दीर्घतमा ऋषि ने नियोग-पद्धति द्वारा पाँच पुत्र अंग, वंग, कलिंग, पुंड्र एवं सुह्म उत्पन्न किये। तथा इन्हीं के नाम पर देशों के नाम पड़े। ऐतरेय ब्राह्मण (३९-८) में भी अंग एक राजा का नाम है जो कि वैरोचन (बलि) का वंशज है। वायु-पुराण में तो अंग को बलि का पुत्र स्वीकार किया गया है—उत्तरार्द्ध–३७, ३३। इससे पुष्ट होता है कि ये दस्यु-जातियाँ मूलतः आर्य ही थीं; मनुस्मृति में लिखा है कि पौंड्रिक आदि क्षत्रिय थे। वैदिक-क्रियाओं के लोप होने और ब्राह्मणों को न देखने से शूद्र हो गये।[6] ब्राह्मण केवल उतने ही क्षेत्र में रहते थे जहाँ तक कि कृष्णसार विचरण करता था।[7] इसे ही यज्ञ-भूमि कहते थे। ब्राह्मण इस क्षेत्र से बाहर नहीं जाते थे, फलतः उनके द्वारा क्रियाओं के अभाव में पुंड्र आदि देश म्लेच्छ माने गये। क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र जातियों को देश-विजय, वाणिज्य एवं जीविका के लिए आर्य-प्रभावित प्रदेश से दूर जाना पड़ता था। अतएव ये जातियाँ वृषलत्व को प्राप्त हो जाती थीं। समस्त-ग्रन्थों का वृत्त ज्ञात कर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बंगाल में आर्यों के पहुँचने के पूर्व यहाँ अनेक जातियों (Races) के मूल निवासी रहते थे, जो आज भी समाज में निम्नतम स्थान प्राप्त किये हैं। कुछ के साथ आर्यों का रक्त-सम्बन्ध भी हुआ, इस प्रकार शुद्ध और संकर आर्यों से समाज का सवर्ण-वर्ग बना।

---

१ बौधायन-धर्मसूत्र— अवन्तयोऽङ्गमगधाः सुराष्ट्रा दक्षिणापथाः।
उपावृत्सिन्धु सौवीरा एते संकीर्णयोनयः॥ १-२-१४

२. महाभारत— सुह्मानामधियं चैव ये च सागर वासिनः।
सर्वान्म्लेच्छ गणांश्चैव विजिग्ये भरतर्षभः॥ सभापर्व अ० ३०, २५

३. शीलांकाचार्य-रचित आचारांग सूत्र की टीका (९-१० वीं शता०) अनार्य।

४. आरट्टान कारस्करान् पुण्ड्रान् सौवीरान् ंगान् कलिङ्गान् प्रानान्निति च गत्वा पुनस्तोमेन यजेत सर्व पृष्ठया वा–१५ बौधायन-धर्मसूत्र, प्रथम प्रश्न, द्वितीय खंड (अगम्य देश)।

५. देखिए बाङ्गालीर इतिहास—नीहाररंजन राय (द्वितीय अध्याय)

६. शनिकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च॥ १०–४३॥
पौण्ड्काश्चौड्र द्रविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः।
पारदापह्लवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः॥ १०–४४ मनुस्मृति

७ कृष्णसारस्तु चरित मृगो यत्र स्वभावतः।
सः ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परः॥१–२३ मनु०

बंगाल के प्राचीन जनपद

१. केन्दुबिल्व - जयदेव का जन्म स्थान
२. फुलिया - कृत्तिवास का जन्म स्थान
३. नवद्वीप - म. प्र. चैतन्य का जन्म स्थान

मापक १" = ५० मील

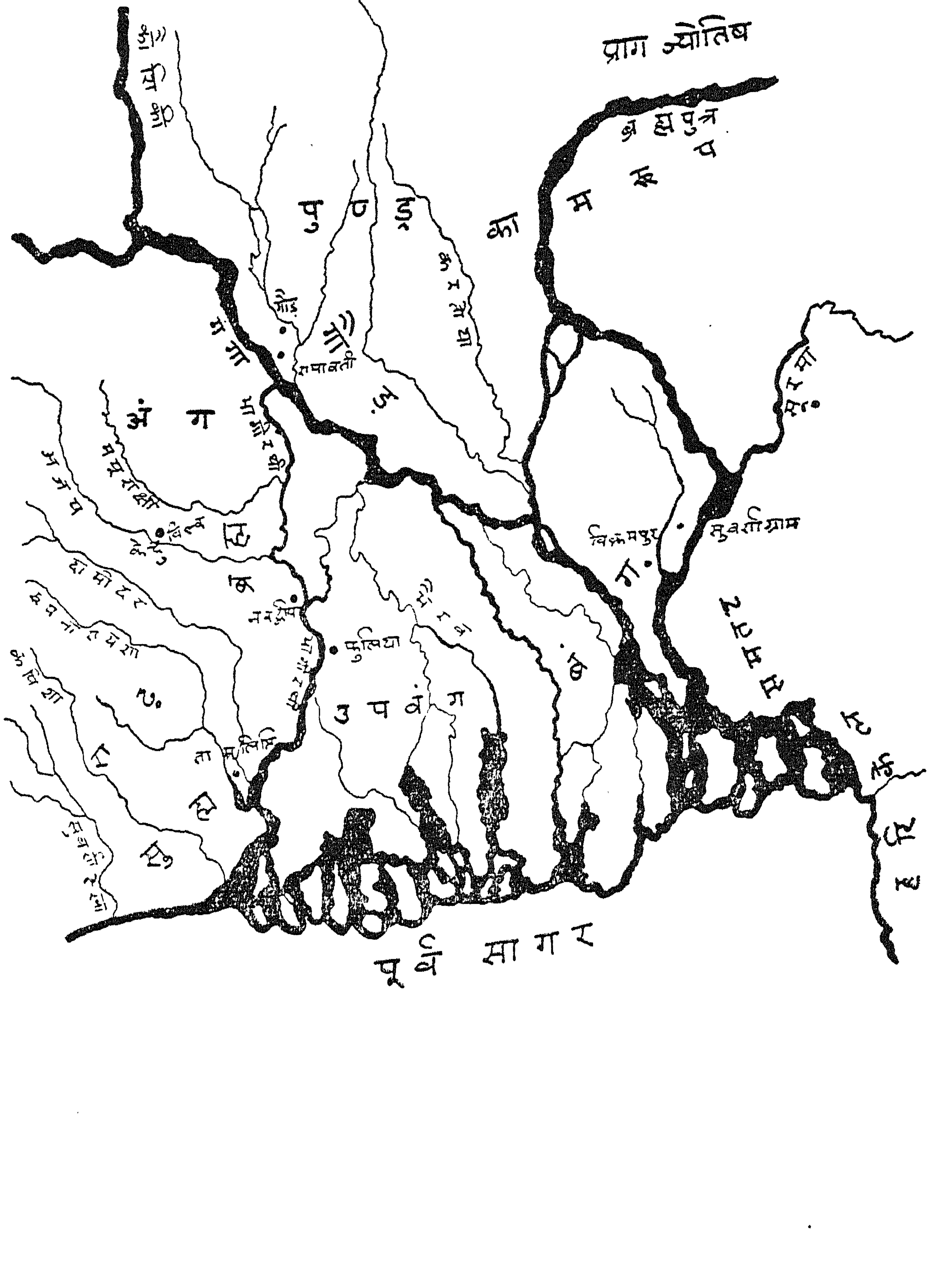

मोर्यों के शासन-काल में आर्यों का बंगाल-प्रवेश अधिक संख्या में होने लगा। दिव्यावदान के अनुसार अशोक के समय पुंड्रवर्द्धन जैन-धर्मावलंबियों का केन्द्र था।[१] अशोक के समय बौद्धों का प्रचार बढ़ा। जैन एवं बौद्ध धर्म वेद-विरोधी होते हुए भी ब्राह्मण्य-व्यवस्था को मानते थे। मौर्यों के पश्चात् बंगाल में तीन प्रमुख-वंशों का राज्य रहा—गुप्त, पाल, एवं सेन। पाल-वंशीय राजा बौद्ध थे। तीनों वंशों के राजत्व-काल में बंगाल में आर्य-परम्पराओं के प्रचार के लिए ब्राह्मणों को प्रधानता मिलती रही।

गुप्त-काल—गुप्त-वंशीय राजा वैष्णव थे। सर्व-प्रथम इन्हीं राजाओं ने बंगाल से वृषलत्व दूर करने के लिए ब्राह्मणों को भूमिदान कर बसाना आरंभ किया। सेठ आदि अब्राह्मण लोगों ने भूमि क्रय कर ब्राह्मणों को दान किया। बंगाल के बाहर के लोग भी बंगाल में भूमि क्रय कर ब्राह्मणों को दान कर रहे थे। अयोध्यावासी कुलपुत्रक ने इसी निमित्त भूमि क्रय की थी।[२] पुंड्र में भूतिवर्मा ने छठी शताब्दी में भिन्न-भिन्न वेद के ५६ गोत्रीय २०५ वैदिक अथवा साम्प्रदायिक ब्राह्मणों को बसाया था।[3] ब्राह्मणों को भूमि-दान का प्रमुख उद्देश्य यज्ञ एवं देव-पूजन था। इस काल में विष्णु-मंदिरों की स्थापना, मूर्तियों का निर्माण एवं देवार्चन का प्राधान्य बढ़ गया।

गुप्तकाल में ही राजकर्मचारी, नगरवासी, श्रेष्ठी, ग्रामवासी, गृहस्थ, सार्थवाह आदि का परिचय मिलता है।[४] सारा समाज ब्राह्मण्य रीति-नीति एवं व्यवस्थाएँ स्वीकार करता हुआ तीव्रगति से उन्नति की ओर उन्मुख था। ब्राह्मणों के महत्व की प्रधानता होते हुए भी अन्य धर्मों की उपेक्षा नहीं की जाती थी। पहाड़पुर की लिपि (५ वीं शताब्दी) के अनुसार ब्राह्मण लोग जैन श्रमणों को दान करते हुए देखे जाते हैं।[५]

सातवीं शताब्दी में गुप्तों का प्रभाव क्षीण होने पर वंग और गौड़ स्वतंत्र हो गये। बंगाल के प्रथम प्रतापी राजा शशांक ने सरयूतट-वासी १२ ब्राह्मणों को गौड़ में बसाया था, ये ब्राह्मण ही ग्रहविप्र कहलाते हैं।[६]

पाल-काल—८वीं शताब्दी के मध्यकाल तक बंगाल की राजनीतिक-स्थिति बड़ी उथलपुथल पूर्ण थीं। यहाँ की 'मात्स्य न्याय' की स्थिति समाप्त करने के लिये बंगाल के सामन्तों ने गोपाल को अपना राजा चुन लिया। इसने ही पाल-वंश की नींव डाली। पाल-राजा कुलीन न थे। कुमारिल भट्ट एवं शंकराचार्य के प्रकांड पांडित्य के आगे बौद्ध धर्म ठहर न सका। समस्त भारत से उत्सन्न होकर वह बंगाल में सिमट आया। पाल-राजाओं ने कई बौद्ध चैत्य, बिहार आदि बनवाये। उदतपुर एवं विक्रमशिला

१, दि ओरिजन एंड डेवलवमेंट ऑफ दि बेंगाली लेंग्वेज—सुनीतिकुमार चटर्जी, पृ० ७२।
२. बाङ्गालीर इतिहास—नीहाररंजन राय, पृ० २७१।
३. वही पृ० २७१।
४. वही पृ० २७१।
५. बाङ्गाला साहित्येर इतिहास [१] सुकुमारसेन, पृ० ५।
६. बाङ्गालीर इतिहास—नीहाररंजन राय, पृ० २८५।

महाविहारों की स्थापना करायी एवं भग्न-चैत्यों का जीर्णोद्धार कराया। पाल-राजाओं के संरक्षण में बौद्ध धर्म ने कई विवर्तन-परिवर्तन देखे। तांत्रिक-साधनाओं की कई गुह्य-पद्धतियाँ उसमें समाविष्ट हो गयीं। इस काल में बौद्धों का ऐसा प्राबल्य हुआ कि अनेक क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों ने उपवीत त्याग दिये और वे बौद्ध हो गये।[1]

बौद्ध-धर्म के साथ ही ब्राह्मण्य-धर्म पनपता रहा। बौद्ध-राजा विद्वेषी न थे। उनके मंत्री शास्त्रज्ञ-ब्राह्मण होते थे। राजा एवं प्रजा ने भूमि-व्यवस्था, समाज और राष्ट्र-व्यवस्था तथा उत्तराधिकार आदि अनेक विषयों में ब्राह्मण्य स्मृति-शासित विधान ही स्वीकृत किये थे। समाज एवं राज्य की सारी व्यवस्थाएँ मनुस्मृति के अनुसार थीं, किन्तु बंगाल में शास्त्र-व्यवस्था का पालन कुछ उदारता के साथ होता था। पाल-वंश की रानियाँ ब्राह्मणों को बुलाकर रामायण और महाभारत की कथाएँ सुनकर उन्हें दान दिया करती थीं। पाल-राजा बौद्ध होने पर भी ब्राह्मणों का आशीर्वाद ग्रहण करते थे, दान भी करते थे।[2]

रामपाल ने ११ वीं, १२ वीं शताब्दी में क्षयिष्णु पाल राज्य के उत्कर्ष का उद्धार करना चाहा, किन्तु उनके पश्चात् राज्य की रक्षा न हो सकी। पाल-राज्य के अंतिम दिनों के कुछ पूर्व ही सेन एवं वर्मन वंश अपना आधिपत्य जमाने लगे थे।

सेन-वर्मन-काल—ये दोनों वंश दक्षिण से आये थे। सेन कर्णाट ब्राह्मण थे, किन्तु क्षत्रिय-वृत्ति अपना लेने के कारण अपने को ब्रह्म-क्षत्र कहते थे। पाल-काल में बौद्ध-धर्म से प्रभावित ब्राह्मणेतर जातियों ने उपवीत-त्याग कर दिया था। स्मृति-शासित समाज में अनेक कदाकार जीवों के मांस, सड़ी-सूखी मछलियों तथा कई विकट जानवरों के खाने का निषेध किया गया है।[3] जिससे प्रकट होता है कि उस समय के लोग इन्हें ग्रहण करते थे। तांत्रिक लोगों में भी खाद्याखाद्य का विचार न था। वे सड़ा-मांस, मलमूत्र-पर्यंत कुछ भी खा लेने में हिचकते न थे। बंगाल के घर-घर में इस प्रकार की तांत्रिक-दीक्षा ने प्रचार पाकर समाज को वीभत्स कर दिया था।[4] योनि-सम्बन्ध भी बड़े शिथिल जान पड़ते थे। स्मृति-शासित समाज के सस्कारों में पालित सेन-वंशीय राजाओं को बौद्ध-बंगाल की यह संयम-शिथिल संस्कृति बिल्कुल पसन्द नहीं आयी। उन्होंने वहाँ की परिस्थितियों का शास्त्रों से समन्वय करते हुए स्मृति-शास्त्र लिखने प्रारम्भ किये।

वल्लाल सेन ने अपना ध्यान राज्य-विजय की ओर से हटाकर समाज को व्यवस्थित करने में लगाया। दीनेशचन्द्र सेन का कहना है कि इस समय आचार प्राण शून्य हो गये हैं, किन्तु किसी समय इन्हीं आचारों का प्रयोजन शिथिल समाज को शृंखलित करने के

१. सत्येन्द्रनाथ वसु—वसुमती मासिक (१३५१ बंगाब्द, आग्रहायण)।
२. बाङ्गालीर इतिहास—नीहाररंजन राय पृ० २८६।
३. वही-पृ० ५४२।
४. वङ्ग भाषा ओ साहित्य, पृ० १४९—दीनेशचंद सेन।

लिए हुआ था। बल्लाल सेन ने विद्या, यश एवं धन आदि के आगे आचारों को अधिक महत्व दिया। इन्हीं के आधार पर कौलीन्य निर्माण हुआ।[1] लक्ष्मण सेन के समय से कौलीन्य वंशगत हो गया।[2]

वर्मन-वंश के राजाओं हरिवर्मा एवं श्यामल वर्मा के साथ बंगाली ब्राह्मणों की कुल-पंजिकाओं का सम्बन्ध है। कहा जाता है कि इन्हीं दोनों में से किसी ने कान्यकुब्ज-प्रदेश से वैदिक ब्राह्मणों को शकुल-सत्र यज्ञ के लिए बुलाया था। वर्मन-वंश के महासंधि-विग्रहक भट्ट भवदेव के व्यक्तित्व से ही हम इस काल के ब्राह्मणों के पांडित्य का अनुमान कर सकते हैं, साथ ही हम इसकी भी कल्पना कर सकते हैं कि ये लोग समाज को किस ओर ले जा रहे थे। भट्ट भवदेव एक ओर नीति-कुशल मंत्री थे तो दूसरी ओर शस्त्र-धारण में कुशल-योद्धा। बौद्ध-धर्म का प्रभाव समाप्त कर देने के कारण इन्हें बौद्ध-समुद्र को ग्रास करने वाला अगस्त्य कहा गया है। 'वे ब्रह्म-विद्याविद्, सिद्धान्त-तंत्र-गणित-फल-संहिता के पंडित, होराशास्त्र के एक ग्रंथ के लेखक, कुमारिल भट्ट के मीमांसा-ग्रंथ के टीकाकार, स्मृति-ग्रंथ के प्रख्यात लेखक, अर्थशास्त्र, आयुर्वेद, आगमशास्त्र एवं अस्त्र-वेद के भी सुपंडित थे।[3] इनके द्वारा लिखित दो स्मृति-ग्रंथ आज भी सुरक्षित हैं। बंगालियों के संस्कार इन्हीं के अनुसार होते हैं। कृत्तिवास के समकालीन अथवा उनके अनंतर उत्पन्न होने वाले रघुनंदन पंडित ने भी भवदेव के ग्रंथों का अनुसरण किया है।

इस काल के प्रमुख स्मृति-ग्रन्थ लेखक ये हैं—जीमतवाहन, अनिरुद्ध भट्ट (बल्लाल सेन के गुरू), राजा बल्लाल सेन, हलायुध (लक्ष्मण सेन के महाधर्माध्यक्ष) और राजा लक्ष्मण सेन आदि। भवदेव भट्ट का उल्लेख हो चुका है। जितेंद्रिय एवं बालक ने भी ग्रंथ लिखे किन्तु उनकी रचनाएँ अब अप्राप्य हैं।

इस काल में हिन्दू-समाज का पुनर्गठन हुआ। पालों के समय में ब्राह्मणेतर जातियों ने उपवीत त्याग दिया था, अब वे फिर हिन्दू हो गये, किन्तु सबके सब शूद्र अथवा वर्ण-संकर माने गये। बंगाल के शूद्र मनूक्त-शूद्रों से भिन्न हैं। इन नव-शूद्रों को वेद-मंत्र सुनने का अधिकार था तथा ये ब्राह्मणों द्वारा कई अनुष्ठान करा सकते थे।[4] बृहद्धर्मपुराण एवं ब्रह्मवैवर्त्त पुराणों का जन्म अथवा नव-संस्कार इसी युग में हुआ। इनमें वर्णित जातियों के वर्गीकरण से हम तत्कालीन स्थिति से परिचय प्राप्त कर सकते हैं।

वृहद्धर्म-पुराण[5] के अनुसार बंगाल में दो जातियाँ स्वीकार की गयीं—(१) ब्राह्मण एवं (२) शूद्र। शूद्रों अथवा वर्ण-संकरों को तीन श्रेणियों में बाँटा गया—(१) उत्तम-

---

१. वङ्ग भाषा ओ साहित्य, दीनेशचंद्र सेन) पृ० १४६।

२. वही-पृ० १४६

३. बाङ्गालीर इतिहास—नीहाररंजन राय—पृ० २६२–२६२।

४. वसुमती मासिक (१३५१ बंगाब्द, आग्रहायण) एवं वृहद्धर्म-पुराण-उत्तर-खंड, अध्याय १३, १४।

५. वृहद्धम-पुराण—उत्तर कांड अ० १३, १४।

संकर, (२) मध्यम-संकर एवं (३) अधम-संकर अथवा अन्त्यज। ब्रह्मपुराण[1] में भी विभाजन कुछ ऐसा ही है। उसमें संकर को केवल दो श्रेणियों में बाँटा है—(१) सत्-शूद्र एवं (२) असत्-शूद्र।

ब्राह्मणों की चार श्रेणियाँ हो गयीं। राढ़ और वरेन्द्र भूमि में बसने वाले ब्राह्मण क्रमशः राढ़ीय एवं वरेन्द्री कहलाये। ये वैदिक क्रियाएँ भूल गये थे, अतएव सेन-वर्मन युग में जो ब्राह्मण आये वे वैदिक कहलाये। एक और श्रेणी ग्रहविप्रों की है, इन्हें शाकद्वीपी ब्राह्मण कहा जाता है तथा ये शशांक द्वारा बसाये गये थे। इनकी स्थिति समाज में महत्त्व-पूर्ण नहीं मानी गयी।

इस काल के पूर्व तक शासन और समाज पर बौद्धों का प्रभाव था। अपभ्रंश-मिश्रित अधकचरी आरंभिक बँगला में सिद्ध लोग जो कुछ कह रहे थे, उसमें वैदिक-धर्म की उपेक्षा थी। वे स्वतंत्र चिंतक थे, अतीत से चिपटे रहना उन्हें पसंद न था। सेन-काल तक इस विचारधारा का पराभव हो चुका था। कृत्तिवास ने रामायण की रचना कर अपने काल एवं वाल्मीकि के समय में योगसूत्र स्थापित किया। कृत्तिवास एवं काशीराम दास आदि कवियों के प्रयास से बंगाल के समाज एवं संस्कृति की धारा वैदिक-उद्गम से संबंधित होकर तीव्रगति से प्रवाहित होने लगी।

(२) मुस्लिम-आक्रमण एवं साहित्य

कृत्तिवासी-रामायण की पृष्ठभूमि केवल वह न थी जोकि मौर्यकाल से लेकर सेन-वंश तक के समय के अनेक विवर्तन देख कर निर्मित हुई थी, उस पर मुस्लिम-संघात का भी प्रभाव पड़ा था। अतएव उनकी सम-सामयिक स्थिति से परिचय लाभ करने के लिए हिंदू-मुस्लिम-संघर्ष एवं सामाजिक-भावना पर उसकी प्रतिक्रिया का ज्ञान कर लेना भी प्रयोजनीय है।

मुसलमानों के आक्रमण के पूर्व तक बंगाल पर आकस्मिक आपत्तियाँ कम आयीं थीं। शक, हूण, यवन आदि के आक्रमण की प्रचंडता समस्त आर्यावर्त को पार कर बंगाल तक नहीं पहुँच पाती थी। बंगाल के शासक भी प्रायः इधर की हलचलों से उदासीन से रहते थे। जिस समय समस्त भारत की शक्तियाँ एक नेतृत्व में एकत्र होकर महमूद गजनवी का वेग रोकने के लिए सक्रिय थीं, बंगाल के राजा महीपाल उस समय आस-पास के राज्य हड़पने में लगे थे।

सेन-वंश के अन्तिम राजा लक्ष्मण सेन शूरता, उदारता एवं दानशीलता के लिए प्रख्यात थे। उनके सभासदों एवं ब्राह्मणों ने मुसलमानों की विजय एवं अन्यायपूर्ण रणनीति के सम्बन्ध में सुना तो घबड़ा गये। ज्योतिष की गणना के विचार करने पर भी ज्ञात हुआ कि तुर्कों की जीत होगी। सेन-राजा वीरता पूर्वक डटा रहा, किन्तु उसके बहुतेरे सभासद आक्रमण के पूर्व ही लखनौती छोड़कर भाग गये।[2] बख्तियार खिलजी ने १८ घुड़सवारों

१. ब्रह्मवैवर्त-पुराण—ब्रह्मखंड अ० १० (१६-२१)।
२. बाङ्गालीर इतिहास—नीहाररंजन राय, पृ० ५१४।

के साथ अश्व-विक्रेता के रूप में प्रासाद में प्रवेश पाकर दुर्ग पर अधिकार कर लिया।[१] लक्ष्मण सेन ने भी वहाँ से पलायन किया। इसके अनन्तर भी उनका वंश पूर्वी-बंगाल में कुछ वर्षों तक राज्य करता रहा।

मुसलमानों का आक्रमण विचित्र समय में हुआ था। पाल राजाओं के आश्रय में बौद्ध मत नाना प्रकार के रंग देख चुका था। धर्म के क्षेत्र में गड़बड़ थी ही, लोग बड़े विलास-प्रिय हो गये थे। वात्स्यायन के कामसूत्र[२] में गौड़ एवं बंग के राज-भवन की यौवनमत्ता रानियों के प्रेम-षडयंत्रों का वर्णन हुआ है। पाल-वंश के समय कामवासना की तुष्टि के लिए दासी एवं देवदासी प्रथा का प्रचार था। सेन-वंश के राज-कवियों (जयदेव आदि) ने भी शृङ्गार-रस का खुला वर्णन किया है। कट्टर वैदिक सेन एवं वर्मन राजाओं ने तथा उनके प्रकांड विद्वान् मंत्रियों ने समस्त समाज का परिष्कार करना चाहा था। ब्राह्मण लेखक अपनी लेखनी के बल से अनैतिकता एवं संयमहीनता को अधिक से अधिक नियंत्रित करने की चेष्टा में निरत थे। उन्होंने 'औपनिषदिक' पौराणिक एवं रामायण-महाभारतीय नैतिक आदर्शों को जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया। यह आदर्श पतिव्रत, शुभ्र-शुचिता, धैर्य, संयमशीलता, औदार्य, दया-दान और क्षमाशीलता का था।'[३]

ब्राह्मण-लोग अभी तक केवल शूद्र-वर्गों तक का संगठन कर सके थे। गांव से दूर रहने वाली कुरुचि पूर्ण आदि-जातियों का समुन्नयन वे नहीं कर सके थे। शुद्धाचार-परायण हिंदू समाज आदिवासियों के कुत्सित-आचारों के कारण उनसे दूर हट रहा था। ऐसे समय में जबकि निर्माण-कार्य पूर्ण न हो पाया था, मुसलमानों का आक्रमण हो गया।

मुसलमान जहाँ भी गये, वहाँ जाते ही लूट, आग, धर्मांतरण, मंदिर-विध्वंस एवं भयंकर जन-संहार प्रारंभ हो गया। सारे बंगाल में खलबली मच गयी। सबसे अधिक क्षति बौद्धों को उठानी पड़ी।[४] बड़े-बड़े पुस्तकालय एवं चैत्य-विहार जलाकर ध्वस्त कर दिये गये, भिक्षु मार डाले गये। हिन्दुओं को भी अपार क्षति उठानी पड़ी, किंतु हिंदू धर्म एवं समाज बार-बार गिरकर भी उठ खड़ा होता था।

समाज का जो भाग अभी ब्राह्मण्यधर्म की व्यवस्था के अंतर्गत नहीं आ सका था अथवा जिसे निम्नतम स्थान प्राप्त था उसने 'मौत' या इस्लाम' के बीच दूसरे को

---

१ तबकाते नासिरी—पृ० ५५७.

२ ब्राह्मणैर्मित्रभृत्यर्दास चेटैश्च गौडानाम्। ५-६-३८—वात्स्यायन। पुष्प दाननि योगान्नगर ब्राह्मण राजविदितमन्तः पुरानि गच्छन्ति पटान्तरितश्चैषामालापः। ५-६-४१ वात्स्यायन। ५-६-४२ भी दृष्टव्य।

३ बाङ्गालीर इतिहास—नीहाररंजन राय-पृ० ५६१-६२.

४ तारानाथ एवं मिनहाज की विवरणी देखने से ज्ञात होता है कि बंगाल एवं बिहार के कुछ बौद्ध भिक्षुओं ने मुसलमानों के गुप्तचर बनकर विभीषण का कार्य किया था। तुलनीय-बाङ्गालीर इतिहास-नीहार राय-पृ०५२८.

चुन लिया। बंगाली मुसलमान और निम्न वर्ण के हिन्दुओं में आकृतिमात्र की समता ही नहीं है अपितु अनेक आचार-व्यवहार भी मिलते हैं। एक चंडाल को मुसलमान के साथ खड़ा कर दिया जाय तो उनकी पहचान करना कठिन हो जायगा।[१] मुसलमानों की चंद, पाल, दत्त आदि उपाधियाँ देख कर भी पता लगता है कि कुछ कायस्थ भी धर्मांतरित हुए थे।

१३–१४ वीं शताब्दी तक ऐसा भीषण दमन-चक्र चला कि सारा बंगाल त्राहि-त्राहि कर उठा। बंगाल के हाथी, रेशमी वस्त्र एवं अन्य बहुमूल्य वस्तुओं के लिए दिल्ली के सुलतान भी आक्रमण करते रहते थे। बल्बन के पुत्र बुगरां खाँ ने तो बंगाल को इतना अधिक महत्त्व दिया कि उसे दिल्ली की सल्तनत की अपेक्षा बंगाल की सूबेदारी अधिक प्रिय लगी। १३ वीं शताब्दी के अंत में बल्बन ने तुग़रिल के साथियों को लखनौती के बाजार की सड़क के दोनों ओर फांसी पर लटकवा दिया। बच्चे और स्त्रियां तक नहीं छोड़े गये। यह हत्याकांड दो-तीन दिन तक लगातार चलता रहा। इस भयानक दंड को देखने वाले तक बेहोश हो गये।[२] फीरोज तुग़लक ने बंगाल के आक्रमण में मृत बंगालियों के सिर, प्रति सिर एक रुपया देकर इकट्ठे कराये थे इनकी संख्या एक लाख अस्सी हजार थी।[३] बंगालियों ने युद्धों के भयंकर हत्याकांडों का दृश्य मुस्लिम-काल में ही देखा था।

१४ वीं शताब्दी में शम्सुद्दीन इलियस ने बंगाल के स्वतंत्र-राज्य की स्थापना की। इनके समय में बंगाल ने कुछ सुख की सांस ली। ये उदार एवं बंगला-साहित्य के पोषक कहे जाते हैं, किन्तु इनके बारे में भी प्रसिद्ध है कि इन्होंने पहले हिन्दुओं पर बहुत अत्याचार किये थे। १३–१४ वीं शताब्दी में भयंकर उथल-पुथल के कारण साहित्य सृजन नहीं हो सका। १५ वीं १६ वीं शताब्दी के अनेक कवियों ने इन अत्याचारों का वर्णन किया है। विजयगुप्त ने ब्राह्मणों के यज्ञोपवीत तोड़ने, मुँह में थूकने, काजी के पास पकड़ कर ले जाने, बुरी तरह मारने आदि घटनाओं का वर्णन अपने पद्म-पुराण में किया है।[४]

---

१ बांग्लार नव-जाग्रति-विनय घोष–पृ० ११५.

२ दि मुहम्मडन पीरियड, वौल्यूम–३ (जियाउद्दीन बर्नी इलियट एण्ड डासन–पृ० ११६.
दि मोहम्मडन पावर, वौल्यूम–१ (फरिश्ता) ब्रिग्स–पृ० २६४–६५.

३ फ़ीरोजशाह (शम्से सिराज अफ़ीफ़) इलियट एण्ड डासन–पृ० ३२.

४ ब्राह्मण पाइले लागे परम कौतुके।
कार पैता छिंड़ि फेले थु थु देय मुखे॥
जाहार मस्तके देखे तुलसीर पात।
हाते गलाय बांधि लय काजिर साक्षात॥
कक्ष तले माथा थुइया बज्र मारे किल।
"वङ्ग भाषा ओ साहित्य–" दीनेशचन्द्र सेन–पृ० २४२ से गृहीत।

१६वीं शताब्दी के कई कवियों ने चैतन्य से प्रभावित होकर कुछ ग्रन्थ लिखे हैं। इनमें उन्होंने हिन्दुओं के प्रति मुसलमानों के व्यवहार का चित्रण किया है। जयानंद ने नवद्वीप में ब्राह्मणों के विनाश के विषय में लिखा है कि वहाँ जिसके घर शंख ध्वनि सुनायी पड़ती थी, उसके धन-प्राण ले लिये जाते थे; जाति नष्ट कर दी जाती थी। माथे का तिलक एवं कंधे के यज्ञोपवीत को देखकर वे घर-बार लूट लेते थे और लौह-पाश से बाँध देते थे।[1]

जिन हुसेन शाह (१५वीं शताब्दी का अन्तिम भाग) की प्रशंसा में बंगला के प्राचीन लेखक और अर्वाचीन समालोचक पंच-मुख हैं, जो चैतन्य महाप्रभु को श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे, तथा जिन्होंने हिन्दुओं के द्वारा पुराणादि के बंगला अनुवाद कराये, उन्हीं शाह महोदय ने उड़ीसा के भव्य मंदिर एवं मूर्त्तियों को विध्वस्त किया था।

जे हुसेनशाह सर्व्व उड़ियार देशे।
देवमूर्त्ति भाङ्गिलेक देउल विशेषे[2] ।।२

जब इनका यह हाल था तो कृत्तिवास के पहले के धर्मांध शासक क्या करते रहे होंगे ?

नदीया (नवद्वीप) ब्राह्मणों का केन्द्र हो गया था। अतएव नदीया तथा उसके आस-पास के गाँवों पर आक्रमण कर वहाँ के ब्राह्मणों को बलात् मुसलमान बनाया जाता था। तुलसी एवं पीपल के वृक्ष हिन्दुओं के द्वारा पवित्र माने जाने के कारण सैकड़ों की संख्या में काट डाले जाते थे। गंगा स्नान कानूनन बंद था। नदीया के महानाश का वर्णन जयानंद ने किया है।[3]

मुसलमानों से अपने समाज एवं प्रतिष्ठा की रक्षा के लिये अनेक कुलजी-ग्रन्थ (कुल-पंजिका) लिख कर सामाजिक बंधन जटिल से जटिल-तर कर दिये गये। ब्राह्मणों की आर्थिक स्थिति अत्यधिक शोचनीय थी, फिर भी दैन्य दारिद्रय आदि की यातनाएँ सहकर भी वे कट्टर एवं सुदृढ़ बने रहे। उन्होंने 'मौत एवं इस्लाम' में इस्लाम का चुनाव कदापि नहीं किया। पिरिली ब्राह्मण आज भी इसके प्रमाण हैं। इनके पूर्वजों के मुंह में मुसलमानों ने बलात् जूंठा भोजन घुसेड़ दिया था। समाज ने इन्हें मुसलमान कहकर बहिष्कृत किया, किन्तु इन्होंने अपने समाज से भी संघर्ष लेकर अपने से हेय-धर्म को

१ नवद्वीपे शङ्खध्वनि शुने जार घरे।
धन प्राण लय तार जाति नाश करे ।।
कपोल तिलक देखे यज्ञ सूत्र कांधे।
घर द्वार लोटे तार लौह पाशे बांधे ।। चैतन्य-मंगल पृ० ११६४.

२ चैतन्य-भागवत—अन्त्य-खंड-चतुर्थ-अध्याय-६७।

३ देउल देहरा भाङ्गे उपाड़े तुलसी।
प्राणभये स्थिर नहे नवद्वीप वासी ।।
गङ्गा स्नान निरोधिल हाट घाट जत।
अश्वथ पनस वृक्ष काटे शत शत ।। चैतन्य-मंगल पृ०-११६४.

स्वीकार न किया। ये आज तक पतित ब्राह्मण के रूप में जीवित हैं। ब्राह्मण इतने कट्टर हो गये थे कि बलात् धर्मांतरण का भी प्रायश्चित प्राण-त्याग निश्चित किया था। सुल्तान हुसेनशाह पहले एक उदार-चरित ब्राह्मण के यहाँ नौकर रह चुका था। इसने राज्य-प्राप्ति के पश्चात् इस ब्राह्मण को बुलवा कर इसके मुख में जूंठा अन्न ठुंसवा दिया। ब्राह्मणों की प्रायश्चित-विधि के अनुसार बेचारा अग्नि में तो नहीं जल सका, किन्तु संन्यासी बनकर वृन्दावन में जीवन बिताने लगा था।[1] मुसलमानों के अत्याचार से बचने के लिए ब्राह्मण अपने को जीवित जला डालते थे।[2]

ब्राह्मणों में ही नहीं अन्य जातियों में भी सीमातीत कट्टरता आ गयी थी। मार्कंडेय-चंडी के अनुवादक रूपनारायण घोष के पूर्वज कोई दो भाई जगन्नाथ और वेणीनाथ थे। एक अत्याचारी निम्न-वंशीय कायस्थ इन दोनों भाइयों को पद्मा नदी की जलधार के बीच नाव में ले गया और बोला, 'मेरी कन्या से विवाह करोगे अथवा मृत्यु स्वीकार करोगे?' छोटे भाई ने मृत्यु से डरकर विवाह करना स्वीकार कर लिया। बड़ा भाई कौलीन्य की रक्षा के लिए दृढ़ रहा और उसे अत्याचारी जमींदार ने नदी में फेंक कर मार डाला।[3] इस प्रकार उस समय के लोगों के लिए कौलीन्य एवं धर्म प्राणों से बढ़कर प्रिय हो गया था।

बंगाल में बाहर के मुसलमान कम आये, यहीं के लोगों ने धर्मांतरण अधिक किया। नव-मुसलमानों को इस्लाम मज़हब में कोई महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त न हो सका। हिन्दुओं की जाति-प्रथा उनमें भी प्रविष्ट हो गयी। उनमें भी सैयद और शेख का भेद होने लगा। सैयद अपने को शुद्ध मान कर शेखों अर्थात् धर्मांतरित मुसलमानों को आदर की दृष्टि से न देखते थे। नव-मुसलमान अपने पूर्व-संस्कारों का भी परित्याग नहीं कर सके थे। बंगाल की मुसलमान स्त्रियाँ पर्दा कम करती हैं, अनेक सिंदूर का सेवन करती हैं, तथा दुर्गा आदि की पूजा भी करती हैं। बंगाल में मुसलमानों को डर था कि कहीं मुसलमान हिन्दू-धर्म में विलीन न हो जायं। कट्टर आचार-प्रधान हिन्दू-समाज उन्हें स्वीकार करने पर शूद्र का ही स्थान देता। अपने को शूद्र की स्थिति में न आने देने के लिए मुल्ले, क़ाज़ी एवं मुस्लिम-शासक अनवरत-रूप से धर्मांधता का नृशंस परिचय देते रहते थे।

हिन्दू-धर्म में निकास है, प्रवेश नहीं। अतएव संख्या-वृद्धि में तत्पर इस्लाम के विजयोन्मत्त अनुयायियों से पाला पड़ने पर हिन्दू-धर्म के कर्णधारों के समक्ष समस्या उपस्थित हुई। वे विधर्मी को तो स्वीकार कर ही नहीं सकते थे, धर्मांतरित हिन्दू के लिए भी द्वार बन्द कर दिये जाते थे। स्वधर्म एवं समाज की रक्षा का केवल एक मार्ग दिखायी पड़ा—समाज के बन्धनों को दृढ़ से दृढ़तर कर देना। इसी शताब्दी (१५वीं) में रघुनंदन पंडित का जन्म हुआ, जिन्होंने स्मृति-शास्त्र की रचना कर सारे समाज को विधि-निषेध

१ चैतन्य एण्ड हिज एज—दीनेशचंद्र सेन, पृ० ५७.
२ ……वही…………पृ० २४.
३ वङ्ग भाषा ओ साहित्य—दीनेशचंद्र सेन, पृ० १४९.

आदि की मर्यादाओं में बांध दिया। आज तक बंगाली हिन्दू-समाज इसी स्मृति-ग्रन्थ से शासित होता चला आ रहा है। सच पूछा जाय तो ऐसी संकटकालीन स्थिति में बंगाली जनता को तीन का संबल था—कृत्तिवास, रघुनन्दन एवं चैतन्य महाप्रभु का। कृत्तिवास के महत्त्व का आगे हम अध्ययन करेंगे।

३—कृत्तिवास के समसामयिक शासक और उनके आश्रयदाता

रामचरित-मानस का रचनाकाल (सं० १६३१) एवं तुलसीदास के देहावसान (सं० १६८०) की तिथियां ज्ञात हैं, किंतु कठिनाई यह है कि कृत्तिवास के संबंध में हमें ऐसी कोई तिथि ज्ञात नहीं है।

उनके जन्म के संबंध में सभी मतों पर विचार करने के उपरांत कम से कम हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि उनका युवाकाल ईसा की १५ वीं शताब्दी में बीता होगा। फिर भी निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि उनके समसामयिक शासक कौन थे।

विद्वान् लोगों ने कृत्तिवास के संबंध में जितने मत दिये हैं, उनके अनुसार उनके जन्म एवं मृत्यु की सीमाएँ स्वीकार कर हमें देखना है कि कवि के समय में कौन कौन शासक हो गये हैं। अध्यापक योगेशचन्द्र से सहमत विद्वज्जन कृत्तिवास का जन्म १३९८ ई० में मानते हैं। कृत्तिवास की अंतिम सीमा १६ वीं शताब्दी का प्रारंभ मानी जा सकती है। इन दो सीमाओं के मध्य-काल में अर्थात् सन् १३९८ से १५१८ ई० तक १८ शासक हो गये हैं[२]। हिन्दू राजा केवल चार हुए—गणेश, तत्पुत्र यदु (इस्लाम में धर्मांतरित होने पर जलालुद्दीन), दनुज-मर्दन और महेन्द्र। चारों राजाओं ने केवल चार वर्ष तक राज्य किया। कृत्तिवास् कभी भी क्यों न पैदा हुए हों उनके समय में मुसलमान शासकों का ही प्रभुत्व था।

---

१ कृत्तिवास के जन्म आदि के सम्बन्ध में देखिए परिशिष्ट।

२ बंगाल के शासक——

(१) गयासुद्दीन आजमशाह	१३९३	(११) शम्सुद्दीन यूसुफशाह	१४७४
(२) सैफुद्दीन हमजाशाह	१४१०	(१२) सिकन्दरशाह द्वितीय	१४८१
(३) शहाबुद्दीन बायजिद	१४१२	(१३) जलालुद्दीन फतेहशाह	१४८१
(४) गणेश (कंस नारायण १)	१४१४	(१४) बारबक, सुलतान शाहजादा	१४८६
(५) यदु (जलालुद्दीन))हिं	१४१४	(१५) मलिक इंदील फीरोजशाह	१४८६
(६) दनुज मर्दन)दू	१४१७	(१६) नसीरूद्दीन महमूदशाह द्वितीय	१४८९
(७) महेन्द्र)	१४१८	(१७) सादी बदर शम्सुद्दीन मुहम्मदशाह	१४९०
(८) शम्सुद्दीन अहमदशाह	१४३१	(१८) सैयद अलाउद्दीन हुसेन शाह	१४९३ से १५१८
(९) नसीरुद्दीन महमूदशाह	१४४२		
(१०) रुक्नुद्दीन बारबकशाह	१४६०		

एन एड० हि० ऑफ इंडिया-आर० सी० मजुमदार, पृ०—६०५, ६.

सभी शासकों की एक सी ही नीति थी। श्री जे०सी० घोष[1] ने मुसलमानों के काल को राजविप्लव एवं विनाश (Anarchy and Devastation) का समय बताते हुए कहा है कि भारत ने पठान जैसे बर्बर (Barbarous) शासक नहीं देखे थे, तथा ऐसे विनाशों से भी यह देश परिचित न था। कृत्तिवास के समय कैसी भयंकर उथल-पुथल मची रहती होगी यह इससे ही प्रकट हो जाता है कि एक शताब्दी (१३९३-१४९३) के भीतर ही १८ शासकों ने बंगाल पर राज्य किया। अनेक शासक साल-साल भर भी राज्य न कर सके।

आश्रयदाता—

कृत्तिवास के संबंध में एक आत्म-विवरणी प्राप्त हुई है, उसमें उन्होंने किसी गौड़ेश्वर की सभा में अपना सम्मानित होना लिखा है। राजा से साक्षात्कार का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

'अध्ययन समाप्त करने के उपरांत कृत्तिवास राजा के पास गये। द्वारपाल के द्वारा ५ श्लोक पहुँचा कर वे राजाज्ञा की अपेक्षा करने लगे। सात घड़ी बीत जाने पर डंके पर चोट पड़ी, सभा भंग हुई और द्वारी स्वर्ण-यष्ठि लेकर कृत्तिवास को राजदर्शन के लिए ले गया। वे नौ ड्योढ़ियां पार कर राजा के पास पहुँचे। उस समय राजा कई ब्राह्मण एवं अन्य हिंदू-सामंतों से घिरे हुए धूप खा रहे थे। कृत्तिवास ने उनके समक्ष ७ श्लोकों का पाठ किया। राजा ने प्रसन्न होकर फूल की माला और रेशमी-उत्तरीय से कवि का अभिनंदन किया। केदार खां (हिंदू) नामक सभासद ने कवि के माथे पर चंदन लगा दिया। गौड़ेश्वर ने पूछा, 'और क्या दूं ?' सभी सभासद बोल उठे 'द्विजराज इस समय जो भी इच्छा हो मांग लो। कृत्तिवास ने कुछ न मांग कर केवल सम्मान मांगा[2]'

आत्म-विवरण से यह निष्कर्ष निकला—

१—राजा संपन्न थे। द्वारपाल की स्वर्णयष्टि, नौ ड्योढ़ी एवं सभासदों से ऐसा ही प्रतीत होता है।

२—राजा हिन्दू थे, क्योंकि समस्त वातावरण हिन्दू व्यक्तियों एवं संस्कृति से पूर्ण है।

कृत्तिवास ने सुनंद, केदारखां[3], गंधर्वराय, केदारराय, तरुणी, श्रीवत्स्य, मुकुंद एवं जगदानंद नामक सभासदों का नाम तो लिया है. किंतु न तो भेंट की न किसी तिथि का उल्लेख किया और न राजा का नाम ही लिया है। राजा का नाम अथवा तिथि ज्ञात होने पर कवि एवं आश्रयदाता दोनों का समय ज्ञात किया जा सकता था। १३ वीं शताब्दी के बिल्कुल प्रारंभ से ही मुसलमान बंगाल पर राज्य कर रहे थे। बीच में गणेश प्रतापशाली राजा हो गये हैं। दनुज मर्दन एवं महेन्द्र भी इनके पश्चात् हो गये हैं। हो सकता है कि

१ बेंगाली-लिटरेचर—जे०सी० घोष, पृ० ३१.

२ आत्म-विवरण (कृत्ति० रामा०) पृ० ५८५.

३ बंगाली हिन्दू भी शासकों द्वार खां उपाधि प्राप्त करते थे। कुछ बंगाली हिन्दू तो आज भी नाम के साथ खां जोड़े हुए हैं। (लेखक)

कृत्तिवास इन्हीं राजाओं में किसी से भेंट करने गये हों। सुकुमार सेन का मत है कि कृत्तिवास इनमें से किसी के साथ भेंट करने नहीं गये होंगे।[1] ऐसी स्थिति में मानना पड़ेगा कि कृत्तिवास का सम्मान किसी अप्रसिद्ध बड़े जमींदार ने किया था। आदर के कारण कवि इन जमींदार महोदय को गौड़ेश्वर कहते थे।

किसी राजा अथवा जमींदार से कवि की भेंट सभी विद्वान् स्वीकार करते हैं। भेंट से यह अर्थ नहीं निकाला जा सकता कि कवि उस राजा अथवा जमींदार के आश्रय में रहे होंगे। हिन्दू राजाओं का शासन अल्प-काल तक रहा। अतएव उन्हें राजा के विनाश के पश्चात् भी निराश्रय हो जाना पड़ा होगा। किसी जमींदार के पास रहे हों तब भी निश्चित होकर न रह सके होंगे, क्योंकि उनके जन्म अथवा मृत्यु की शताब्दियाँ ही भयंकर उथल-पुथल में बीती थीं।

४—कृत्तिवास का व्यक्तित्व एवं रामायण लिखने की प्रेरणा

कृत्तिवास स्वाभिमानी ब्राह्मण थे। गौड़ेश्वर एवं उनके सभासदों द्वारा सम्मानित होने तथा राजा से चाहे जो कुछ मांग लेने के लिए कहने पर कविराज ने उचित ही कहा : 'मुझे किसी का कुछ नहीं चाहिए, जहाँ जाऊँ गौरव मात्र मिले।'

कारो किछु नाहि लइ करि परिहार।
यथा जाइ तथाय गौरव मात्र सार॥[2]

कृत्तिवास के पूर्वज भिन्न-भिन्न राजाओं के द्वारा पूजित होते रहे थे। वे परम विद्वान् थे। कवि के पूर्वज गुण, शील, प्रभुत्व एवं ब्रह्मचर्य आदि गुणों के कारण वाराणसी तक विख्यात थे। ब्राह्मण-सज्जन उनसे आचार सीखा करते थे[3] ऐसे महापुरुषों के वंशज कृत्तिवास को भी अपने ब्राह्मणत्व का अभिमान था। कृत्तिवास एवं तुलसीदास दोनों ने अपने ग्रंथों में ब्राह्मणों के महत्त्व का वर्णन किया है। उन्हें सर्व-समाज द्वारा आदरणीय माना है; किंतु कृत्तिवास में ब्राह्मण को लेकर समाज-संगठन की भावना कम एवं कौलीन्य का अभिमान अधिक है। तुलसी ने अपना कौलीन्य-अभिमान प्रकट नहीं किया है।

तुलसीदास संत थे, कृत्तिवास संत न थे। इसीलिए तुलसी में विनय है और कृत्तिवास में है पांडित्य का सात्विक-अभिमान। तभी दोनों के व्यक्तित्व में अन्तर है। तुलसी कहते हैं—

१—निज बुधि बल भरोस मोहि नाहीं।
तातें विनय करउं सब पाहीं॥ १—७—४

---

१ बाङ्गाली साहित्येर इतिहास (१) सुकुमार सेन-पृ० ९७.

२ आत्म-विवरणी से (रामानंदी संस्करण कृत्ति. रामा.) पृ० ५८५.

३ ....वही...................... पृ० ५८४.

२—कवि न होउं नहि बचन प्रबीनू।
सकल कला सब विद्या हीनू ।। १—७—५
३—कवित विबेक एक नहिं मोरे ।। १—८—८

कृत्तिवास इस प्रकार की विनय कहीं नहीं दिखाते, प्रत्युत वे अपने शरीर में पंचदेवों का अधिष्ठान तथा कंठ में सरस्वती का वास मानते हैं। यह भी कहते हैं कि लोग उन्हें महागुणी एवं वाल्मीकि के समान कहते हैं।[१] उन्होंने स्थान-स्थान पर कहा है—"कृत्तिवास पंडित की कविता विलक्षण होती है। सभी लोकों में वे विदित हैं तथा उनकी कविता का प्रचार है—

कृत्तिवास पण्डित कवित्व विचक्षण। (आदि-कांड, पृ० १८)
कृत्तिवास पण्डित विदित सर्व्व लोके। (आरण्य-कांड, पृ० १४२)
कृत्तिवासेर कवित्व शुनिते चमत्कार।
सर्व्व लोके रामायण हइल प्रचार ।। (उत्तर कांड—पृ० ५०१)
कृत्तिवास पण्डित कवित्वे विचक्षण। (लंका कांड पृ० ४०८)

संत होने के नाते ही तुलसीदास 'प्राकृत जन' का गुण-गान नहीं करते, और कृत्तिवास राजपंडित होने की अभिलाषा रखते हैं, तथा गौड़ेश्वर से भेंट करते ही उसकी प्रशंसा में श्लोक पढ़ कर सुनाते हैं।

संत न होने से कृत्तिवास छोटे नहीं हो जाते। वे अर्थ-निःस्पृह यशाकांक्षी एवं स्वाभिमानी पंडित हैं। योग्य साहित्यकार को ऐसा होना भी चाहिए।

यह कृत्तिवास का ही व्यक्तित्व था कि संस्कृतज्ञ ब्राह्मणों की निंदा सहते हुए भी उन्होंने बंगला में महाकाव्य लिख डाला। उस समय की अधकचरी बंगला-भाषा में रामायण जैसे महाकाव्य का अनुवाद करना भी एक दुःसाहस-पूर्ण कार्य था।[२]

गुप्त-काल के पूर्व तक बंगाल में पाली और प्राकृत का प्रचार था। गुप्त, पाल एवं सेन- वर्मन काल में संस्कृत-भाषा को राजाश्रय मिला। सेन-वर्मन काल के धुरंधर विद्वान् राजा, मंत्री एवं कवियों ने संस्कृत-साहित्य को बहुत संपन्न किया। ८००-१००० ई० के मध्य में राजपूतों का आश्रय पाकर शौरसेनी-अपभ्रंश सारे उत्तर भारत की राष्ट्रीय-भाषा हो गयी थी। बंगाल में सिद्धाचार्यों ने अपभ्रंश में अधिक रचनाएं कीं। एकाध को छोड़कर ब्राह्मण लोग अपभ्रंश की ओर आकर्षित नहीं होते थे।

बंगाल में मध्ययुग का प्रारम्भ मुसलमानों के आक्रमण (अर्थात् मोटे रूप में १२०० ई०) से माना जाता है। मुस्लिम आक्रमण से हिन्दू-राजा अधिकारच्युत हुए और राजाश्रय के अभाव में साहित्य-भाषा संस्कृत का सृजन समाप्तप्राय हो गया। १२०० से १३५० ई० तक युग-संधि-काल रहा। इस काल में उथल-पुथल के कारण या तो साहित्य

१ आत्म-विवरणी से (रामानंदी कृत्ति रामा०) पृ० ५८५.
२ बेंगाली लिटरेचर—जे० सी० घोष—पृ० ३५.

का सृजन नहीं हुआ अथवा वह आज प्राप्त नहीं है। बौद्ध-चर्या-पदों को देखने से पता लगता है कि कृत्तिवास के पूर्व कुछ वैष्णव एवं शैव आदि सम्प्रदायों से सम्बन्धित पदों का प्रचार रहा होगा। कुछ मंगल-काव्य भी लोक-गीतों के रूप में प्रचलित रहे होंगे। किन्तु कृत्तिवास के पूर्व का कोई व्यवस्थित साहित्य उपलब्ध नहीं हुआ है। इस काल तक बंगला केवल कथ्य भाषा रही, और उसके साहित्य में केवल डाक-खना के वचन, रूप-कथाएं एवं व्रत-कथाएं आती हैं। डाक और खना के वचन हिन्दी के भडुरी के समान लोकोक्तियां हैं। ऐसी उक्तियां और कथाएं साहित्य नहीं कही जा सकतीं।

चंडीदास एवं कृत्तिवास ने प्रथम बार बंगला में सफलता के साथ कविता की। चंडीदास सहजिया सम्प्रदाय से प्रभावित थे, उन्होंने कृष्णराधा-प्रेम के रस से छलकते हुए पदों का निर्माण किया था। किन्तु संस्कृत-साहित्य के अक्षय-भंडार और लोक-साहित्य में योगसूत्र स्थापित करने वाले कृत्तिवास ही हैं। तभी श्री जे० सी० घोष ने कृत्तिवास को बंगला-कविता का जनक (Father of Bengali Literature)[1] कहा है। उनके मत में कृत्तिवासी-रामायण बंगाली-साहित्य की नींव का पत्थर है।

प्रेरणा

राजाज्ञा नहीं—कृत्तिवास ने अपनी आत्म-विवरणी में लिखा है—

(१) सन्तुष्ट हइया राजा दिलेन सम्बोध।
रामायण रचिते करिला अनुरोध॥

(२) बाप मायेर आशीर्वादे गुरू आज्ञा दान।
राजाज्ञाय रचे गीत सप्तकाण्ड ज्ञान॥ पृ० ५८५

इससे दीनेशचन्द सेन एवं पूर्णचन्द्र दे प्रभृति विद्वानों ने निष्कर्ष निकाला कि गौड़ेश्वर की प्रेरणा से कृत्तिवास ने रामायण की रचना की। सुकुमार सेन ने प्रथम छंद प्रक्षिप्त बताया है।[2] उन्होंने द्वितीय छन्द का राजाज्ञा शब्द भी प्रक्षिप्त माना है। उनका कहना है कि अन्य पोथियों की विवरणी में 'राजाज्ञा नहीं' है, वहाँ 'वाल्मीकि प्रसाद' है।[3] अतएव राजाज्ञा अथवा राजा की प्रेरणा से रामायण की रचना मानना संदिग्ध है।

अरण्य-कांड में उन्होंने तुलसी के समान ही कहा है कि वे 'मन के सुख के लिए'[4] (स्वान्तः सुखाय) रचना कर रहे हैं; जिससे प्रकट होता है कि उनकी प्रेरणा राजाज्ञा नहीं थी। 'स्वान्तः सुखाय' जितना तुलसी निभा पाये हैं, कृत्तिवास उससे भी कम। जान-अनजान में दोनों का ही दृष्टिकोण पर्याप्त सामाजिकता लिए है, भले ही उसके आधार में पौराणिकता अथवा धार्मिकता हो।

१ बेंगाली लिटरेचर—जे० सी० घोष, पृ० ३५।
२ बाङ्गाला साहित्येर इतिहास (१) सुकुमार सेन, पृ० ६६।
३ ············वही············(वाल्मीकि प्रसाद रचे सप्तकांड रामा०)
४ 'कृत्तिवास रामायण रचे मन सुखे', अरण्य कांड, पृ० १४३।

परिस्थितियों से प्रेरणा

तत्कालीन परिस्थितियों से ही प्रेरित होकर कृत्तिवास ने रामायण का सृजन किया है। बलात् धर्मांतरण में विश्वास रखने वाले इस्लाम ने हिन्दू-व्यवस्था को छिन्न-विछिन्न कर दिया था। हिन्दू-समाज के निम्न-अंग का सामूहिक धर्मांतरण हो रहा था। इस समय के ब्राह्मणों में दो प्रवृत्तियाँ देखी गयीं। प्रथम प्रकार के लोग समाज के बन्धन कड़े करते गये। वे संस्कृत-भाषा को ही मान्यता देते रहे। द्वितीय प्रकार के लोग परिस्थितियों से समझौता करना चाहते थे। वे सारे समाज को ही संगठित करने के लिए अपने उच्च-पद से भी नीचे उतर आना चाहते थे। कृत्तिवास ने दूसरे प्रकार की प्रवृत्ति वाले ब्राह्मण-समाज का पथ-दर्शन किया। उनकी रामायण ने १५ वीं, १६ वीं शताब्दी के सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए प्रथम तूर्य-नाद किया। वे शास्त्रज्ञ-पंडितों एवं जनान्दोलनकारी पंडितों के बीच की कड़ी हैं।

कृत्तिवास की पाँच पीढ़ी पूर्व के नारसिंह ओझा को मुसलमानों के उत्पात के कारण ही राजाश्रय त्याग कर फुलिया ग्राम में शरण लेनी पड़ी थी।[1] कवि ब्राह्मणों की दुर्दशा एवं समस्त समाज पर होने वाले अत्याचार से परिचित थे; अतएव उन्होंने मुसलमानों एवं राक्षसों में समानता देखी। राक्षसों का संहार करने के लिए भगवान् को अवतार-धारण करना पड़ता है। सो बाल्मीकि के महामानव-राम कृत्तिवास के 'धर्मस्यग्लानि' हरने वाले ब्रह्म-राम हो गये। कृत्तिवास का पांडित्य एवं कौलीन्य-अभिमानी व्यक्तित्व अपने श्रेष्ठत्व का विस्मरण नहीं कर सका। उन्होंने राम-भक्ति के नाते सभी को समान मानते हुए भी ब्राह्मण को उच्च-स्थान दिया। कृत्तिवास एवं तुलसी की प्रवृतियों में बहुत कुछ समानता दिखायी पड़ती है। अंतर यही है कि तुलसी के पूर्व अध्यात्म-रामायण एवं रामानन्द के सिद्धान्तों ने पहले से ही मार्ग प्रशस्त कर दिया था। कृत्तिवास को स्वयं ही मार्ग बनाना पड़ा।[2] फल-स्वरूप उनकी कृति में वह चारुता नहीं जो तुलसी में है।

कई सीमाओं के कारण कृत्तिवास ओझा और रघुनन्दन पंडित को वह सफलता न मिल सकी जो कि चैतन्य महाप्रभु को मिली। रघुनन्दन तथा उनके पूर्ववर्ती स्मृति-ग्रंथ-लेखकों ने सवर्ण-हिन्दुओं में जात्यभिमान भर कर ऐसी कट्टरता का समावेश कर दिया कि वे प्राण देकर भी अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए दृढ़ हो गये। कृत्तिवास की रामायण ने इस कठोर संयम की नीरसता को सरस कर हिन्दू-मात्र को रामचरित्र के माध्यम से आकृष्ट किया।

---

१ पूर्व्वेते आछिल वेदानुज महाराजा।
ताहार पात्र आछिल नारसिंह ओझा॥
वङ्ग देशे प्रमाद हैल सकले अस्थिर।
वङ्ग देश छाड़ि ओझा आइला गङ्गातीर—आत्म-विवरण॥
(रामानन्दी संस्करण, पृ० ५८३)

२ कृत्तिवास के भक्ति-परक दृष्टिकोण की प्रेरणा के लिए, देखिए—अ० ७।

फिर भी समस्या उन लोगों की थी जिन्हें बलात् मुसलमान बना लिया जाता था; किन्तु वे हिन्दू ही बने रहना चाहते थे। स्मृति-शास्त्र के पंडितों के पास केवल एक ही उपाय था—'कठिन प्रायश्चित द्वारा प्राणत्याग।' चैतन्य महाप्रभु ने मानव-मात्र को शरण दी। जाति-धर्म का कोई भी बन्धन उन्हें मान्य न था। मुसलमान भी उनके शिष्य बन गये। यवन हरिदास को बंगाल आज भी नहीं भूला है। अतएव सफल जनांदोलन की दृष्टि से तुलसी की टक्कर के चैतन्य महाप्रभु हैं। चैतन्य महाप्रभु पंडित और भक्त थे, तुलसी कवि भी थे। तुलसी और कृत्तिवास में उद्देश्यों की समानता है, प्रेरणा में भी बहुत कुछ एकता है; परन्तु प्रभाव और प्रतिभा में साम्य नहीं है।

आ. १—उत्तरी-भारत पर मुस्लिम-आक्रमण एवं नीति

भारत के उत्तर-पश्चिम से जितने भी विदेशी-आक्रमण हुए, वे सभी बड़े भयावह एवं नृशंस थे। सिकन्दर के आक्रमण के समय भी हिन्दुओं को अपने स्त्री-बच्चों का संहार कर जौहर के लिए बाध्य होना पड़ा था। मुसलमानों के अतिरिक्त जितने भी विदेशी आये, उनकी अपनी संस्कृति भारतीय-संस्कृति की तुलना में हेय थी, अतएव वे यहाँ के धर्म और संस्कृति को अपनाकर यहीं खो गये। मुसलमानों को नये-धर्म का नया उन्माद था, उनकी अपनी संस्कृति थी, दूसरे की संस्कृति न सहने की घोर असहिष्णुता भी थी। अतएव वे यहाँ घुल-मिल न सके। भारतीयों ने भी अपनी उदार एवं महान् संस्कृति के आगे 'मरुभूमि के दर्शन' को कभी महत्त्व नहीं दिया। अतएव दोनों संस्कृतियों में संघर्ष हुआ। कुछ लेखक यह सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं कि हिन्दू से धर्मांतरित मुसलमानों ने ही प्रतिशोध की भावना से अत्याचार किये थे। 'अपना जब पराया हो जाता है तब उसका आघात बड़ा प्रबल होता है।'[1] इस कथन में सत्यता अवश्य है, किन्तु महमूद ग़जनवी, इल्तुतमिश, अलाउद्दीन खिलजी, फ़ीरोज़ तुग़लक, तैमूर, सिकन्दर लोदी आदि तो धर्मांतरित नहीं हुए थे, जिनके जघन्य कृत्यों के कारण बेचारे आधुनिक मुसलमान इतिहासकार परेशानी में पड़ जाते हैं। उन्हें अन्त में एक स्वर से यही कहना पड़ता है कि वास्तव में ये क्रूर-योद्धा इस्लाम को समझे नहीं थे। तथा उनका उद्देश्य अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को चरितार्थ करना था, इस्लाम के वास्तविक तत्त्वों का प्रचार नहीं।[2]

सातवीं, आठवीं शताब्दी में ही सिंध की ओर से अरबों के आक्रमण होने लगे थे। अरब अपेक्षाकृत उदार कहे गये हैं, किन्तु देवल एवं राउर (Raor) के ऊपर आक्रमण करते समय उन्होंने भी शरण में आये हुए हजारों बंदियों को प्राण की भीख माँगने पर भी दो तीन दिन तक काट-काट कर फेंक दिया। इसी समय से हिन्दू-मन्दिर विध्वस्त कर मस्जिदें बनायी गयीं। हजारों स्त्री-पुरुष दास बना कर अरब भेज दिये गये।[3] हज्जाज ने भारत में इस्लाम के विजयी सामंत मुहम्मद-बिन-कासिम को जो पत्र लिखा था उसी से हिन्दुओं के प्रति उनकी नीति का पता चल जाता है—'अल्लाह कहता है कि काफ़िरों को मत छोड़ो, उनके गले काट दो।' 'समझ लो यह अल्लाह का आदेश है कि काफिरों को संरक्षण मत दो क्योंकि इससे तुम्हारे कार्य की सिद्धि में देर होगी।'[4]

---

१ संस्कृति-संगम—क्षि० मो० सेन, पृ० ६२।

२ Greed of gain and not the service of the Lord was inspiring motive of the invaders-17. Religion was a war cry and nothing more-15. S. Mahmud Gaznin-Habib.

३ क्लासिकल एज-सं० आर० सी० मजुमदार—पृ० ४५३

४ हिस्टोरियन ऑफ़ सिंध- वौ० १, इलियट-डासन—पृ० ७६

इस प्रकार की विध्वंस-लीलाएं लगातार चलती रहीं। सोने, चाँदी के बोझ से कराहते हुए हजारों ऊंट भारत से बाहर जाते रहे। ग़ाज़ी की उपाधि पाने के लिये हत्याएँ तथा कला के अपूर्व उदाहरणों से युक्त प्राचीन-मन्दिरों का विनाश होता रहा। महमूद ग़ज़नवी मुसलमानों के द्वारा इसलिए पूज्य[१] हो गया कि वह नृशंसतम था।

इस काल तक शासन करने को प्रवृति नहीं दिखलायी पड़ी। लूट, हत्याओं के पश्चात् हिन्दू-समाज फिर उठ खड़ा होता था। १३वीं शताब्दी में गुलाम-वंश ने शासन की नींव पक्की करने का प्रयास किया। बल्बन के समय तक मुस्लिम-शासन का विस्तार बंगाल तक तथा अलाउद्दीन के समय तक इसका प्रभाव दक्षिण-भारत तक हो गया। अलाउद्दीन के कारण रणथम्भौर एवं चित्तौड़ में हिन्दुओं को जौहर करने पड़े थे। इसके सेनापति क़ाफ़ूर ने दक्षिण में रामेश्वरम् तक के मंदिर भ्रष्ट कर दिये थे। अलाउद्दीन ने अपने मुस्लिम अमीरों पर ही इतने प्रतिबन्ध लगा दिये थे तथा गुप्तचर-व्यवस्था इतनी कड़ी करदी थी कि लोग अपने ही बांधवों एवं भृत्यों से शंकित और भीत रहते थे। हिन्दुओं का आर्थिक-शोषण उसने बुरी तरह किया था। वह स्वयं कहता है कि हिन्दुओं का ऐसा दमन कर दिया गया है कि वे कभी सिर नहीं उठा सकते। वे घोड़ा, हथियार और अच्छे कपड़े कभी नहीं रख सकते। वे जीवन में किसी प्रकार का सुखोपभोग नहीं कर सकते। हिन्दुओं के दूध वाले सभी पशुओं पर कर लगाया गया था।[२]

प्रसिद्ध कवि मियां ख़ुसरो इसी दरबार में रहते थे। कवि-हृदय रखते हुए भी ख़ुसरो हिन्दुओं को सहानुभूति की दृष्टि से न देख सके। बरमतपुर (?) के स्वर्ण-मंदिर के विध्वंस के समय किस प्रकार ब्राह्मण-पुजारियों के मस्तक काट-काट कर गिराये जा रहे थे, किस प्रकार उनके खून से मंदिर की दीवारें और फर्श लाल हो रहे थे, और किस तरह उनके खून की गंध से इस्लाम के बंदे उन्मत्त हो रहे थे, इस का कवित्व-मय वर्णन ख़ुसरो ने भावावेश के साथ किया है।[3] सूर्य हिन्दुओं के उपास्य हैं इसलिए ख़ुसरो ने कवि-कल्पना की है कि मुसलमान-सेना अपनी पद-धूलि उसकी ओर फेंक रही है।[४]

---

१ Mahmud became the arch-fanatic he never was; and in that 'incarnation' he is still worshipped-83 Sultan Mahmud of Gaznin—Habib.

२ तारीखे फ़ीरोज़शाही—ज़ियाउद्दीन बर्नी (ए हिस्ट्री आफ इंडिया, वोल्यूम ३—इलियट एण्ड डासन) पृ० १८२-८३।

३ The 'heads' of the Brahmans and idol-worshippers came dancing from their necks to their feet at the flashes of the sword. The golden bricks rolled down and brought with them the plaster of Sandal wood, yellow gold became red with blood, and the whole sandal turned scarlet……………And by this smell the men of Faith were intoxicated and the men of Infidelity ruined–103

४ The sun, the 'Mecca of the Hindus, looked fiercely at the Mussalmans, the feet of the army threw dust into its eyes–57--Khusrau.

ख़ुसरो ने अलाउद्दीन की जो प्रशंसा की है, उसके सम्बन्ध में विद्वान् इतिहासज्ञ हबीब साहब कहते हैं कि यदि अमीर ख़ुसरो पुराण-काल में पैदा होते तो वे अलाउद्दीन को विष्णु का अवतार मानकर

१४ वीं शताब्दी के अन्त की ओर फ़ीरोज तुग़लक़ का शासन-काल आता है। इस्लाम-शासकों की नीति समझने के लिए इसका चरित्र बहुत सहायक होगा। यह महमूद अथवा अलाउद्दीन के समान महत्वाकांक्षी न था। यह इस्लाम की बातें समझता था, उन्हीं के अनुसार चलता था। प्रत्येक कार्य करने के पूर्व शरियत का आदेश देख लिया जाता था। वह बड़ा सीधा और दयालु शासक कहा जाता है। इसे सच ही राज्य का लोभ न था। राज्य-प्राप्ति की अपेक्षा इसे मक्का जाना अधिक पसंद था।[१] बंगाल के सूबेदार पर चढ़ाई की तो किले की मुसलमान-स्त्रियों की क्रंदन-ध्वनि सुनकर इसका हृदय द्रवित हो उठा, इसकी आँखों में पानी आ गया, और इसने मुसलमानों के रक्त बहाने का संकल्प छोड़ कर सेना वापस कर ली। अँग्रेज लेखकों ने इसे अपने युग का अकबर कहा है।[२] यह भी हिंदुओं के प्रति सद्व्यवहार न कर सका। दिल्ली के एक वृद्ध ब्राह्मण की मूर्ति-पूजा से कुछ मुसलमान स्त्री-पुरुष प्रभावित हो गये थे। फ़ीरोज ने उसे बुलाकर क़ाज़ी मुल्लाओं द्वारा दी गयी व्यवस्था के अनुसार कहा कि इस्लाम स्वीकार करो अन्यथा जीवित जला दिये जाओगे। ब्राह्मण इस्लाम स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत न हुआ तो उसके हाथ-पैर बाँध कर दरबार के द्वार के सामने जीवित जला दिया गया।[3] यहाँ इस दयालु बादशाह की आँखों में पानी नहीं आया।

उसके विरोधियों को राक्षस बनाते। आर्यों ने इसी प्रकार अपने शत्रु का चरित्र काला कर अपने आक्रमणों को न्यायसंगत ठहराया है। (खजाइनुल फतूह-भूमिका १४) हबीब साहब यहाँ थोड़ी भूल कर गये हैं। केवल दो ही ऐसे ऐतिहासिक-महापुरुष हुए हैं जो योद्धा थे, जिन पर साहित्य लिखा गया तथा जो अपने सद्गुणों के कारण विष्णु के अवतार माने गये। वे थे राम और कृष्ण। भारत में सद् और असद् शक्तियों के प्रतीक क्रमशः देवता और राक्षस माने गये हैं। सदाचारी व्यक्ति को अवतारी माना गया था। महात्मा गाँधी अवतारी कहे जा सकते हैं, मुस्लिम संत निजामुद्दीन औलिया एवं शेख मुहम्मद चिश्ती भी हिन्दुओं द्वारा मान्य हो सकते हैं। यदि खुसरो मियां ने वाल्मीकि एवं व्यास के शिष्य रूप में जन्म लिया होता तो अलाउद्दीन की समता उन्होंने रावण, कंस अथवा जरासंध से की होती। राम और कृष्ण को विष्णु बनाने वाले तपस्वी लेखक दरबारी नहीं थे। खजाइनुल फतूह और हबीब साहब की भूमिका से प्रकट होता है कि खुसरो मियां भी चाटुकारी करते थे। हिन्दुओं के प्रति भ्रांत धारणा बनाने का कारण संभवतः महमूद ग़जनवी का चरित्र है। उसे उसके अनुयायी पैगम्बर से कम नहीं मानते थे।

१ अफ़ीफ़-तारीखें फ़ीरोज शाही-(अनुवाद फ़ीरोजशाह-इलियट-डासन ८)

२ ....वही.......... ...वही.........भूमिका १, २

३ 'The provisions of the Law were clear: the Brahman must either become a Musulman or be burned. The true faith was declared to the Brahman, and the right course pointed out, but he refused to accept it. Orders were given for raising a pile of faggots before the door of the darbar. The Brahman was tied hand and foot and cast into it; the tablet was thrown on the top and the pile was lighted. The writer of this book was present at the darbar and witnessed the execution. 109. 'Tarikh---I- Firoz Shahi'—Afif (Elliot & Dawson)

फ़ीरोज़ ने प्रथम वार ब्राह्मणों पर जज़िया लगाया क्योंकि क़ाफ़िरों को भड़काने वाले ब्राह्मण ही थे। ब्राह्मणों ने जज़िया देने की अपेक्षा मरना अच्छा समझा और उन्होंने आमरण अनशन कर दिया। फ़ीरोज़ बिल्कुल नहीं पिघला। उसने स्पष्ट कह दिया चाहे—भूखों मरो या आग में जलकर, जज़िया से छूट नहीं मिल सकती। यदि धर्म-प्राण हिन्दू-समाज ने ब्राह्मणों को समझा-बुझाकर न मना लिया होता तो शायद अनेक ब्राह्मण अनशन द्वारा प्राण त्याग देते।[१] फ़तूहाते फ़ीरोज़शाही में फ़ीरोज़शाह अपने कारनामों का स्वयं वर्णन करता है।[२]

फ़रिश्ता लिखता है कि कुछ मुसलमान इतिहास-लेखकों का कथन है कि फ़ीरोज़शाह ने नगरकोट की ज्वाला देवी की मूर्ति टुकड़े-टुकड़े कर गाय के मांस के साथ थैले में भर कर ब्राह्मणों के गलों में बँधवायी और फिर उन्हें नगर में घुमाया गया।[३] ब्रिग्स का कहना है कि यह अंश फ़ीरोज़शाह के महत्त्ववर्द्धन के लिए किसी मुसलमान इतिहास-लेखक ने जोड़ दिया है।[४] जो व्यक्ति उपर्युक्त कार्य कर सकता है, उसे ऐसा करने में क्या आपत्ति हो सकती थी। यदि जोड़ा भी गया हो तो उससे कम से कम यह तो पता चल ही जाता है कि मुसलमान किस बात में महत्त्व की अनुभूति करते थे।

१३९८ में तैमूर ने अपने बंदियों की भली प्रकार परीक्षा लेकर तथा यह ज्ञात कर कि ये हिन्दू ही हैं, उन्हें एक लाख की संख्या में एक दिन में ही तलवार के घाट उतरवा दिया।[५] नागरिकों पर इतने अधिक अत्याचार किये कि हिन्दू लोग अपने स्त्री-बच्चों को अपने हाथों मार कर, जीवन से निराश होकर तैमूर के सैनिकों पर टूट पड़े और मारे गये। दिल्ली नगर की सड़कों और घरों में लाशों के आधिक्य से चलना कठिन हो गया। तैमूर ने क़त्ले आम की आज्ञा दे दी। बचे हुए लोग भेड़ों की तरह हाँक-हाँक कर लाये गये और काट डाले गये।[६]

१ अफ़ीफ़-तारीखे फ़ीरोज़शाही-(अनु० फीरोजशाह-इलियट-डासन ८) पृ० ३०९-१०

२ 'मैंने हिन्दुओं को दंडित किया है, उनके मंदिरों के स्थान पर मस्जिदें बनवायी हैं। सलीहपुर और कोहना नामक ग्राम में हिन्दुओं द्वारा मंदिरों के पुनर्निर्माण की सूचना पाकर मैंने हिन्दू-आराधकों को तलवार के घाट उतार देने की आज्ञा दी। हिन्दुओं की धर्म-पुस्तकें, मूर्तियाँ एवं पूजा में प्रयुक्त होने वाली सामग्री को खुले आम सबके सामने जलवाया तथा घोषणा की कि मुस्लिम-शासित समाज में जिम्मी को दुष्ट उपासना नहीं करने दी जायगी।'

फ़तूहाते फ़ीरोजशाही (अनु० फ़ीरोजशाह-इलियट-डासन) पृ० १८७

३ फ़रिश्ता—(राइज़ ऑफ़ महमडन पावर इन इंडिया, जौन ब्रिग्स वौ० १, पृ० ४५४।

४ It is to be hoped, for the honour of this great liberal prince, that this story is the invention of some bigotted historian who recorded it for the sake of adding to his glory and that the facts so contrary to usual practice of his reign, never occured–454-55 (F. N.) Briggs vol.—1

५ फ़रिश्ता-(राइज़ ऑफ़ महमडन पावर इन इंडिया-जौन ब्रिग्स-वौ० १, पृ० ४९१।

६ ………………वही…………वही…………पृ० ४९४।

१५ वीं शताब्दी एवं १६ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में लोदी वंश के शासकों ने राज्य किया। इस वंश का सिकंदर लोदी पांच बार नमाज़ पढ़ता था, न्याय-प्रिय था, ईश्वर से डरता था, प्रजा के प्रति दयालु था और कवि भी था।[१] इस धार्मिक बादशाह ने हनुमन्तगढ़ और नरवर के मन्दिर तोड़ कर मस्जिदें बनवा दीं। मथुरा नगरी के मंदिरों को भी तोड़ कर यमुना के स्नान-घाट के सामने मस्जिद और बाज़ार बनवा कर आज्ञा निकलवा दी कि कोई भी हिंदू वहाँ स्नान न कर सकेगा। उसने नाइयों को क्षौर-कर्म के लिये रोक दिया ताकि तीर्थ-यात्री धार्मिक-क्रियाएं न कर सकें।[२]

फ़रिश्ता के अनुसार लखनऊ के पास किसी एक ग्राम का बोधन नामक ब्राह्मण कहा करता था कि हिन्दू और मुसलमान दोनों ही ईश्वर के लिये समान हैं। उसे बंदी बना कर सिकंदर के पास भेजा गया। कन्नौज, सीकरी, संभल, दिल्ली, सरहिंद आदि के बड़े-बड़े मुल्ला और उलमा उससे तर्क करने के लिये भिड़ा दिये गये। अंत में हार कर और झुंझला कर मुल्लाओं ने फ़तवा दिया कि यह काफ़िर अपने कथन की भूल स्वीकार कर मुसलमान हो जाय अथवा मृत्यु स्वीकार करे। ब्राह्मण ने इस्लाम कदापि स्वीकार न किया। बोधन मार डाला गया।[3]

फ़ीरोज़ और सिकन्दर लोदी जैसे उदार, दयालु एवं धर्मभीरु लोगों का जब यह हाल था, तो कट्टर, अपढ़ और कठोर मुसलमानों ने क्या किया होगा।

१६वीं शताब्दी में मुग़लों ने भारत पर आधिपत्य जमा लिया। इसी शताब्दी में तुलसीदास का जन्म हुआ।

---

१ फ़रिश्ता-(राइज़ ऑफ़ मुहमडन पावर इन इंडिया-जौन ब्रिग्स वॉ. १, पृ० ५८६

२ He was firmly attached to the Mohomedan religion, and made a point of destroying all Hindoo temples. In the city of Muttra, he caused Musjids and bazars to be built opposite the bathing stairs leading to the river and ordered that no Hindoo should be allowed to bathe there. He forbade the barbers to shave the beards and heads of the inhabitants, inorder to prevent the Hindoos following their usual practices at such pilgrimages-586. Farishta-Briggs vol. I.

३ A brahman, whose name was Boodhun, and inhabitant of Kataen, near Lucknow, being up-braided by some Mahomedans on account of his faith, maintained that the religions both of the Moslem and Hindoos, if acted on with sincerety, were equally acceptable to God-576.

After many arguments, the learned men were of opinion, that unless the infidel, who had maintained the Hindoo worship to be equally acceptable to God as that of the true faith, should renounce his error, and adopt the Mahomedan religion, he ought to suffer death. The Hindoo refused to apostatise, and accordingly executed, while the Mussulmen doctors were rewarded with gifts, and returned to their respective homes. 577. Ferishta. Briggs. vol. I.

२—तुलसी के सम-सामयिक-शासक—

मानस के रचनाकाल तक हुमायूं शेरशाह और अकबर तुलसीदास के सम-सामयिक शासक थे। हुमायूं शांति के साथ राज्य न कर सका। शेरशाह के कारण उसे नाकों चने चबाने पड़े। फिर राज्य का उद्धार हो जाने के कुछ समय उपरांत ही उसकी अकाल मृत्यु हो गयी।

शेरशाह ने व्यवस्थित रूप से शासन करना प्रारम्भ किया। अलाउद्दीन ने भी व्यवस्थाएँ बनायी थीं, किन्तु वह उजड्ड, क्रूर, स्वार्थी और लोभी था। उसकी सारी व्यवस्थाएं अपने धन और प्राण की रक्षा के लिए थीं। शेरशाह ने जनता के हित तथा समस्त राज्य के सुचारु-संचालन के लिए सफल योजनाओं का निर्माण किया था। अकबर के अनेक सुधार-कार्यों की पृष्ठभूमि शेरशाह के कार्य हैं। उदार और न्यायी शेरशाह भी अपने पूर्व-शासकों के संस्कारों से कहाँ मुक्त हो सका। मालदेव से हारने की संभावना होने पर इसने भी धूर्त्तता के साथ उसके सामंतों पर ही सन्देह करा दिया। बेचारे सत्यवादी सामंत अपनी सत्यता सिद्ध करने के लिए गिने-चुने सैनिक लेकर शेरशाह की विशाल-वाहिनी से जूझ कर मर गये। जिनकी वीरता देखकर शेरशाह कह उठा था, मैंने मुट्ठी भर बाजरे के लिए हिन्दुस्तान का राज्य ही खो दिया होता।[१] इसने भी मन्दिर गिरवा कर मस्जिदें बनवायी थीं।[२] कुरान की शपथ देकर राजा पूरनमल से आत्म-समर्पण करा लिया, फिर रात्रि-काल में विश्वासघात कर सोये राजपूतों पर अचानक आक्रमण कर दिया। बेचारे सत्य और तलवार के धनी राजपूतों ने अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए अपने हाथों अपने प्रिय स्त्री-बच्चों को मार डाला, फिर शेरशाह की सेना पर टूट कर स्वयं भी मारे गये। फ़रिश्ता के अनुसार ये मुट्ठी भर सैनिक इतनी वीरता से लड़े कि उनके सामने रुस्तम आदि की वीरता बच्चों का खेल मात्र है।[3] कुंवर मुहम्मद अशरफ़ इसी न्याय-प्रिय शेरशाह के विषय में लिखते हैं कि जब इसके हाथ में पूरनमल के पुत्र-पुत्री पड़ गये, तो इसने क्रूर, जंगली एवं नपुंसक प्रतिशोध लिया। पूरनमल के लड़के के अंडकोष निकलवा डाले और लड़की को सड़कों पर नाचने वाली पेशेवर नर्तकी बना दिया।[४]

अकबर—समस्त मुसलमान बादशाहों में केवल अकबर को मानव एवं महान् कहा जा सकता है। मुसलमान-धर्म का पालन करते हुए भी उसने उदार भारतीय राजाओं के समान प्रजा का पालन किया। हिन्दू जनता की भावनाओं का समादर करते हुए उसने बलात् धर्मांतरण की प्रथा बन्द कर दी। जज़िया, तीर्थकर तथा अन्य कई कर जिनसे कि हिन्दू जनता दबी जा रही थी, अकबर ने लाखों रुपये का घाटा उठाकर बन्द कर दिये। गोहत्या-निषेध की घोषणा की। वह स्वयं भी विशेष दिनों पर माँस-भक्षण नहीं करता था

१ फ़रिश्ता-रायज़ ऑफ़ दि महमडन पावर इन इंडिया-ब्रिग्स-वौ० २, पृ० १२३।

२ मुगलकालीन भारत (१) आशीर्वादीलाल, पृ० १५६।

३ फ़रिश्ता-राइज़ ऑफ़ दि महमडन पावर इन इंडिया-ब्रिग्स-वौ० २, पृ० १२०।

४ लायफ एंड कंडीशंस ऑफ़ दि पीपुल ऑफ़ दि हिन्दुस्तान-अशरफ़-पृ० २६० (पाद टिप्पणी)।

कभी-कभी ललाट पर चन्दन और गले में यज्ञोपवीत धारण करता था, सूर्य और अग्नि का उपासक था। उसने गंगाजल-पान का नित्य-नियम बनाया था। उसके व्यवहार से हिन्दू, पारसी, जैन, ईसाई सभी संतुष्ट थे। इस्लाम-धर्म की असहिष्णुता एवं मुल्ला-काजियों की सम्मति से हिन्दू जनता के प्रति जो अमानुषिक-व्यवहार होते थे, अकबर ने उन सबको दूर कर प्रथम बार अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व एवं महाशयता का परिचय दिया। यह आसान कार्य न था। मुल्लों की अवहेलना करना बड़ा कठिन था। वे शासन के कार्यों में सदैव हस्तक्षेप करते थे। शुक्रवार की नमाज का राजनीतिक-लाभ उठाकर मुस्लिम-जनता को संगठित रूप से भड़काने की खुली छूट उन्हें सदैव के लियें प्राप्त है। अकबर ने उनकी शक्ति क्षीण कर 'इमामे आदिल' का पद स्वयं स्वीकार किया था। सभी कट्टर मुल्लों एवं सुन्नी शासकों ने मिलकर षड्यंत्र किया। जौनपुर के मुल्ला मुहम्मद यजदी ने फ़तवा दे दिया[१] कि मुसलमान लोग बादशाह के विरोध में शस्त्र उठा लें। बंगाल, काबुल एवं गुजरात के शासकों ने षड्यंत्र में भाग लिया। अकबर बिल्कुल नहीं घबड़ाया। उसने एक-एक कर सभी को दबा दिया। अकबर को छोड़कर भारत के किसी मुस्लिम बादशाह ने ऐसा साहस-पूर्ण पग नहीं उठाया था। उसने अपरिवर्तित-इस्लाम की व्यवस्थाओं में भी परिवर्तन किया था, खतना, तलाक़, बहु-विवाह आदि को वह प्रोत्साहित नहीं करता था।

अकबर की प्रशंसा इसलिए नहीं की जाती कि वह चंदन लगाकर हिन्दूवत व्यवहार करने लगा था, अपितु इसलिए कि उसका हृदय मानवता की तड़पन महसूस करता था। उसकी दुनियाँ केवल चांद-शोभित हरित झंडे की छाया तक सीमित न थी। इस्लाम न मानने वालों का भी उसने अस्तित्व स्वीकार किया था, उनको भी उसने मानव माना था। उसके पूर्ववर्ती एवं परवर्त्ती कोई भी भारतीय मुस्लिम-शासक ऐसा कभी न कर सके। सभी मुसलमान-शासकों की उदारता और मानवता केवल मुसलमानों तक ही सीमित थी।

अकबर के पूर्व सभी शासक आतंक-वादी नीति अपनाने के कारण सफल न हो सके। उनके अपने ही रक्त के पुत्र-भाई आदि राज्य प्राप्ति के लिए उनके खून के प्यासे रहते थे। हुमायूं के साथ उसके भाइयों ने ही विश्वासघात किया था। अकबर के भाई भी उससे राज्य छीनना चाहते थे, उसके पुत्र सलीम ने भी उसके विरोध में विद्रोह किया था। कब क्या हो जाय, कौन कब क्या कर बैठे, कुछ निश्चय न था। राजपूत विश्वसनीय थे, मुसलमानों को पलटते देर न लगती थी। राजपूतों की सेवाएं स्वीकार कर उसने अपना ही हित किया। अकबर के विशाल साम्राज्य के स्तम्भ मानसिंह, भगवानदास और टोडरमल थे, जिन्होंने अपने प्राण संकट में डालकर अपने ही देशवासियों का राज्य छीन-छीन कर मुग़ल साम्राज्य का विस्तार किया था। अकबर ने उन्हें वश में लाने के लिए ही विवाह-सम्बन्ध स्वीकार किये थे तथा राजपूतों को उच्च पदों से सम्मानित कर मुगल-साम्राज्य की नींव पक्की की थी। हिन्दू-कन्याओं के संपर्क में आकर उसने हिन्दू धर्म के शुचिता-पूर्ण जीवन के आचार-विचार से परिचय प्राप्त किया था। इसी के फलस्वरूप तथा हिन्दू-जनता का

१ ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ़ मुस्लिम रूल इन इंडिया–ईश्वरीप्रसाद, पृ० ३४३।

हृदय जीतने के लिए उसने हिन्दुओं के कर बंद किये थे, तथा हिन्दू-आचार स्वीकार किये थे। वह बड़ा चतुर था। हिन्दू, जैन, पारसी और ईसाई जो भी उसके संपर्क में आता, वही समझने लगता कि बादशाह उनका धर्म स्वीकार कर लेगा; किन्तु यह सब उसका राजनीतिक दिखावा जान पड़ता है। फतेहपुर में उसने कई बार धार्मिक-सम्मेलन बुलाये थे, सभी के धर्मों की बातें सुनी थीं। मुल्ला-मुलंटों का दार्शनिक पक्ष दुर्बल था। वे तो शरियत की आज्ञा पढ़ कर 'इस्लाम अथवा मौत' का फ़तवा मात्र देना जानते थे। कई धर्मों के प्रकांड विद्वानों के सामने उनकी एक न चलती होगी। अकबर को इस्लाम के उस समय के रूप का खोखलापन ज्ञात हो गया था। इसीलिए उसने इस्लाम के प्रचार का आग्रह नहीं दिखाया।

वास्तव में अकबर चतुर महत्त्वाकांक्षी था, किन्तु महत्त्वाकांक्षा चरितार्थ करने का उसका मार्ग अनीति-सम्मत न था। औरंगजेब इस नीति को न समझ सका, इसीलिए उसके जीवन-काल में ही मुग़ल-साम्राज्य में घुन लग गया।

अकबर स्वयं उदार और महान् था, परन्तु सभी मुसलमान तो अकबर नहीं हो गये थे। आदम ख़ाँ और पीर मुहम्मद जैसे उसके अमीर अत्याचार करते थे। मौलाना पीर मुहम्मद के सामने हेमू का वृद्ध पिता बंदी अवस्था में लाया गया तो उससे कहा गया कि वह इस्लाम स्वीकार करे। वृद्ध ने कहा अस्सी वर्ष से मैं ईश्वर का आराधन अपने धर्म के अनुसार करता आया हूँ। अब मैं अपना धर्म कैसे बदल दूं? क्या मृत्यु के डर से तुम्हारे धर्म को बिना समझे-बूझे ही स्वीकार कर लूं? उसके प्रश्न का उत्तर पीर मुहम्मद ने तलवार की जीभ से दिया।[1]

अकबर के सेनापति आसफ़ख़ाँ के भी एक कथन से अकबर के अमीर उमरों का हिंदुओं के प्रति दृष्टिकोण स्पष्ट हो जायगा। हल्दीघाटी के मैदान में जब महाराणा प्रताप ने थोड़े से सैनिक लेकर अकस्मात् आक्रमण कर दिया तो सेना में भगदड़ मच गयी। दोनों ओर की सेना में राजपूत सैनिक थे। आसफ़ख़ाँ से बदायूंनी ने पूछा, "ऐसी घमासान मारकाट के समय शत्रु और मित्र राजपूत की पहचान कैसे होगी?" आसफ़ख़ाँ ने उत्तर दिया "चाहे जिस ओर के राजपूत मरें, इस्लाम को लाभ ही होगा।"[2]

मुस्लिम-अत्याचारों का कारण—

मुस्लिम-शासकों के अत्याचारों के दो कारण थे—

१—शासकों की अपनी महत्त्वाकांक्षाएं एवं युग-प्रवृत्ति।

२—इस्लाम की असहिष्णुता।

(१) अरब, तुर्क, मुगल आदि जातियों में हिन्दुओं जैसा उच्च नैतिक-आदर्श न था। वैसे राज्य-प्राप्ति के लिए भारत में भी कुचक्र रचे जाते थे और कभी-कभी राजनीतिक-महत्त्वाकांक्षाओं के लिए जघन्य-हत्याएं भी होती रही थीं, किन्तु इन

१. टैक्स्ट वौल्यूम २, पृ० ५६— अकबरनामा (अबुलफ़ज़ल) अनु० इलियट—डासन, पृ० २२।

२. ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ़ मुस्लिम रूल इन इंडिया—(ईश्वरीप्रसाद) पृ० ३४०।

उपर्युक्त विधर्मी जातियों में तो पिता-पुत्र और भाई-भाई में ही सिंहासन के लिए एक दूसरे के रक्त की प्यास जाग उठती थी। किसी भी शासक को यह विश्वास न होता था कि उसका जीवन सर्वथा सुरक्षित है। उसे अपने ही रक्त की संतानों तथा दायें-बायें हाथ अमीर-उमरों से भी सावधान रहना पड़ता था। अधिकांश शासकों को अधिकार प्राप्त करने के पूर्व किसी न किसी प्रकार के षड्यंत्र में भाग लेना पड़ता था, फिर सफलता-लाभ करने पर अधिकारच्युतों के प्रति क्रूर होना पड़ता था। अतएव उन्हें भी भय रहता था कि उनके भी विरोध में कहीं षड्यंत्र सफल न हो जाय, नहीं तो जो उन्होंने अन्यों के साथ किया वही उनके भी साथ होगा। फलतः वे अपने विरोधी को आतंकित करने के लिए अधिक से अधिक क्रूरता दिखलाते थे। अलाउद्दीन ने अपने ही चचा का गला काट कर राज्य प्राप्त किया था, किन्तु जब उसके भानजों ने उससे राज्य छीनना चाहा तो सुलतान ने उनकी आँखें चाकू से खरबूजों की तरह चाक करा दीं।[1] कभी-कभी तो ये क्रूर-शासक अपने पक्ष के लोगों का भी इसलिये वध करते थे, जिससे कि उनकी सेना में साहसहीनता एवं कायरता न आने पाये। बल्बन का सेनापति अलप्तगीन बंगाल के विद्रोही तुग़रिल से परास्त होकर भाग आया तो बल्बन ने उसे फाटक के सामने फांसी पर लटकवा दिया।[2] अकबर का सेनापति तार्दी बेग हेमू द्वारा पराजित हुआ तो अकबर की सम्मति लेकर बैरमखाँ ने उसे मरवा डाला।[3]

इस प्रकार स्पष्ट है कि राजनीतिक-महत्त्वाकांक्षा के साथ-साथ मानवता के उच्चादर्शों के अभाव ने इन क्रूर-वीरों को अत्यधिक नृशंस कर दिया था। अपनी उन्नति के बीच में बाधा-स्वरूप आने वाले मुसलमानों को भी ये कहाँ छोड़ते थे। तुग़रिल और उसके रिश्तेदार मुसलमान ही थे जिन्हें बल्बन तीन दिन तक लखनौती की सड़कों पर फांसी पर लटकाता रहा।[4] खान जम्मन उजबक के साथियों को अकबर ने भी हाथियों से कुचलवा दिया था।[5] हुमायूं उदार कहा जाता है क्योंकि उसने अपने भाई कामरान का वध नहीं कराया था, अंधा मात्र करा दिया था।[6]

हिन्दुओं को आतंकित करने के लिए ही अत्याचार किये जाते थे। जनता अपने पूर्व-शासक का साथ न दे और दमन-चक्र की विनाश-लीला से परिचित हो जाय, इसलिए मुसलमान-योद्धा अभियान के समय मार्ग में पड़ने वाले गांव, नगरों में आग लगाते एवं स्त्री-बच्चों का वध करते जाते थे। सैनिकों को उद्दंड बनाने के लिए उन्हें लूट और नारी-हरण की खुली छूट दे दी जाती थी। पराजित बंदियों से शंका रहती थी कि क्षमादान करने पर ये फिर प्रतिशोध का अवसर न खोजें, अतएव वे उन्हें तलवार

---

१ तारीखे-फ़ीरोज़ शाही-ज़ियाउद्दीन बर्नी (हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया-इलियट एण्ड डासन) वौ० ३, पृ० १७५।
२ फरिश्ता-(रायज़ ऑफ़ दि महमडन पावर इन इंडिया-ब्रिग्स -वौ० १-पृ० २६१।
३ ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ़ मुस्लिम रूल इन इंडिया-(ईश्वरीप्रसाद)-पृ० ३१६।
४ फ़रिश्ता-(रायज़ ऑफ़ दि महमडन पावर इन इंडिया-ब्रिग्स-वौ० १-पृ० २६४।
५ ....वही......................वौ० २-पृ० २२६।
६ ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ़ मुस्लिम रूल इन इंडिया-ईश्वरी प्रसाद पृ० ३१२।

के घाट उतार देते थे। अकबर महान् ने चित्तौड़ में कत्ले-आम का आदेश देकर ३०,००० व्यक्तियों का वध कराया था। वह भी चाहता था कि पराजित शत्रु की जनता को लूटा जाय। निजामुद्दीन एवं बदायूंनी ने लिखा है कि मानसिंह ने राणा प्रताप के राज्य को लूटने की आज्ञा न दी, इससे अकबर बहुत अप्रसन्न हुआ।[१]

ये महत्त्वाकांक्षी मुस्लिम-शासक इतने से ही संतुष्ट नहीं रहते थे, कभी किसी-किसी के मन में पैग़ंबर बनने की धुन सवार होती थी। अलाउद्दीन-खिलजी सिकंदर बनने के साथ-साथ नव-धर्म-प्रचारक भी बनना चाहता था। मुहम्मद तुग़लक़ को भी ऐसी ही सनक सवार हुई थी। अकबर ने इसे 'दीनइलाही' के रूप में पूरा भी किया। यदि ये सनकी बादशाह धर्म चलाते भी तो खड्ग के बल पर तथा स्वयं को ईश्वर अथवा ईश्वर-दूत मान कर। 'दीनइलाही' का सूक्ष्म विश्लेषण किया जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि यद्यपि उसमें अकबर ने तलवार से काम नहीं लिया, किन्तु अप्रत्यक्ष-रूप से वह स्वयं ईश्वर बना हुआ था।

केवल मुसलमान ही क्रूर हों ऐसी बात नहीं, उस युग में यूरोप का भी इतिहास इस प्रकार की नृशंसताओं से पूर्ण है।

(२) नृशंसता का दूसरा कारण इस्लाम की असहिष्णुता थी। कैसा था वह इस्लाम जो मोम सा हृदय रखने वाले फ़ीरोज़ को भी इतना कठोर बना देता है कि जो इस्लाम न मानने वालों को तड़पा कर आग में जलाने से भी विचलित न होता था। यदि ये शासक इस्लाम के अनुयायी न होते तथा क़ाज़ी-मुल्लों द्वारा न भड़काये गये होते, तो वे इतनी क्रूरता न दिखाते।

शुस्तरी साहब ने लिखा है कि मक्का के काबे में नृत्य-गान करने वाली अनेक स्त्रियाँ रहती थीं। जुआ और सुरापान आदि अनेक भ्रष्टाचार फैले थे। मूर्त्ति-पूजा यहाँ तक विकृत हुई कि लोग किसी भी ज्ञात-अज्ञात मूर्ति को भी पूजते थे।[२] काबा में परिक्रमा करते समय स्त्री-पुरुष नग्न हो जाया करते थे।[३] इनका सामाजिक एवं नैतिक जीवन भ्रष्ट था। कई भाइयों के बीच एक स्त्री होती थी। नारी को संपत्ति समझा जाता था। पिता की मृत्यु होने पर पुत्र अपनी सौतेली माँ से विवाह कर लेता था। सास को भी पत्नी बना लिया जाता था।[४] इनमें सुधार की बड़ी आवश्यकता थी। उजड्ड, रक्त-पिपासु, बर्बर एवं अंध-विश्वास-ग्रस्त अरबों में अकस्मात् सुधार कर देना सहज न था। आदरणीय मुहम्मद साहब ने व्यावहारिक-रूप से अरब-जाति में बहुत बड़ा परिवर्तन ला दिया। उस काल की परिस्थितियों को बिना जाँचे हुए यदि हम मुहम्मद साहब के कार्यों की समीक्षा करेंगे तो वे हमें बहुत महान् नहीं लगेंगे, किंतु उनके साथ न्याय करते हुए हम विचार करें तो उनके सुधारों को हम समझ सकेंगे। समाज के अनुकूल ही उन्होंने कुछ सुधार किये थे।

१ ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ़ मुस्लिम रूल इन इंडिया–ईश्वरीप्रसाद, पृ० ३४०।
२ आउट लाइन ऑफ़ इस्लामिक कल्चर–शुस्तरी–पृ० ४।
३ ············वही············पृ० ५१३।
४ ············वही············पृ० ५१०।

१—सर्व-प्रथम उन्होंने काबा की विकृत मूर्तिपूजा बंद करने के लिए मूर्त्तियाँ खंडित कीं।

२—इस्लाम स्वीकार न करने वाले कुरेशियों तथा यहूदियों आदि का विनाश किया। (यहूदियों के एक किले पर अधिकार कर वहाँ के ६०० व्यक्तियों की हत्या कर स्त्री-बच्चों को दास बनाया।)[1]

३—विभिन्न वर्गों में इस्लाम का प्रचार करने के लिए अनेक स्त्रियों (विधवाओं) से विवाह किया।

४—अनुयायियों में एकता एवं कट्टरता लाने के लिए केवल एक ईश्वर, एक धार्मिक पुस्तक एवं एक पैग़म्बर को छोड़ सभी देव, ग्रंथ धर्म आदि को असत्य बतलाया।

५—भ्रष्टाचार कम करने के लिए उन्होंने पर्दा-प्रथा पर जोर दिया तथा स्त्री-पुरुष संबंध नियंत्रित किये।

यदि आगे भी पुस्तकें लिखी जातीं, नये पैग़म्बर पर विश्वास होता, इस्लाम के अतिरिक्त अन्य धर्मों के प्रति असहिष्णुता न होती तो यह मत अवश्य ही नैतिक विकास भी करता। अल्लाह के नाम पर मानव-मात्र को गले लगाने का इसका समानता का दावा बहुत प्रभावोत्पादक था। किन्तु मुहम्मद साहब की परिस्थितियों एवं उनके उद्देश्य को समझे बिना मुसलमान आज तक मूर्तिभंजन, अमुस्लिमों का संहार एवं नारी अपहरण का आदर्श अपनाते रहे हैं। कट्टर मुल्ला और क़ाज़ी आदि मुसलमानों को और भी अधिक गुमराह करते रहे हैं। बुग़राखाँ मुल्ला और क़ाज़ी लोगों को लालची-दुष्ट एवं अमीर खुसरो दंभी और पाखंडी कहा करते थे।[2] प्रो० शुस्तरी साहब भी इनसे बहुत प्रसन्न नहीं जान पड़ते। उनके मत में मुल्ला-मौलवियों द्वारा प्रचारित इस्लाम देर तक नहीं टिक सकता।[3]

भारतीय धर्म-संप्रदायों के जन्मदाता सरल, उदार तथा सांसारिक प्रलोभनों से उदासीन रहे हैं। या तो उन्होंने संन्यस्त-जीवन व्यतीत किया अथवा विवाहित होने पर नारी के बंधन में बँधे रह कर वासना के दास नहीं रहे। उनका अध्ययन अथवा सत्संग-द्वारा प्राप्त ज्ञान गंभीर था। अपने चरित्र की शुद्धता एवं मानव-प्रेम के आदर्श के कारण उन्हें सफलता अधिक मिली। कहीं भी उन्हें सैनिक-शक्ति के बल पर कार्य न करना पड़ा।[4]

---

१ एन आउट लाइन ऑफ़ हिस्ट्री—एच० जी० वेल्स–पृ० ३२४।

२ लायफ़ एंड कंडीशन्स ऑफ़ दि पीपुल ऑफ़ हिंदुस्तान–अशरफ–पृ० १८४–८५।

३ It is difficult to predict the future of Islam as a world religion. But it is certain that Islam, as interpreted, taught and brought into practice by the conservative and orthodox Mullas or Maulvis, cannot endure long. P. 583-84. Outline of Islamic Culture—A. M. A. Shustery.

४ Two special feature distinguished the early history of this religion from that of others known in history. Firstly, the militant character of the Prophet himself, who, unlike the founder of anyother religion, had to engage in several military campaigns against his own people before they would accept his faith, and secondly, his extreme intolerance of the existing religion. P. 450—The Classical Age-Majumdar.

६५२६

मुस्लिम-धर्म का विकास वहीं हुआ जहाँ उसकी तलवार विजयी हुई।[1]

३—हिंदू-धर्म-भावना पर प्रभाव और मानस

हिंदुओं एवं मुसलमानों की रणनीति में अंतर था। हिंदू पराजित अथवा असावधान शत्रु का वध नहीं करते थे। राजाओं में परस्पर युद्ध होते थे, किंतु साधारण जनता की किसी प्रकार की हानि नहीं की जाती थी। वे नारी का सम्मान करते थे, परास्त शत्रु चाहे मुसलमान ही क्यों न हो, उसकी स्त्री, पुस्तक एवं उपास्य-भवन का अनादर नहीं किया जाता था। युद्ध में छल-कपट का प्रयोग बहुत कम था। राजपूतों की शौर्य-गाथाएं शताब्दियों के लिए अमर हो गई हैं। मुसलमान विजेताओं को हिंदुओं ने एकदम विपरीत पाया। जिस समय सेनाएं कूच करती थीं, सैनिकों के लिए गरीब किसानों की खड़ी फसल उजाड़ देना[2], मार्ग में पड़ने वाले गाँवों को लूटना, आग लगा देना आदि अति सहज था। कभी-कभी उदार शासक भी हो जाते थे, किंतु इस्लाम-धर्म की व्यवस्था ऐसी थी कि वे उदारता का परिचय न दे पाते थे।

हिंदुओं का जीवन सुरक्षित न था। कब, कौन उनके धन-जन की हानि कर ग़ाज़ी बन बैठे कहा नहीं जा सकता था। उन्हें उचित-न्याय भी नहीं मिलता था। मुसलमान-मुसलमान तथा हिंदू-हिंदू के झगड़ों का निपटारा तो न्यायपूर्ण हो सकता था किंतु मुसलमान और हिंदू के झगड़े के समय शरियत का निर्णय मुसलमानों के पक्ष में ही होता था। उनकी बहू-बेटी की प्रतिष्ठा भी सुरक्षित न थी। कभी-कभी तो नव-वधुएं विवाह मंडप से उड़ा दी जाती थीं। मिर्जा लाहौरी ने ऐसी ही एक वधू उड़ाई थी; उसके पिता के पास शिकायत करने पर उसने पुत्र के कार्य का समर्थन करते हुए कहा, हानि क्या है, अब तुम्हारा रिश्ता एक सूबेदार से हो गया।[3]

हिंदुओं की आर्थित-स्थिति भी बड़ी शोचनीय थी। उन्हें उच्च-पद प्राप्त नहीं होते थे। हिंदू-राजाओं के अपदस्थ होने के कारण असंख्य लोग जीविकाहीन हो गये थे। हिंदुओं को भूमि की उपज का बड़ा भाग भूमिकर के रूप में देना पड़ता था। भूमिकर वसूल करने की पद्धति बड़ी घृणित थी। हिंदुओं से अपेक्षा की जाती थी कि इस्लाम के प्रति अपनी भक्ति दिखलाने के लिए लगान वसूल करने वाले मुसलमान कर्मचारियों के सामने मुँह खोले खड़े रहें, ताकि वे कर्मचारी उनके मुँह में थूक सकें। हिन्दुओं पर जजिया तो बड़ी दया के साथ लगाया जाता था, क्योंकि उनके लिए तो एक ही मार्ग था, या तो इस्लाम स्वीकार

---

१ It is not gun-boats that followed the missionary, but the missionaries that followed the gunboats—P. 451.—The Classical Age—Editor R. C. Majumdar.

२ तुलनीय—आउट लाइन आफ़ इस्लामिक कल्चर-शुस्तरी. पृ० ७७।

३ आइन २९३—ब्लाखमन-पृ० ५६२ (आइने अकबरी)।

करें या मृत्यु।[१] अलाउद्दीन के समय से उनकी यह स्थिति कर दी गयी थी कि उनके यहाँ सोने-चाँदी की कौन कहे, जीतल (एक प्रकार का पैसा) भी देखने को नहीं मिलता था। सरकारी नौकरी करने वाले हिंदू इतने दरिद्र थे कि उनकी स्त्रियों को मुसलमानों के घरों में नौकरी करनी पड़ती थी। अतएव हिंदू लोग सरकारी नौकरी को घृणा करते थे तथा ऐसी नौकरी करने वालों को लोग लड़कियाँ नहीं देते थे।[२] भारी-भारी बोझों से कराहती हुई जनता को अकबर ने बहुत राहत दी थी।

मुसलमानों के आने से सुरा-सुंदरी का प्रयोग बढ़ गया। हिंदू राजा इससे अछूते न थे, किंतु मुसलमान साधारण-जन भी इन दोनों में बुरी तरह लिप्त थे। वेश्याओं की संख्या और उनके शुल्क की इतनी अधिक वृद्धि हुई कि अलाउद्दीन को अनेक प्रकार के प्रतिबंध लगाने पड़े थे। सैनिक-जीवन व्यतीत करते रहने के कारण मुसलमानों में कई प्रकार के अप्राकृतिक-व्यभिचार भी आ गये थे। अशरफ़ ने लिखा है कि हिंदू-समाज इन बुराइयों से अपेक्षाकृत दूर था। उन्होंने मुईजुद्दीन कैकुबाद, अलाउद्दीन और मुबारकशाह के संबंध में इस प्रकार का वर्णन किया है[3] रज़्म और बज़्म के धनी खुदा के बंदे भला हिंदू नारी का आदर कैसे करते, फिर तब, जबकि उनके पाक कुरान में कैद में आयी स्त्रियों को हराम

---

1. 'When the Collector of the Diwan asks them (Hindus) to pay the tax, they should pay it with all humility and submission. And if the Collector wishes to spit into their mouths, they should open their mouths without the slightest fear of contamination so that Collector may do so. In this state (with their mouth open) they should stand before the Collector. The object of such humiliations and spitting into their mouths is to prove the obedience of infidel subjects under protection, and to promote the glory of Islam, the true religion, and to show contempt to false religions. God himself orders us to despise them; for he says (Sur. 9. 29) Out of hand, while they are reduced low to treat the Hindus contemptuously is a raligious duty, because they are the greatest enemies of Mustafa (Muhammad), because Mustafa, regarding the killing and plundering of Hindus, and making slaves of them, has ordered, 'They must either accept the Islam, or bekilled, or be made slaves, and their property must be plundered'; and with the exception of the Imam. I. Azam (Abu Hanifah, to whose sect we all belong), there is no other authority for taking the jizya from Hindus; but all other lawyers say, 'Either death or the Islam"

   'Tarikh. I. Firoz Shahi-Ziau DDin-Barni P. 290
   'Ain-I-Akbari. 247. Blochmann.
   And History of India vol. 3-Elliot & Dawsen. 184.

२ तारीखे-फीरोजशाही-जियाउद्दीन वर्नी (हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया-इलियट एंड डासन) वौ. ३, पृ० १८३

३ लायफ़ एण्ड कंडीशंस ऑफ़ दि पीपुल ऑफ हिंदुस्तान-अशरफ़, पृ० ३२०-२१

नहीं माना गया। उनके भोग के लिए खुदा ने हुक्म दे दिया था[१]। अच्छा हुक्म था। जिहाद करने और ग़ाज़ी बनने के बाद स्त्रियाँ हाथ में आयँगी ही, बस खुदा का हुक्म भी मान लिया गया।

मुसलमानों के धर्म-प्रचार का अनोखा ढंग भी हिंदुओं ने नहीं देखा था। उन्होंने शंकर और मंडन का शास्त्रार्थ देखा या सुना था। तर्क से पराजित विद्वान् को विजयी विद्वान् का शिष्य बनते देखा था। 'चित्त भी मेरा पट भी मेरा' वाला सिद्धांत मान कर 'इस्लाम और मौत' के बीच चुनाव करने को नहीं कहा जाता था, जैसा कि बोधन अथवा हेमू के पिता के साथ किया गया। 'यह संभवत: भारत के इतिहास का ही गौरव-पूर्ण पृष्ठ है जहां धर्म-परिवर्त्तन जोर-जबर्दस्ती से न होकर अधिकांश बदलती परिस्थितियों में व्यक्ति या जाति की इच्छा से हो जाया करते थे। बुद्धि की बुद्धि से रगड़ होकर आग निकलती थी।....इस्लाम का फैसला तलवार का जोर था वे बौद्धों की भांति प्रेम से धर्म फैलाने नहीं निकले थे। वे शंकर की भाँति प्रकांड पाडित्य के बल पर विजयी नहीं हुए थे।'[२]

इस्लाम खड्ग के बल पर जीत कर भी भारत को सांस्कृतिक पराजय नहीं दे सका। जहाँ-जहाँ मुसलमानों की सेनाएं पहुँची, देश के देश इस्लाम में दीक्षित होते गये, किंतु भारत इस नये उन्मत्त-मत की टक्करें पीता हुआ वैसा ही दृढ़ बना रहा। मुस्लिम शक्ति-स्थापन से बहुत पूर्व सनातन-धर्म दृढ़ हो गया था। बौद्धों की विश्रृङ्खलता शुंग, काण्व एवं गुप्त वंशीय राजाओं के काल में दूर हो गयी थी और वैदिक हिंदू-धर्म इतना अधिक संगठित हो गया था कि बौद्ध-राजा हर्ष-वर्द्धन के समय भी उसकी व्यवस्थाओं में परिवर्त्तन नहीं आया। मुसलमानों के पहले भारत में योगियों का कुछ प्रचार था। संभवत: जनता योगियों के चमत्कार से प्रभावित थी, कुछ नाथ-पंथी योगियों की कथाओं का भी प्रचार समाज में हो रहा था। हिंदू-जनता धर्म-प्राण है। वह प्रत्येक साधु-वैरागी का सम्मान कर लेती है। अभी कुछ दिन पूर्व तक गांवों में राजा गोपीचंद एवं भरथरी के गीत गाते हुए योगी घूमते रहे हैं। स्त्रियां अश्रु-सिक्त नयन उनकी कहानियां सुनती रही हैं। इन योगी-सिद्धों के कारण आर्य-व्यवस्थाएं बहुत प्रभावित नहीं होती थीं। विवाह एवं संस्कार आदि की स्थिति बहुत कुछ अपरिवर्त्तित रहती थी।

इस्लाम जब भारत में आया, हिंदू-धर्म की नींव इतनी दृढ़ हो गयी थी कि उसे अरबी घोड़े, खुली तलवार एवं अल्लाहो-अकबर के नारे हिला न सके। हिंदुओं के जाति एवं ग्राम संगठन भी इतनी कुशलता से कार्य करते थे कि राजनीतिक-व्यवस्थाएं बदलती रहीं किंतु परंपरानुमोदित-संस्कृति परिवर्त्तित नहीं हुई। मुसलमान हिंदुत्व की छाप से युक्त प्रत्येक वस्तु को नष्ट कर देने पर तुले थे, फिर भी हिंदू-लोग लुक-छिप कर अपनी रीति-नीति का पालन कर ही लेते थे।

हिन्दू-मुस्लिम संघात से कुछ नये संप्रदायों का भी उदय हुआ था। ये दोनों धर्मों

१ पारा ५, सूरे निसा, रूकू ४, आयत २४-कुरानशरीफ-अहमद बशीर।
२ प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास-रांगेय राघव पृ० ४८८-४९५।

के बीच सामंजस्य स्थापित करना चाहते थे। अपने वेद-विरोधी स्वर के कारण ये संप्रदाय उच्च जातियों को आकृष्ट न कर सके तथा इनके प्रयत्न छिन्न-विच्छिन्न एवं सीमित थे। हिंदू वर्ण-व्यवस्था से बहिर्भूत समाज या तो इस्लाम की शरण में जा रहा था अथवा इन नये संप्रदायों का बल पाकर पंडितों के खंडन में लग गया था। अकबर के समय तक 'निर्गुनिया' संप्रदायों का विशेष जोर नहीं दिखायी देता। कबीर स्वयं अंध-विश्वास-मुक्त सत्य-द्रष्टा महात्मा थे, किंतु उनकी शरण में प्रतिक्रियावश आये लोग अपने पूर्व-संस्कारों को न छोड़ सकने के कारण पुनः कुसंस्कार ग्रस्त हो गये होंगे, जैसा कि आज भी दिखायी देता है।

मुसलमानों का आधिपत्य और वैष्णव-भक्ति का पूर्ण विकास साथ ही साथ हुआ। कहने की आवश्यकता नहीं कि भक्ति का जन्म मुस्लिम-आक्रमण के बहुत पूर्व हो चुका था।[1] मुसलमान न भी आये होते, तो भी भक्ति का विकास होता ही, उनके कारण इसके विकास में और भी अधिक तीव्रता आ गयी। निर्गुण ईश्वर के स्थान पर सजल-मेघ-कांति विष्णु की उपासना ने जन-मन मोह लिया। अनेक आचार्य एवं कवि वैष्णव-भक्ति के विकास में तल्लीन थे। भागवत-पुराण का प्रचार भी इस युग में अधिक देखा जाता है। पुराणों में पहले से ही कलियुग के अत्याचारों का वर्णन था। यह परिवर्तन उनके लिए शास्त्र के अनुसार हो रहा था। उन्हें यह भी ज्ञात था कि ऐसी परिस्थितियों में भगवान् अवतार ग्रहण करते हैं। बंगाल के ब्राह्मणों के समान उत्तर-भारत के ब्राह्मण भी निबंध-ग्रंथ लिखने में जुटे हुए थे और जनता को तीर्थस्थान तथा व्रतों में उलझाये हुए थे। ब्राह्मणों के इन विधानों ने भी हिंदू-एकता एवं हिन्दू-संगठन में कुछ न कुछ योग दिया।

इस काल में कुछ सामाजिक-अव्यवस्थाएं दिखायी पड़ने लगी थीं, जिनकी ओर समाज के कर्णधारों का ध्यान जा रहा था। अभी तक राजा और ब्राह्मण दोनों मिलकर वैदिक-परम्पराओं तथा वर्ण-व्यवस्था का रक्षण और पोषण करते आये थे। अब राजा थे नहीं, अतएव ब्राह्मणों को भी राज्य का बल प्राप्त न था, यद्यपि समाज में अभी भी वे आदरणीय थे। मुसलमान भी यह बात जानते थे, इसीलिए उन्होंने ब्राह्मणों का विनाश ही अधिक किया था। राजा और ब्राह्मण की मिलित-शक्ति के अभाव में लोगों ने अपने वर्णों के अनुसार कार्य करना बंद कर दिया। शूद्रों ने अपनी स्थिति संभालने के लिए समानता का दावा करना प्रारंभ कर दिया। चारों ओर उच्छृङ्खलता दिखलायी पड़ने लगी, नैतिकता का ह्रास हो गया। सामाजिक-व्यवस्थाओं में लोग मनमानी करने लगे। इस समय के सुधारक एवं विचारक धर्म और संस्कृति के आधार पर भारत का स्वाभिमान जाग्रत रखना चाहते थे, किन्तु साथ में वर्ण-उच्छृङ्खल लोगों को भी साथ ही रखना चाहते थे। इसलिए भक्ति-आंदोलन इस युग के लिए वरदान बन कर आया। भक्ति-आंदोलन एक ओर अपने को वैदिक-परंपरा से जोड़े हुए था

१ मुसलमानों के अत्याचारों का अनुभव उत्तर-भारत ने पहले किया था और भक्ति का प्रबल-प्रवाह दक्षिण से आया। विट्ठल-भक्त आलवारों में अनेक का जन्म मुस्लिम-आक्रमण के पूर्व हो चुका था।—(लेखक)

तथा दूसरी ओर शूद्रों आदि को भी उसने भक्ति का अधिकार देकर अपना लिया था। जयदेव, चंडीदास, विद्यापति और चैतन्य की परंपरा वाली कृष्ण-भक्ति का प्रचार उत्तर-भारत में भी हुआ। सूरदास आदि कवियों के कारण कृष्ण-भक्ति का खूब प्रचार हुआ। मुसलमानों के आक्रमण-स्वरूप निराशा, मर्यादाहीनता एवं उच्छृङ्खलता दूर करने का प्रयास नहीं किया जा सका था। ऐसा करने की शक्ति केवल राम के चरित्र में थी।

सगुण-भक्ति के विकास में लोगों ने मुसलमान और ईसाई मत के प्रभाव लक्षित किये हैं। वस्तुत: धर्म का विकास उत्तर-भारत में इसी प्रकार होता, गोस्वामी जी रामचरित-मानस लिखते ही, क्योंकि इस ग्रन्थ का निर्माण उन्होंने पौराणिक परंपरा में ही किया था। तुलसीदास जी भक्त-कवि के साथ-साथ प्रतिभावान-सजग धर्मसुधारक भी थे। उनकी पैनी दृष्टि समाज की सभी स्थितियों का सूक्ष्म-निरीक्षण कर चुकी थी, अतएव रामचरित-मानस में तत्कालीन परिस्थितियों की अवहेलना न हो सकी।

तुलसी के पूर्व हिन्दी-भाषी-क्षेत्र संस्कृत रामायणों एवं नाटकों की राम-कथा से परिचित था। संस्कृत न जानने वाले भी पुराण-वाचक ब्राह्मणों द्वारा राम-कथा से परिचित होते रहे होंगे। रामानंद का आंदोलन तुलसी के पहले ही प्रारंभ हो चुका था। बंगाल की जनता से यहाँ की जनता राम से अधिक परिचित थी।

तुलसी ने समझ लिया था कि इन अत्याचारी राजाओं के राज्य के कारण ही सारा समाज संकट-ग्रस्त है। वे योद्धा न थे, संत-ब्राह्मण थे। राजाओं को अपदस्थ करना उनका कार्य न था। वे तो जन-जाग्रति कर सकते थे। उन्होंने आततायी-शक्ति के विरोध में समाज को रामभक्ति के माध्यम से संगठित करने की चेष्टा की। भिन्न-भिन्न उपासना-पद्धतियों एवं भिन्न वर्णों में उन्होंने सामंजस्य उत्पन्न किया। राजा के सम्बन्ध में उन्होंने सशक्त-स्वर से कहा—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृपु अवसि नरक अधिकारी॥ २—७०—६

एक ओर मुसलमानों में राज्याधिकार के लिए लोग बाप-बेटे-भाई की हत्या करने के लिए भूखे भेड़िए हो रहे थे, दूसरी ओर तुलसी साकेत के राजकुमारों का उदाहरण प्रस्तुत कर रहे थे। मुसलमानों का राज्याधिकार अनिश्चित था, जिसमें पाशव-बल होता, वही अधिकारी होता। हिन्दुओं में अधिकार बड़े भाई को मिलता। राम एवं राम के सभी भाइयों का उत्कट-भ्रातृ-प्रेम एवं निर्लोभ-व्यवहार उस समय के हिन्दुओं में अपनी व्यवस्था के प्रति स्वाभिमान भर देने वाला था।

रामायण में दो पक्ष थे—आर्य और राक्षस। लंका के राक्षस आर्य-ऋषियों को संतप्त एवं पीड़ित करते थे। इधर मुसलमान हिन्दू-धर्म के अग्रणी लोगों पर ही अत्याचार अधिक करते थे। कृत्तिवास की भांति तुलसी ने भी मुसलमानों के कृत्यों में रामकालीन असुरों की छाया देखी थी।[1] 'संभवामि युगे युगे' की अमरवाणी में दोनों लेखकों ने

---

१ विशेष विवरण अध्याय ३ में।

जनता को भक्त-वत्सल भगवान् के अवतीर्ण होने एवं असुरतुल्य अत्याचारियों का पराभव करने का आश्वासन दिया।[१] मुसलमानों का आक्रमण न होने पर भी संभवत: रामायणें लिखी जातीं, किन्तु तब इन लेखकों में विभिन्न वर्गों के समन्वय एवं समाज के संगठन की तत्परता न दिखायी पड़ती।

मध्यकाल तक समस्त-विश्व में ही समाज-सुधार का माध्यम धर्म रहा है। धर्म के परिस्थिति-अनुकूल आदर्शों के द्वारा प्राचीन-रूढ़ियों का निवारण एवं नवीन जीवन-चेतना का स्फुरण किया जाता था। जो धार्मिक-आंदोलन व्यक्ति एवं समाज का परिष्कार करने वाला हो, जिसका आधार भोग न होकर कर्त्तव्यभाव हो और जो अखिल विश्व को मानवता का संदेश दे सके, वही धर्म श्रेष्ठ है। भारत ने किसी दूसरे धर्म के विकास में बाधा नहीं दी। बाधा देने वाले धर्म को उसने कुधर्म कहा।[२] कभी किसी से अपना धर्म त्यागने के लिए न कह कर 'स्वधर्मे निधनं श्रेय:'[३] कहा। दयालु और उदार इतना कि चींटी की भी हत्या पाप माना जाता है। भारतीय-धर्म में उदारता एवं समाज-व्यवस्था में कर्त्तव्य-परायणता एवं सुश्रृङ्खला अधिक थी। वर्ण-आश्रम की व्यवस्था, चार-पुरुषार्थों की कामना एवं तीन ऋणों के शोध आदि की व्यवस्थाओं के द्वारा समस्त समाज को 'त्यक्तेन भुंजीथा'[४] का दृष्टिकोण दिया था।

सुजला-सुफला-शस्य-श्यामला भूमि ने जिस सत्य की उपलब्धि की थी, उसमें उदारता एवं सहिष्णुता थी। अरब की मरुभूमि में भी उसी सत्य का उद्घाटन हुआ था, किन्तु ऐतिहासिक एवं भौगोलिक परिस्थितियों के कारण उसमें घोर असहिष्णुता एवं हठधर्मी आगयी थी। अल्लाह केवल मुसलमानों का माना गया। ईश्वर पर केवल एक जाति का अधिकार कैसे हो सकता है! और यदि वह जाति मृत्यु के भय एवं अर्थ के प्रलोभन के कारण अन्य मत के विश्वासियों का धर्मांतरण कर लेती है तो उनमें भी नैतिक-चरित्र की उच्चता कैसे आ सकती है। ऐसे धर्मांतरित व्यक्तियों का जमघट कभी मानवीय उच्चादर्शों से संपन्न समाज की स्थापना नहीं कर सकता। विरोध इस्लाम और गैर-इस्लाम में नहीं है, यदि सारा विश्व ही इस्लाम ग्रहण कर ले, तब भी इस प्रकार के संकुचित दृष्टिकोण को लेकर विश्व-बंधुत्व की रक्षा नहीं हो सकती। आपस में ही क्षुद्र-स्वार्थों के लिए मार-काट होती रहेगी। अणु-शक्ति-भीत संसार आज गांधीवाद की शरण में क्यों आ रहा है, इसीलिए न कि उसमें विश्व-बंधुत्व की भावना का आधार सह-अस्तित्व है।

तुलसी ने भारतीय-धर्म की विशेषता के अनुरूप ही भक्ति का स्वरूप प्रस्तुत किया। उनकी भक्ति में उपासक के सद्गुणों को उभारने की शक्ति है। उसका आधार

१ भगवान् के अवतीर्ण होने का उद्देश्य देखिए अध्याय ७ में।

२ धर्मो यो बाधते धर्मं न स धर्मः कुधर्म तत्। (महाभारत)

३ गीता ३–३५।

४ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृधः कस्यस्विदनम्॥ १ ॥ ईशावास्य उपनिषद्

शुद्धाचार, सदाचार एवं सत्संग है। तुलसी द्वारा प्रचारित-भक्ति धनी-निर्धन, उच्च-नीच एवं शिक्षित-अशिक्षित सभी को लोकहित एवं आत्म-परिष्कार का दृष्टिकोण देने वाली है। भक्ति का उद्देश्य शुद्ध-भक्ति था। किसी प्रकार के भय अथवा प्रलोभन [१] के द्वारा ईश्वर की ओर उन्मुख करने का प्रयास भारतीय साधकों ने नहीं किया, चाहे वे कबीर जैसे निर्गुण-वादी हों अथवा सूर-तुलसी के समान सगुणवादी।

भारतीय ब्रह्मवाद सूक्ष्म-चिंतन का फल था। अन्य धर्मों के एकेश्वरवाद अथवा निर्गुणवाद में स्थूलता रह ही जाती है, उनकी पहुँच भारतीय ब्रह्मवाद के चिंतन के धरातल तक नहीं हो सकी। सामान्य-जनता शंकराचार्य के आगे श्रद्धानत हो सकती है, किन्तु उनको समझना सबके लिए सुगम नहीं। जखई, घटवारबाबा और भूत-प्रेत की उपासना की ओर सहज-उन्मुख होते हुए समाज और साथ ही उच्च संस्कार-संपन्न वर्ग को एक ही आदर्श में बांधने के लिए पूर्ण मानवीय एवं दैविक-गुणों से संपन्न भगवान् राम की ही आवश्यकता थी। इसीलिए तुलसी के काल में तुलसी की ही आवश्यकता थी।

परम-भक्त लोग कहते हैं कि तुलसी ने परिस्थितियों से प्रेरित होकर मानस नहीं लिखा, उन्होंने तो भारतीय-परम्परा का निर्वाह करते हुए श्रुति, स्मृति एवं पुराण प्रतिपादित मार्ग का ही अनुसरण किया है। ठीक है, यही किया होगा, किन्तु तत्कालीन-परिस्थिति को उन्होंने अवश्य ही प्रभावित किया है। उस समय के भग्नाश हिन्दुओं के लिए उनका मानस बहुत बड़े संबल के रूप में था। साथ ही मानस में मानवता का भी ऐसा शुभ-संदेश है कि इस प्रकार की संकट-कालीन परिस्थिति न रहने पर भी वह व्यक्ति, परिवार एवं समाज को युग-युग तक प्रेरणा देता रहेगा।

———

१ भय-प्रलोभन-काफ़िरों के लिए दोज़ख़ की आग और ईमान वालों के लिए बहिश्त में नहर, मेवों के बाग एवं पाक-साफ बीबियां-पारा २, सूरेबकर, रूकू ३, आयत २४-२५।

जिन लोगों ने हमारी आयतों से इंकार किया, हम उनको आग में झोंकेंगे। जब उनकी खालें जल जावेंगी, उनकी दूसरी खाल बदल देंगे ताकि दंड भोगें। पारा ५, सूरे निसा, रूकू ९, आयत ५६- कुरानशरीफ- अहमद बशीर।

अध्याय २

राम-भक्ति का विकास एवं उसमें कृत्तिवासी-रामायण एवं रामचरित-मानस का स्थान

१—वैष्णव-भक्ति का विकास।

२—राम-भक्ति का विकास।

३—बंगाल की साधनाएँ—

(अ) लौकिक, आर्य किन्तु अब्राह्मण्य एवं ब्राह्मण्य।

(आ) रामचरित्र का महत्त्व।

(इ) राम-भक्ति के विकास में कृत्तिवासी-रामायण का योग।

४—राम-भक्ति-शाखा में रामचरित-मानस का योग।

१—वैष्णव भक्ति का विकास

ऋग्वेद के देवता-मंडल एवं तदर्थ निवेदित स्तवों पर विचार करने से प्रतीत होता है कि आर्य देव-शक्तियों से न तो आतंकित थे और न भीत। आर्य सरल स्वभाव के थे, कृतज्ञता उनका विशेष-गुण था। उन्होंने प्राकृतिक-शक्तियों में किसी शक्तिमती अदृश्य-सत्ता के दर्शन किये थे, ये शक्तियाँ उन्हें जीवन-धारण में सहयोग प्रदान करती थीं, अतएव कृतज्ञता-वश ये उनके सामने नत थे। प्रकृति की प्रमुख शक्तियों को एक-एक देवता मान कर वे बहु-देवों की उपासना करते थे, किंतु उन्हें एकेश्वरवाद की कल्पना अवश्य थी। ऋग्वेद में ही इस धारणा के दर्शन हो जाते हैं—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।'

ऋग्वेद १—१६४—४३

एक ब्रह्म की वाह्य-अभिव्यक्ति-स्वरूप इन देवताओं का महत्त्व परिस्थिति के अनुसार घटता-बढ़ता रहा। ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि सबसे मुख्य-देवता शांति-प्रिय वरुण हैं, जो विश्व के नियंता तथा प्राकृतिक-नियम (ऋत) के संरक्षक हैं।[1] वरुण के पश्चात् योद्धा-देवता इंद्र का महत्त्व बढ़ गया।[2] निरुक्त के लेखक यास्क ने वैदिक देवताओं का तीन श्रेणियों में वर्गीकरण किया है—पृथिवी-स्थानीय, अंतरिक्ष-स्थानीय एवं द्युस्थानीय। तीनों के एक-एक प्रमुख देवता क्रमशः अग्नि, इंद्र एवं सूर्य-सविता हैं।[3]

सूर्य अथवा विष्णु का महत्त्व वरुण एवं इंद्र के पश्चात् आता है। ऋग्वेद के अनुसार विष्णु आदित्य मात्र जान पड़ते हैं। वे दिन की यात्रा तीन पगों में पूरी कर लेते हैं।[4] विष्णु का व्युत्पत्ति-गत अर्थ व्याप्त होने वाला होता है। वे व्याप्त होने वाले सौर-शक्ति के प्रतीक हैं। उनके तीन पग सूर्य की तीन स्थितियां-उदय, उत्कर्ष और अस्त ही हैं। अथर्ववेद (१-३-१-१) में सूर्य को ही त्रिविक्रम विष्णु कहा गया है।

विष्णु इंद्र के योग्य सहायक माने गये हैं।[5] ब्राह्मणों की रचना तक विष्णु का महत्त्व बढ़ गया था। शतपथ-ब्राह्मण में उन्हें सभी देवताओं से बढ़ कर मान लिया गया।[6] इंद्र-सूक्त के समान उन पर भी विष्णु-सूक्त लिखा गया, तथा इंद्र के लिए प्रयुक्त हरि, केशव, वासुदेव, वृष्णि-पति आदि नाम अब विष्णु के लिए प्रयुक्त होने लगे।[7] उपनिषद् काल तक

१ ऋग्वेद २-२८-६।
२ विश्वधर्म-दर्शन-सांवलिया विहारीलाल वर्मा-पृ० २०३।
३ निरुक्त-दैवत काण्डम् अ० ६ पाद २।
४ ऋग्वेद १-२२-१७।
५ ऋग्वेद १-२२-१९।
६ शतपथ-ब्राह्मण-१४-१-१।
७ वैष्णव-धर्म-परशुराम चतुर्वेदी-पृ० १४।

एक-देव-वाद अथवा अद्वैतवाद की धारणा एकदम स्पष्ट दिखलायी देने लगती है। यहाँ से विष्णु का गौरव और महत्त्व बढ़ना प्रारंभ हो गया।

अधुना-प्रचलित अनेक भारतीय-देवता अपने में कई देवताओं के गुण-स्वभाव आदि का समाहार किये हैं। किंतु विष्णु ही एक-मात्र ऐसे देवता हैं जिन्होंने वैदिक-आधार की रक्षा करते हुए विकास किया। विष्णु के साथ भी कई देवताओं का एकीकरण हुआ, किंतु उनकी उपासना में शैव एवं शाक्त उपासनाओं की अपेक्षा अनार्य-तत्त्व बहुत कम प्रविष्ट हुए। आराध्य के अनुरूप ही आराधकों के चरित्र पर प्रभाव पड़ा। चार्ल्स इलियट के अनुसार वैष्णवों में मानवता और भावुकता अधिक है।[1]

विष्णु-नारायण—

भांडारकर प्रभृति कई विद्वानों ने विष्णु के साथ कई देवताओं का मिलन स्वीकार किया है, जिनमें एक नारायण भी हैं।[2] नारायण सृष्टि-विषयक भावना के केन्द्र माने जाते हैं।[3] अन्य विद्वान् उन्हें ऋषि मानते हैं, जो बाद में देवता हो गये।[4] तैत्तिरीय-आरण्यक (१२-११-१) में विष्णु और नारायण को एक मान लिया गया।

कृष्ण-वासुदेव—

आगे चल कर विष्णु-नारायण का कृष्ण-वासुदेव से मिलन हो गया। वासुदेव का नाम किसी संहिता अथवा ब्राह्मण में नहीं है, किंतु उनका अस्तित्व ऐतिहासिक है। इनका जन्म यादव-वृष्णि अथवा सात्वतवंश में हुआ।[5] इसीलिए इनके नाम पर प्रचारित संप्रदाय को सात्वत-मत कहा गया। भांडारकर कृष्ण को वैदिक वाङ्मय में वर्णित ऋषि मानते हुए कहते हैं कि वासुदेव के आराध्यदेव बन जाने पर जब कृष्ण-वासुदेव का एकीकरण हुआ तो कृष्ण को वृष्णिकुल के वंश-वृक्ष में स्थान मिल गया।[6]

वासुदेव-कृष्ण और वैदिक-देवता विष्णु का तादाम्य गीता के समय तक हो चुका था। ब्राह्मणों ने वैदिक-धर्म के शक्ति-वर्द्धन के लिए इस सशक्त-संप्रदाय (वासुदेव अथवा भागवत) के साथ तादाम्य किया था।[7] डा० भांडारकर ने आभीरों के बालदेवता गोपाल की उपासना का वैष्णव धर्म के साथ सम्मिलन स्वीकार किया है।[8] श्री परशुराम चतुर्वेदी वेद और बौधायन-सूत्र के उदाहरण देकर गोपाल-कृष्ण की उपासना का विकास वैदिक-साहित्य से मानते हैं।[9]

---

१ हिंदुइज्म एंड बुद्धिज्म–जिल्द २–(चार्ल्स इलियट), पृ० १४०।
२ कलेक्टिड वर्क्स ऑफ़ सर आर० जी० भांडारकर, जिल्द ४–पृ० ४६।
३ वैष्णवधर्म-परशुराम चतु०, पृ० १६।
४ दि एज ऑफ इंपीरियल यूनिटी–पृ० ४३७।
हिंदू गॉड एण्ड हीरोज–लायनल-बार्नेट, पृ० ७७।
५ दि एज ऑफ़ इंपीरियल यूनिटी-पृ० ४३२।
६ कलेक्टिड वर्क्स ऑफ़ सर आर० जी० भांडारकर (जिल्द ४), पृ० १५, १६।
७ दि एज ऑफ़ इंपीरियल यूनिटी, सं० आर० सी० मजूमदार, पृ० ४३५।
८ कलेक्टिड वर्क्स ऑफ़ सर आर० जी० भांडारकर (जिल्द ४), पृ० ४६, ५४।
९ वैष्णवधर्म–परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ४३, ४४।

वैष्णव-भक्ति के विकास में भागवत-संप्रदाय का प्रमुख हाथ है। ब्राह्मण-कर्मकांड के विरोध में कई संप्रदाय संगठित हो रहे थे। बौद्ध एवं जैन संप्रदाय वेद-विरोधी थे, किंतु भागवत-संप्रदाय यज्ञों की हिंसा का निराकरण करते हुए भी वेद-विरोधी न था। भागवतों के देवता वासुदेव-कृष्ण का एकीकरण वैदिक-देवता विष्णु-नारायण के साथ हो जाने पर भक्ति-भावना इन्हीं उपास्य देवों में केन्द्रित होकर उत्तरोत्तर विकसित होने लगी।[१]

वैष्णव-भक्ति के विकास में पांचरात्र-मत से विशेष सहायता मिली। इस मत में भगवान् की भक्ति का समर्थन तंत्रों एवं संहिताओं के आधार पर किया गया, तथा चतुर्व्यूह-कल्पना एवं ऐकांतिक भक्ति-मार्ग को प्रधानता दी गयी। 'ऐकांतिक' का अर्थ है— निष्काम भक्ति का मार्ग।[२] महाभारत के नारायणीयोपाख्यान में पांचरात्र-मत का प्रतिपादन किया गया है। इस मत में भगवान् के अनुग्रह एवं जीव के आत्म-समर्पण को बहुत महत्त्व दिया गया।[३]

विकास—ब्राह्मण एवं आरण्यक-काल तक विष्णु के दो अवतारों-वामन और नृसिंह का वर्णन हुआ था। कूर्म, वराह और मत्स्य का सम्बन्ध प्रजापति के साथ था। नारायणीय में प्रथम बार विष्णु के छः अवतारों का वर्णन मिलता है। इसके पश्चात् पुराणों में अवतारों का विस्तृत वर्णन हुआ, जिनमें दशावतार की कल्पना अधिक मान्य हुई। पाणिनि के पूर्व से ही वैष्णव-धर्म के विकास का प्रमाण मिलना प्रारंभ हो जाता है। ईसा की दूसरी श० पू० के बेसनगर (ग्वालियर) वाले शिलालेख से ज्ञात होता है कि विदेशी भी वैष्णव-धर्म की ओर आकृष्ट हो रहे थे। इस शिला-लेख से प्रकट होता है कि ग्रीक-देश के राजदूत हेलियोडोरा ने एक विष्णु-ध्वज-स्तम्भ बनवा कर उस पर 'परम-भागवत हिलीयो डोरः, खुदवाया था।

वास्तव में वैष्णव-धर्म का पूर्ण विकास गुप्त-सम्राटों के राजाश्रय में हुआ। इनकी मुद्राओं पर परम-भागवत एवं ध्वज पर गरुड़ अंकित था। इन्होंने कई स्थानों पर गरुड़ स्तम्भों की स्थापना करायी, इनके ही समय में अनेक पुराणों का निर्माण अथवा नव-संपादन हो रहा था, तथा अवतारों के भिन्न-भिन्न रूपों की धारणा हो रही थी। गुप्तों के सिक्कों एवं लेखों में लक्ष्मी-नारायण साथ-साथ देखे जाते हैं।

बंगाल में वैष्णव-धर्म का विकास—

बंगाल में भी वैष्णव-धर्म का विकास गुप्त-काल में हुआ। बांकुड़ा जिला की शुशुनिया पहाड़ की एक गुहा में (चौथी शताब्दी) विष्णुचक्र उत्कीर्ण है।[४] पहाड़पुर मंदिर के प्रस्तर-फलकों पर कृष्ण की अनेक लीलाओं का चित्रण मिलता है। बंगाल में पाँचवीं-शताब्दी के ऐसे अनेक मंदिरों का पता चला है, जिनमें विष्णु-वाचक स्वामी नामधारी

१ रामकथा—बुल्के, अनु० १५८।

२ मध्यकालीन धर्म-साधना—हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ११६।

३ भारतीय-दर्शन-बलदेव उपाध्याय—पृ० ४५६।

४ The Origin and Development of Bengali Language-Suniti Kumar Chatterji—p. 75

देवों की उपासना होती थी, जैसे गोविन्द-स्वामी, कोकामुख-स्वामी आदि ।[१] (कल्हण की राज तरंगिणी में भी राजस्वामी, लक्ष्मण-स्वामी आदि अनेक विष्णु-मंदिरों का उल्लेख है ।[२])

बौद्ध पाल-राजाओं के समय (८–१२वीं शताब्दी) उनके वैदिक-ब्राह्मण-मंत्रियों द्वारा पौराणिक वैष्णव-धर्म का प्रचार होता रहा। सेन-राजा दक्षिण से आये थे। वर्मन-वंश के राजा सेनानों के समसामयिक और वैष्णव थे। इनके काल में वराह और नृसिंह की पूजा होती थी, सेन-राजा लक्ष्मण सेन के राजाश्रय में जयदेव ने गीत-गोविन्द (१२वीं शताब्दी) की रचना की थी।

२–रामभक्ति—

वैदिक-साहित्य में कई रामों का उल्लेख है, किन्तु उनका सम्बन्ध दाशरथि राम से नहीं जान पड़ता। दशरथ, इक्ष्वाकु, जनक और सीता का भी उल्लेख हुआ है किन्तु न तो इनका चरित्र रामकथा में वर्णित किसी पात्र से मिलता है और न ही ये आपस में किसी प्रकार सम्बन्धित हैं। अतएव राम के अस्तित्व के लिए वैदिक-प्रमाण सहायक नहीं है। दशरथ-जातक आदि बौद्ध-साहित्य में राम-कथा का जो वर्णन है, वह विश्वसनीय नहीं जान पड़ता। बौद्ध-साहित्य में वर्णित राम-कथा के संक्षिप्त एवं विकृत संकेत को वाल्मीकि-रामायण का आधार मानने की धारणा का खंडन हो चुका है।[3] फिर भी रामायण का रचना-काल निश्चयात्मक रूप से निर्धारित नहीं हुआ है। श्री बुल्के का कहना है कि प्रचलित रामायण का रूप दूसरी शताब्दी ईस्वी के बाद का नहीं है।[४]

राम का जन्म कृष्ण से पूर्व हो गया था, लोक-परम्परा भी यही मानती है तथा विद्वान् भी ऐसा विश्वास करते हैं। राम ऐतिहासिक महापुरुष थे, उनके त्याग और शौर्य पर आधारित आख्यान लोक-प्रसिद्ध थे, इन्हीं के आधार पर रामायण का सृजन हुआ।[५]

कृष्ण से पूर्व जन्म लेने पर भी राम के अवतार लेने की कल्पना बाद की है। रामायण के आदि-कांड एवं उत्तर-कांड में रामावतार का उल्लेख हुआ है, किंतु ये दोनों कांड प्रक्षिप्त माने जाते हैं। लंका-कांड का भी अवतार-वाला अंश प्रक्षिप्त है। अतः इनमें वर्णित राम-अवतार की कल्पना बहुत पुरानी नहीं है, किंतु राम के अवतार होने का व्यापक-प्रचार इन प्रक्षेपों से पूर्व हो गया होगा, तभी अवतार-विषयक कल्पना रामायण के प्रक्षेपों में समाविष्ट हुई। श्री बुल्के[६] के अनुमान से पहली शताब्दी ई० पू० से रामावतार की भावना का प्रचार हो गया था। ईसा से प्रथम शताब्दी ई० पू० लिखे जाने वाले बौद्धों

---

१ बांगालीर इतिहास-नीहाररंजन राय-पृ० ५६६

२ राजतरंगिणी–कल्हण–चतुर्थ तरंग।

३ देखिए 'दशरथ–जातक की समस्या' राम-कथा (बुल्के) अध्याय ६।

४ राम-कथा (बुल्के) अनु० २७/बुल्के वाल्मीकि द्वारा रचित मूल-रामायण का रचना-काल ३०० ई० पू० मानते हैं—अनु० २७।

५ तुलनीय हिंदू गॉड एंड हीरोज पृ० १०१।

६ राम-कथा–अनु० १५६।

के पालि-साहित्य में स्वयं बुद्ध को राम का एक अवतार मानने की कल्पना दीख पड़ने लगी थी[1], अतएव इस काल के पूर्व रामावतार का प्रचार अवश्य हो चुका होगा।

रघुवंश (सर्ग १०) एवं हरिवंश-पुराण में राम को अवतार माना गया है। इन दोनों का रचना-काल ४०० ई० के लगभग है। अन्य कई पुराणों में भी राम के अवतार का उल्लेख देखा जाने लगा।

भक्ति—

प्राचीन-पुराणों में भी राम की भक्ति का वर्णन नहीं है, अतएव डा० भांडारकर राम-भक्ति-शाखा का जन्म ग्यारहवीं शताब्दी मानते हैं।[2] किंतु दक्षिण-भारत में राम-भक्ति के लक्षण इससे बहुत पहले दृष्टि-गोचर होते हैं। निस्संदेह भक्ति की प्रबल-वन्या ने दक्षिण से आकर समस्त उत्तरी-भारत को आप्लावित कर दिया था, परन्तु उसका बीजांकुरण उत्तर में ही हुआ था। कालिदास ने अपने मेघदूत[3] में रामगिरि-आश्रम तथा जानकी के स्नान से पवित्र हुए जल का वर्णन अति आदर से किया है। इस काल में राम-भक्ति का यत्किंचिद् रूप उत्तरी-भारत में अवश्य रहा होगा। छठी शताब्दी में वराह-मिहिर राम का उपासक था, उसने राम की मूर्त्तियाँ बनाने का आदेश दिया था।[4] कल्हण (१२ वीं शताब्दी) ने राजतरंगिणी में लिखा है कि ललितादित्य द्वारा एक स्थान की खुदाई कराने पर भूगर्भ निहित दो जीर्ण-मन्दिरों का उद्धार हुआ। इनके द्वार खोलने पर राम और लक्ष्मण की मूर्त्तियाँ मिलीं। उनके सिंहासन पर खुदे हुए लेख को पढ़ने से विदित हुआ कि ये मूर्त्तियाँ स्वयं राम एवं लक्ष्मण द्वारा स्थापित की गयी थीं।[5] यदि उद्धार-वाली यह घटना सत्य है तो मानना पड़ेगा कि राम को अवतार मान कर पूजा-भक्ति बहुत दिन पहले से प्रारंभ हो गयी होगी, क्योंकि मंदिर को भूगर्भ में निहित होने में भी तो शताब्दियाँ बीती होंगी।

आलवार—

तमिल भाषा के आलवार शब्द का अर्थ अध्यात्म-ज्ञान रूपी समुद्र में गहरा गोता लगाने वाला पुरुष है।[6] तमिल-प्रांत में ऐसे बारह भक्त हो गये हैं जिन्होंने भिन्न-भिन्न समय एवं स्थानों पर जन्म लिया, किंतु जिनकी आध्यात्मिक मनोवृत्ति एक समान थी। इनके आविर्भाव-काल के सम्बन्ध में मतभेद है; वैसे मोटे रूप में उनका समय २०० से ९०० ई० तक माना जा सकता है। सिंधु घाटी-सभ्यता का प्रमाण देकर आलवारों की भक्ति,

१ वैष्णवधर्म—परशुराम चतु० पृ० ६५।

२ कलेक्टिड वर्क्स ऑफ़ सर आर० जी० भांडारकर जिल्द ४—पृ० ६६।

३ यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु।
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु॥ पूर्व मेघ० १।

४ दि क्लासिकल एज—पृ० ४१७।

५ राजतरंगिणी—कल्हण—४—२७२—२७४।

६ भारतीय-दर्शन—बलदेव उपाध्याय, ४७९ पृ०।

धारा को द्रविड़ भाव-धारा से युक्त करने की चेष्टा की गयी है। वस्तुतः आलवारों ने विष्णु की उपासना को पुराणों से ग्रहण कर उसे आत्मसात कर लिया था।[1] नानाघाट एवं घायना के शिलालेखों से प्रकट होता है कि वैष्णव-धर्म पुराणों के माध्यम से प्रथम-शताब्दी ई० पू० से द्वितीय-शताब्दी तक दक्षिण में प्रचारित हो चुका था।

मौर्य-काल में दक्षिण-भारत पर बौद्ध-जैन संप्रदायों का प्रभाव था। गुप्त-काल में पौराणिक-धर्म का विकास हुआ और शैव-वैष्णव उपासकों ने उपर्युक्त संप्रदायों की जड़ें हिला दीं। आलवारों का कथन था—'श्रमणों को समझ नहीं, बौद्ध लोग भ्रम में हैं, शिव के उपासक सरल और अज्ञ हैं, जो विष्णु की उपासना नहीं करते वे, अवश्य ही स्वल्प-बुद्धि हैं।'[2]

आलवारों में विष्णु के दो अवतारों—राम और कृष्ण का अधिक प्रचार था, विशेषतः कृष्ण का। कुलशेखर आलवार राम-भक्त थे। ये बड़े भावुक थे। रामायण में राम-खरदूषण-युद्ध प्रसंग पढ़ते समय आवेश में आकर एकाकी राम की सहायता के लिए इन्होंने अपनी सेना को कूच की आज्ञा दे दी। दूसरी बार अपहृता-सीता का उद्धार करने के लिये वे समुद्र की ओर दौड़ पड़े थे।[3] इनका काल नवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध समझा जाता है। इनकी रचनाओं का पाँचवाँ-अंश रामावतार से संबंध रखता है। इन्होंने राम के प्रति अत्यंत कोमल एवं हृदय-स्पर्शी भक्ति का अंकन किया है।'[4]

वैष्णव-भक्ति-परंपरा की एक विशेषता रही है—आचार्य और भक्त का सहयोग। आचार्य तत्त्वचिंतन करता है और भक्त उसकी स्वानुभूति कर रागात्मक अभिव्यंजना करता है। फलस्वरूप वैष्णव-धर्म सर्व प्रकार से पुष्ट होकर निरंतर विकास करता रहा। केवल एक प्रकार के प्रयास से इतनी सफलता प्राप्त करना सुकर न था आलवारों ने भक्ति के आवेश में सहस्त्रों छंदों की रचना की थी, जिनका संकलन प्रथम बार नाथ-मुनि अथवा रघुनाथाचार्य (८वीं शताब्दी) ने किया। ये प्रथम आचार्य थे। यामुनाचार्य नाथमुनि के पौत्र एवं द्वितीय आचार्य थे। १२ वर्ष की आयु में एक राज-पंडित को परास्त कर इन्होंने आधा-राज्य प्राप्त कर लिया था। ९७३ ई० के लगभग ये राज्य छोड़कर आचार्य की गद्दी पर बैठे।[5] इन्होंने भी नाथमुनि के संग्रह का प्रचार किया।

रामानुजाचार्य—

रामानुज इस परंपरा के तृतीय आचार्य थे। इनका काल ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी माना जाता है। इन्होंने प्रबन्धम् (आलवारों का रचना-संग्रह) को वर्तमान रूप दिया। यह तमिल-वेद माना जाता है। इसका पाठ कोई भी वैष्णव कर सकता है;

---

१ हिंदू गॉड एंड हीरोज-(लायनेल—बार्नेट) पृ० १०४।

२ अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ वैष्णविज्म इन साउथ इंडिया—एस० के० अय्यंगर—पृ० २६५।

३ वैष्णवधर्म—परशुराम चतु०, पृ० ६६।
हिम ऑफ़ दि आलवार्स—हूपर—पृ० १३, १४।

४ राम कथा-बुल्के, अनु० १५६।

५ भारतीय-दर्शन-बलदेव उपाध्याय पृ० ४८२।

इसके लिए वर्ण-जाति का बंधन नहीं है। वैष्णवों में यह प्रथम सुधार था। रामानुज ने कई अद्वैतवादियों को परास्त कर शंकर के मायावाद का खंडन किया। इनके स्थापित श्री-संप्रदाय में कई वैष्णव-संहिताओं एवं उपनिषदों की रचना हुई, जिनमें रामभक्ति और रामपूजा का शास्त्रीय प्रतिपादन भी किया गया। आचार्य ने अपने श्री-भाष्य में अवतारों में राम और कृष्ण का विशेष उल्लेख किया है।[१] आलवारों ने जात-पाँत नहीं मानी थी, उनमें से अनेक शूद्र थे। रामानुज प्रथम आचार्य थे, जिन्होंने शूद्रों को भी भक्ति का अधिकार दिया। भक्ति के क्षेत्र में ही शूद्रों को अधिकार मिला था, खान-पान आदि में नहीं। उनकी परिस्थिति में इतना ही पर्याप्त था।

रामानंद—

रामानंद (१३५६-१४६७ विक्रम संवत्)[२] का जन्म कान्यकुब्ज ब्राह्मण-वंश में हुआ था। रामानुज के वंशज राघवानंद के शिष्य होने के कारण इन्हें रामानुज की शिष्य-परंपरा में माना जाता है। अपने गुरु से मतभेद हो जाने के कारण इन्होंने नवीन संप्रदाय को जन्म दिया, जिसे आज रामावत अथवा रामानंदी-संप्रदाय कहते हैं।

'रामानंद के समय मुस्लिम-शासकों की हठधर्मिता के कारण हिन्दू-धर्मानुयायियों के लिए संकट का अवसर था। फलतः अपने धर्म एवं संस्कृति की रक्षा के लिए प्रयत्नशील हिन्दू-विचारक कोई न कोई मार्ग निकालने की चिंता में प्रवृत्त थे।[३] उत्तर-भारत में उस समय सिद्धों और योगियों का भी खूब प्रचार रहा था। बौद्ध, जैन और आलवार तीनों जाति-व्यवस्था की अवहेलना कर चुके थे। रामानुज के श्री-संप्रदाय ने भी कुछ छूट दे दी थी। रामानंद ने लोक-संग्रह एवं समाज-रक्षण के लिए भेद-भावादि की उपेक्षा कर अपने दल में शूद्रादि को भी स्थान दिया। अब शूद्रों को भी दीक्षा देने का अधिकार मिल गया। प्रचार की भाषा संस्कृत के स्थान पर हिन्दी कर दी, यह भी बहुत बड़ा कार्य किया। अभी तक हिन्दी-भाषी जनता वैदिक-धर्म में विश्वास एवं श्रद्धा-भाव रखने पर भी अपनी विशेषताओं से अनभिज्ञ रह कर केवल अन्य संप्रदायों के द्वारा भर्त्सना ही सुनती आ रही थी। वास्तव में रामानन्द ने ही उत्तर-भारत में जनांदोलन के व्यापक-रूप का प्रचार किया। चैतन्य महाप्रभु का जन-आंदोलन अन्य प्रकार का तथा रामानंद के कई वर्ष पश्चात् हो सका।

इन्होंने श्री-संप्रदाय के उपास्य लक्ष्मी-नारायण के स्थान पर सीता और राम को उपास्य बनाया। शिष्यों में वीर-भाव का प्रचार किया, राम के शस्त्र-धर रूप की उपासना पर जोर दिया तथा शिष्यों को भी शस्त्रास्त्र की शिक्षा में पारंगत किया। सभी वैष्णवों को संगठित कर इन्होंने अखाड़ों की स्थापना की।[४] इनके अनुयायी गृहस्थ और वैरागी

१ रानकथा-बुल्के-अनु० १६० ।

२ रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ-(लेखक डा० श्रीकृष्णलाल) पृ० ४० ।

३ वैष्णव-धर्म-परशुराम चतुर्वेदी-पृ० १०८ ।

४ रामानन्द की हिन्दी रचनाएं–१ लेख-पीतांबर बड़थ्वाल–पृ० १६ एवं २६ ।

दोनों होते हैं। सभी वर्गों के लोगों को रामातव-संप्रदाय में स्थान मिल जाता है। वैदिक प्रभाव से अछूती कई अछूत जातियों तक इनके वैरागी पहुँच गये तथा इन्हें भी उपासनाओं के जंजाल, पंथों के चक्कर तथा देशी-विदेशी अत्याचारों की सीमाओं से खींचकर राम की शरण में ले आये।

जो हिन्दू बलात् मुसलमान बना लिये गये थे, उन्हें रामानंद जी ने फिर अपना लिया।[1]

रामानंद संप्रदाय और परंपरा में रामचरित-मानस के लेखक गोस्वामी तुलसीदास जी थे।

बंगाल में कृत्तिवास के पूर्व रामभक्ति का प्रचार देखने में नहीं आता। कृष्णभक्ति के प्रमाण तो स्वयं जयदेव ही हैं। वाल्मीकि-रामायण का एक संस्करण गौडीय-संस्करण कहलाता है, जिसने अपना यह रूप बंगाल में ही पाया है, इससे ज्ञात होता है कि राम की कथा एवं भक्ति से बंगाल का परिचय बहुत प्राचीन है, किन्तु राम की भक्ति का माध्यम संस्कृत रामायण थी। आर्यावर्त से बंगाल जाने वाले विद्वान् ब्राह्मण एवं कायस्थों में भक्ति का प्रचार भले ही रहा हो, किन्तु साधारण जनता संस्कृत से अपरिचित होने के कारण अपने लौकिक-देवताओं को लेकर मस्त थी।

डा० सुकुमार सेन ने पांचवीं शताब्दी की पहाड़पुर की लिपि में उल्लिखित कई बंगाली पुस्तपालों के नाम अपने ग्रंथ में दिये हैं, जिनमें एक रामदास भी है।[2] पहाड़पुर में कृष्ण-लीलाओं के साथ राम से संबंधित आख्यानों का भी चित्रण है—जैसे वानर-सेना द्वारा सेतु-निर्माण एवं बालि-सुग्रीव-युद्ध। नीहाररंजन राय का कहना है कि ये चित्र अलंकरण के उद्देश्य से ही उत्कीर्ण हुए हैं, पूजा के उद्देश्य से नहीं।[3] अलंकरण का ही उद्देश्य हो सकता है, फिर भी राम के प्रति पूज्य-भाव की सृष्टि अवश्य हो गयी होगी, क्योंकि राम-विषयक अवतार वाले प्रक्षिप्त-अंश-समन्वित रामायण का परिचय बंगाल से हो चुका था, और यह रामायण ही उपर्युक्त चित्रणों का आदर्श थी। ब्राह्मण कथा-वाचन के द्वारा ब्रह्म-राम का परिचय देते रहे होंगे। हाँ, अभी तक राम जनता के न हो सके थे।

पाल-वंश के शासन-काल में भी राम की अलग से कोई मूर्त्ति नहीं पायी जाती। देवपाल की मुंगेर-लिपि में रामेश्वर-स्थित राम का सेतु-वर्णन प्राप्त होता है। पाल-काल में ही संध्याकर नंदी एवं अभिनंद ने रामचरित नामक ग्रंथ लिखे थे। इनमें राम को अवतार माना गया है। सेन-कालीन जयदेव ने कृष्ण के दशावतार में पौलत्स्य-विजेता राम की भी वंदना की है। रामायण को आधार मान कर १५ वीं शताब्दी के पूर्व तक जानकी-राघव, रामानंद, मारीच-वञ्चितक, केकयी-भरत, अयोध्या-भरत, कृत्यारावण, बालि-वध एवं राम-विक्रम नामक नाटकों का सृजन हुआ था। सागर नंदी के ग्रंथ 'नाटक-लक्षण रत्न-कोश' में इन नाटकों का उल्लेख हुआ है। ये नाटक प्राप्त नहीं हुए हैं, अतएव कहा नहीं जा सकता कि

१ रामानंद की हिन्दी रचनाएं लेख—डा. श्रीकृष्णलाल पृ० ४६।

२ बाङ्गाला साहित्येर इतिहास (१) सुकुमार सेन पृ० ६।

३ बाङ्गालीर इतिहास-नीहाररंजन राय—पृ० ६०१।

इनमें भक्तितत्त्व था या नहीं। पदचन्द्रिका (१४७१ ई०) नामक ग्रंथ में इस कोश का नाम आया है, जिससे ज्ञात होता है कि कोश का रचना-काल पन्द्रहवीं शताब्दी से पूर्व का है और नाटकों का इससे भी पूर्व हो सकता है।[1]

३—बंगाल की साधनाएं

बंगाली लेखक गर्व के साथ कहते हैं कि उनकी जाति प्राणधर्मी है, मनोधर्मी नहीं। बंगाली जाति में जीवन के प्रति विराग न होकर मोह है। नियम-संयम के बंधनों की उपेक्षा कर इस जाति के प्राण मानवता की पुकार के लिए सदैव आतुर रहते हैं। फलतः बंगाल में जो भी संस्कृति आयी, घुल-मिल गयी। समस्त-भारत ही समन्वय के लिए विख्यात है, किंतु यह समन्वय बंगाल में अधिक देखा जाता है। बंगीय-संस्कृति की समता वहां के भूमि-कणों से ही सकती है। शत-शत सह नदी-नदों को कुक्षिगत करती हुई पावन-भागीरथी बंगाल में जाकर स्वयं शतधा विभक्त हो जाती है। बंगाल की ये असंख्य धाराएं सागर से समालिंगित होने के पूर्व ही अपनी समस्त सम्पत्ति शिथिल-भाव से परित्यक्त करने लग जाती हैं। गंगा अपनी सहायक नदियों की असंख्य भुजाओं से हिमालय, विंध्याचल, राजगिरि आदि पर्वत एवं भारत के एक बड़े भूभाग के रज-कणों को अपने में खींच-समेट समाहित करती हुई निरंतर वंग-भूमि का विस्तार कर रही है। यदि एक मुट्ठी धूल उठा कर उन कणों का परीक्षण कर हम ज्ञात करना चाहें कि इनमें से कौन कण बेतवा द्वारा लाया हुआ बुंदेलखंड का है और कौन ब्रह्मपुत्र द्वारा लाया हुआ हिमप्रदेश का, तो हमारा यह कार्य दुःसाध्य ही होगा।

इसी प्रकार संस्कृतियों के संगम-बंगाल—की चिंता-धाराओं का पर्यालोचन भी दुष्कर है। नद-नदी, दलदल, मच्छर एवं दुर्गम वनों से पूरित बंगाल की अर्ध-सभ्य जातियों के कुछ अपने भी देवता थे। बौद्धों एवं जैनों के प्रभाव से इनकी धर्म-साधनाओं में परिवर्त्तन हुआ होगा। फिर पहुँचा ब्राह्मण्य-धर्म। ब्राह्मण्य-धर्म जहां गया, उसने अपनी शुचिता, संयम एवं शुद्धाचार से अपने चतुर्दिक बिखरी साधनाओं का समुन्नयन किया। तंत्रों का प्रभाव भारत के बंगाल प्रांत में अधिक था। अतएव लौकिक, बौद्ध, जैन, तांत्रिक, ब्राह्मण्य एवं परवर्त्तीकाल में मुसलमान धर्म-साधना आदि से प्रभावित बंगाल में भिन्न-भिन्न प्रकार के देवी-देवता प्रचलित हो गये हैं। इनका मूलस्त्रोत खोजना कठिन है। बंगाल के एक सर्वमान्य एवं बहुधा-पूजित एवं मध्यकालीन साहित्य के आधार-स्तंभ 'धर्म देवता' के संबंध में ही लोगों की जो धारणाएँ[2] हैं, उससे ही पता चल सकता है कि इस प्रकार की खोज कितनी श्रम-साध्य है।

मनसा, चंडी, चड़क, षष्ठी, सत्यनारायण, श्मशानचारी-शिव, पर्ण-शवरी, जांगुली आदि देवी-देवताओं का मूल खोजना कठिन है। हो सकता है कि ये सब देवता पौराणिक हों, और बंगाल के साधारण जनों ने इन्हें अपने मनोभावों के रूप में अवनत कर लिया हो।

१ बाङ्गाला साहित्येर इतिहास (१) सुकुमार सेन पृ० २१।

२ धर्मठाकुर विषयक धारणाओं पर आगे विचार होगा।

यह भी हो सकता है कि ये आदि-वासी देवता रहे हों और ब्राह्मण्य-धर्म में स्वीकृत एवं मान्य कर लिये गये हों।

आर्य एवं अनार्य देवताओं में अंतर फिर भी स्पष्ट हो जाता है। आर्य-देवता सुन्दर, उदार, परोपकारी, एवं भक्तवत्सल दिखलायी पड़ते हैं, उनके वेशादि में भी सुरुचि है। इसके विपरीत 'अनार्य देवता क्रूर, अथवा-निष्ठुर, ईर्ष्या एवं प्रतिहिंसा-परायण हैं एवं पूजा प्राप्त करने के लिए जघन्य-कार्य में तत्पर रहते हैं[1]। मनसा का उदाहरण ही इसके लिए पर्याप्त है। अनार्य देवताओं की वेश-भूषा एवं रुचि भी अनार्य आदिवासियों के अनुकूल है। नीचे लौकिक देवताओं के वर्णन से यह और भी स्पष्ट हो जायगा।

अ—लौकिक उपासनाएँ—

अन्य स्थानों के आदिवासियों के समान बंगाल के भी आदिवासी अनेक प्रकार के पशु, पक्षी, पत्थर एवं विभिन्न रोगों एवं आपत्तियों में देवत्व आरोपित कर उनकी पूजा करते आये हैं। अभी भी तुलसी, सेंहुड़ और वट की पूजा होती रहती है। कई ऐसी उपासनाएं हैं जिनमें वृक्षों की डाल मंगायी जाती है। विशेष-विशेष जंतुओं की पूजा भी इसलिए की जाती थी कि उन्हें विशेष-विशेष देवताओं का अनुग्रह प्राप्त रहता था। किसी समय सारे बंगाल में अरण्यदेवी-मंगलचंडी, व्याघ्रदेवता-दक्षिणराय, कुंभीरदेवता-कालूराय, विड़ालदेवता-षष्ठी एवं हंसदेवता-सुवचनी की पूजा होती थी।[2] बंगाल में बाघ का उत्पात अधिक रहने के कारण दक्षिणराय की पूजा ने विशेष स्थान प्राप्त किया था। इससे भी अधिक प्रभाव बढ़ा मनसादेवी का जो कि सांपों की देवी थी। दलदल-भूमि होने के कारण सांपों का आधिक्य रहता है, अतएव मनसा एवं जांगुली देवी के रूप में नाग-देवता भी मान्य हो गये। आगे आर्य-प्रभाव बढ़ने पर पशु-पक्षी कई आर्य-देवताओं के वाहन-रूप में स्वीकार कर लिये गये।

बंगाली गाँवों में जनावास से दूर खुले आकाश के नीचे अथवा किसी पेड़ की छाया में थान अथवा स्थान होता है। इस प्रकार के थानों का ज्ञान हिन्दी-भाषी उत्तर-भारत की जनता भी रखती है। हिन्दी-भाषी ग्रामों में भी इन थानों पर प्रायः लाल रंग के झंडे और घंटे लगे दिखायी देंगे। इनके आगे पशु-पक्षी की बलि दी जाती है और मान्यताएं की जाती हैं। इन्हें ग्राम के अन्दर स्थान नहीं मिलता। कृत्तिवास के समय में भी ग्राम-देवताओं के कई नाम थे और कई रूप। कहीं इन्हें काली, कहीं भैरवी, कहीं वनदुर्गा अथवा चंडी आदि कहते थे। आर्य-संस्कृति इन्हें श्रद्धा की दृष्टि से नहीं देखती थी। शीतला, मनसा, दुर्गा, षष्ठी, नाना-प्रकार की चंडी, नरमुंड-मालिनी एवं श्मशान-चारी-काली, श्मशानचारी-शिव, पर्णशवरी, जांगुली आदि अनेक देवी-देवता ब्राह्मण्य एवं बौद्ध-धर्म में स्वीकृत हो गये हैं।[3] बंगाल की व्रत-कथाएं बहुत

१ बाङ्गाला साहित्येर इतिहास (१) सुकुमार सेन पृ० ६३।

२ बाङ्गाला साहित्येर इतिहास (१) सुकुमार सेन–पृ० ६३।

३ बाङ्गालीर इतिहास–नीहार रंजन राय-पृ० ५७६।

प्राचीन मानी जाती हैं, इनमें थूया, भादाली, धाताकाता आदि अनेक देवताओं का वर्णन है, ये सभी ग्राम-देवता थे और जनता इनकी पूजा किया करती थी।[1]

धर्म-ठाकुर—

प्राचीन बंगला-साहित्यधारा का मूल-उत्स धर्म-ठाकुर की कहानी है। इनके नाम पर अनेक पुराण, मंगल एवं छड़ा गान लिखे गये हैं।[2] बंगाल के सभी लौकिक-देवता धर्म-ठाकुर से संबंधित हैं। ये आदि-देव निरंजन हैं, मनसा इनकी पुत्री बना दी गयीं और चंडी इनकी पत्नी। वासली, मनसा, पंडासुर, लौहजंघ, डामर तथा पाटनियों के देवता (साजि) आदि सभी देवता धर्मठाकुर का आश्रय कर पूजा भाग लेते हैं।[3] कृषि एवं शिल्प से संबंधित सभी कार्यों में भी इनकी पूजा मान्य थी। किन्तु आज तक यह निर्विवाद रूप से निर्णीत न हो सका कि इनका मूल-रूप क्या था।

इन्हें शून्य-निरंजन कहे जाने के कारण हरिप्रसाद शास्त्री और दीनेशचन्द्र सेन इन्हें बौद्धों के शून्यवाद से संबंधित मानते हैं।[4]

कूर्म एवं पादुका इनके चिह्न होने के कारण तथा इनकी उपासना का प्रचार डोम, कपाली एवं हाड़ी जाति में अधिक होने के कारण नीहाररंजन राय आदि इन्हें आदिवासी अनार्य-देवता मानते हैं।[5] इनके थान निर्जन पेड़ के नीचे और कभी-कभी फूस की झोंपड़ी एवं मंदिर में होते हैं। पुजारी डोम-जातीय होते हैं जो ताँबे का यज्ञोपवीत धारण करते हैं तथा पंडित अथवा देवांशी उपाधि धारण करते हैं।[6] सुनीतिकुमार चटर्जी धर्म-ठाकुर के धर्म शब्द को संस्कृत का न मान कर इसकी व्युत्पत्ति आस्ट्रो-एशियाटिक भाषा के दुल या दुली से मानते हैं, जिसका अर्थ कछुवा होता है।[7] इसीलिए आज भी इनका प्रतीक कछुवा है। इस मत के विद्वानों का अनुमान है कि ये आदिवासियों के ग्रामदेवता थे किंतु पालों के समय बौद्धों के प्रभाव बढ़ने पर ये बौद्ध-धर्म में रंग गये।

सुकुमार सेन धर्म-देवता की जड़ वैदिक-साहित्य में खोजते हैं। धर्म-पुराण एवं ऋग्वेद में सृष्टि-तत्त्व की कहानी एक प्रकार की है। धर्म-देवता एवं वैदिक सूर्य-देवता दोनों का प्रतीक कूर्म है-(स यत् कूर्म्मो नाम-श० ब्रा०) अतएव धर्म ठाकुर प्रधानतः सूर्य-देवता है। उनके साथ अन्य देवताओं का मिलन हो गया।

ये वस्तुतः अनार्य देवता ही रहे होंगे। अनार्यों में इनका प्रभाव इतना अधिक बढ़ा कि जो भी नई साधना आयी उसे ही इनके साथ समझौता करना पड़ा। लौकिक देव-देवियों

१ वङ्ग भाषाओ साहित्य-दीनेशचंद्र सेन-पृ० ४२।
२ निम्न श्रेणी के लोगों में पूजित इस आंचलिक देवता पर साहित्य-रचना कृत्तिवास के बाद की शताब्दियों में हुई, किन्तु उनके समय में इनकी पूजा का प्रचार था।
३ बाङ्गाला साहित्येर इतिहास (१) सुकुमार सेन—पृ० ५०१।
४ वङ्ग भाषा ओ साहित्य—दीनेशचंद्र सेन—पृ० ३०।
५ बाङ्गालीर इतिहास-नीहार रंजनराय—पृ० ५८५।
६ बांग्ला साहित्येर रूप-रेखा—गोपाल हाल्दार—पृ० १२५।
७ मध्यकालीन धर्म-साधना—हजारीप्रसाद द्विवेदी—पृ० ८०।

के साथ सम्बन्ध स्थापित कर तथा बुद्ध से अभिन्न होने पर ये इतने अधिक शक्ति संपन्न हो गये कि ब्राह्मणों को भी इन्हें सूर्य, विष्णु, शिव आदि रूपों में स्वीकार करना पड़ा। इन्हें राढ़-देश में कूर्म एवं कल्कि का अवतार मानकर भी पूजा जाता है। इनके एक पूजा-अनुष्ठान में लोग घट की स्थापना कर संकल्प करते थे। इसी के नाम पर बंगाल में आज भी 'धर्मघट' शब्द हड़ताल के लिये प्रयुक्त होता है।[1]

लौकिक स्त्री-देवता—

बंगाल में कई प्रकार की चंडी की पूजा होती है। गाँवों में प्राय: चंडी-मंडप मिल जायंगे। चंडी शिवपत्नी पार्वती से अभिन्न हो गयी हैं। गोपाल हाल्दार इन्हें उरांव नामक शिकारियों की चांडीदेवी बतलाते हैं।[2] उच्च स्तर के लोगों में इनकी पूजा मान्य नहीं थीं, स्त्रियाँ ही अधिक पूजती होंगीं। स्त्री-देवताओं में पर्णशवरी, मनसा और जांगुली का विशेष महत्त्व है, इनमें भी मनसा का।

मनसा—

बंगाली साहित्य एवं समाज में मनसा को समादृत स्थान मिला है। समस्त पृथ्वी पर नागों की पूजा होती रही है, मनसा भी सर्प-देवी हैं। इनकी प्राचीन मूर्त्तियों के साथ सांप भी हैं। आजकल एवं मध्य-काल में घट अथवा पट पर अंकित सर्पधारिणी मनसा की पूजा देखी जाती है। ब्राह्मणों ने इन्हें समुन्नत करने की चेष्टा की तथा इन्हें हंसवाहिनी एवं पुस्तक तथा अमृत कुंभधारिणी सरस्वती का रूप दिया है। पुराण में उनकी स्तुति इस प्रकार है:—

श्वेत चंपक वर्णाभांरत्नभूषण भूषिताम्।
वह्निशुद्धांशुकाधानां नागयज्ञोपवीतिनीम् ।।२।। अ०४८ स्कंध ९
श्रीमद्देवी-भागवत-पुराण

इनका लौकिक-रूप सुन्दर नहीं है। ये एक आंख से कानी एवं कुरूप हैं।[3] इन्हें बलात् पूजा ग्रहण करने की बड़ी रुचि है। चांद सौदागर के कई पुत्रों की केवल इसलिए हत्या की कि वह इनकी पूजा नहीं करता था। ये इतनी लालायित हैं कि उससे कहती हैं कि वह केवल पुष्पांजलि दे दे, इतने से ही वे संतुष्ट हो जायँगी। चांद सौदागर पूजा करने को बाध्य भी हुआ, तब भी इनमें इतना आत्मबल नहीं जान पड़ता कि उसके समक्ष पूजा-मंडप में अवतीर्ण हों। उसके हाथ की लाठी देखकर इन्हें भय लगता है। मनसा के साथ भी कई देवियों का एकीकरण हुआ। बौद्धों की तरिता[4] इनके साथ मिल गयीं। एक और सर्प-देवी जांगुली के साथ इनका मिलन हुआ। जांगुली-देवी बौद्धों की बज्रेश्वरी—तारा तथा विष-देवी भी मानी जाती हैं। ये शुक्लवर्णा, चतुर्भुजा, जटामुकुटिनी, शुक्लोत्तरीया सितरत्नालंकारवती, शुक्ल-सर्प-भूषिता हैं।[5] जांगुली का अर्थ ही विषविद्या हो गया है और

---

१ बाङ्गला साहित्येर रूपरेखा-गोपाल हाल्दार—पृ० १२५।
२ बाङ्गला साहित्येर इतिहास (१) सुकुमार सेन पृ० ४९२—९३।
३ बाङ्गला साहित्येर इतिहास (१) सुकुमार सेन—पृ० ११२।
४ बेंगाली लिटरेचर जे० सी० घोष—पृ० ३२।
५ बाङ्गला साहित्येर इतिहास (१) सुकुमार सेन—पृ० ११२।

इस विद्या में निपुण व्यक्तियों को जांगुलिक कहते हैं। धर्मठाकुर के समान ही मनसा पर भी खूब मंगल और विजय काव्य लिखे गये हैं। मध्ययुग में इन्होंने भी प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया था।

मध्ययुग का बंगाल अनेक प्रकार के कुसंस्कार एवं अंध-विश्वासों से जकड़ा हुआ था। उपास्य, उपासक एवं उपासना-पद्धति तीनों में अनार्य-तत्त्वों का समावेश था। चड़क-पूजा में उपासक अपने अंगों को अनेक प्रकार के कष्ट देते थे, संभवतः नरबलि भी होती थी। चड़कपूजा का दृश्य यहाँ दुर्गा के जवारे (यवांकुर) उत्सव के दिन देखने को मिल जाता है।

आर्य किंतु अब्राह्मण्य-धर्म—

बंगाल में सर्व-प्रथम जैन एवं बौद्ध-धर्म का प्रसार और प्रचार हुआ था। अतएव वहाँ बहुत दिनों तक ब्राह्मण्य-धर्म की जड़ें न जम सकी थीं। ब्राह्मण्य-धर्म का प्रचार हो जाने पर भी वहाँ के लोग शुद्ध वैदिक-क्रियाओं से अनभिज्ञ रहते थे। जैन-धर्म बहुत दिनों तक प्रभावशाली न रह सका; किंतु राजाश्रय पाकर बौद्ध-धर्म समस्त भारत के समान बंगाल में भी खूब पनप उठा। परंतु बंगाल की विशेषता यह रही कि जिस समय शंकराचार्य आदि आचार्यों के प्रयत्न से आर्यावर्त में बौद्ध-धर्म का मूलोच्छेदन हो रहा था, वह पाल-वंश के संरक्षण में नये-नये रूप धारण कर रहा था।

बंगाल में बौद्ध-धर्म के अनेक रूप—हीनयान, महायान, मंत्रयान, वज्रयान, सहजयान एवं कालचक्रयान देखने में आते हैं। ब्राह्मण्यधर्म के प्रभाव के कारण, अथवा उसकी प्रतिस्पर्धा में अपने को जीवित रखने की चेष्टा में बौद्ध-धर्म के महायान-संप्रदाय का जन्म हुआ था। महायान में हिन्दुओं के अवतार-वाद और भक्ति को स्थान तो मिला ही, साथ ही पाली के स्थान पर संस्कृत-भाषा को महत्त्व दिया गया।

महायान के विवर्त्तन का कारण था उसमें तांत्रिक साधना का प्रवेश। आठवीं-नवीं शताब्दी में तिब्बत, नेपाल और भूटान प्रभृति हिमालय-क्रोड़-स्थित देशों से परिचय होने पर व्यवसाय एवं साधनादि का पारस्परिक विनिमय तीव्रगत से प्रारंभ हुआ। संभवतः तंत्रों का प्रभाव इन्हीं की देन हो, अथवा बंगाल-स्थित आदिवासियों में किसी रूप में साधना प्रचलित रही हो तथा बौद्ध एवं ब्राह्मण्य-धर्मों में अपने अधिकाधिक प्रसार की प्रतिस्पर्धा में इन आदिम-जातियों को आकृष्ट करने के लिए उनकी साधनाओं को गृहीत किया गया हो। इस काल में तांत्रिक-प्रभाव ब्राह्मण्य-अब्राह्मण्य सभी धर्मों पर एक साथ पड़ रहा था। फल यह हुआ कि एक ओर मंत्र-तंत्र-प्रधान मंत्रयान चल पड़ा और दूसरी ओर गुह्य-साधनाओं को मान्यता देता हुआ वज्रयान।

वज्रयान एवं सहजयान का प्रचार बिहार, आसाम बंगाल की ओर अधिक था। दोनों में हठयोग के कायासाधन को भी स्थान मिला था। महायान के शून्यता और करुणा को प्रज्ञा और उपाय नाम दिये गये और इन दोनों की मिलनावस्था को युगनद्ध की दशा बताया[1] तथा इसे ही महा सुख माना गया। हो सकता है कि वज्रयानियों के गुह्य-सिद्धांतों

१ उत्तर -भारत की संत-परंपरा-पशुराम चतु, पृ० ३४।

का वह अर्थ न हो जोकि बाह्यतः प्रकाशित होता है, किन्तु यह तो स्पष्ट ही है कि वज्रयान की साधना गर्हित हो गयी थी। वज्रयान के समय तक बौद्धधर्म का कुछ प्रभाव रहा भी था किन्तु सहजयान से वह भी न रह गया। सहजयान में ८४ सिद्ध माने गये हैं और इन्होंने बौद्धधर्म, जैनधर्म एवं ब्राह्मण्यधर्म की समान निंदा की है। ये बाह्याचार नहीं मानते थे, कायासाधन पर जोर देते थे। इनका समय १० वीं से १२ वीं शताब्दी तक रहा। इनका महत्त्व अवश्य है क्योंकि इन्होंने वैष्णव, नाथ एवं बाउल संप्रदायों को प्रभावित किया है।

शिष्य के ग्रहण के पूर्व उसकी परीक्षा ली जाती थी। शिष्यों को डोम्बी, नटी, रजकी, चंडाली और ब्राह्मणी नामक पांच कुलों में विभाजित कर गुरु यह देखता था कि शिष्य में इनमें से कौन सी शक्ति विद्यमान है, तथा वह इनमें से किस कुल में आता है। फिर गुरु शिष्य में उसी शक्ति का उद्बोधन करता था।[1] सहजियाधर्म से ही आगे सहजिया वैष्णव-धर्म विकसित हुआ। चंडीदास इसी संप्रदाय में आते है, जिनका संबंध रामी रजकी से बताया जाता है। कृत्तिवास के जन्म के बहुत पहले बौद्धधर्म के सभी नये-रूपों का ह्रास हो चुका था। वे अधिकाधिक तांत्रिक होते गये। ब्राह्मण्य-धर्म प्रबल-वेग से बढ़ रहा था, उसमें भी तांत्रिक स्पर्श आगया था। फल यह हुआ सहजयान तांत्रिक वैष्णव, शैव एवं शक्ति संप्रदायों में समा गया।

बौद्धधर्म एवं शैवधर्म के श्रेष्ठ-उपकरणों के मिलन से नाथपंथ का जन्म हुआ। ये ब्राह्मण्यधर्म की वर्ण-व्यवस्था नहीं मानते थे। इनकी भी साधना गुह्य थी, किन्तु ये ऊर्ध्वरेता होकर ही षट्-चक्र-भेदन करने का उपदेश देते थे, ये निरीश्वर-वादी न होकर शैव थे। किसी समय बंगाल में गोरक्ष-विजय एवं रानी मयनामती से संबंधित कहानियों का प्रचार था, जिनमें मत्स्येन्द्रनाथ एवं हाड़िपा आदि सिद्धों का नाम आया है, जिससे पता चलता है कि नाथ-संप्रदाय सहजयान का ही विवर्त्तन था। तांत्रिक ब्राह्मण्यधर्म के प्रसार के समय नाथ-पंथ टिक न सका। यह केवल नीच-जातियों में ही सीमित रह गया, जिन्हें आज हम जुगी (युगी) कहते हैं तथा जिनका व्यवसाय कपड़ा बुनना है।

ब्राह्मण्य-धर्म—

बंगाल की ब्राह्मण्य-साधनाओं में सर्व-प्रथम शैवभक्ति का प्रचार हुआ। सभी ब्राह्मण्य एवं अब्राह्मण्य धर्मों ने शिव को महत्ता प्रदान की है। धर्म-मंगल, मनसा-मंगल, गोरक्ष-विजय आदि अनेक सांप्रदायिक रचनाओं में शिव का आदर के साथ वर्णन है। बंगाल की जनता ने शिव के पौराणिक रूप को कृत्तिवास के पूर्व तक स्वीकार नहीं किया था। शंकर-पार्वती साधारण कृषक पति-पत्नी के रूप में चित्रित हुए हैं। अनेक छड़ा-गीतों में उन्हें धान की खेती करते, जोंकें मारते, मच्छर नष्ट करते तथा अन्य कई कृषि-संबंधी अनुष्ठान करते हुए दिखाया गया है। उनमें और पत्नी में इनके भंगेड़ी और निखट्टू होने के कारण झड़प होती रहती है। शंकर के रूप में बंगालियों ने अपने ही कृषि-जीवन को प्रतिबिंबित किया है। शंकर न तो धर्म-ठाकुर के समान अपने भक्तों की रक्षा करते-फिरते थे और न मनसा के समान अपने

१ कल्चुरल हेरिटेज ऑफ इंडिया (वौल्यूम १) प्रबोधचन्द्र बागची-पृ० ३१२।

विरोधियों को दंडित करते थे, अतएव बंगाली जनता न उनसे भय करती थी और न कुछ प्राप्त करने की आशा रखती थी। मनसा ने अपनी पूजा करवाने के लिए बड़े कठोर एवं अमानुषिक दंड दिये और अंत तक ये वीर शिवोपासक अपनी आन पर डटे रहे, किंतु शंकर उनकी ओर से एकदम निश्चेष्ट रहे। फलतः लोकरुचि मनसादि की ओर उन्मुख होती गयी। मुसलमानों की प्रबल टक्कर के समय शंकर की यह निश्चेष्टता कार्योपयोगी सिद्ध न हुई। शरणागत-वत्सल भगवान की शरण इस समय श्रेय थी, अतएव शाक्त एवं वैष्णव-धर्म विशेष रूप से पुष्ट हुए।[1]

शक्ति-पूजा के तीन प्रधान केन्द्रों में एक केन्द्र कामाख्या है। आज भी यहाँ कौलमत का प्राधान्य है। यह प्रदेश तिब्बत के निकट होने के कारण तंत्रों से अधिक प्रभावित रहा। वैसे तो समस्त ब्राह्मण्य एवं अब्राह्मण्य धर्म ही तंत्र-प्रभावित थे किंतु शक्ति-धर्म पर तंत्रों का इतना प्रभाव पड़ा कि लोगों को शाक्त-धर्म एवं तंत्र के एकार्थक होने का भ्रम होने लगा। शाक्तधर्म के दो संप्रदायों कौलाचार एवं समयाचार में प्रथम का ही प्रभाव बंगाल में अधिक था। कौलाचार के भी दो भेद हैं। पूर्व-कौल श्रीचक्र-स्थित योनि के चित्र की पूजा करते हैं, किंतु उत्तर-कौल सुन्दरी तरुणी की योनि की प्रत्यक्ष पूजा करते हैं। कौलों के वामाचार के कारण ही तंत्रों का दुर्नाम हुआ। इनके समान बज्र-यानियों में भी चक्र-पूजा पायी जाती है। ब्राह्मण्य-धर्म के विधि-निषेधों एवं मर्यादाओं से विवश लोगों ने वासनातुष्टि का एक मार्ग निकाल लिया। चक्र-पूजा में धर्म आदि का भेद त्याग कर नारी, मदिरा एवं मांस का मुक्त-सेवन सुलभ था। कुलार्णव-तंत्र में मद्य-मांसादि के सेवन की निंदा है। कौल-मार्ग को कृपाण की धारा के समान कहा गया है।[2] नग्न-नारी को भगवती मानकर पूजा करना तथा पंच-मकारों का निर्विकार चित्त से सेवन करना सहज न था। सभी की यह सामर्थ्य न थी। या तो तिब्बत से प्रभावित होने के कारण तंत्रों में ये गर्हित प्रथाएँ थीं हीं और उन्हें कुलार्णव तंत्रादि ग्रंथों के रचयिताओं ने परिष्कृत करना चाहा; अथवा वैदिक-धर्म की प्रतिद्वंद्विता में समाज को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए चमत्कारिक-कथन के रूप में इन्होंने पंचमकारों आदि का विधान किया, जिसका अभीष्ट-अर्थ कुछ और था, किन्तु सामान्य उपासकों ने उसका सीधा अर्थ ही लगा कर ऐसा वामाचार किया कि शाक्त-धर्म की ओर से ब्राह्मण-आचार्य नाक भौं सिकोड़ने लगे।

शाक्त-धर्म में बलि का भी विधान था। कामाख्या के मंदिर में दोपहर के समय बकरे का बलिदान होता है, पहले नर-बलि भी होती थी।[3] कालिका-पुराण में सवर्ण-जातियों को बलि करने का निषेध है। डाकू तथा कई अरण्य-वासी असभ्य-जातियों में शक्ति-पूजा शताब्दियों से चली आ रही है। शक्ति-पूजा के इन अनार्य-तत्त्वों में तिब्बत के तांत्रिक-प्रभाव एवं असभ्य-जातियों की गर्हित एवं क्रूर उपासनाओं का सम्मिलन हुआ है।

---

१ वङ्ग भाषा ओ साहित्य-दीनेशचंद्र सेन—पृ० ६४।

२ कुलार्णव-तंत्र, २–११७–८ और २–११२।

३ हिंदुइज्म एंड बुद्धिज्म (जिल्द २) चार्ल्स इलियट—पृ० २८६।

कृत्तिवास के आगे पीछे ही शाक्त-धर्म का संबंध ब्राह्मण्य-पौराणिक धर्म से हुआ और कृत्तिवास के पश्चात् ही संभवतः इस साधना का वह रूप निर्मित हुआ जो आज पर्यन्त देखने में आता है।

(आ) राम के चरित्र का महत्त्व—

आर्यों का चरित्र शुद्ध, सरल, संयमित एवं नियम-शासित था, उनका प्रत्येक कार्य एक मर्यादा में बँधा था। उनका धार्मिक एवं सामाजिक जीवन परस्पर संबंधित एवं उच्च-धरातल पर अधिष्ठित था। आर्य-प्रभावित क्षेत्र से दूर रहने के कारण बंगाल अपनी ही विकट-साधनाओं के जंजाल में उलझा था। बंगाल की भूमि एवं जलवायु तक पहुँचते-पहुँचते आर्य-संस्कृति विकृत हो जाती थी। बार-बार ब्राह्मण बुलाये जाते थे, बार-बार वैदिक-क्रियाओं का लोप होता था और समाज पुनः अपने संयम-शिथिल पथ पर चल पड़ता था।

सामाजिक-चरित्र के उत्थान में धर्म का प्रमुख स्थान रहा है। वैदिक कर्मकांड के प्रतिक्रियास्वरूप बौद्ध-धर्म का जन्म हुआ था, वह भी एक प्रकार का सामाजिक-सुधार था। लोक के नैतिक-चरित्र के उन्नयन के लिए उच्चकोटि के चरित्र की आवश्यकता रहती है, चाहे वह धर्म के माध्यम से ईश्वर बन कर आए अथवा काव्य एवं राजनीति का नायक बन कर। आर्य ब्राह्मण्यधर्मों में शैव एवं शाक्त धर्मों का प्रसार हुआ था। बंगाल के शिव वहाँ के समाज के दीपक न होकर दर्पण थे। उनका चरित्र बंगाली किसान जैसा ही मानवोचित एवं दुर्बल था। वे भंगेड़ी, निखट्टू और कामुक थे। अपनी ही पुत्री मनसा को देखकर वे स्खलित होने लग गये। एक कविता में पार्वती अनुयोग करती हैं कि वे नित्य रात को शंकर के बाघंबर को अपनी साड़ी से बाँध कर सोती हैं, किंतु सो जाने पर शंकर चुपके भाग कर कुचनी नारी (कोच-नारी=वेश्या) के पास जा धमकते हैं।[१] इन भोला-शंकर में समाज ने अपनी झलक भले ही देखी हो, भले ही उनके प्रतीक से कृषक-जीवन-संबंधी अनेक अनुभवों का ज्ञान-लाभ किया हो, किंतु इनके द्वारा एक सुश्रृङ्खलित-मर्यादित समाज की स्थापना का आदर्श पूरा नहीं हो सकता था। शाक्त-धर्म एवं बौद्ध-धर्म के संप्रदायों को तांत्रिकों ने अत्यधिक विकृत एवं गर्हित कर दिया था। नरोत्तम-विलास के ७ वें अध्याय में वर्णन है कि तांत्रिक लोग नर-बलि देकर काली के सामने नंगी तलवारें लेकर तथा भयंकर रूप से उन्मत्त होकर नाचते थे। उस समय मंदिर के पास से निकलने वाले की कुशल न होती थी। ब्राह्मणों तक को पकड़ कर बलिदान कर दिया जाता था।[२]

बज्रयानियों की चरम विकृति का रूप नीलपट-दर्शनियों की साधना थी। स्त्री-पुरुष के नग्न-जोड़े एक नीले वस्त्र में लिपटे हुए घूमते थे। खुलकर खाने-पीने एवं भोग करने का इनका आदर्श था। हजारीप्रसाद द्विवेदी एवं राहुल सांकृत्यायन दोनों ने इनका

१ चैतन्य एण्ड हिज एज—दीनेशचंद्र सेन—पृ० ६।
२ चैतन्य एण्ड हिज एज—दीनेशचन्द्र सेन—पृ० ११।

वर्णन किया है।[1] १०-११ वीं शताब्दी में संभवतः इसी मत के नीलवस्त्र-धारी भिक्षु-लोग तिब्बत में घूम-घूम कर वहाँ के नर-नारियों की मति-गति परिवर्त्तित कर रहे थे। ये बौद्ध-तांत्रिक थे, तथा नारी-पूजक थे। वंग-देश में इन्होंने विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। पूर्व-वंग में वे योगिनी, वज्रयोगिनी आदि उपाधि धारण कर प्रचार कर रहे थे। इन्हें दोग्रासिनी नाम से पुकारा जाता था। कृत्तिवास के कुछ पूर्व उत्पन्न चंडीदास ने अपने पदों में इनका उल्लेख किया है।[2] इनको किशोरी-भाजक भी कहा जाता था।[3]

इन उपासनाओं एवं इनके उपास्य-उपासकों में सामाजिक-चरित्र की उच्चता कहाँ थी! ये अपने संस्कार छिप कर करते थे। वैदिक एवं पौराणिक-धर्म प्रकाश्य रूप में जनता के सामने आते थे, उनका मार्ग सीधा था। यदि तांत्रिकों की भाषा सांकेतिक मानी जाय तथा इनकी उलट-बांसियों जैसी उक्ति का अर्थ अन्य कुछ निकाला जाय, तब भी ये उपासनाएँ कलंकमुक्त नहीं हो सकतीं, और न सामाजिक मान्यता का गौरव ही प्राप्त कर सकती हैं क्योंकि साधारण जनों के लिए इनकी उलट-बांसियाँ सीधा अर्थ ही रखती थीं; उनके लिए गोमांस गोमांस था, मदिरा मदिरा थी, अन्य कोई यौगिक क्रिया नहीं।

उधर लौकिक-साधनाओं में तो सामाजिक-आदर्श खोजना ही व्यर्थ है, क्योंकि ये देवता अर्ध-सभ्य अथवा बर्बर-जाति के मस्तिष्क से प्रसूत थे। इन जातियों के भय, प्रति-हिंसा, ईर्ष्या आदि मनोभावों के प्रतिबिंब ही लौकिक देव थे। धर्मठाकुर की उपासना में तांत्रिकों जैसी यौन-शिथिलता अथवा अन्य लौकिक-देवताओं जैसी ईर्ष्या-भावना नहीं थी, किंतु ये थे बड़े अवसरवादी देवता। एक ओर ये बुद्ध, सूर्य, विष्णु, शंकर आदि आर्य-देवों से तादाम्य करते हैं, तो दूसरी ओर मुसलमानों के आने पर माथे पर काली टोपी लगाकर तीर-कमानधारी यवन देवता हो जाते हैं। यही नहीं अंग्रेजों के आने पर वे सौदागर-वेश-धारी अंग्रेज-शक्ति के प्रतीक हो गये।

वैसे अन्य देवताओं की अपेक्षा इनका चरित्र ऊँचा था। इसी कारण अनेक ब्राह्मणों और कायस्थों ने इन पर अनेक काव्य-ग्रंथ लिखे हैं। पौराणिक-धर्म की समता में इनका स्थान फिर भी निम्न रहा। धर्म-ठाकुर एवं मनसा की पूजा आदि अनुष्ठान कराने वालों को प्रचुर अर्थ-लाभ होता था।[4] ब्राह्मण कष्ट उठाकर भी कट्टर बने रहे। धर्म पूजा करने वालों को जातिच्युत कर दिया जाता था। कृत्तिवास से बहुत समय पश्चात् उत्पन्न होने वाले कवि मानिकराम गांगुलि कहते हैं—'हे प्रभु (आपका) गान करने से जाति चली जायगी, शीघ्र ही दूर-दूर तक मेरा अपयश हो जायगा—

---

१ मध्यकालीन धर्मसाधना—हजारी प्रसाद द्विवेदी—पृ० १२–१३।

२ वंग भाषा ओ साहित्य—दीनेशचंद्र सेन—पृ० १२३–१२४।

३ चैतन्य एण्ड हिज एज—दीनेशचंद्र सेन—पृ० ३७३।

४ बेंगाली लिटरेचर—जे० सी० घोष पृ० १६-१७।

चैतन्य भागवत में भी कहा गया है—

देख एइ चण्डी विषहरिर पूजिया।
के ना धरे खाय परे सब नगरिया॥ १–१२–८७

जाति जाय तवे प्रभु यदि करि गान ।।
अचिरात् अख्याति हवेक देशे-देशे ।

इससे प्रकट होता है कि उच्च-जाति के लोग धर्मठाकुर पर केवल काव्य-रचना करते थे, न गीत गाते थे और न पूजा करते थे ।

मनसा आदि लौकिक स्त्री देवताओं में क्षुद्र नारी-स्वभाव के दर्शन होते हैं । इनका रूप और वेश भी विकट है । आर्यधर्म से प्रभावित पुरुष-वर्ग सदैव इनका विरोध करता रहा । धनपति ने देवी को लात से ठुकरा कर स्पष्ट कह दिया कि वह स्त्री-देवता की पूजा नहीं कर सकता ।[1] चांद-सौदागर अन्त तक मनसा से अकड़ा रहा ।

आर्य-देवताओं में भी अनार्य-तत्त्व समाविष्ट हो गये थे । एक विष्णु ही ऐसे देवता थे जो वैदिक थे तथा जिनमें विदेशी-तत्त्वों का समावेश न हो सका ; विष्णु के रूप में श्मशानचारी कापालिक-तुल्य शिव अथवा विकट-रूपा देवियों के समान अशोभनत्व न था । उनके अस्त्र-शस्त्र एवं शृङ्गार भी खप्पर, नरमुंड, रक्तरंजित खांड़ा आदि न होकर शंख-चक्र-गदा-पद्म एवं मणि-हार आदि थे । स्वभाव में स्वार्थलिप्सा-क्षुद्रता न होकर शरणागत-वत्सलता थी । वे दुष्ट-दलन एवं सज्जन-पालक थे । असुर एवं विपत्ति के विनाशक रूप में वे सामाजिक त्राता एवं भर्त्ता थे । वैष्णव-धर्म के प्रतिद्वंदी शैवधर्म को भी विष्णु का उदाहरण मानकर चलना पड़ा तथा विष्णु के अनुकूल ही अपने चरित्र का समुन्नयन करना पड़ा[2] ।

बंगाल में विष्णु के कृष्ण-अवतार का प्रचार अधिक हुआ । इस प्रदेश का सबसे बड़ा आंदोलन जिसने कि बंगलाभाषी-क्षेत्र के बिखरे समाज को भक्ति से आप्लावित कर एक सूत्र में बाँध दिया, कृष्णभक्ति-आंदोलन था । बंगाल के इतिहास में यह आन्दोलन विशेष-स्थान रखता है । हिन्दी का भक्ति-काव्य भी इस आन्दोलन से अछूता न रह सका । किंतु इस आन्दोलन के जन्मदाता महाप्रभु चैतन्य का जन्म कृत्तिवास के पश्चात् हुआ था । कृत्तिवास के समय तक वैष्णव-भक्ति कृष्णभक्ति के रूप में थी । यह कृष्णभक्ति शुद्ध आर्य ढंग की न थी, इस पर सहजिया प्रभाव था । चंडीदास जैसे महान् साधक भी रामा रजकी को मुद्रा बना कर साधना करते थे । चंडीदास उसे वेदमाता गायत्री तक कहते थे । यह बात अवश्य थी कि सहजिया-वैष्णव-संप्रदाय अपने पूर्ववर्त्ती एवं सम-सामयिक तांत्रिक-बौद्ध साधनाओं की प्रतिक्रिया में सुधार स्वरूप था, किंतु सामाजिक-आदर्श प्रस्तुत करने की क्षमता उसमें भी न थी । इस प्रकार की सहजिया-वैष्णव-भक्ति में भी गुह्य-साधना एवं राधातत्त्व का समावेश था । गोपियों के पीन-पयोधर-मर्दन करने वाले तथा नितंबिनि-राधा के लिए सचकित-नेत्र पत्र-शय्या निर्माण करने वाले जयदेव के कृष्ण ही चंडीदास एवं विद्यापति के आदर्श थे । बंगाल के कई जिलों में आज भी अश्लील कृष्ण-धमाली गानों का प्रचार है । इन गीतों में जितना अधिक फूहड़पन होता है, जनता उतना ही अधिक इन्हें पसंद करती है ।[3]

१ स्त्री लिङ्ग देवता आमि पूजा नाहि करि—बांग्ला साहित्येर रूपरेखा–गोपाल हाल्दार–पृ० ११४ से ।
२ तुलनीय शैवधर्म—डा० यदुवंशी, पृ० ११५ ।
३ चैतन्य एण्ड हिज़ एज-सेन, पृ० ६ ।

सामाजिक दृष्टि से राम का चरित्र निष्कलंक था। वे ऐतिहासिक महापुरुष थे जिन्होंने कर्तव्य के आगे सदैव अपने क्षुद्र-स्वार्थों की बलि दी। समाज को संयमित एवं मर्यादित रखने के लिए ब्राह्मणों ने व्यवस्थाएँ बनायी थीं। राजा का कर्तव्य था कि वह समाज से उनका पालन कराए। राम ने आदर्श राजा बनकर प्रजा-पालन किया। अपने विशुद्ध त्याग-परायण चरित्र से उन्होंने न केवल समाज की सामूहिक उन्नति का आदर्श रखा, अपितु अपने स्नेह-शील-कर्त्तव्य परायण पारिवारिक-चरित्र द्वारा हिन्दुओं के एक-एक परिवार के लिए शाश्वत-प्रेरणा प्रदान की। आज घर-घर में राम परिवार के समस्त सम्बन्धों के आदर्श हो गये हैं। वे स्वयं महान् थे, जिनके अवतार स्वीकार किये गये वे विष्णु भी महान् थे। दैवी एवं मानवी गुणों के समन्वय इस विराट् पुरुष की टक्कर की कल्पना विश्व की अन्य जाति नहीं कर सकी।

राम के चरित्र में ऐसी कोई दुर्बलता न थी जो समाज को पतन की ओर ले जाती। उनका एक-पत्नी-व्रत आदर्श उच्छृङ्खलता दूर करने वाला था। सीता उनकी पत्नी थीं, उनका अस्तित्व ऐतिहासिक था। न वे परकीया थीं और न तांत्रिक साधना को सफल बनाने वाली देव-शक्ति अथवा मुद्रा। फलतः उनके नाम पर रागानुगा भक्ति भी न चल सकी। समस्त भारतीय-साधनों में इसी दृष्टि से राम की भक्ति का विशेष-महत्त्व है।

साधारण-समाज वेद-स्मृतियों के अतुल-भंडार से परिचित न हो पाता था। सभी साधारण-जनों से ऐसी आशा भी नहीं की जा सकती थी कि वह जीवन के मूल्यों का स्वयं निर्धारण करे। बंगाल के ही नहीं, समस्त देश की उपासनाओं के जंजाल में राम के सुदृढ़-चरित्र-सम्पन्न आदर्श की आवश्यकता थी। उनकी पूत-कथा एवं चरित्र से साधारण लोक ने भी श्रुति एवं स्मृतियों द्वारा निर्धारित जीवन-मूल्यों को समझा। जहाँ-जहाँ राम की कथा पहुँची, वहाँ तक का समाज एक-सभ्यता एवं एक-संस्कृति में ग्रथित हो गया।

राम की भक्ति में सात्विकता है। वे अनार्य देवताओं की भाँति बलात् अपनी पूजा नहीं कराते फिरते। अन्य देवों की उपासना के प्रति उनका विरोध भी नहीं है। शंकर की पूजा का स्वयं उन्होंने ही विधान किया। दूसरी ओर वे शंकर भोले के समान आवश्यकता से अधिक सरल एवं निष्क्रिय भी नहीं है। भक्त पर विपत्ति पड़ने पर वे उसका उद्धार करते हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि राम ने अपने सात्विक-चरित्र से भारतीय समाज एवं परिवारों को शुद्धाचार एवं मर्यादित-जीवन की शिक्षा दी है। विश्वमात्र के उपास्यदेवों एवं श्रद्धेय-जनों में उनका चरित्र महान् है। इनकी उपासना-भक्ति ने बंगाली समाज के जीवन में भी महान् विवर्त्तन कर दिया है।

इस प्रकार कृत्तिवास के पूर्व से ही जनता कई प्रकार की उपासनाओं से आक्रांत थी। साहित्य पर भी इनका प्रभाव था।[१] एक ओर मनसा और धर्मठाकुर पर लोक-काव्य

१ लौकिक देवताओं पर इतना अधिक लिखा गया है कि यदि प्राचीन बंगला साहित्य से इस साहित्य को निकाल दिया जाय तो शेष आधे से भी कम रह जायगा। —लेखक

लिखे जा रहे थे, दूसरी ओर बौद्धधर्म की अंतिम-परिणति सहजिया-वैष्णवधर्म भी कृष्ण को केन्द्रित कर धमाली-गीतों का प्रचार कर रहा था। शिव और शक्ति की उपासना आर्य-ढंग की न थी, शिवायनधारा के कृषक-शिव का उल्लेख हो चुका है। धर्म और साहित्य की इस स्थिति से आर्य-मर्यादाओं में पले विचारक संतुष्ट नहीं थे।

चैतन्य युग के पूर्व की धार्मिक-स्थित का वर्णन ऐतिहासिक-ग्रंथ चैतन्य-भागवत में हुआ है, जिसमें रचनाकार साधारण-जनता को मंगल-चंडी, विषहरी, बासुली आदि लौकिक-देवताओं की पूजा करता हुआ देख कर बड़ा दुःखी है। जनता मद्य-मांस, रात्रि-जागरण एवं नृत्य-गीत-वाद्य के कोलाहल द्वारा पूजा का विधान करती थी।[१] इस स्थिति से जनता का उद्धार करने के लिए चैतन्य का कृष्ण-भक्ति आंदोलन प्रारम्भ हुआ था।

चैतन्य के पूर्ववर्त्ती कृत्तिवास पंडित भी इन विकृत उपासनाओं से संतुष्ट नहीं होंगे। इसीलिए, जब कि उनके समय में लोग लौकिक-देवताओं के ऊपर पांचाली-काव्य लिख-लिख कर ख्याति और धन अर्जित कर रहे थे, उन्होंने मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान्‌ राम का आदर्श-चरित्र लेकर रामायण-महाकाव्य लिखा। चैतन्य का आंदोलन जन-आंदोलन था, उसका प्रभाव सशक्त एवं अन्य प्रकार का था। कृत्तिवास वह न कर सके और न ऐसा करना उनको अभिप्रेत था, किंतु रामकथा की रचना कर वे जनरुचि को परिष्कृत कर सके। उनकी रामायण-रचना के पश्चात्‌ विकृत-साधनाएं बंद नहीं हो गयीं, किंतु जनता रामायण के माध्यम से आर्यों द्वारा निर्धारित जीवन-मूल्यों से परिचय-लाभ करने लगी। कृत्तिवासी-रामायण के प्रभाव एवं जनता में उसके स्थान के सम्बन्ध में विचार करने पर उसका महत्त्व स्पष्ट हो जायगा।

---

१ धर्म कर्म लोक सबे एइ मात्र जाने।
मङ्गल चण्डीर गीत करे जागरणे॥ ६४
दम्भ करि विषहरि पूजे कोन जने।
पुत्तलि करये केहो दिया बहु धने॥ ६५
× × × ×
बासुली पूजे केहो नाना उपहारे।
मद्य-मांस दिया केहो यक्ष पूजा करे॥ ८७
निरवधि नृत्य गीत, वाद्य, कोलाहल।
ना शुने कृष्णेर नाम परम मंगल॥ ८८ (चैतन्य-भागवत आदि खं० अ० २)

इ० राम-भक्ति के विकास में कृत्तिवासी-रामायण का योग

कृत्तिवास के पूर्व का बंगाल राम से परिचित तो था, किन्तु भगवान् राम ने वहां की साधनाओं में महत्त्व नहीं प्राप्त किया था। चंडीदास की कविताओं से ज्ञात होता है कि उनके समय में कृष्णलीलाएं हुआ करती थीं।[1] विष्णु के अवतारों में कृष्ण अधिक लोकप्रिय हुए। संयम-शिथिल एवं तंत्र-प्रभावान्वित समाज के लिए राधाकृष्ण की उपासना मनोनुकूल थी।

ब्राह्मणों के मुख से पौराणिक कथाएं सुन कर साधारण-समाज रामकथा से परिचित होता रहता था। कृत्तिवास के पहले से ही पांचाली, छड़ा प्रभृति लोक-कथात्मक गीतों का प्रचार होता रहता था। परवर्त्तीकाल के धर्ममंगल के लाउसेन, चंडी-मंगल के कालकेतु एवं मनसामंगल के लखिन्दर-बेहुला की कथाओं का लोक-संस्कृति में अवश्य ही प्रचार रहा होगा। पांचाली गायक इनका गान किया करते होंगे। लोक-संस्कृति की इस धारा के अनुसार ही कृत्तिवास ने वाल्मीकि-रामायण पर आश्रित एक ऐसा पांचाली-काव्य लिखा जो बंगला-लेखकों एवं साधारण जन-समुदाय को एक सी प्रेरणा देता आया है।

कृत्तिवास का पदानुसरण करते हुए कई कवियों ने रामायण-काव्य लिखे। अधिकांश रामायणकारों ने अपनी रचनाओं में बंगला के आदि काव्य का नाम आदर के साथ लिया है।

कवि के जीवन-काल में तथा इससे पहले भी बंगाल में लोक-गीतों की नाना प्रकार की पद्धतियों का प्रचार था। भाषा-रामायण का संबल पाकर लोकगीतकारों की वन्या बंगाल में उमड़ पड़ी। रामायण की विषयवस्तु लेकर फुल आखड़ाई, हाफ आखड़ाई, उस्ताद-कवि, पांचाली, तर्ज्जा और झूमुर गायक आदि भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों ने बड़ी-बड़ी जनसभाओं में रंग जमा कर रामकथा का विस्तार किया।[2]

कृत्तिवास से प्रेरणा लेकर ही संभवतः बंगाल में रामलीला का प्रचार जोर पकड़ गया था। १५ वीं शताब्दी की समाप्ति एवं १६ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में रामलीला के प्रचार का ऐतिहासिक-प्रमाण चैतन्य भागवत है। चैतन्य के प्रिय शिष्य नित्यानन्द ने स्वयं अपनी बाल्यावस्था में राम एवं कृष्ण की लीलाओं में भाग लिया था। चैतन्य के पूर्व ही

१ चैतन्य एण्ड हिज एज—पृ० ३६।

२ पूर्णचन्द्र दे सम्पादित कृत्ति० रामा०, भूमिका—पृ० २६।

यात्राओं में राम-कथा का भी अभिनय होने लगा था।[1] इन रामलीलाओं पर उत्तर-भारत की रामलीला का प्रभाव न था। राम की कथा बंगालियों के तन-मन-प्राण में घुलमिल गयी। वे बड़ी रुचि के साथ रामलीला में भाग लेते थे। 'चैतन्यभागवत' के अनुसार दशरथ का अभिनय करने वाले एक ब्राह्मण ने राम के वनवास के दुःख से प्राण त्याग दिये थे।[2] चैतन्य के एक और भक्त मुरारी गुप्त संस्कृत के विद्वान् कवि थे। चैतन्य के नाते कृष्णभक्त होते हुए भी वे रामोपासक भी थे। राम पर लिखित उनकी संस्कृत-स्तुतियों एवं उनकी अगाध-भक्ति देख कर ही चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें जन्म-जन्म में रामदास होने का आशीर्वाद दिया था।[3] कहने का अभिप्राय यह है कि मुरारी गुप्त आदि ने कृत्तिवास के राम की ही भक्ति की होगी। मुरारी गुप्त संस्कृत के विद्वान् थे, उन्होंने ही सर्वप्रथम चैतन्य पर 'चतन्य चरितम्' ग्रंथ संस्कृत में लिखा था। बहुत संभव है कि वे वाल्मीकि के काव्य से ही प्रभावित रहे हों, किन्तु यह सर्वथा सत्य है कि रामभक्ति की प्रेरणा जाग्रत करने वाला कृत्तिवास का ही ग्रंथ था।

१६ वीं शताब्दी के अन्त तक रामायण-पांचाली का गान कीर्त्तन के ढंग से होता था। १७ वीं शताब्दी से इसमें कृष्णभक्ति का प्रभाव लक्षित होने लगा। कवि लोगों ने ब्रजबुलि-मिश्रित भाषा में पद लिखे हैं। लेखकों पर कृत्तिवास का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। रामदास नामक एक कवि ने स्वयं कविता लिख कर कृत्तिवास की भणिता दी है।

भनतहि कवि कीर्त्तिवास।
जानकी रमण चरणे आश॥ सुकुमार-इति० पृ० ४५४

पता नहीं ऐसे कितने रामदास, कविचन्द्र आदि लेखक अपनी रचनाओं के साथ रामायण में विलीन हो गये हैं। कृत्तिवासी-रामायण में वर्णित तरणी-सेन-का महीरावण-वध एवं लक्ष्मण-भोजन के सम्बन्ध में सुकुमार सेन का मत है कि ये प्रसंग भिन्न कवियों द्वारा रचित हैं। इन रचनाओं के अतिरिक्त अन्य कई प्रसंग कृत्तिवास के नाम से चल रहे हैं, जो निस्सन्देह उनके नहीं हैं।[4]

---

१ चैतन्य भागवत में नित्यानंद और उनकी शिशु-मण्डली द्वारा अभिनीत लीलाओं का विस्तृत वर्णन हुआ है। शक्ति-आहत लक्ष्मण का अभिनय करते-करते वे सच ही मूर्च्छित हो जाते थे। देखिए-आदि खण्ड, नवम अध्याय, छन्द ४५ से ८६ तक। नित्यानंद बड़े होने पर अयोध्या आये, वहां राम-जन्म-भूमि देख कर रो पड़े। जिस स्थान पर राम-गुह मिलन हुआ था, वहां तो वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

तवे गेलेन नित्यानन्द अयोध्यानगर।
राम जन्म भूमि देख कान्दिला विस्तर॥ १२२
तवे गेला गुहक-चण्डाल राज्य यथा।
महामूर्च्छा नित्यानन्द पाइलेन तथा॥ १२३ (चैतन्य भागवत-आदि खंड, अध्याय ६)

२ पूर्व्वे दशरथ-भावे एक नटवर।
'राम वनवासी' शुनि, एड़ेन कलेवर॥ चैतन्य भाग. १-६-६५

३ चैतन्य भागवत २-४-३४२

४ बाङ्गाला साहित्येर इतिहास (१) सुकुमार सेन--पृ० ६७७-७८

१६ वीं शताब्दी तक माधव कंदली एवं शंकर देव को छोड़ कर कृत्तिवास की टक्कर का कोई कवि नहीं हुआ, किन्तु इन रामायण लेखकों का क्षेत्र बंगाल के उत्तरी-पूर्वी भाग तक ही सीमित रहा, और अब तो ये असमिया साहित्य की निधि माने जाते हैं। १७ वीं—१८ वीं शताब्दी का राम-साहित्य संकीर्ण एवं सीमाबद्ध था। कृत्तिवास की जनप्रियता पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। १७ वीं शताब्दी के अद्‌भुदाचार्य की रामायण विशेष-ख्याति लाभ कर सकी। १८ वीं शताब्दी के प्रमुख रामायणकार यष्ठीवर सेन, उनके पुत्र गंगाधर सेन, कविचन्द्र चक्रवर्ती, शिवचन्द्र सेन और फकीर राम कविभूषण हैं। १८ वीं शताब्दी में ही, अपने को बुद्ध का अवतार मानने वाले श्री रामानंद घोष ने भी अपनी रामायण लिखी थी। इस शताब्दी में सम्पूर्ण रामायण-काव्य के अतिरिक्त खंड-राम-कथा को लेकर अनेक पुस्तकें लिखी गयीं। १६ वीं शताब्दी में राममोहन एव रघुनन्दन गोस्वामी ने भी रामायणें लिखीं। कृत्तिवास से प्रेरणा लेकर सम्पूर्ण अथवा खंड रामकथा लिखने वालों की संख्या शताधिक है। कृत्तिवास के पश्चात् १६ वीं शताब्दी के लगभग सभी कवियों ने अपनी रचनाओं के प्रारंभ में कृत्तिवास का नाम आदर से लिया है।[१] कृत्तिवास की दुहाई बहुतों ने दी है।[२] जैसे—

कृत्तिवास पंडित कवित्व मनोहर।
खुद्दूराम रचिल देवेर पाआ वर॥

अठारहवीं शताब्दी के जगतराम भी कृत्तिवास का नाम लेते हुए उन्हें 'शुद्ध हृदि' कहते हैं।[३] १६ वीं शताब्दी के राममोहन वन्द्योपाध्याय ने तुलसी एवं कृत्तिवास दोनों के चरणों में प्रणाम निवेदित किया है—

तुलसीदासेर पद करिया वन्दन।
प्रणमिया कृत्तिवास पण्डितेर पाय।
श्रीराम मोहन विप्र रचिल भाषाय॥[४]

१८–१६ वीं शताब्दी में भी रामलीला का प्रचार था। इस काल में रामयात्रा की ख्याति प्रेमचांद अधिकारी आनन्द अधिकारी आदि के हाथ में थी।[५] 'करुणानिधान विलास' का उदाहरण देते हुए श्री गोपाल हाल्दार ने भी सिद्ध किया है कि १८ वीं शताब्दी में रामायण-गान का खूब प्रचार था।[६] १८ वीं—१६ वीं शताब्दी में बंगला के रामायणकारों पर गोस्वामी तुलसीदास का प्रभाव पड़ने लगा था। उस समय भी ये लेखक

१ बेंगाली रामायन्स—दीनेशचंद्र सेन—पृ० १५३।
२ बाङ्गला साहित्येर इतिहास-सुकुमार सेन—पृ० ६७७।
३ पयार रचना कैल कृत्तिवास आदि।
तांरा से सकले हन अति शुद्ध हृदि॥
४ बेंगाली रामायन्स-पृ० १३७।
५ बेंगाली लिटरेचर इन नाइंटींथ सेंचुरी--पृ० ४५०—एस० के० दे।
६ वाङ्गालीर इतिहास-नीहाररंजन राय-पृ० २७६।

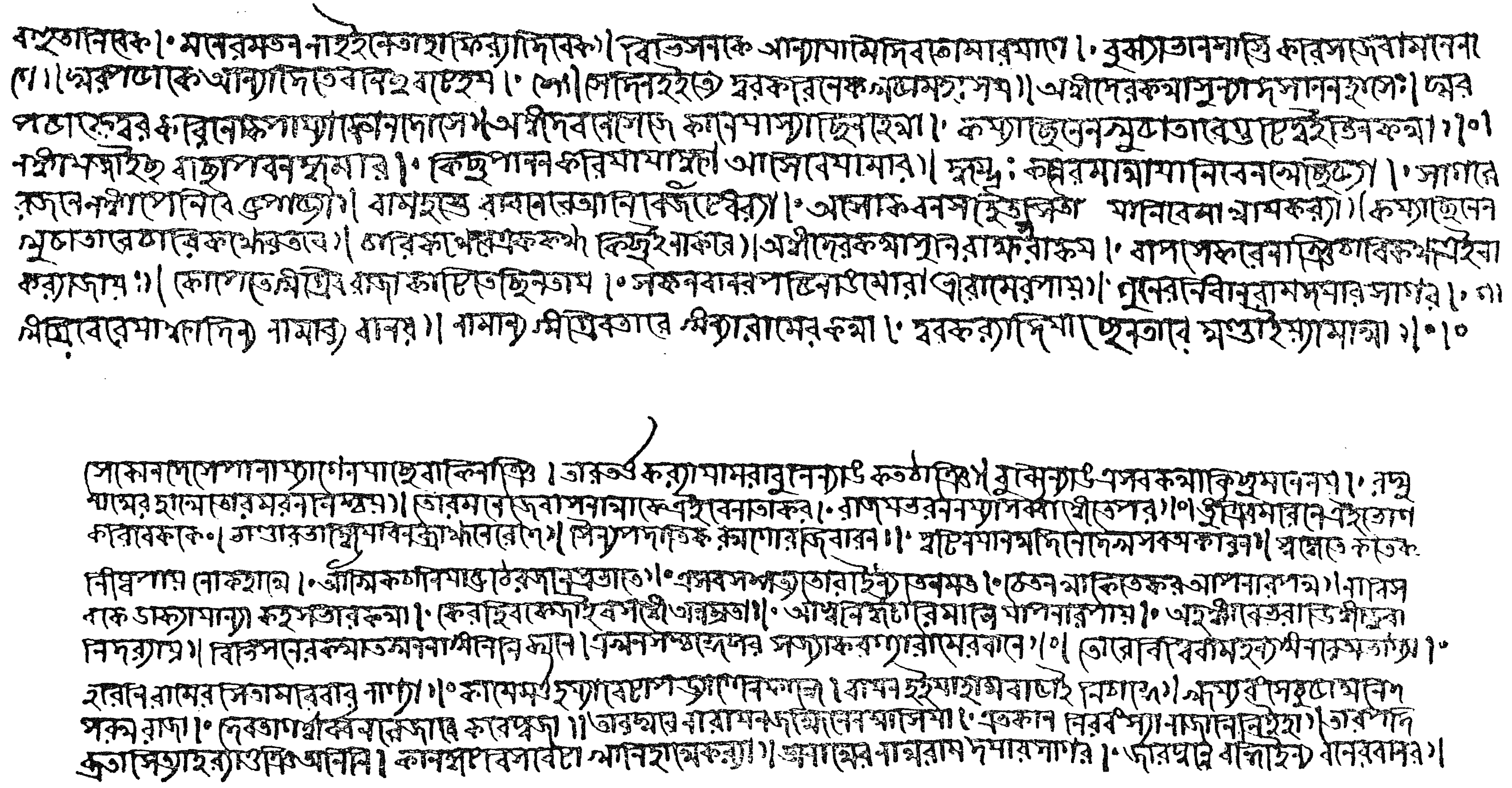

कलकत्ता विश्व-विद्यालय मे सुरक्षित कृत्तिवासी-रामायण के लंका-काण्ड की प्रतिलिपि (१८ वीं शता० का मध्यभाग) का एक चित्र - डा० शशिभूषण दासगुप्त के सौजन्य से

विशेष - कृत्तिवासी-रामायण की प्राचीन-पोथियाँ उपलब्ध नहीं हैं।

अपने आदि-प्रेरणादायक को नहीं भूले थे। जैसा कि राममोहन वंद्योपाध्याय के उपर्युक्त छंद से प्रतीत होता है।

कृत्तिवास द्वारा प्रचारित परंपरा अभी तक चली आयी है। स्वर्गीय श्री श्यामाप्रसाद मुखर्जी के पितामह श्री गंगाप्रसाद मुखोपाध्याय ने भी कोई राम-विषयक रचना की थी। माइकेल मधुसूदन दत्त को अपने काव्य 'मेघनाद-वध' के प्रेरणा-सूत्र इसी ग्रंथ से मिले थे। मधुसूदन का कथन था—'लार्ड मेकाले ने एक स्थान पर कहा है कि 'पैराडाइज़ लास्ट' और 'पैराडाइज़ रिगेंड' यदि नष्ट हो जायं तो कोई हानि नहीं होगी, क्योंकि मैंने ये दोनों पुस्तकें कंठस्थ कर ली हैं। मैं भी कह सकता हूँ कि यदि कृत्तिवासी रामायण और काशीदासी महाभारत नष्ट हो जायं तो कोई हानि नहीं है, क्योंकि मैंने इन दोनों पुस्तकों को कंठाग्र कर लिया है।'[1] ईसाई युवक होने के नाते वे हिन्दुत्व की रत्ती भर परवा नहीं करते थे किन्तु वे अपने पुरखों के महान् पौराणिक-साहित्य कृत्तिवासी-रामायण एवं काशीरामदास के महाभारत के बड़े भक्त थे।[2] उन्होंने कृत्तिवास पर एक चतुर्दशपदी कविता (सानेट) लिखी थी।[3]

सर गुरुदास वन्द्योपाध्याय बंगला-साहित्य की हँसी उड़ाते थे, वे भी कृत्तिवासी-रामायण पर मुग्ध हो गये। राजकृष्ण दास ने भी कृत्तिवास की स्तुति में कविता लिखी थी।

कृत्तिवास के भक्तों ने उनका स्मारक बनवाकर उचित आदर प्रदान किया है। उनका जन्मस्थल फुलिया गाँव पहले गंगा के किनारे था, अब वहाँ से गंगा दूर हट गयी हैं। किसी समय यह बहुत समृद्धशाली रहा होगा। इस ग्राम के पास ही चैतन्य के भक्त यवन हरिदास का साधना-पीठ है। शांडिल्य गोत्रोत्पन्न घटकराज देवीवर ठाकुर ने यहाँ पर ही फुलिया मेल-बंधन[4] किया था। फुलिया, बेलगेड़े, मालिपोता सिमला और नवला पाँच ग्रामों को मिलाकर फुलिया-समाज का गठन हुआ था। इस ग्राम के उजड़ जाने के पश्चात् कृत्तिवास का कोई विशेष निदर्शन प्राप्त न हो सका। किसान लोग इनके भग्नावशिष्ट स्थान के पास आदर की भावना के कारण हल भी न चलाते थे; फलतः इस स्थान पर घोर जंगल उग आया और यहाँ सर्प तथा जंगली जानवर घूमने लगे। कृत्तिवास अपने घर से थोड़ी ही दूर एक स्थान पर बैठ कर कविता-रचना करते थे, इसी स्थान पर दोलमंच बनाया गया है। कवि के जन्म-गृह का अनुमान कर नदीया के भूतपूर्व डिस्ट्रिक्ट-मैजिस्ट्रेट एवं कलेक्टर श्री सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय तथा रानाघाट के भूतपूर्व डिप्टी ऑफिसर नीरद कृष्ण राय ने स्तम्भ बनवाया था। इसके ऊपर लिखा है—

"महाकवि कृत्तिवासेर
आविर्भाव—१४४० खृष्टाब्द माघ मास
श्री पञ्चमी, रविवार।"

---

१ पूर्णचन्द (कृत्ति० रामा० की भूमिका) पृ० ५०।

२ बेंगाली लिटरेचर—घोष, पृ० १४३।

३ देखिए-(चतुर्दश-पदी कवितावली)-माइकेल मधुसूदन दत्त।

४ गावों के आधार पर कुलों का संगठन।

श्रीयुत गिरिजानाथ मुखोपाध्याय की यह कविता भी उत्कीर्ण की गयी है—

हेथा द्विजोत्तम
आदि कवि बाङ्गलार, भाषा रामायणकार
कृत्तिवास लभिला जनम;
सुरभित सुकवित्वे, फुलियार पुण्य तीर्थे
हे पथिक, सम्भ्रमे प्रणाम।

जनता में समादर—

कृत्तिवासी-रामायण का प्रचार पांचाली-गायकों ने दूर-दूर तक किया। आसाम से लेकर उड़ीसा तक तथा चटगाँव से लेकर राजमहल तक के प्रदेश में इस बंगला-रामायण का पाठ होता था।[1] बंगाल के केवल दो ही ग्रंथ जातीय कहे जा सकते हैं, जिनमें प्रथम यही रामायण एवं द्वितीय काशी-रामदास कृत महाभारत है। किसी समय यह स्थिति थी कि वर्ण-मात्र से परिचित व्यक्ति भी बिना रामायण एवं महाभारत पढ़े रह नहीं सकता था। अपढ़ लोगों में भी इतना चाव था कि वे दूसरों से पढ़वा कर सुनते थे। जिस प्रकार उत्तर-भारत की जनता के लिए तुलसी के मानस ने मानसिक-खाद्य प्रस्तुत किया, उसी प्रकार बंगाल में उपर्युक्त-लेखकों ने बंगला-भाषी जनता का ज्ञान-वर्द्धन ही नहीं किया, अपितु उन्हें वैदिक-संस्कृति के उच्च-धरातल तक उन्नत भी किया।

आज भी वृक्षों की छाया में समवेत होकर कृषकगण परम रुचि के साथ रामकथा श्रवण करते हैं। आज भी स्वामी-पुत्र के मधुमय-संसार से घिरीं बंग-ललनाएं दोपहर के समय कार्य से निश्चित होकर रामायण-पाठ करती हैं। भोली निरक्षर वधुएँ भी सीता का वनवास सुन कर भाव-विभोर होकर रो पड़ती हैं। 'आज भी बंगाल की धूसर-वसना विधवाएँ एकादशी के अपराह्न में समवेत होकर किसी ललित-कंठ बालक द्वारा रामायण पढ़ा कर सुनती हैं, उनका उपवास-क्लिष्ट हृदय भक्ति-रस से उच्छलित हो उठता है'।[2]

लोगों का कहना है कि बंगाल या तो शाक्त है अथवा कृष्ण का उपासक। यह सर्वथा सत्य है। बंगाल के व्रत-त्यौहार आदि में शक्ति की उपासना का ही प्राधान्य है। चैतन्य के प्रभाव के कारण कृष्ण की विह्वल-भक्ति का स्रोत भी अभी तक सरस है, किन्तु इससे क्या ? सामूहिक अथवा व्यक्तिगत पूजा-अनुष्ठानों में पुष्पांजलियों का समर्पण अवश्य ही शक्ति के चरणों में होता है, किन्तु जो देव-पुरुष नित्य-नित्य उच्छ्वसित हृदय एवं वाष्पाकुल नेत्रों की अश्रुअंजलियाँ स्वीकार करते रहते हैं वे भगवान् राम बंगाल के रक्त के बिंदु-बिंदु में समा गये हैं। जो सभ्यता एवं संस्कृति मानव को मानव बनना सिखाती है, जो उसके पारिवारिक एवं सामाजिक संबंधों में उच्चादर्शों का समावेश करती है, वह सभ्यता धन्य है, वह संस्कृति धन्य है। कृत्तिवास के राम बंगला-भाषी जनता को इस प्रकार की शिक्षा देने में सर्वथा समर्थ हुए हैं। नाना सभ्य-असभ्य जातियों के संस्कृत-कुसंस्कृत आचार-विचारों एवं अनोखी धर्मसाधनाओं से ग्रस्त बंगाल-देश का परिचय आर्य-शुद्धाचार

१ नलिनीकांत भट्टशाली—आदि-कांड की भूमिका।

२ श्री आशुतोष मुखोपाध्याय—सभापतीय भाषण (फुलियाग्राम)—पृ० २२, २३।

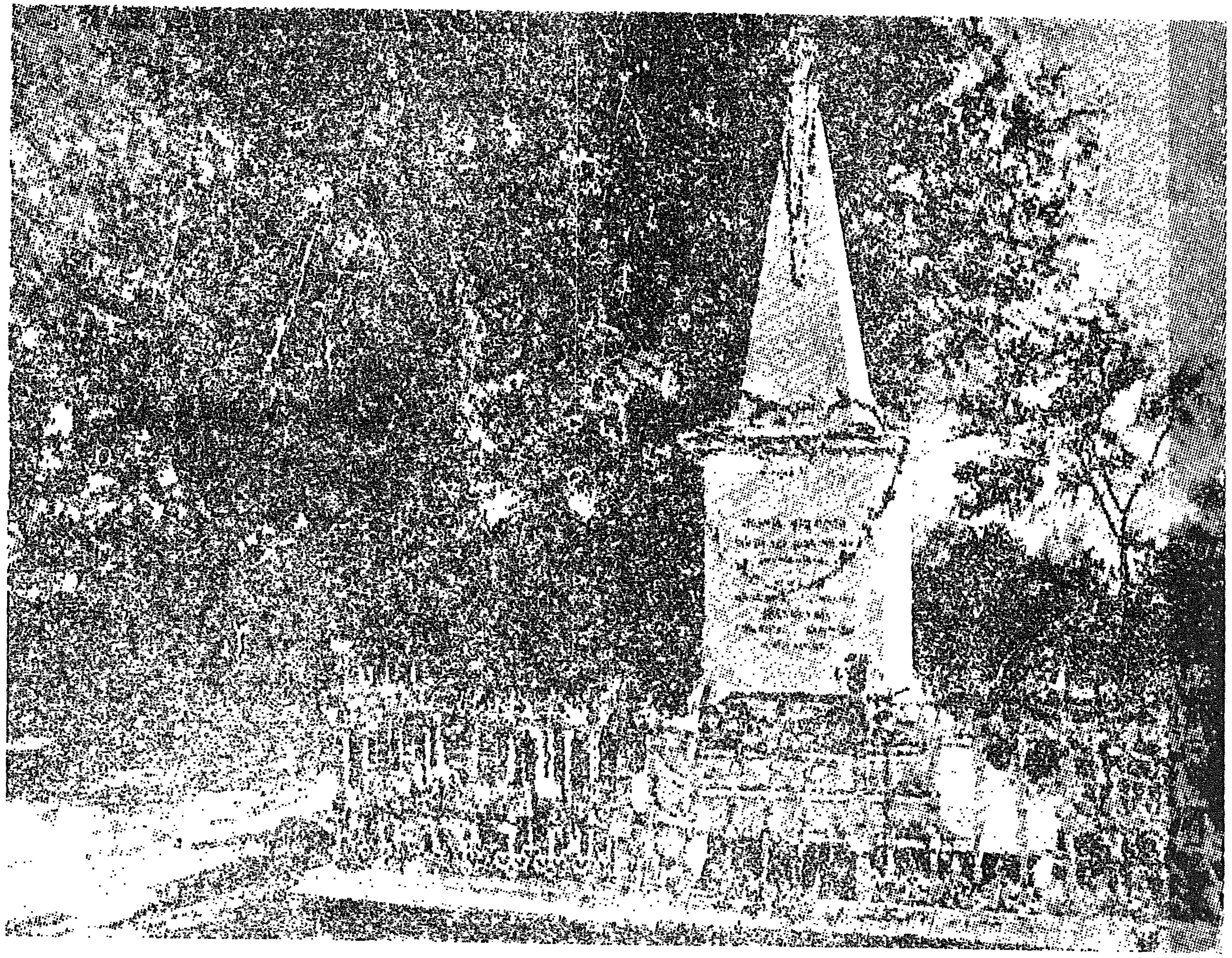

फुलिया ग्राम में कृत्तिवास का स्मारक

से कैसे होता ! संस्कृत-अध्येताओं की संख्या सीमित थी, समस्त साधारण-जन से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह श्रुति-स्मृति, पुराण-महाकाव्यादि शासित-प्रभावित संस्कृति का अवलंबन कर सकेगा। बड़े-बड़े बंगाली स्मृतिकार जो न कर सके, वह कृत्तिवासी-रामायण अथवा काशीरामदासी-महाभारत ने किया। स्मृतिकारों अथवा वैदिक-धर्म प्रभावित राजाओं ने समाज के परिष्कार के लिए कम प्रयास नहीं किया, किन्तु जन-जन के हृदय को आर्य-संस्कृति का संस्कार देकर उसे एक सूत्र में बाँधने का कार्य तो रामकथा ही कर सकी है। आशुतोष महाशय का कथन सत्य है कि 'कृत्तिवास बांगाली जाति के बड़ करिया गियाछेन।'[1] दीनेशचन्द्र सेन महाशय ने भी कहा है कि यदि चन्द्र सूर्य के समान बंगाल के कोने-कोने का अंधकार दूर करने वाले कृत्तिवास न होते तो विश्व के आदि-कवि वाल्मीकि बंगाली-जनता के लिए दुर्लभ आकाश-कुसुम ही रह जाते।'[2]

कृत्तिवास के नाम का बंगाली जनता आदर करती है। रानाघाट स्टेशन के पास फुलियाग्राम में कृत्तिवास के भग्न आवासस्थल के आस-पास इस समय अनेक पेड़-पौधे उग आये हैं। हिंदू की कौन कहे, मुसलमान किसान भी इस कवि का इतना समादर करते हैं कि उस भूमि के आस-पास की भूमि को उन्होंने आज-तक नहीं जोता।

---

१ कृत्तिवास बंगाली-जाति को उन्नत कर गये हैं। (सभापतीय-भाषण-फुलिया)

२ दीनेशचन्द्र सेन संपादित कृत्ति० रामा० की भूमिका।

४—रामभक्ति-शाखा में मानस का स्थान

जिस प्रकार बंगाल में उपासनाओं का जंजाल था, उसी प्रकार तुलसी के हिन्दी-भाषी क्षेत्र में भी। बौद्ध-सिद्धों की परम्परा सहजिया-सम्प्रदाय का रूप धारण करती हुई बंगाल में 'सहजिया-वैष्णव' रूप में परिणत होकर लुप्त हो गयी। केवल बाउलों के रूप में उनके कुछ भग्नावशेष रह गये। उत्तर-भारत में सिद्धों की परम्परा किसी न किसी रूप में जीवित रह कर कबीर जैसे निर्गुण-पन्थियों के रूप में अभिव्यक्त हुई। कबीर आदि निर्गुण-साधकों की महानता, निष्पक्षता एवं सत्यप्रियता निःसंदिग्ध रूप से स्तुत्य थी किन्तु उनका पथ खण्डन का था। वे केवल उस वर्ग का प्रतिनिधित्व कर सके जो सवर्ण-हिन्दुओं द्वारा उपेक्षित होकर भी मुस्लिम-धर्म स्वीकार नहीं करना चाहता था। निर्गुण-पन्थी साधक ऐसे उच्च-सिद्धान्त प्रस्तुत न कर सके जो विदेशी अन्यायों से उत्पन्न संकटकालीन-स्थिति में जनता को आश्वस्त कर सकते। प्रेम-मार्गी सूफ़ी कवियों का सिद्धान्त-प्रचार मधुर था। किन्तु जन्म से ही दार्शनिक कही जाने वाली हिन्दू जाति को ब्रह्मवाद के बासी-सिद्धान्त अच्छे न लगे होंगे। वह तो सूफी दर्शन की अपेक्षा सूफी-काव्य के राजकुमार एवं राजकुमारी की प्रणय-तड़पन में अधिक रुचि लेती होगी। यह प्रणय भी कभी-कभी नग्न-शृङ्गार से पूर्ण हो जाता था।

विकृत गुह्य-तान्त्रिक-साधनाएँ इस क्षेत्र में भी प्रचिलित थीं, किन्तु बंगाल जैसी नहीं। बंगाल में बौद्ध-धर्म एवं शाक्त-धर्म का आश्रय लेकर ही तंत्र-साधनाओं का विकास हुआ था। उत्तर-भारत में शाक्त-धर्म विशेष प्रतिपत्ति लाभ न कर सका और बौद्धधर्म तो बहुत पहले ही कुमारिल भट्ट एवं शंकराचार्य के प्रयत्नों से क्षीण हो गया था। सिद्धों की बहुत सी बातों को ग्रहण करते हुए भी उसकी निरीश्वरता के स्थान पर शिवोपासना एवं यौन-शैथिल्य के स्थान पर कठोर संयम को प्रधानता देकर नाथ-पन्थियों ने अपना प्रचार समस्त भारत में कर रखा था। मुसलमानों का प्रभुत्व पूर्णतः स्थापित हो जाने के उपरान्त वेद-विरोधी धाराएँ क्षीण होती गयीं, क्योंकि इनमें सामाजिकता की कमी थी।

तुलसी का पथ पहले से ही परिष्कृत था। उनके मानस लिखने के पूर्व ही दक्षिण से आयी सगुण-भक्ति के प्रवाह में सारा उत्तर-भारत आप्लावित हो उठा था। यह भक्ति मुसलमान-धर्म की प्रतिक्रिया न होकर वैदिक-धर्म की देश-काल-परिस्थिति अनुसार सहज परिणति थी। मुसलमानों के अत्याचारों से वह और भी वेग से पनप उठी। निर्गुण-पन्थी भी इससे कुछ न कुछ प्रभावित थे। तुलसी के समय तक निर्गुण ईश्वर के माध्यम से हिन्दू-मुस्लिम समन्वय की चेष्टा असफल हो गयी थी। अब तक की समस्त चिन्ता-धाराओं को क्षीण करता हुआ पौराणिक-धर्म पुनः जोर पकड़ने लगा। पौराणिकधर्म में वैष्णव-भक्ति और उसमें भी कृष्णभक्ति का प्रचार समस्त-भारत में हो रहा था।

हिन्दी-भाषी क्षेत्र पर भी गीत-गोविन्द की परम्परा का प्रभाव था। इस क्षेत्र के कृष्णभक्त कृष्ण के लोक-नायक रूप की अपेक्षा उनके लोकरंजक-रूप को अधिक महत्त्व देते

थे, तथा मानों कृष्णभक्ति के मधुर भुलावे में सन्तप्त जनता को आश्वस्त करने की चेष्टा कर रहे थे।

तुलसी निर्गुणपन्थियों के वैदिक-धर्म-खंडन से असन्तुष्ट थे। दम्भियों के अनेक पंथों पर भी उन्हें रोष था। कृष्ण-भक्त कवियों की रास-लीला-प्रियता के विषय में वे कुछ कहना नहीं चाहते थे। रामानन्द-सम्प्रदाय एवं अध्यात्म-रामायण के द्वारा उन्हें प्रेरणा मिली और वे राम के मर्यादावादी-रूप की ओर आकृष्ट होकर मानस का सृजन कर गये।

अपने काल की विकट परिस्थितियों को देखते हुए एक नयी सात्विक प्रेरणा देने के लिए कृत्तिवास ने रामायण की रचना की थी, अथवा यों ही राजा का आदेश पालन करने के लिए – कहा नहीं जा सकता; किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि बहुपन्थ एवं अन्ध-विश्वासों से आक्रान्त बङ्गाल में उनकी रामायण ने बड़ा कार्य किया। तुलसी ने यह कार्य बहुत सजग होकर किया। उनके सामने भाषा एवं छन्द की बाधा नहीं थी। प्रेम-मार्गीय कवि प्रबन्ध-काव्य की शैली खूब मांज गये थे। अन्य सुधार-सम्प्रदायों से भी उन्होंने लाभ उठाया। स्वयं अत्यधिक प्रतिभावान् थे। फलत: राम के शक्ति-शाली व्यक्तित्व-चित्रण में उन्हें जो सफलता मिली, वह कृत्तिवास को न मिल सकी। बंगाला के प्रथम रामभक्ति-काव्य के रचनाकार के नाते उन्हें बंगाल-साहित्य में निरन्तर आदर प्राप्त होता रहा; किन्तु वे तुलसी के समान अपने भाषा–भाषी क्षेत्र की सीमाएँ तोड़ कर प्रसिद्धि लाभ न कर सके।

जिस प्रकार कृत्तिवास को परवर्त्ती-रामायण लेखक गुरु मान कर चले, उसी प्रकार हिन्दी में भी तुलसी के प्रति आदर-भाव प्रकट करते हुए अनेक कवियों ने राम-काव्य लिखे। किन्तु दोनों साहित्यों में अन्तर यह रहा कि कृत्तिवास बंगला-साहित्य के आदि-कवि थे, उन्होंने बंगला-भाषा को संपन्न बनाने का प्रथम प्रयास किया था, उसका पूर्ण विकास उनके पश्चात् हुआ। अतएव उनके पश्चात् होने वाले अनेक रामायण लेखकों में दो एक उनके समकक्ष नहीं तो उनसे कुछ उन्नीस तो हो ही गये, परन्तु तुलसी का रामचरितमानस रामसाहित्य में वटावृक्ष के समान खड़ा है। अन्य रामायणें उसकी समानता में विकास न कर सकीं। तुलसी के पूर्व स्वयंभु ने 'पदुम चरिउ' नामक रामकाव्य अपभ्रंश-भाषा में लिखा था। प्रतीत होता है कि तुलसी ने यह ग्रंथ पढ़ा था। रामभक्ति का अभाव एवं प्राचीन भाषा होने के कारण इसके पीछे परम्परा न चल सकी। राम-काव्य के अन्य परवर्त्ती-कवियों ने तुलसी को ही अपना पथ-प्रदर्शक मानकर छन्द, भाषा, शैली आदि सभी दृष्टियों से उनका ही अनुसरण करते हुए अपने ग्रंथों की रचना की। केशवदास का दृष्टिकोण तुलसी से भिन्न था। उन्होंने संस्कृत के ग्रंथों का अनुसरण किया था। वे चमत्कारी अधिक रह गये और रामकथा के मार्मिक-स्थलों की परख न कर सके। रामशाखा के अन्य कवियों को भी तुलसी से टक्कर लेने का साहस न हुआ। उन्होंने संपूर्ण रामचरित-वर्णन करने की अपेक्षा फुटकर प्रसंगों पर लिखना अधिक उचित समझा। इन कवियों के विषय प्रधानत: राम-सीता की अष्टयाम लीलाएं, प्रेम, शृङ्गार, बारहमासा एवं रामभक्ति आदि थे। तुलसी ने राम की भक्ति का जो प्रचार किया, वह लगभग चार

शताब्दियां पार करता हुआ आज बीसवीं शताब्दी के कवियों को भी प्रभावित करता चला आ रहा है। श्री मैथिलीशरण गुप्त का साकेत इसका प्रमाण है, गुप्त जी ने राम को ब्रह्मरूप में ही स्वीकार किया है।

कुछ लेखकों ने रामभक्ति के मर्यादित-पथ को विकृत करने की भी चेष्टा की है। राम के सम्बन्ध में इस प्रकार की चेष्टा बंगाली-रामायणकारों ने भी नहीं की। हो सकता है कि तुलसी के विशाल-प्रभाव से अपनी पृथकता-द्योतन के लिए ही स्वसुखी एवं तत्सुखी शाखाओं का जन्म हुआ हो। वैसे इन पर राधाकृष्ण की माधुरी-भक्ति का प्रभाव अधिक है। एकपत्नीव्रतधारी महच्चरित्र राम इन शाखाओं के साहित्य में सखियों की चोलियां फाड़ते और नीवीबंध खींचते दिखाये गये हैं।[1] उनके भक्त स्त्री-वेश धारण कर उपासना करते हैं। संतोष यही है कि तुलसी द्वारा प्रचारित रामभक्ति के मर्यादित रूप का ऐसा विशद् प्रभाव है कि ये गर्हित एवं निंद्य उपासनाएं संकीर्ण-क्षेत्र तक ही सीमित रह कर लुप्तप्राय हो गयीं।

कृत्तिवासी-रामायण केवल बंगाल की वेद हो सकी, किन्तु तुलसी की रामायण ने भारत के बहुत बड़े भाग को प्रभावित किया। अहिंदी-भाषी जनता में भी संत तुलसीदास कम से कम नाम द्वारा परिचित हैं। केवल बंगाल में ही तुलसी के मानस के कई अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। १८ वीं —१६ वीं शताब्दी के बहुत से बंगाली रामायणकारों ने भी तुलसी से प्रेरणा ली है।

राममोहन वंद्योपाध्याय ने अपनी बंगला रामायण में तुलसीदास की पद-वंदना की है। इनके ऊपर तुलसी की रामभक्ति एवं उपदेशात्मक प्रकृति-वर्णन का प्रभाव निम्न पंक्तियों में स्पष्ट हो जायगा :—

> नद नदी अति वेगे समुद्रे मिशाय।
> जेमत रामेर अङ्गे जीव लय पाय॥
> अविरत वृष्टि ते पृथ्वीर ताप जाय।
> जेमत तापित रामनामे ते जुड़ाय।[2]

नद नदी अति वेग के साथ समुद्र में (इस प्रकार) मिल रहे हैं, जिस प्रकार कि राम के अंग में जीव लय पाते हैं। अविरत वृष्टि से पृथ्वी का ताप चला जाता है, जैसे कि संतप्त (व्यक्ति) राम-नाम से शांति पाता है (जुड़ाता हैं)।

वाल्मीकि-रामायण के पश्चात् राम-कथा साहित्य में मानस का ही प्रचार अधिक हुआ। मानस के अनुवाद अंग्रेजी, रूसी आदि कई पाश्चात्य भाषाओं में हो चुके हैं। कई भाषाओं के अनुवादकों ने तुलसी के चौपाई-दोहे छन्दों में ही अनुवाद किया है।

भारत की साधारण हिंदू-जनता वेद-शास्त्रादि का नाम-मात्र ही जानती है, वस्तुतः इस सम्बन्ध में उसका स्वार्जित ज्ञान कुछ नहीं होता। विभिन्न प्रान्तीय-भाषाओं में भी कुछ ऐसे धार्मिक-ग्रंथ हैं जो हिंदू-समाज की परम्परागत कड़ियों को जोड़े रहते हैं। उत्तर-

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास (शुक्ल जी) पृ० १८६ (अश्लील पदों के उदाहरण)
२ बेंगाली रामायन्स—दीनेशचन्द्र सेन—पृ० १४२ से।

भारत की साधारण-जनता को भी ज्ञान, विज्ञान, शास्त्र आदि का ज्ञान कराने वाला मानस है। घर-घर में इसकी प्रति मिल जायगी, कंठ-कंठ में इसकी चौपाई का वास है। तुलसी ने उत्तर-भारत को 'सियाराम मय' कर ही दिया। उन्होंने हिन्दी-भाषी क्षेत्र में प्रचलित सभी काव्य-पद्धतियों एवं लोक-गीतों में राम-कथा का समावेश कर रामभक्ति का प्रचार किया। उसी का फल है कि कोई व्यक्ति जंभाई लेगा तो राम कहेगा, शोक-सूचक ध्वनि करेगा तो 'राम राम' करेगा तथा अभिवादन में तो प्रायः 'जयराम जी की' प्रचलित ही है। मानस के कारण राम यहाँ के जीवन में घुल-मिल गये हैं। अपढ़ किसान जोकि वैज्ञानिक-आविष्कारों से इतना दूर है कि सम्भवतः उसने जीवन में ट्रेन भी न देखी हो तथा जिसे वर्णमाला के 'अ' तक का ज्ञान नहीं है—खेत जोतते समय घुमड़ते बादलों को देख कर कह उठता है—

घन घमंड नभ गरजत घोरा।
प्रिया हीन डरपत मन मोरा॥ ४–१३–१

अथवा प्रसंग आने पर दार्शनिक बन कह उठेगा—होइहि सोइ जो राम रचि राखा। (मानस १–५१–७)

मुसलमान एवं अंग्रेजों के शासनकाल में जब जनभाषा में अरबी, फ़ारसी और अंग्रेजी के शब्द बलात् प्रवेश कर रहे थे, मानस की चौपाइयों ने साधारण, निम्न एवं अपढ़ जनता की बोलचाल की भाषा में भी संस्कृत-शब्दों का प्रचार किया।

एक तो रामकथा स्वयं इतनी मार्मिक है कि प्रचार पा जाती है, दूसरे तुलसी ने उसे इस तन्मयता से वर्णित किया और ऐसी सरल-शैली में कि उसका महत्त्व चतुर्गुण हो गया। ऐसा कोई प्रसंग नहीं जिस पर कि विद्वान् अथवा निरक्षर व्यक्ति तुलसी की चौपाई का सूक्ति-रूप में प्रयोग न कर सकें।

उत्तर-भारत में रामभक्ति के प्रचार का प्रथम-श्रेय रामानन्द जी को है। इनके पहले केवल सवर्ण-हिन्दुओं को संन्यास लेने का अधिकार था, किन्तु रामानन्द ने वर्णमात्र के लिए रामभक्ति का मार्ग खोल दिया। फलतः संकट-कालीन-स्थिति में रामानन्द के वैरागी-सम्प्रदाय ने वर्ग-वर्ग में रामभक्ति का प्रचार कर समस्त-समाज को संगठित किया। हो सकता है कि समाज का निम्न-वर्ग उच्च वर्ग की उपेक्षा के कारण धर्मांतरण कर लेता अथवा कबीर-पंथ आदि का अनुसरण कर उच्च वर्ग के प्रति द्वेष प्रकट करता। किन्तु सभी वर्ग के लोग वैरागी होने लगे और अपने-अपने वर्ग में भी रामभक्ति का प्रचार कर स्वयं शक्ति लाभ कर समाज को सशक्त करने लगे। रामानन्द का प्रयास स्तुत्य था, किन्तु यदि उनके सम्प्रदाय को मानस का सम्बल न मिला होता तो सम्भवतः आज भी वह इस रूप में जीवित न होता। रामानन्द जी ने तो सम्प्रदाय का प्रवर्त्तन मात्र किया है। बहुत से वैरागी रामानन्द का नाम भी न जानते होंगे, किन्तु तुलसी एवं उनके मानस को वे कदापि नहीं भूल सकते।

रामभक्ति के प्रचार के लिए तुलसी ने स्वयं रामलीला का प्रचार किया था। आज भी काशी में उन्हीं स्थानों पर लीला चली आ रही है। कई छोटे-बड़े नगरों तथा गाँवों

तक में आश्विन-मास की प्रथमा से लेकर विजयादशमी तक रामलीलाएँ होती हैं। इस अवसर पर प्रायः अयोध्याकांड से आगे की कथा का अभिनय होता है। बसन्त-पंचमी के पाँच छः दिन पूर्व से 'धनुषयज्ञ' नामक अभिनय चलता है, जिसमें बालकांड तक की कथा अभिनीत होती है। बसंत-पंचमी के दिन धनुषभंग, रामसीता-विवाह एवं लक्ष्मण-परशुराम-संवाद होता है। तुलसी द्वारा प्रचलित अभिनयों का रूप चार-सौ वर्षों से ज्यों का त्यों चला आ रहा है। पात्रों के कथोपकथन प्रायः मानस के गेय छन्दों में होते हैं अथवा पहले समाजी लोग सुरताल सहित पद्यों का पाठ करते हैं, फिर पात्र उसका गद्यानुवाद करते हैं। सूच्य अथवा संवाद के अनुपयुक्त वर्णनात्मक-प्रसंगों का गायन जल्दी-जल्दी समाजी लोग वाद्य यंत्रों के साथ करते जाते हैं। एक अर्थ करने वाला भी रहता है जो सूच्य एवं अभिनेय कथावस्तु का संकेत करता जाता है। अर्थ करने वाला बड़ा चतुर और व्यवहार-कुशल होता है, वह पात्रों की दुर्बलता को भी ढक लेता है। कभी-कभी कोई पात्र जब लड़खड़ा जाता है, ये महाशय तुरन्त उसके स्थान पर संवाद बोल देते हैं कि 'अब लखनलाल ऐसा कहते भए'। लीलाओं के प्रभाव के कारण हिन्दी-भाषी क्षेत्र के बच्चे अपने शैशव-काल में ही राम की पारिवारिक-कथा से परिचय प्राप्त कर लेते हैं। विजयादशमी के पश्चात् प्रायः अनेक स्थानों पर छोटे-छोटे बच्चे तीर-कमान लिये उछलते दिखायी पड़ते हैं। वे बाकायदा रावण-वध करते हैं मार्मिक-प्रसंगों पर विलाप करते हैं तथा मानस की चौपाइयाँ गाकर पढ़ते हैं। गाँव के युवकों की कई महत्त्वाकांक्षाओं में एक आकांक्षा रामायण के अच्छे गायक होने की भी होती है। अनेक युवक हनुमान, अंगद, दशरथ आदि के सफल एवं ख्याति-प्राप्त अभिनेता बनने की भी अभिलाषा करते हैं।

तुलसी ने अपने इष्टदेव से भी बढ़कर उनके भक्त एवं सेवक हनुमान का प्रचार किया है। संध्या-समय मानस-पाठ करते समय हनुमान जी के लिये एक आसन की व्यवस्था की जाती है, और यह कल्पना की जाती है कि जहाँ-जहाँ रामकथा होती है, वहाँ हनुमान जी अवश्य उपस्थित रहते हैं। गाँवों में प्रायः हनुमान जी के छोटे-बड़े मन्दिर बने रहते है। अखाड़ों के एक कोने में मिट्टी का छोटा सा स्तूपाकार ढेर बना दिया जाता है, जिसे बली कहते हैं। मुसलमान उन्हें अली कहते हैं। मुसलमानों में मूर्त्ति-पूजा नहीं होती, अतएव वे अली नहीं हो सकते। मुसलमान-पहलवानों को भी प्रथानुसार इन्हें प्रणाम करना होता होगा, अतएव उन्हें बली से अली बना लिया।

तुलसी द्वारा प्रचारित रामभक्ति का महत्त्व इससे भी देखा जा सकता है कि इस विज्ञान एवं तर्क के युग में भी लोग मानस के अखंड-पाठ में विश्वास रखते हैं। साधारण जनता की बात जाने दीजिए, कालेज के सुशिक्षित लोग भी धार्मिक-दृष्टि से रामायण-पाठ करते हैं।

अध्याय ३

रामायणों में युगीन समाज और संस्कृति का चित्रण

१—राजनीतिक-परिस्थिति

२—धार्मिक-परिस्थिति

३—सामाजिक-परिस्थिति

१—राजनीतिक परिस्थिति

कृत्तिवास एवं तुलसीदास दोनों के ग्रंथों का उद्देश्य त्रेता अथवा प्रागैतिहासिक युग में अवतरित होने वाले राम की कथा कहना था। यह काल बहुत पीछे पड़ जाता है, अतएव प्रत्यक्षत: इन ग्रंथों में राजनीतिक परिस्थितियों के तत्कालीन चित्रण का अवसर नहीं था। कृत्तिवास के पश्चात् कई बंगला-कवियों ने १५–१६ वीं शताब्दी की परिस्थितियों का वर्णन किया है। कृत्तिवास एवं तुलसीदास के समय में भी हिंदू-मुस्लिम संस्कृतियों का संघात चल रहा था। प्रत्येक जाति की धर्म-संस्कृति में ऐतिहासिक एवं भौगोलिक परिस्थितियों के कारण कुछ विशेषताएँ होती हैं, तथा उन्हें ही श्रेष्ठ मानने का आग्रह भी होता है। हिंदू होने मात्र से कोई वस्तु श्रेष्ठ नहीं हो जाती एवं मुस्लिम होने से निष्कृष्ट नहीं। दोनों में ही अच्छाइयाँ और बुराइयाँ हैं। मुसलमान-योद्धा काफिरों के प्रति सदा के लिए अनुदार एवं असहिष्णु रहे हैं। जब तक काफिर इस्लाम की शरण में नहीं आता, वह दया का अधिकारी नहीं समझा गया। उधर हिंदू भी ऐसे विपरीत-आचरण वाले समाज को 'म्लेच्छ' विशेषण प्रदान करता रहा। मुसलमानों के यहाँ बस जाने तथा परस्पर घुल-मिल जाने पर भी दोनों समाजों की परस्पर घृणा-भावना ऊपर-ऊपर से ही भस्माच्छादित थी। दृष्टिकोणों में परिवर्त्तन नहीं हुआ था। मुसलमानों की कट्टरता के कारण ही श्री हबीब को लिखना पड़ा, 'इस्लाम के सबसे बड़े शत्रु उसी के मदांध अनुयायी थे।'[१] उन्होंने महमूद गजनवी के कृत्यों का सार बताया है—'आक्रमण, आग, वध, लूट, कैद और वापसी।'[२] यहाँ बसे हुए मुसलमानों ने भी वापसी को छोड़ अन्य सब कुछ किया।

मुसलमानों के अत्याचार अधिकतर, ब्राह्मणों पर होते थे।[३] हिंदू धर्म अथवा संस्कृति की छाप वाली वस्तुएँ भी उनकी विनाशक-नीति का शिकार होने से बच नहीं पाती थीं। हिंदू लोग पुराण-रामायण आदि में राक्षसी-कृत्यों का वर्णन पढ़ते आ रहे थे। राक्षस भी ऋषियों पर ही अधिक अत्याचार करते थे। ऋषियों के यज्ञ से देवता पुष्ट होते थे, इसलिए यज्ञ-विध्वंस भी किया जाता था। फलत: हिंदू-समाज ने यदि मुस्लिम-समाज एवं राक्षस-वर्ग में समानता देखी हो तो उसका दोष नहीं है।

---

१ Islam's worst enemies have been its own fanatical followers-Sultan Mahmud of Gaznin-M. Habib. 83.

२ 'They came, burnt, killed, captured and went away,' was a Persian's description of the Mongol's invasion of his country; it would not be inappropriate summary of Mahmud's achievement in India--Habib.81.

३ धरि आनए बांभन बड़ुआ। मथा चडावए गाइक चुड़ुआ।
फोट चाट जनउ तोड। उपर चढ़ावए चाह घोर ॥४४॥ —कीर्त्तिलता-विद्यापति
(ब्राह्मण के लड़के को पकड़ लाता है और उसके मत्थे पर गाय का बच्चा चढ़ाता है। मस्तक का टीका चाटता है। जनेऊ तोड़ देता है। और ऊपर घोड़ा चढ़ाना चाहता है।

यहाँ कृत्तिवास और तुलसी दोनों में समानता है। राक्षसों के अत्याचार का वर्णन करते समय वे मुसलमानों के कृत्यों का जैसे स्मरण करते थे। राक्षसों के अत्याचार की कल्पना का आधार भी मुसलमानों का नृशंस-व्यवहार हो गया।

कृत्तिवासी-रामायण में एक स्थल पर इस प्रकार का वर्णन है:—

"राक्षसों के सामंत चारों ओर घूम-घूम कर तथा आश्रम में प्रवेश कर अनेक उपद्रव करते हैं। यज्ञ आरंभ करने पर वे निकट आते हैं, यज्ञ नष्ट कर देते हैं। बेचारे ब्राह्मण डर कर भागते हैं। वे राक्षसों के डर से घरों में छिपे बैठे रहते हैं। राक्षस उनके फल फूल छीन लेते हैं और कलसी (आदि पूजा की सामग्री) नष्ट कर देते हैं।"[1]

तुलसीदास ने भी मुसलमानों और राक्षसों में साम्य देखा था। हिंदुओं की रणनीति नैतिक और सात्विक थी। युद्ध क्षेत्र के अतिरिक्त वे कहीं हिंसा नहीं करते थे। प्रजा के साथ वे अन्याय नहीं करते थे। मुसलमान-सैनिक विरोधी-सेना से टक्कर लेने के पूर्व ही निरीह प्रजाजनों का संहार कर डालते थे, उनकी संपत्ति लूट कर घरों में आग लगा देते थे। वेद, ब्राह्मण, गो आदि को भी ये पीड़ित करते थे। तुलसीदास ने स्पष्ट कह दिया है, ऐसे आचरण वाले सभी प्राणी निशाचर हैं:—

जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला।
सो सब करहिं बेद प्रतिकूला॥
जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं।
नगर गाउं पुर आगि लगावहिं॥
सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई।
देव बिप्र गुरु मान न कोई॥ मा० १–१८२–५, ६, ७।
× × × ×
तेहि बहु बिधि त्रासइ देस निकासइ जो कह बेद पुराणा। १–१८२-छंद।
× × × ×
बरनि न जाइ अनीति, घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति, तिन्ह के पापहिं कवनि मिति॥ मा० १–१८३।
× × × ×
जिन्ह के यह आचरन भवानी।
ते जानेहु निसिचर सब प्रानी॥ मा० १–१८३–३।

---

१ ताहार सामन्तगण चतुर्द्दिके भ्रमे।
कत उपद्रव करे प्रवेशि आश्रमे॥
यज्ञ आरम्भन मात्र आसिया निकटे।
यज्ञ नष्ट करे, द्विज पलाय सङ्कटे॥
राक्षसेर डरे लुकाइया घरे आसि।
फल फूल काड़ि खाय भाङ्गये कलसि॥ अरण्य०–पृ० १३२।

तुलसीदास ने ऐसे आचरण वाले सभी प्राणियों को निशाचर बताकर स्पष्ट संकेत कर दिया है। किंतु कृत्तिवास के उपर्युक्त-वर्णन में मुसलमानी अत्याचारों की झलक देखना कुछ विद्वज्जन के लिए मिथ्या एवं भ्रमात्मक हो सकता है। परन्तु, यदि हम राक्षसों की रीति-नीति और व्यवहार का अध्ययन करें तो हम कृत्तिवास के उद्देश्य से भली प्रकार परिचित हो जायंगे।

तस्लीम—

कृत्तिवासी-रामायण में वर्णित राज-व्यवहार में तस्लीम की झलक है। रावण की सभा में राजा के सामने तीन बार माथा झुका कर अभिवादन करने की प्रथा थी।

(१) तिन बार माथा नोङाय राज्य व्यवहारे-लंका० पृ० २८७।

(२) बापेर चरणे माथा नोङाय तिन बार—लंका० पृ० ३३१।

राम की राजसभा का राज-व्यवहार केवल एक बार माथा झुका कर करबद्ध-स्थिति में रह कर निवेदन करना था। रावण के दूत भी राम को राज-व्यवहार के अनुसार प्रणाम करते हैं—

(१) राज व्यवहारे कुक्कुर नोआय माथा।
जोड़ हाते स्तव करे बोले नीति कथा॥ उत्तर० ५३०।

(२) हेनकाले दुइ चर येये आगुसरे।
प्रणाम करिल सवे राज व्यवहारे॥ लंका० २६१।

तीन बार माथा झुकाकर प्रणाम करने की पद्धति में मुसलमानी प्रभाव है। न होता तो राम के दरबार में भी ऐसी ही पद्धति दिखायी जाती। बुग़राख़ां बंगाल का सूबेदार था। अपने पुत्र बादशाह कैकुबाद के सामने अपना मस्तक झुका कर उसे तीन बार पृथ्वी चूमने की रस्म अदा करनी पड़ी थी।[1] आइने अकबरी[2] में भी तस्लीम की पद्धति में तीन बार झुकने की प्रथा थी। पृथ्वीराज रासो[3] में भी तीन बार सलाम करने का वर्णन है।

---

1 Bughra Khan bowed his head to the earth and three times kissed the ground, as required by the ceremonial of the court. Tarikh-I-Firoz Shahi-Ziau-DDin-Barni- (History of India vol. 3—Elliot & Dawson)—131.

२ आइने अकबरी के अनुसार राज-अभिवादन तीन प्रकार से किया जाता था—

१—कूर्निश—दाहिनी हथेली को माथे पर रखकर सिर को आगे की ओर झुकाते थे।

२—तस्लीम—दाहिने हाथ के पृष्ठ-भाग को भूमि पर रखकर धीरे-धीरे उठाते थे, फिर शरीर के बिल्कुल सीधा हो जाने पर अपनी हथेली को सिर पर रखते थे। सम्राट् के सम्मुख उपस्थित होने पर, अवकाश लेने पर, अथवा मंसब, जागीर, खिलअत, हाथी या घोड़ा पाने पर तीन तस्लीम करने का नियम था; किन्तु अन्य सभी अवसरों पर केवल एक तस्लीम की जाती थी।

३—सिजदा—हिन्दुओं के साष्टांग प्रणाम के समान था—आइन-७४ आइने अकबरी ब्लाखमन।

३ पृथ्वीराज रासो में पृथ्वीराज शहाबुद्दीन को बन्दी बना लेता है। फिर शहाबुद्दीन से उसी की मुसलमानी पद्धति से अपने को तीन बार सलाम कराने के उपरान्त छोड़ देता है—किय सलाम तिय बार—२०९ सौवां समय।

सिरोपाव—

मुसलमान-शासक किसी पर प्रसन्न होने पर उसे सिर से पैर तक के पूरे वस्त्र पुरस्कार में देते थे। सूदन कवि रचित 'सुजान चरित' नामक काव्य ग्रंथ में छः स्थानों पर 'सिरोपाव' दिलाया गया है। देने वाले सभी मुसलमान शासक हैं।[1] 'सिरोपाव' शब्द फारसी का है। कृत्तिवासी-रामायण में मेघनाद विद्युज्जिह्व नामक भृत्य की सेवाओं से प्रसन्न होकर उसे 'शिरोपा' (सिरोपाव) प्रदान करता है।

शिरोपा विद्युत् जिह्व पाइल विस्तार। लंका०—पृ० ३६८।

दो संस्कृतियों के संघर्ष के समय परस्पर घृणा-भाव प्रदर्शित करना स्वाभाविक है। फिर भी मुसलमानों के रहन-सहन आदि की पद्धति हिन्दुओं को पसंद नहीं आ रही थी। मुसलमानों के प्रति हिन्दुओं की मनोवृत्ति एवं मुसलमानों के स्वभाव का परिचय विद्यापति की 'कीर्तिलता' से मिल जाता है।

सदाचारी एवं अधिकांशतः शाकाहारी हिन्दुओं का साबका एक विचित्र जाति से पड़ा था, 'जो स्वभाव से बड़े कठोर थे।[2] अबे बे बकते, शराब पीते और कलमा पढ़ते थे।[3] दुर्गम गाँवों में आग लगाते थे, स्त्री-बच्चों को मारते थे, उनकी आमदनी लूट थी।[4] बोली समझ में नहीं आती थी।[5] यदि कपूर के समान सुगंधित भोजन दिया जाय तो भी प्याज प्याज की रट लगाते थे।[6] छोटा भी तुर्क हिन्दुओं को धमकी देता था। तुर्कों को देखकर ऐसा लगता है मानों वे हिन्दुओं को निगल जायेंगे।[7]

अत्याचारी को राक्षस कहने की प्रवृत्ति भूषण की कविताओं में भी मिलती है। उन्होंने औरंगजेब को कुंभकर्ण का अवतार कहा है।[8]

---

१ सुजान चरित्र—सूदन कवि—पृ० ५९, ६४, १०६, १६४, १९१ और २१२।

२ जवन सभावहि निक्करुण। कीर्ति०—पृ० ७०

३ अबे बे भणन्ता सराबा पिबन्ता
कलीमा कहन्ता कलामे जीअन्ता। कीर्ति०—पृ० ४०।

४ दूर दुग्गम आगि जारथि,
नारि विभारिं वालक मारथि।
लूडि अरजन पेटे वए, कीर्ति०—पृ० ९२।

५ मत्त मगोल बोल णाहि बुज्झइ। कीर्ति०—पृ० ९०

६ जौ आनिअ आन कपूर सम तबहु पिआजु पिआजु पै। कीर्ति०—पृ० ४२।

७ छोटै ओ तुरुका भभकी मार
हिन्दुहि गाईओ गिलिए हल तुरूक देखि होउ भान।४४। कीर्ति० विद्या०।

८ कुंभकर्न औरंग को औनि अवतार लै कै,
मथुरा जराइकै दुहाई फेरी रब की।
खोदि डारे देवी देव-देवल अनेक सोई,
देखि निज पानिन तें छूटी माल सबकी॥२०॥ शिवा बावनी
भूषण ग्रंथावली—विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।

२—धार्मिक परिस्थिति

वाल्मीकि रामायण में कई स्थानों पर राम की तुलना इन्द्र के साथ की गयी है। जहाँ राम को विष्णु माना गया है, वे अंश प्रक्षिप्त कहे गये हैं। अतएव मूल-रामायण के रचनाकाल तक इन्द्र-देवता की ही प्रधानता रही होगी। वाल्मीकि की परिस्थितियों एवं भाषा रामायण-कारों की परिस्थिति में महान् अन्तर हो गया था। वह अनेक आर्य-अनार्य और वैदिक-अवैदिक साधनाएँ तथा अनेक विवर्त्तन एवं परिवर्त्तन देख चुकी थी। असंख्य देवी-देवता एवं उनके विशद् परिवार की भी कल्पना हो चुकी थी। पुराणों ने बहुदेव-प्रचार में प्रमुख योग दिया। यह बात सत्य है कि अनेक प्रकार के पत्थर, वृक्ष, नदी आदि की पूजा करता हुआ हिन्दू-समाज दिन पर दिन मूढ़ता एवं भ्रम का विस्तार करता गया, किन्तु उसकी यह मूढ़ता ही उसकी उदारता एवं सहनशीलता का परिचय है। परस्पर-विरोधी अनेक संप्रदायों के उपास्यदेव हिन्दू-समाज द्वारा अक्षत-पुष्प प्राप्त कर समादृत होते रहे हैं।

हिंदुओं का यह उदार दृष्टिकोण भाषा-रामायणों में भी प्रतिफलित हुआ है। दोनों ने अनेक देवी-देवताओं की स्तुति की है। दोनों के दृष्टिकोण में विशेषता यह है कि दोनों ही पुराणानुमोदित आर्य-देवताओं की ही बंदना करते हैं, तंत्र अथवा वामाचार प्रभावित उपासनाओं का दोनों में बहिष्कार है। ग्राम-देवी-देवताओं एवं प्रस्तर-प्रतिमाओं के प्रति लोक-रुचि का ध्यान रखकर दोनों ने उनकी उपेक्षा नहीं की है। कृत्तिवासी-रामायण में राम के आगमन में भरत ने आदेश दिया था—

प्रस्तर प्रतिमा जत आछे स्थाने स्थान।
सुगन्धि चन्दने सबारे कराओ स्नान ।।कृत्ति०, लंका०–पृ०४५४

राम के कल्याण के लिए राम-माता भी अनेक प्रकार के पूजन-विधान करती हैं, जिनमें एक यह भी है—

पूजीं ग्राम देबि सुर नागा।
कहेउ बहोरि देन बलिभागा ।।मानस २–८–५

पंचदेव—

समाज में पंचदेव—विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य और गणपति की पूजा का प्रचार था। दोनों रामायणों में इसकी झलक है। भाषा-रामायणों के पठन-पाठन से पंचदेवों की उपासना को और भी अधिक प्रोत्साहन मिला।

कृत्तिवासी-रामायण में हनुमान सागर पार करने के समय गणेशादि पंचदेवों की बंदना करते हैं—

भक्तियुक्त मने कैला दण्डवत नति।
गणेशादि पञ्चदेव दिक्पाल प्रति ।। कृत्ति सुन्दर–पृ० २१७

तुलसीदास भी स्मार्त्त वैष्णव थे। उन्होंने पंचदेवों में प्रमुख शिव और विष्णु के बीच समन्वय की चेष्टा की थी। पंचदेवों में सामान्य देव गणेश, रवि और शक्ति के प्रति भी उन्होंने आदरभाव दिखाया है। चित्रकूट में अयोध्यावासी स्नान कर पूजन करते हैं—

करि मज्जनु पूजहिं नर नारीं।
गनप गौरि तिपुरारि तमारी ।। मानस २–२७२–४

विनय-पत्रिका के प्रारम्भ में गणपति, सूर्य, शंभु और शक्ति की स्तुति की गयी है।[1]

शैव-वैष्णव-समन्वय—

वैष्णव-भक्ति का प्रचार दक्षिण से हुआ, वहीं शैव-मत का भी विकास हुआ। दोनों संप्रदायों के आचार्यों ने अपने-अपने मत का विद्वता के साथ प्रतिपादन किया। उत्तरी भारत के उत्तर एवं पूर्वी भागों में भी शैव-मत का प्रचार था। नाथ-पंथी शैव थे। युद्ध-धर्मी राजपूत शिव एवं शक्ति के उपासक थे। शिव एवं विष्णु के उपासकों में संघर्ष हो जाया करते थे। दक्षिण के एक शैव राजा ने रामानुजाचार्य के वध का भी प्रयास किया था।

कृत्तिवास एवं तुलसीदास के पूर्व ही शिव एवं विष्णु के समन्वय का प्रयत्न होने लगा था। दोनों संप्रदायों के पुराणों में भी अपने-अपने इष्टदेव का प्रमुख गुणगान होते हुए भी एक में दूसरे का महत्त्व भी वर्णित किया गया है। इन भाषा-रामायणकारों ने इस प्रकार का विवाद सदैव के लिए बन्द कर दिया। अब आर्य प्रभावित भारत में कहीं भी इस प्रकार का संघर्ष दिखलायी नहीं पड़ता।

कृत्तिवासी-रामायण के अनुसार रामेश्वरम् में शंकर की स्थापना करते समय शंकर स्वयं उपस्थित होकर राम के दोनों हाथ पकड़ लेते हैं। दोनों हर्षित होकर प्रेमालिंगन करते हैं। महेश बोले—'प्रभु किसकी पूजा करते हो। राम, तुम मेरे इष्टदेव हो।' श्रीराम ने कहा—'तुम मेरे इष्ट हो। रावण के वध के लिए पुष्पजल ग्रहण करो।'[2]

इसी प्रकार मानस में भी दोनों एक दूसरे का आदर करते हैं। राम को शिव-द्रोही अपना भक्त सपने में भी अच्छा नहीं लगता।[3] वे भी रामेश्वरम् में शंकर की पूजा करते हैं। दूसरी ओर शंकर राम के परम भक्त हैं, भक्तों के आदर्श हैं। वे राम-कथा सुनने के लिए रूप बदल कर जाया करते हैं। राम के वचनों की ओर ध्यान न देकर दोनों के चरित्र की ओर ध्यान दें तो दोनों में प्रभु और सेवक सम्बन्ध स्पष्ट दिखलायी पड़ेगा। मानस में शंकर उन्हें प्रभु मानते रहे हैं। कृत्तिवासी-रामायण में भी कहीं-कहीं राम को शिव से बड़ा माना गया है। गौरी से बातें करते समय वे राम को प्रभु[4] कहते हैं। एक अन्य स्थल पर राम को शिवगुरु भी कहा है।[5]

---

१ विनय पत्रिका–छंद १, २, ३ और १६।
२ कृत्ति० रामा०–सुन्दर कांड–पृ० २५८।
३ मानस ६–१–७।
४ पाठाइव प्रभुर काछे अयइ निश्चय। कृत्ति० सुन्दर–पृ० २४८।
५ श्रीराम शिवेर गुरु ताहा आमि जानि। कृत्ति०, लंका०–पृ० ४०६।

तुलसीदास को शैव-वैष्णव समन्वय में शिवपुराण से प्रेरणा मिली थी। अन्तर यही है कि शिवपुराण विष्णु के महत्त्व का वर्णन करता हुआ भी शंकर को सर्वेश्वर मानता है और तुलसी ठीक इसका उल्टा करते हैं। शिवपुराण से ही उन्होंने पद्धति ग्रहण कर उन्हीं के इष्टदेव को राम का उपासक बना दिया।

शिव का रूप—

समस्त भारत में शंकर के दो रूप प्रचलित रहे हैं। प्रथम आर्य-रूप में वे गंगा, अर्धचन्द्र एवं त्रिशूल धारी कर्पूर-गौर योगेश्वर शिव हैं, तथा द्वितीय अनार्य-रूप में वे सर्प, भस्म और मुंडमाल धारी, धतूरा-गंजिका सेवी तथा भूत-प्रेतादि गणों से आवृत श्मशानचारी शिव हैं। बंगाल में शिव के दूसरे रूप के साथ गृहस्थ-शिव के रूप का भी मिश्रण हो गया है।

आर्यों ने अपने उपास्य-देवों को अनार्य-विकृतियों से बचाने की चेष्टा की है। कृत्तिवासी-रामायण एवं मानस में शिव के आर्य-रूप का चित्रण हैं, कहीं-कहीं अनार्य-रूप की भी झलक मिल जाती है। कृत्तिवासी-रामयण में एक स्थान पर शिव को आक-धतूरा से प्रसन्न होने वाला कहा है।[1] 'हर पार्वती कोंदल'[2] में शिव-पार्वती झगड़ते दिखाये गये हैं। यहां बंगाल में प्रचारित गृहस्थ-शिव का रूप आ गया है। पार्वती उनसे रुष्ट होकर भंगेड़ी और श्मशानचारी कहती हैं।[3]

मानस में भी शंकर के अशिव कापालिक-वेष का वर्णन है। वे केवल कौतुक के कारण ऐसा रूप धारण कर लेते हैं, वास्तव में तो वे योगेश्वर तथा 'अज अनवद्य अकाम अभोगी' हैं।[4] शिवपुराण में दूल्हा-शिव के विकट-रूप का वर्णन है। तुलसी ने इस विकट-रूप में सुन्दरता, सहृदयता एवं परिहास-प्रियता भर कर एक नया रूप दे दिया है।[5] हिंदी-भाषी जनता मानस के माध्यम से इसी शंकर से परिचित है। हीरेन्द्रनाथ दत्त संपादित उत्तरकांड में शिव के शिवपुराणानुमोदित विकट-रूप का चित्रण है, जो अश्लील अधिक हो गया है।[6]

---

१ आकड़ा धुतूरा जे आकन्द विल्वपात।
इहा तेइ तुष्ट हन त्रिदशेर नाथ॥ कृत्ति० आदि०—पृ० १६

२ हर पार्वती कोन्दल (कोन्दल=झगड़ा) कृत्ति०, लंका०—पृ० २७२

३ तुमि त भाङ्गड़ सदा बेड़ाओ श्मशाने। कृत्ति० लंका०—पृ० २७२

४ हमरे जान सदा सिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी॥ मा० १-८६-३

५ सिवहिं संभु गन करहिं सिंगारा। जटा मुकुट अहि मौरु संवारा॥ मा० १-९१-१
ससि ललाट सुन्दर सिर गंगा। नयन तीनि उपबीत भुजंगा॥ मा० १-९१-३
गरल कंठ उर नर सिर माला। असिव वेष सिवधाम कृपाला॥ १-९१-४
नाना वाहन नाना बेषा। बिहसे सिव समाज निज देखा॥ १-९२-६
कोउ मुख हीन बिपुल मुख काहू। बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू॥ मा० १-९२-७

६ मंडप के नीचे शंकर बैठे हैं, नारद उनका बाघंबर खोल देते हैं। सभी स्त्रियां भाग जाती हैं। रानी सिर नीचा कर लेती है और नारद टिटकारी देते हैं। फूलशय्या के समय भी सखियों के समक्ष ही शंकर नग्न होकर लेट जाते हैं। सभी सखियां लज्जित होती हैं। प्रातःकाल उन्हें इसी स्थिति में देख कर गुरुजन भी लज्जित होते हैं—अस्तव्यस्त पालाइल गुरुजना वासे लाज—हीरेन्द्रनाथ दत्त संपादित, कृत्ति० रामा० उ० का० पृ० ७-१०

शक्ति—

शक्ति के भी आर्य एवं अनार्य प्रभावों से युक्त दो रूप थे। जहां वे मातृरूपिणी प्रिय-दर्शना, गरोशजननी एवं शिव-प्रिया है, वहां उनके नाम गौरी, गिरिजा, पार्वती, अम्बिका आदि हैं, किन्तु जहां वे विकट-दर्शना, मुंडमालिनी, खप्पर और खांड़ा धारिणी हैं, वहां वे काली कराली, उग्रचंडा आदि नामों से अभिहित हैं। दोनों लेखकों की सहानुभूति एवं भक्ति-भावना प्रथम अर्थात् शुभ्र-रूप की ओर है।

१—कृत्तिवासी-रामायण में अम्बिका की स्तुति करते हुए राम उन्हें शर्वा, शवासना, विकट-दशना उग्रचंडा, अन्नपूर्णा, कालिका, कराल वेशी, शैल-सुता आदि अनेक विशेषण देते हैं! शाक्त-बंगाल शक्ति को ही सृष्टि-स्थिति-प्रलय कारिणी मानता है।[1]

तुलसी ने जिस गौरी का वर्णन किया है कि वे पार्वती-रूप में पतिप्राणा-पत्नी एवं सीतादि भक्तों पर दया करने वाली जगत-जननी भवानी हैं।[2] गौरी हिन्दू-ललनाओं के लिए आदर्श पत्नी है। दोनों रामायणों में सधवा-स्त्रियां अपने सुहाग अथवा मनोवांछित पति की प्राप्ति के लिए उनकी उपासना करती हुई देखी जाती हैं।[3]

२—हनुमान की भेंट लंका में उग्रचंडा से हुई थी। ये शिव की प्रेयसी कही गयी हैं। राम के द्वारा पूजा प्राप्त करने वाली अम्बिका और उग्रचंडा के रूप और गुण में अन्तर है। असितवरणा अम्बिका नील सौदामिनी के समान हैं।[4] उनके कर और पद के नख आभायुक्त हैं, बिंवफल से अरुण अधरों पर मंद हास छिटका है। और उग्रचंडा प्रचंड-मूर्ति, खर्पर-खांड़ा धारिणी, लोल-रसना, विकट-दशना एवं व्याघ्रचर्म तथा मुंडमाल-धारिणी है।[5]

---

१ कृत्ति० रामायण लंका० पृ० ४२२-२३

२ मानस-सीता का गौरी-पूजन-प्रसंग-देखिए बालकांड दो० २३४ के पश्चात् की चौपाइयां।

३ मानस—वही—वही

कृत्ति० रामा० में सीता राम को वररूप में प्राप्त करने के लिए कात्यायिनी की विशेषरूप से स्तुति करती है। आदि—७९

४ असित वरणा काली कोले दशानन।

… … … … … … … … … … …

ताहे श्यामा रूपे नील सौदामिनी वेशे ॥

कर पदे नखे शशी अनत प्रकाश।

बिम्ब फल फलित अधरे मन्द हास ॥कृत्ति०, लंका०, पृ० ४१८

५ महाभयङ्कर मूर्ति सम्मुखे प्रचण्डा।

वाम हाते खर्पर दक्षिण हाते खाण्डा ॥

लोल जिह्वा पृष्ठे जटा विकट दर्शन।

हांड़िया मधेर वर्ण देखिते भीषण ॥

व्याघ्रचर्म परिधान गले मुण्डमाला।

माणिक कुंडल कर्णे जेन चन्द्रकला ॥

………………………………

शिवेर प्रेयसी……………॥कृत्ति०, सुन्दर, पृ० २२२

तुलसी ने द्वितीय-रूप का वर्णन नहीं किया है। युद्ध-क्षेत्र में भूत-प्रेत से घिरी चामुण्डा[1] का नाम लिया है, तथा राम-कथा का रूपक बाँधते हुए उसे कराला-कालिका[2] बताया है।

गणेश—

हिन्दुओं में प्रत्येक शुभ कार्य का प्रारंभ गणेश-पूजन से प्रारंभ होता है। संस्कृत-हिन्दी तथा अन्य भारतीय-भाषाओं के ग्रंथों का भी प्रारंभ 'श्रीगणेशायनमः' से होता है। कृत्तिवासी-रामायण में राम स्वयं कहते हैं कि जो व्यक्ति गणेश के रहने पर अन्य देवों की पूजा करता है, उसका पूर्व-धर्म नष्ट हो जाता है।

गणेश थाकिले जेवा अन्य देव पूजे।
पूर्व्व धर्म्म नष्ट तार हय काजे काजे ॥ कृत्ति० आदि०, पृ० ३।

मानस में तो गणेश-पूजन का इतना महत्त्व दिखाया है कि स्वयं शंभु-भवानी विवाह के समय पूजन करते हैं। किसी को शंका न हो कि विवाह के पूर्व ही पुत्र कहाँ से आगया तो कह दिया कि सुर अनादि हैं।

मुनि अनुसासन गनपति पूजेउ संभु भवानि।
कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जिय जानि ॥ (मानस—१–१००)

जनकपुरी से बिदा होते समय दशरथ भी गणेश का स्मरण कर प्रस्थान करते हैं।[3] राम के साथ भी वही बात है, वे भी गणपति, गौरी आदि को मना कर चलते हैं।[4]

कृष्णभक्ति—

बंगाल में कृष्ण-भक्ति का प्रबल प्रवाह कृत्तिवास के परवर्ती चैतन्य-महाप्रभु की प्रेरणा से आया था। उन्होंने बंगाल को ही नहीं, अपितु समस्त उत्तरी-भारत को कृष्ण-भक्ति से आप्लावित कर दिया था। तुलसी के जन्म तक चैतन्य की भक्ति से हिन्दी-काव्य प्रभावित हो चुका था। अनेक उच्च-कोटि के कृष्ण-भक्त-कवि तुलसी के समकालीन थे। तुलसी की गीतावली पर सूर का प्रभाव स्पष्ट है। किन्तु मानस अथवा कृत्तिवासी-रामायण में जहाँ कहीं कृष्णभक्ति का प्रभाव है, वह भागवत-पुराण से आया है। जयदेव एवं चंडीदास की सहजिया-कृष्णभक्ति का लक्षण कृत्तिवास की कविता में नहीं दिखलायी पड़ता। दोनों रामायणों का रामजन्म भागवत-पुराण के कृष्णजन्म से सादृश्य रखता है, जिसका वर्णन पाँचवें-अध्याय में होगा।

कृत्तिवासी-रामायण में कृष्णभक्ति का एक प्रसंग आया है, जिसकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। लंकाकांड में गरुड़ के अनुरोध पर राम ने अगले कृष्णावतार का रूप

१ मानस—चामुंडा नाना विधि गावहिं। ६—८७-८
२ मानस—राम कथा कालिका कराला। १—४६—६
३ सुमिरि गजाननु कीन्ह पयाना—मानस १—३३८—८
४ गनपति गौरि गिरीसु मनाई।
चले असीस पाइ रघुराई ॥ —मानस २—८०—२

दिखाया है। हनुमान ने भी देखा, उन्हें ईर्ष्या हुई और उन्होंने इसका बदला कृष्णजन्म में लेने का निश्चय किया।[१] इस प्रसंग में राम-कृष्ण के भक्तों के परस्पर-विवाद की एक झलक है, बंगाल ऐसे विवादों से परिचित है।

अब्राह्मण्य धर्म-साधानाओं की उपेक्षा—

अब्राह्मण्य किन्तु आर्य धर्म-संप्रदायों में बौद्ध-जैन संप्रदाय प्रमुख हैं। हमारे लेखकों तक इन संप्रदायों का प्रभाव क्षीण हो गया था। बौद्धधर्म की अपनी विकृतियों ने इसे नष्ट किया, रहा-सहा मुसलमानों के आक्रमण के कारण समाप्त हो गया। अतएव दोनों ग्रंथों में बौद्ध-जैन प्रभाव नहीं है। कृत्तिवासी-रामायण में रघुराजा के सर्वस्वदान[२] में डा० दीनेशचन्द्र ने बौद्धों का प्रभाव देखा है, किन्तु वस्तु-स्थिति यह है कि कृत्तिवास ने यहाँ रघुवंश[३] का अनुसरण किया है। उसमें ही इस प्रकार का प्रथम वर्णन है कि रघु ने सब कुछ दान कर दिया, वे मिट्टी के पात्र में भोजन करते हैं। पद्मपुराण के पातालखंड[४] में भी ऐसा ही वर्णन है। सेन महाशय यहाँ भ्रमित हो गये हैं[५]। वे कहते हैं कि संस्कृत महाकाव्य में ऐसी कोई कथा नहीं है। अन्य भी कुछ ऐसे स्थल हैं, जहाँ अहिंसा प्रेम[६] दिखलायी पड़ता है, इनमें भी बौद्ध प्रभाव खोजना व्यर्थ है, क्योंकि यह अहिंसा प्रेम बौद्धों का नहीं, वैष्णवों का है। यह बात दूसरी है कि रघुवंश तथा वैष्णवों के अहिंसावाद पर बौद्ध-धर्म का प्रभाव हो। कम से कम कृत्तिवास बौद्धों से प्रभावित नहीं थे।

---

१ कृत्ति० रामायण, लंका०, पृ० २९१।

२ अश्वभक्ष रघुराजा नाहि राखे घरे।
मृत्तिकार पात्रे राजा जलपान करे। कृत्ति० आदि०, पृ० २८।

३ रघुवंश ५-२।

४ पद्मपुराण-पातालखंड (गौड़ीय संस्करण), अध्याय ८।

५ We find in the account of Krittivas that Raghu, the king, had once became a kalpataru. This was a well-known Buddhistic ceremony by which mighty princes like Asoke and Kaniska passed, as some writers hold, through the renunciation of the great Buddha, turning a bhiksu once after a fixed number of years......Raja Harsha in the 7th century was a kalpataru. The Sanskrit epic has no story of this sort and like many similar once Krittivasa, no doubt got it from those that floated in the air around him. Bengali Ramayans-Dinesh Chandra Sen. P. 123

६ कृत्तिवासी-रामायण में अहिंसाप्रेम के अन्य स्थल ये हैं—
(१) सीता राम से कहती हैं कि शस्त्र-धारण करना त्याग दो। पृ० १३७, अरण्य०।
(२) नारदादि-ऋषि दस्यु-वाल्मीकि से कहते हैं कि उन्हें ऐसे स्थान पर मारा जाय जहाँ उनके शरीर-पतन से चीटियाँ न मर जाएँ। ......पृ० ३ आदि० कांड।
(३) सिंधुमुनि अपने पूर्व-जन्म में हत्या करने के कारण शाप-ग्रस्त होने की बात कहते हैं। पृ० ४१, आदि कांड।

बौद्धधर्म की विकृतियों की अंतिम-परिणति नाथ-पंथ सुधार रूप लेकर आया था। तांत्रिक-साधनाओं के प्रभाव से यह भी नहीं बच सका। किसी समय बंगाल में मयनामती और राजा गोविंदचंद्र के गीत गाने वाले नाथ-पंथियों का बहुत प्रचार था। शुद्धाचार-प्रिय ब्राह्मण इन अवैदिक साधनाओं से प्रसन्न न थे। उन्होंने इन्हें कभी मान्यता न दी। सेनवंश के राजत्व में वेद-विरोधी स्वर बिल्कुल क्षीण हो गये थे। कृत्तिवास ने विकृत-साधनाओं का वर्णन नहीं किया है, किन्तु परोक्ष-रूप से उन्होंने योगियों की अथवा नाथपंथियों की निंदा की है। उनका रावण निम्न-रूप धारण कर सीता-हरण के लिए गया था।

शङ्खेर कुण्डल काने रक्त वस्त्र परे।
डम्बूरा वाजाये भिक्षा मांगे घरे घरे।। कृत्ति० लंका०, पृ०२७५

(कानों में शंख के कुण्डल पहन कर, रक्त-वस्त्र धारण कर, डमरू बजाते हुए घर-घर भिक्षा मांगता है। तपस्वी का वेश धारण कर मुँह पर भस्म लगाये है।)

यह रूप अवश्य ही नाथपंथी-योगी[1] का है। कृत्तिवास ने स्पष्ट निन्दा नहीं की है, किन्तु अंगद जिस प्रकार इस रूप के कारण रावण की भर्त्सना कर रहे हैं, उससे इस रूप की ओर उपेक्षा ही प्रकट होती है।

तुलसीदास जी वामाचार एवं कौलमार्ग से प्रसन्न न थे। ये उपासनाएँ गर्हित एवं गुह्य होने के कारण लोकहित के विरोध में थीं। कौशल्या से शपथ करते हुए भरत जो कुछ कहते हैं, उससे तुलसी का दृष्टिकोण ज्ञात हो जाता है। वे वेद-विरोधियों को सहन नहीं कर सकते थे।

तजि श्रुतिपंथु बाम पथ चलहीं।
बंचक बिरचि बेष जगु छलहीं।।
तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ।
जननी जौं यहु जानौं भेऊ।। मानस २—१६७—७—८

---

१ इस प्रकार के योगियों के सम्बन्ध में कलकत्ता-विश्वविद्यालय के विद्वान् प्रोफेसर श्री शशिभूषण-दास गुप्त से जिज्ञासा करने पर उन्होंने लिखा था—इहारा तान्त्रिक साधक हइते पारेन (रक्त वस्त्रेर इंगित सेइ दिके), किन्तु रक्त वस्त्र वाद दिले अन्यान्य वर्णना नाथ योगीर बतिया मने हय। उन्होंने इन योगियों को रक्त वस्त्रधारी होने के कारण तांत्रिक माना है, यदि रक्त वस्त्रों की ओर ध्यान न दिया जाय तो यह वर्णन नाथ-योगियों का है।

वास्तव में ये नाथ-योगी ही हैं। नाथ-पंथ में भी तांत्रिक साधना आ गयी थी। शिव और शक्ति का अभेद सिद्धांततः गोरखनाथ के मत में मान्य था। (देखिए—नाथ-पंथ-हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १८१)

पद्मावत (जायसी) के जोगी-खंड में भी जोगियों की वेश-भूषा में अन्य अनेक सामग्रियों के साथ मुद्रा (स्फटिक कुंडल), रक्त-वस्त्र एवं भस्म का उल्लेख है।

मुद्रा स्रवन कंठ जप माला।
कर उदपान कांध बघ छाला।।६
पांवरि पांव लीन्ह सिर छाता।
खप्पर लीन्ह भेस कै राता।।७ (१२ जोगी-खंड १२६)

दाक्षिणात्य-महाशैव भी लाल जोग-पट्ट धारण करते थे। हर्ष-चरित में ऐसे ही महाशैव के एक शिष्य का वर्णन है-(हर्ष-चरित-एक सांस्कृतिक-अध्ययन-वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ५७।)

कौल-मार्गियों को उन्होंने अघ-खानि-पापियों की कोटि में रख कर शव के समान माना है।

कौल कामबस कृपिन बिमूढ़ा।
अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा॥
सदा रोगबस संतत क्रोधी।
बिष्णु बिमुख श्रुति संत बिरोधी॥
तनु पोषक निंदक अघ खानी।
जीवत सव सम चौदह प्रानी॥ मानस ६–३०–२, ३, ४

सामान्य विश्वास—

दोनों भाषा-रामायणों के अनेक पात्रों के कथोपकथन एवं घटनाओं से प्रकट होता है कि अन्य युगों के समान इस युग में भी लोग जन्मांतर एवं कर्मफल में विश्वास रखते थे। नक्षत्रों के शुभाशुभ-प्रभाव एवं मुहूर्त-शोधन पर भी विश्वास था। कृत्तिवासी-रामायण में सगर ने कहा है कि राहु की दशा में उत्पन्न होने के कारण ही साठ हजार पुत्रों की मृत्यु हुई।[१] प्रत्येक शुभ-कार्य के समारंभ के पूर्व गणक-लोग ज्योतिष-गणना करते थे। ठीक-लग्न के अनुसार कार्य न करने पर विश्वास किया जाता था कि अमंगल घट सकता है। राम और सीता के विवाह की लग्न देवताओं ने निकलवा दी, फलस्वरूप उन्हें विरह-दुःख सहना पड़ा।[२]

बंगाल में अनेक ज्योतिषी विचित्र वेश बनाए हुए घर-घर घूमा करते थे। स्त्रियाँ इनके चक्कर में प्रायः फँसती थीं। ये बगल में पोथी दबाकर घूमा करते थे। माथे पर लम्बा तिलक रहता था, यज्ञोपवीत एवं कुशमुष्टि धारण करते थे।[3]

हिन्दी-भाषी जनता में भी दिन, नक्षत्र और घड़ी देखकर लग्न निकाली जाती थी तथा उसी के अनुसार कार्य होता था।

१—ग्रह तिथि नखतु जोगु बर बारू।
लगन सोधि बिधि कीन्ह बिचारू॥१–३११–६ (मानस)
२—सुदिन सोधि कल कंकन छोरे। १–३५९–१ (मानस)

---

१ राहुर दशाय जन्म हइल जखन।
से सबार आशा आमि छेड़ेछि तखन॥ आदि०, पृ० १७।

२ करह मन्त्रणा एइ बलि सारोद्धार।
लग्न भ्रष्ट कर गिया श्रीराम सीतार॥ आदि०, पृ० ८३।

३ कक्षतले पांजि पूथि डानि हस्ते बाड़ि।
कपाले ते दीर्घ फोंटा जान गुड़ि गुड़ि॥
लोलित चर्म्मेर मांस, पाका सब केश।
मलिन हयेछे मांस छेड़े गण्ड देश॥
कुश मुष्टि कुशांगुरी यज्ञ सूत्र गले।–लंका०, पृ० ४२७।

उपर्युक्त ज्योतिषी ग्रहविप्र अथवा गणक कहे जाते हैं। ये ब्राह्मण-समाज में सम्मानित नहीं रहे। अतएव वैदिक-धर्म की अवज्ञा कर ये ज्योतिष और नक्षत्र विद्या में आसक्त होकर दक्षिणा ग्रहण करने लग गये। इन्हें बंगाल में राजा शशांक ने बसाया था। बाङ्गालीर इतिहास, राय–पृ० ३०१, ३०२।

किसी कार्य के पूर्व शकुन-अपशकुन होने का विचार किया जाता था। राक्षसों की युद्ध-यात्रा के समय दोनों रामायणों में अपशकुनों का वर्णन है। दुःस्वप्न बुरे समझे जाते थे। उनके दोष-परिहार के लिए लोग तीर्थ-जल से स्नान कर दीन एवं द्विजों को स्वर्ण-धेनु एवं शिला दान[1] करते थे।

तुलसी ने माघ-मास-भर त्रिवेणी-स्नान एवं अक्षय-वट के दर्शन का वर्णन किया है।[2] कृत्तिवास ने भी अनेक नदी और तीर्थों के नाम लिये हैं।[3] लोग वंश के उद्धार के लिए गया जाकर श्राद्ध किया करते थे—'गया श्राद्ध करे पुत्र वंशेर उद्धार'—किष्किंधा, पृ० १६६। मानस में भी गया तीर्थ का नाम नीतिकथन के रूप में आया है—मगहँ गयादिक तीरथ जैसे। २–४२–७।

भाषा-रामायण-कालीन जनता अत्यधिक धर्मप्राण हो गयी थी। इस काल तक धार्मिक-सहनशीलता की वृद्धि हुई थी। जनता एक ओर पुराणों के प्रोत्साहन से देवताओं के भव्य-रूप को स्वीकार कर रही थी, दूसरी ओर वह अपनी क्षुद्र आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए सामान्य ग्राम्य एवं अनार्य देवताओं की ओर भी उन्मुख हो जाती थी। उस समय तीर्थ-स्नान एवं दान के पुण्य तथा जन्मांतर-वाद पर विश्वास किया जाता था। भारतीय जनता की ये मनोवृत्तियाँ दोनों रामायणों में प्रतिबिम्बत हैं, इन ग्रंथों ने इन्हें जीवित रहने में भी सहयोग दिया है। आज भी गाँवों की साधारण जनता धार्मिक-विचारों की दृष्टि से बहुत कुछ भाषा-रामायण-कालीन जीवन-यापन कर रही है।

धार्मिकता की छाप इतनी गहरी रही है कि समस्याओं का समाधान पुराण एवं शास्त्र की उक्तियों में खोजा जाता था। मुसलमानों के कृत्यों में राक्षसों की प्रतिकृति देखना इसी मनोवृत्ति का परिणाम था।

---

१ कृत्ति० रामायण, आदि–पृ० ६०।

२ मानस १–४३. ३–५

३ कृत्ति० रामायण, अयोध्या, पृ० १२७।

३—सामाजिक-परिस्थिति

(अ) वर्ण-व्यवस्था—

भारत में वर्णव्यवस्था-भंग करने के कई प्रयास हुए, किन्तु सभी असफल रहे। वह आज भी जीवित है। समाज में नियंत्रण के लिये किसी न किसी व्यवस्था की आवश्यकता रहती ही है। वर्ण-व्यवस्था का उद्देश्य भी समाज-नियंत्रण था, उसका आधार वैज्ञानिक एवं आर्थिक था। प्रत्येक देश एवं काल में वर्ण-व्यवस्था रहती ही है; यह बात दूसरी है कि वह जन्मना हो अथवा कर्मणा। बौद्ध, जैन एवं सिद्धों के प्रयास से वर्ण-व्यवस्था में जो शिथिलता आ गयी थी, वह यदि मुसलमानों का आक्रमण न होता तो राजपूत राजाओं के संरक्षण में पुनः सुदृढ़ हो जाती। उनके आक्रमण से ब्राह्म-क्षात्र शक्तियाँ छिन्न-भिन्न हो गयीं। समाज का निम्न-वर्ग सबसे अधिक विशृङ्खलित हो गया। कुछ लोग ऊँच-नीच एवं छुआछूत के भेद-भाव से भरे हिन्दूधर्म में हीनता की स्थिति से बचने के लिए भेद-भाव हीन इस्लाम का वरण करने लगे, और कुछ लोगों ने अंकुश के अभाव में दूसरे वर्णों के कर्म अपना लिये।

पुराणों में समाज की तत्कालीन-स्थिति का अच्छा चित्रण है। तुलसी ने उसी परंपरा का पालन करते हुए अपने काल का भी चित्रण किया है। उनके वर्णन से पता लगता है कि वर्णाश्रम-धर्म का पालन नहीं होता था, समाज अनियंत्रित था। कोई भी वेदों का अनुशासन न मानता था, दंभियों ने अनेक पंथों का प्रचार कर दिया था। जिसे जो मार्ग अच्छा लगता, उसी का अनुसरण करता था। व्यर्थ बकवास पांडित्य समझा जाता था। नख और जटा बढ़ाकर तापस कहलाने वालों की संख्या बढ़ रही थी। तपस्वियों एवं विरक्तों के पद का मूल्य इतना घट गया था कि अधम-वर्ण वाले तेली, कुम्हार, श्वपच, किरात, कोल, कलवार आदि स्त्री मर जाने और संपत्ति नष्ट हो जाने पर सिर मुड़ा कर संन्यासी हो जाते थे। और ऐसे निकृष्ट जीव ब्राह्मणों से अपनी पूजा कराते थे। सब जात-कुजात के लोग भीख माँगने लग गये थे। शूद्र ब्राह्मणों से गुर्रा कर कहने लगे थे, क्या हम तुमसे किसी प्रकार कम हैं। वे जनेऊ धारण और दान ग्रहण कर, ब्राह्मणों को उपदेश देने लगे थे। वे श्रेष्ठ आसन पर बैठ कर पुराण-वाचन करते थे। ब्राह्मण, राजा और प्रजा तीनों कर्त्तव्यच्युत, लोलुप, कामी और पाप-परायण हो रहे थे।[१]

कृत्तिवास ने अपने युग की परिस्थितियों का अलग से कोई वर्णन प्रस्तुत नहीं किया हैं, किन्तु उनके समय में भी यही स्थिति थी। दोनों लेखकों के ग्रंथों में सुधार के दो समान-प्रयत्न दिखलायी पड़ते हैं—

१. ब्राह्मणों को शीर्ष-स्थानीय मानकर वर्ण-संगठन।

२. अछूतों के प्रति अपनत्व की भावना।

---

१ मानस-कलियुग-वर्णन-उत्तर कांड०, दोहा संख्या ९७ से १०२ तक।

१—ब्राह्मण समाज का मस्तिष्क है, वह तप और सात्विकता का प्रतीक है। उसकी अवहेलना कर समाज शक्ति-सम्पन्न नहीं हो सकता। अतएव समाज के शीर्ष-स्थानीय ब्राह्मण को केन्द्रित कर दोनों ने समाज-सुधार करना चाहा। अतीत के इतिहास में वर्ण के अवनयन एवं उन्नयन के विरल उदाहरण मिल जाते हैं। वर्ण-उन्नयन के लिये विश्वामित्र का उग्र-तप एवं वशिष्ठ जैसे तपःपूत ऋषि की स्वीकृति आवश्यक थी। केवल गले में सूत डालकर ब्राह्मणों से पूजा प्राप्त करने वाली स्थिति को तुलसीदास सहन न कर सके।[१] इसीलिए उन्हें कहना पड़ा—

पूजिअ विप्र सील गुन हीना।
सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना।। मा० ३-३३-२।

इन्द्र के वज्र, महादेव के त्रिशूल एवं विष्णु के चक्र से भी भयंकर ब्राह्मण का क्रोध है।[२] ब्राह्मण का परितोष मंगलदायक है।[३] राम स्वयं कोई शुभ-कार्य करते समय मन ही मन ब्राह्मण को प्रणाम कर लेते हैं।[४] तुलसी के समाज का आदर्श है—ब्राह्मण के चरण में प्रेम तथा वेदरीति का अनुसरण करते हुए अपने-अपने वर्णाश्रम-धर्म का पालन। बिना इसके भगवद्भक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती।[५]

कृत्तिवास ने भी स्थान-स्थान पर ब्राह्मण का श्रेष्ठत्व प्रकट किया है। वे कहते हैं कि ब्राह्मण की हत्या करने वाला तथा सुरापान करने वाला विषम-यातना का भोग करता है।[६] कई शापों का उल्लेख कर दिखाया है कि ब्रह्मण का क्रोध अत्यधिक भयंकर होता है। उनके कोप से राजा भी थर-थर कांपते हैं (यद्यपि ब्राह्मणों का क्रोध चिरकाल तक नहीं ठहरता।)[७] दशरथ राम को अभिषेक के पूर्व शिक्षा देते हैं—ना हइओ तुमि द्विज भक्ति ते रहित। ९२

कृत्तिवास की दृष्टि में वह सजगता नहीं है जो तुलसी में है, उनके ब्राह्मण के चरित्र-चित्रण में वह गौरव-गांभीर्य नहीं जो तुलसी के ब्राह्मण का भूषण है। कृत्तिवास

---

१ सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना।
मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना।। मा० ७-९८०२।

२ इन्द्र कुलिस मम सूल बिसाला।
कालदंड हरि चक्र कराला।।
जो इन्ह कर मारा नहिं मरई।
विप्र द्रोह पावक सो जरई।। मानस ७-१०८. १३-१४

३ मंगलमूल विप्र परितोषू। मानस २-१२५-४

४ मन महुं बिप्र चरन सिरु नायो। मानस ६-११८-२

५ भगति कि साधन कहउं बखानी।
सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी।।
प्रथमहिं विप्र चरन अति प्रीती।
निज निज कर्म निरत श्रुति-रीती।। मानस ३-१५-५६

६ ब्रह्म हत्या सुरापान करे जेइ जन।
विषम यातना भोग करे अनुक्षण।। कृत्ति० उत्तर० पृ०, ४९८

७ ब्राह्मण कोप नाहि थाके एक तिल। कृत्ति०, आदि०, पृ० १६

का ब्राह्मण 'चद्‌री तवा' है, जो चूल्हे पर चढ़ाते ही गरम और उतारते ही ठंडा हो जाता है।

आज तक हिंदू-समाज के सभी सवर्ण-व्यक्ति किसी न किसी मात्रा में छुआछूत मानते हैं। कृत्तिवास के काल में यह भावना और भी अधिक रूप में रही होगी; कृत्तिवासी-रामायण के कई स्थलों में इसकी झलक मिल जाती है। हरिश्चन्द्र ने अपने को डोम के हाथ बेचा किंतु विनयपूर्वक यह प्रतिश्रुति ले ली कि उच्छिष्ट-भोजन खाने को न दिया जाय।[1] दूसरी समस्या थी सुअरों के मल-मूत्र से स्थान स्वच्छ करने की। शूकरों ने स्वयं राजा को उबार लिया, वे राजा का ध्यान रख कर दूर मल-मूत्र त्यागते थे।[2] सीता राक्षसियों के बीच रह कर उनका छुआ अन्न कैसे खातीं, इसलिये इन्द्र उन्हें नित्य परमान्न अथवा सुधाफल दे आते हैं।[3] अहल्या ब्राह्मणी है, लक्ष्मण ने आपत्ति की कि राम कैसे उसे पद-स्पर्श दें।[4] विश्वामित्र ने समझाया कि इस समय तो वह शिला है। बंगाली खाद्याखाद्य का विचार नहीं रखते थे, अतएव उनकी खाद्य-रुचि परिष्कृत करने के लिए दशरथ के व्रण की कल्पना की गयी, जिसका उपचार बताया गया घोंवे का शोरवा (शामुकेर झोल)। दशरथ ने भयंकर-यंत्रणा सहते हुए भी यह अखाद्य ग्रहण करने से अस्वीकार कर दिया।[5]

२—दक्षिण में आलवार, महाराष्ट्र में एकनाथ और नामदेव, उत्तर-भारत में रामानन्द एवं बंग में चैतन्य महाप्रभु ने वैष्णव-भक्ति के रूप में जनांदोलन प्रारम्भ किये। इन्होंने जातीयता का भेद-भाव भुलाकर मनुष्य-मात्र को भगवद्भक्ति का अधिकारी घोषित किया। फलतः इनके मत के अनुयायी केवल हिंदू-मात्र ही न हुए, अपितु कहीं-कहीं मुसलमानों ने भी दीक्षा ग्रहण की।

कृत्तिवास और तुलसी ने उच्च और निम्न-वर्ग के समन्वय के प्रयास दो प्रकार से किये—

(१) उच्च-वर्गीय पात्रों और चंडाल का स्नेह-मिलन।

(२) अछूतों को भी राम-भक्ति का अधिकार-प्रदान।

---

१ हरिदास बले प्रभु करि निवेदन।
खाइते उच्छिष्ट मोरे ना दिवे कखन॥ कृत्ति०, आदि०, पृ० ११

२ पालिल राजार वाक्य सकल शूकरे।
मल मूत्र परित्याग करिल अन्तरे॥ कृत्ति०, आदि०, पृ० ११

३ महेन्द्र बलेन, सीता ना हओ विकल।
प्रतिदिन आमि योगाइव सुधा फल॥ कृत्ति०, अरण्य०, पृ० १५७

४ इहा शुनि लक्ष्मण बलेन, शुन मुनि।
केमने दिवेन पद, उनि जे ब्राह्मणी॥
विश्वामित्र कहिलेन, शुन रघुवर।
ब्राह्मणी नहेन उनि एखन प्रस्तर॥ कृत्ति०, आदि० पृ० ७५

५ शामुकेर झोल खाओ, ना करिओ घृणा—कृत्ति०, आदि०, पृ० ४६

(१) कृत्तिवासी-रामायण में भरत गुह से मिलने पर कहते हैं कि तुम राम के मित्र हो। मुझे तुम्हारी पूजा करनी चाहिए। जिसे राम ने आलिंगन दिया, उस को प्रणाम करना चाहिए।[1]

मानस में वर्णन है कि केवट लोक और वेद दोनों की दृष्टियों से नीच है, जिसकी छांह छू जाने मात्र से स्नान करना पड़ता है, उसे भरत हृदय से लगाकर मिल रहे हैं।[2] वशिष्ठ एवं केवट के मिलन पर उन्होंने मर्यादा का पालन खूब दिखाया है। उसने अपने को छोटा समझ कर दूर से प्रणाम किया। स्वयं अशुचि है, ब्राह्मण का स्पर्श कैसे करे। और ब्राह्मण ने क्या किया—झपट कर उसे बरबस गले लगा लिया।

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू।
कीन्ह दूरि तें दंड प्रनामू।।
राम सखा रिषि बरबस भेंटा।
जनु महि लुठत सनेह समेटा।। मा० २–२४२–५, ६

(२) किंतु यह मिलन राम के नाते ही हुआ। गुह राम का मित्र है, राम ने उसे अपनाया है इसलिये राम-पक्ष के पात्र उसे इतना आदर देते हैं। राम स्वयं इतने भक्त-वत्सल हैं, कि भक्ति-पूर्वक बुलाने पर चंडाल के घर तक दौड़े जाते हैं—भक्ति ते डाकिले जान चण्डालेर वाड़ी।[3] राम का अवतार ही नीचों का निस्तार करने के हेतु हुआ है—नीचेर निस्तार हेतु तव अवतार।[4]

मानस में भी आभीर, यवन, किरात, खस, श्वपच आदि अनेक पापी राम का नाम केवल एक बार कहने से पावन हो जाते हैं।[5] राम का नाम ऐसा पवित्र है कि नाम-स्मरण करने वाले में पाप रह ही नहीं जाता। वे राम के भक्त रहने पर अछूत रह ही कहाँ गये। राम को केवल प्रेम प्यारा है,[6] जात-पांत नहीं। जो जात-पांत त्याग कर

---

१ भरत बलेन गुह श्रीरामेर मित।
करिते तोमार पूजा आमार उचित।।
जाँरे कोल दियाछेन आपनि श्री राम।
ताँहारे उचित हय करिते प्रणाम।। कृत्ति०, अयो०, पृ० १२६

२ लोक बेद सब भांतिहिं नीचा।
जासु छांह छुइ लेइअ सींचा।।
तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता।
मिलत पुलक परिपूरित गाता।। मानस २–१९३–३,४

३ कृत्ति०, लंका०, पृ० ३०९

४ कृत्ति०, किष्किंधा, पृ० १६४

५ आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते।। मा० ७–१२९ छंद १

६ रामहि केवल प्रेमु पिआरा। मानस २–३६–१

उनका भजन करता है, वही उन्हें प्राप्त कर सकता है।[1]

अछूत अब संतुष्ट थे। वे भी गर्व कर सकते थे कि वे भी हिंदू हैं। राम उनके भी हैं। राम उनका भी उद्धार करेंगे। आज तो वह भेद-भाव समाप्त हो रहा है फिर भी वे राम के प्रति जैसा श्रद्धा-भाव रखते हैं, वैसा विज्ञान के युग में उच्च-शिक्षा-प्राप्त सवर्ण-हिन्दू नहीं।

तुलसी के ब्राह्मण-अछूत-वर्णन में रूसी-विद्वान् श्रद्धेय वरान्निकोफ ने विषमता[2] देखी है। इस विषमता के कारण ही उन्होंने यह कल्पना की है—

संभवतः उनकी कट्टर परंपरागत उक्तियाँ, उन ब्राह्मणों द्वारा जोड़ी हुई प्रतीत होती हैं, जो निस्संदेह तुलसीदास की प्रभुता ,और लोक-प्रियता के सहारे अपने को ऊँचा उठाने की चेष्टा कर रहे थे।[3]

तुलसी ही नहीं कृत्तिवास में भी ऐसा विरोध पाया जाता है, किन्तु इसमें प्रक्षेप नहीं है। सीधी सी बात यह है कि वर्णाश्रमधर्म की पुनः-स्थापना के लिए ब्राह्मण का गुणगान है, और समस्त-समाज का संगठन करने के लिए तथा जनमात्र को प्रभावित करने के लिए उन्होंने अछूतों को भी रामभक्ति का अधिकार दिया है।

संस्कृतज्ञ-ब्राह्मण-विरोध—

समाज के सुधार के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता थी धार्मिक-ग्रंथों के प्रचार की। अब तक विद्वान्- ब्राह्मण प्रवचनों द्वारा पौराणिक कथाओं का प्रचार समाज में करते आये थे। किन्तु समाज का एक बड़ा भाग संस्कृत से अपरिचित होने के कारण युग-युग से उपार्जित महत्-ज्ञान का साक्षात्कार नहीं कर पा रहा था। विशृङ्खलित समाज का निम्न-भाग कहीं अन्य धर्मों की साधारण-शिक्षाओं से ही तुष्ट होकर आकृष्ट न हो जाय, इसके लिए उन्हें स्वधर्म के स्वरूप का ज्ञान देना परमावश्यक था। उस समय भाषाओं में धार्मिक साहित्य सुलभ कर देना बड़ा पाप समझा जाता था।

अष्टादश पुराणानि रामस्य चरितानि च।
भाषायां मानवः श्रुत्वा रौरवं नरकं व्रजेत्॥

बंगाल में कृत्तिवास ने सर्व-प्रथम यह दुःसाहस किया। उन्हें पंडितों का घोर-विरोध सहना पड़ा। बंगाल में प्रचलित निम्न- पद्य से ही ज्ञात हो जायगा कि कृत्तिवास के प्रति उस समय के पंडितों की क्या धारणा थी—

---

१ जांति-पांति धनु धरम बड़ाई।
प्रिय परिवार सदन सुखदाई॥
सब तजि तुम्हहि रहइ मन लाई।
तेहिं के हृदय रहहु रघुराई॥ मा० २-१३०-५, ६

२ इस प्रकार तुलसी के सामाजिक-दृष्टिकोण में स्पष्ट विरोध या विषमता है, मानस की रूसी भूमिका-पृ० १३३

३ मानस की रूसी भूमिका—पृ० १३३

कृत्तिवासे काशीदासे आर वामुन घेंये ।
एइ तिन सर्व्व नेशे शास्त्र खेल चुषे ।।

तुलसी के साथ भी यही स्थिति थी। लोगों का कहना है कि उन्हें बहुत तंग किया गया। इसीलिए वे अयोध्या से काशी चले आये थे। किसी ब्राह्मण ने उन पर आक्षेप किया होगा कि भाषा में क्यों लिखते हो, जिसके उत्तर में उनका एक दोहा प्रसिद्ध है—

का भाखा का संस्कृत प्रेम चाहिए सांच ।
काम जो आवै कामरी का लै करै कुमांच ।।

मानस में भी उन्होंने भाषा के प्रति पंडितों की उपेक्षा की ओर संकेत किया है।[1]

अनधिकारी लोग शास्त्र का अध्ययन न कर पाएँ, इसलिए पंडित लोग विरोध करते थे। वे विद्या का आदर करते थे और नहीं चाहते थे कि शास्त्र को सर्व-साधारण के पठन-योग्य बना कर उसका महत्त्व कम कर दें।

जनांदोलन की दृष्टि से संस्कृत बहुत उपयोगी नहीं थी। यद्यपि समस्त-भारत के प्रमुख विद्वान् संस्कृत में ही मनन और सृजन करते थे, किन्तु उनकी संख्या बहुत कम थी। मध्य-काल में साहित्य का उद्देश्य केवल साहित्य-सृजन न था। साहित्य के माध्यम से विभिन्न संप्रदाय-भुक्त सिद्ध एवं संत अपने-अपने सिद्धांतों का प्रचार भी करते थे। उन्होंने अपने-अपने क्षेत्र की भाषाओं में काव्य-रचना की। तुलसी के पूर्व भाषा द्वारा ज्ञान-प्रचार का व्यापक आंदोलन हो चुका था, किन्तु धार्मिक-ग्रंथों को भाषा में व्यवस्थितरूप से प्रस्तुत करने वाले कृत्तिवास एवं तुलसी ही थे, इसलिए इन्हें ही विरोध सहना पड़ा।

(आ) नारी-चित्रण—

भारतीय-संस्कृति में नारी का समादृत स्थान है। मनु ने कहा है, 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।'[2] हिन्दू परिवारों में पवित्र अनुष्ठानों के अवसर पर पहले कन्या की पुकार होती है। नन्हें मुन्ने जब देखते हैं कि खाने की वस्तु पहले कन्या के नाम पर उसकी बहिन पाती है, तथा छोटी होने पर भी सबके द्वारा चरणपूजा-प्राप्त करती है, तो कभी-कभी उन्हें ईर्ष्या होती है। उत्तर-प्रदेश में कहीं-कहीं कन्या चाहे बहिन, भतीजी एवं पुत्री क्यों न हो, उसके चरणस्पर्श की प्रथा है। बंगाल में भी पिता-माता तथा तत्समान-गुरुजन कन्या अथवा पुत्र-वधू को 'मा' कहकर पुकारते हैं, बूढ़े-बूढ़े बाप तक अपनी नन्हीं कन्याओं को प्यार करते समय 'मा', आमि तोमार जे बूढ़ो छेले ('मा' मैं तुम्हारा बूढ़ा पुत्र हूँ) कह जाते हैं। नारी मातृ-जातीय है, अतएव शाक्त बंगाल में कन्या को मा संबोधन प्राप्त हो सका।

इतना सब होने पर भी निन्दा भी कम नहीं की गयी। वह नरक का द्वार बतायी गयी। उसे पुरुष की साधना नष्ट कर देने वाली माया कह कर पुकारा गया। उसे

१ भाषा भनित मोरि मति मोरी ।
हँसिबे जोग हसें नहिं खोरी ।। मानस १–८–४

२ मनुस्मृति ३–५६ ।

शिशुकाल से लेकर वृद्धावस्था तक पुरुष द्वारा रक्षणीया एवं स्वतंत्रता के अयोग्य[१] बताया गया। पुरुष के चरित्र की अपेक्षा नारी के चरित्र की शुद्धता पर अधिक जोर दिया गया। फलतः पुरुष उच्छृङ्खल हुए, उन्होंने कोमलांगी नारी पर शास्त्र के बल पर शासन प्रारंभ कर दिया। 'नारीणां पतिरेको गतिः,[२] के कारण स्त्रियाँ पतिव्रता होकर पतियों को देवता मान कर पूजने लगीं। वे स्वप्न में भी अन्य-पुरुष की कल्पना कर पाप-अर्जन नहीं कर सकतीं, जबकि पुरुष को कई-कई विवाह करने की सुविधा रही।

नारी स्वभाव से ही कोमल एवं स्नेह-परायण होती है। हिन्दू-नियमों में बधकर तथा बाह्य-संसार से प्रायः अनभिज्ञ रह कर वह युग-युग से अपने स्नेह की धारा अपने परिवार के सीमित संसार में प्रवाहित करती आयी है। उसका कोमल-स्नेह केन्द्रित रहने के कारण सशक्त हो गया। भारत में इसीलिए पारिवारिक प्रेम उच्च-कोटि का पाया जाता है। वह किसी भी देश के पारिवारिक-प्रेम के लिए अतुलनीय है। परशुराम जी चतुर्वेदी ने सीता की तुलना शेक्सपियर के डेस्डिमोना और मिरांडा नारी पात्रों से करते हुए दिखाया है कि इनमें भी पतिव्रत हैं, किन्तु वह भावना नहीं है जो सीता में राम के सभी कार्य-अकार्य के प्रति अंत तक बनी रही।[३]

भारतीय-संस्कृति एक है, लगभग समस्त-भारत में एकसी सामाजिक व्यवस्था है, जोकि धर्म-शास्त्रों पर आधारित है। अतएव यहां के साहित्य में नारी का एक-सा ही रूप उभरा है। कृत्तिवास ने नारी का अबला और विवश रूप इस प्रकार खींचा है—रावणवध के उपरांत जब सीता राम के पास लायी जाती हैं, वे उन्हें स्वीकार नहीं करते। सीता अपनी स्थिति समझती हैं, वे हाथ जोड़ कर कहती हैं–प्रभु सब जान–बूझकर मेरी दुर्गति क्यों करते हो।[४] बाल्यकाल में जब मैं लड़कों के साथ खेलती थी, तभी से पुरुष का स्पर्श नहीं किया।[५] पाताल-प्रवेश के पूर्व भी सीता को राम के आचरण से बड़ा दुःख होता है। भारत में पति-पत्नी सम्बन्ध जन्म-जन्मांतर के लिए अटल माना जाता है। राम से बिछुड़ते समय भी सीता उनके प्रति कटु-वचनों का प्रयोग नहीं करतीं। जन्म-जन्म में उन्हीं के पति होने की कामना[६] लेकर तथा एक-टक उन्हीं की ओर देखतीं हुई वे पाताल-प्रवेश कर जाती हैं। इतनी है उनकी पतिनिष्ठा कि पति के आगे उन्होंने अपनी दृष्टि

---

१ पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने।
रक्षति स्थावरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्य मर्हति॥ मनु० ६, ३

२ न पिता नात्मजो नात्मा न माता न सखीजनः।
इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा॥ अयो० २७–५ वाल्मी० रामा०

३ मध्यकालीन श्रृङ्गारिक प्रवृत्तियाँ तथा नव निबन्ध–परशुराम चतुर्वेदी, पृ० १८, १६

४ जानिया शुनिया केन करिछ दुर्गति। कृति०, पृ० ४४०

५ बाल्य काले खेलिताम बालक मिशाले।
स्पर्श नाहि करिताम पुरुष छावाले॥ कृति०, लंका०, लंका०, पृ० ४४०

६ जन्मे जन्मे प्रभु मोर तुमि हओ पति।
आर कोन जन्मे मोर करो न दुर्गति॥ कृति०, उत्तर०, पृ० ५७३

तड़पते हुए लव-कुश की ओर नहीं की।[1] अंत समय में केवल एक बात उन्होंने कही कि अब अन्य किसी जन्म में मेरी दुर्गति न करना। प्रत्येक भारतीय-पत्नी समझती है कि पति के बिना उसकी गति नहीं है। वालि के मरने पर तारा अपनी स्थिति समझते हुए कहती है—शत-पुत्र-वती होने पर भी जो स्त्री विधवा हो जाती है सभी उसे अभागिनी कहते हैं।[2]

मानस में नारी की पराधीन-स्थिति का वर्णन मैना केवल एक अर्धाली में कर देती है। विदा होते समय वह पार्वती को नाना प्रकार की शिक्षा देती है। फिर ध्यान आता है कि स्त्री-जाति ही कितनी अभागिनी है कि युवावस्था तक जिन लोगों के साथ रह कर बड़ी हुई उनका मोह छोड़ कर दूसरे व्यक्ति एवं घर की होना पड़ता है।

कत विधि सृजीं नारि जग माहीं।
पराधीन सपनेहु सुख नाहीं॥ १–१०१–५

राम के वन-गमन के अवसर पर सीता ने भी अपनी 'पतिरेको गतिः' वाली स्थिति बतलायी है—

जहं लगि नाथ नेह अरु नाते।
पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी।
तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥ २–६४–३,७

कृत्तिवास ने अपने ग्रंथ में स्त्री की निंदा कम की है। केवल भरत के द्वारा कैकेयी और रावण के द्वारा मंदोदरी को 'वामा'[3] कहलाया है, अन्यथा उन्होंने स्त्री की प्रशंसा ही की है। अरण्य-कांड और लंका-कांड में राम विलाप करते हुए लक्ष्मण से कहते हैं, "स्त्री के बिना पुरुष कभी सुखी नहीं रह सकता। मैं राज्यहीन हूँ, पितृहीन हूँ और अब नारी-विहीन हूँ। और सब भूल सकता हूँ किंतु नारी का हरण नहीं भूल सकता। संसार में स्त्री-पुरुष दोनों होते हैं। भार्या के संतति होती है, जिससे परिवार बढ़ता है। संसार में पुत्र ही बड़ा धन है। उसके बिना गति नहीं क्योंकि वह पिंड देता है, और गया जाकर पितृतर्पण करता है। जिसके पुत्र नहीं होता उसे लोग 'आंट कूड़ा' (निपूता) कहते हैं, और ऐसे व्यक्ति को देखकर श्राद्ध-क्रिया करने से वह निष्फल हो जाती है। अतएव जाति, बंधु, सहोदर तथा कितने ही लोग क्यों न मर जायँ, सबसे अधिक दुःख

---

१ नाहि चाहिलेन सीता उभय छावाले।
श्री रामेर निरखिया प्रवेशे पाताले॥ कृति०, उत्तर०, पृ०, ५७३

२ स्वामी बिना स्त्री लोकेर आर नाहि गति।
....
शतपुत्र वती यदि स्वामी हीना हय।
तथापि सकल ताके अभागिनी कय॥ कृत्ति०, किष्किंधा०, पृ०, १७६

३ (१) वामा जाति स्वभावतः वाभा बुद्धि धरे। कृत्ति० अयो०, पृ० १२६
(२) वामा जाति हय तुमि तेमनि वचन॥ कृत्ति०, लंका०, पृ० ३२७

भार्या के अभाव में होता है।[1]

इन पंक्तियों पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जायगा कि भार्या महत्-धन है– संपत्ति है, तथा उसका महत्त्व केवल इसलिए है कि वह संतति को जन्म देती है जिससे कि संसार का पालन होता है, अर्थात् सृष्टि का क्रम चलता रहता है।[2] गृहस्थ कृत्तिवास नारी की निंदा कैसे करते ! किंतु यहाँ भी कृत्तिवास के मुख से शास्त्र बोल रहे हैं। शास्त्रीय-व्यवस्था के अनुसार आजतक हिंदू समाज में नारी का आदर उसकी संतति के कारण ही होता है। विवाह का उद्देश्य भी यही है। रघुवंश में भी हमें यही दृष्टिकोण मिलेगा।[3]

कृत्तिवास की तुलना में तुलसी ने नारी की अत्यधिक निन्दा की है। प्रश्न उठता है, क्या तुलसी सचमुच नारी को इतना छोटा समझते थे। यदि ऐसा होता तो कम से कम अधम-नारी पात्रों के चित्रण में ऐसा दृष्टिकोण दिखाया होता। पर ऐसा है नहीं, उनके अधम-पात्र भी अन्य अनेक रामायणों के नारी-पात्रों की अपेक्षा उच्च हैं। तुलसी ने परम्परा का पालन किया है। एक ओर सम-सामयिक संत-कवि नारी की निन्दा कर रहे थे और दूसरी ओर संस्कृत-ग्रंथों में भी नारी में आसक्त न होने का उपदेश था।

तुलसी के पूर्व अनेक संत कवियों ने नारी की निन्दा की है। स्वयं महात्मा कबीर ने नारी को काली नागिन एवं नरक का कुण्ड आदि कहा है।[4]

---

१ स्त्री बिना पुरुष सुखी कोथाओ न शुनि।
राज्यहीन पितृहीन हाराइनू नारी।
से सब पासरि, नारी पासरिते नारि॥ कृत्ति०, लंका०, पृ०, ३७०
स्त्री पुरुष दुइजने धरेछे संसार।
भार्या ते सन्तति हय वाड़े परिवार॥
स्त्री थाकिले पुत्र हय संसारेर सार।
पुत्र ना हइल तार गति नाहि आर॥
पिण्ड देय गयाय से करये तर्पण।
संसारेर मध्ये भाइ पुत्र बड़ धन॥ कृत्ति०, किष्किंधा०, पृ० १८२
....
पुत्र ना थाकिये लोक बले आंट कूड़ा।
तार मुख देखि श्राद्ध जे करिते जाय।
ाद्ध क्रिया वृथा तार शास्त्रे हेन कय॥
जातिबन्धु सहोदर मरे जत लोक।
सवार अधिक भाइ स्त्रीर बड़ शोक॥ कृत्ति०, किष्किंधा०, पृ० १८२

२ अतएव शुन भाइ भार्या बड़ धन।
ताहाते सन्तति हय संसार पालन॥ कृत्ति०, किष्किंधा०, पृ० १८२

३ प्रजायै गृहमेधिनाम् ॥७॥ सर्ग १, रघुवंश
...परिणेतुः प्रसूतये ॥२५॥ सर्ग १, रघुवंश

४ कांमणि काली नागणीं, तीन्यूं लोक मँझारि।
नारि नसावै तीनि सुख जा नर पासैं होइ।
भगति मुकति निज ग्यान मैं, पैसि न सकई कोई॥ १०
नारी कुण्ड नरक का बिरला थंभै बाग।
कोइ साधु जन ऊबरै, सब जग मूवा लाग॥१५ कामीनर कौ अंग, कबीर।

तुलसी ने जो कुछ कहा है उस पर हितोपदेश, पंचतंत्र तथा भर्तृहरि के त्रय-तिलक का प्रभाव है। इस प्रकार के संस्कृत-ग्रंथों एवं विरक्त-पुरुषों ने सारे समाज का दृष्टिकोण ही ऐसा बना दिया था। आज भी लोग नारी-परायण रह कर भी इन्हीं सन्तों की वाणियों का उल्लेख कर नारी-निन्दा करते रहते हैं साधना करना पुरुष का कार्य है। उसके साधन-पथ में अनेक प्रलोभन बाधास्वरूप उपस्थित होते हैं, जिनमें एक नारी भी है। इसीलिए उसके प्रति विरक्ति भरने के लिए ऐसे वचन कहे गये हैं—

स्तनौ मांस ग्रन्थी कनककलशावित्युपमितौ।
मुखं श्लेषमागारं तदपि च शशाङ्केन तुलितम्।
सुवन्मूत्र-क्लिन्नं कविवरकरस्पर्धि जघनमहो।
निन्द्यं रूपं कविजनविशेषैर्गुरु कृतम्॥ २० वैराग्य शतक।
कृश: काण: खञ्ज: श्रवणरहित: पुच्छविकलो,
व्रणी पूतिक्लिन्न: कृमिकुल शतैरावृततनु:।
क्षुधाक्षामो जीर्ण: पिठरज कपालार्पितगल:
शुनी मन्वेति श्वा हतमपि च हन्त्येव मदन:॥१८ वैरा शतक।

आगे यही लेखक स्पष्ट स्वीकार कर लेता है कि दुर्बलता पुरुष में है—

विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशनास्तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कज्जंसुललितं दृष्ट्वैव मोहं गता:। शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं भञ्जन्ति ये मानवास्तेषामिन्द्रिय निग्रहो यदि भवेद्विन्ध्यस्तरेत्सागरम्॥६५॥ श्रृङ्गार-तिलक।

तुलसी ने पुरुष की उपर्युक्त प्रकार की दुर्बलता न बताकर नारी की ही निन्दा की है। उन्होंने अवश्य ही कुछ कड़ी बातें कही हैं किन्तु ये कथन भी परम्परानुगत हैं।

शूर्पणखा राक्षसी थी, उसकी काम-वेदना जाग्रत होने पर ही कवि कहता है, अन्य सत्-नारी पात्रों के प्रति नहीं—

भ्राता पिता पुत्र उरगारी।
पुरुष मनोहर निरखत नारी॥
होइ विकल सक मनहिं न रोकी।
जिमि रबि मनि द्रव रबिहि बिलोकी॥३–१६–५, ६
सुवेषं पुरुषं दृष्ट्वा भ्रातरं जनकं वा सुतम्।
योनि क्लिद्यति नारीणां सत्यं सत्यं हि नारद॥ हितो०, मित्रलाभ, ५।१६५

पंचतंत्र २–५७ एवं २-६३-५ में भी ऐसा ही कुछ कहा गया है। तुलसी द्वारा वर्णित नारी के अष्ट अवगुणों पर भी हितोपदेश की छाप है।

अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता।
अशौचं निर्दयत्वं च नारीणां दोषा:स्वभावजा:॥ मित्र भेद–२०७।

यदि नारी-विषयक उक्तियों को लेकर निंदा करना ही है, तो तुलसी की नहीं शास्त्र-व्यवस्था की निंदा होनी चाहिए। तुलसी ने अपने काल की प्रवृत्तियाँ देखकर ही नारी की

निंदा की है। तांत्रिकों ने अपने उद्देश्य से च्युत होकर जिस प्रकार की भ्रष्ट-साधनाओं का प्रचार किया था, उससे समाज नारी-लोलुप हो उठा था। शासक विलासी एवं सुरा-सुन्दरी-प्रिय मुसलमान था। वैष्णव-भक्ति के क्षेत्र में राधाकृष्ण के नाम पर वासनाओं का अर्घ्य चढ़ाया जा रहा था। तुलसी ने स्वयं उस काल की स्थिति का वर्णन निम्न-शब्दों में किया है—सभी मनुष्य नारी-विवश होकर मदारी के बंदर की भाँति नाच रहे हैं। वे परत्रिय-गामी, कपटी और सयाने हो गये हैं तथा मोह, द्रोह और ममता में संलग्न हैं। कुलवंती-स्त्रियों को घर से निकाल रहे हैं। वे ऐसे बेहाल हो गये हैं कि वासना की पूर्ति के लिए पुत्री और वधु को भी नहीं छोड़ते। स्त्रियां भी अपने गुणी और सुन्दर पतियों को छोड़कर पर-पुरुष का गमन करती हैं। विधवाएँ चटक-भटक से रहती हैं।[1]

ऐसी स्थिति में तुलसी ने नारी की निंदा कर पुरुष-समाज को नारी के कामिनी-रूप से दूर रखने की चेष्टा की थी।

कृत्तिवास संत नहीं थे जो नारी की निंदा करते। उन्होंने भार्या-परिग्रह किया होगा एवं श्राद्ध के लिए सन्तानोत्पत्ति भी की होगी। वे नारी की निंदा कैसे कर सकते थे। तुलसीदास संत थे, साथ ही ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से धर्म एवं समाज के सुधारक भी। उन्होंने जहाँ कुछ अवांछनीय देखा, उसके निराकरण का प्रयत्न किया।

तुलसी को दोषी न ठहराने पर शास्त्र दोषी ठहरते हैं। किंतु एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि शास्त्र प्राचीन-काल में लिखे गये हैं। उनमें दोनों पक्ष हैं, एक ओर नारी की निंदा है, तो दूसरी ओर प्रशंसा भी है। यदि एक ओर नारी पर उत्तरदायित्व का गुरुत्व है, तो पुरुष भी उससे वंचित नहीं है।[2] शास्त्रों ने दोनों पक्षों का संतुलन किया है। भारतीय-समाज में नारी के कुछ अधिक त्याग पर उन्होंने जो व्यवस्था निर्मित की वह युगों तक हमारे समाज को सुश्रृङ्खलित किये आ रही है। जीव-विज्ञान एवं समाज-शास्त्र की दृष्टि से देखने पर हम ऐसा नहीं कह सकते कि शास्त्रों ने नारी के साथ अन्याय किया है। यह तो है प्राचीन-काल की बात, मध्यकाल में भिन्न-भिन्न देशों ने भिन्न-भिन्न संस्कृतियों को जन्म

१ नारि बिबस नर सकल गुसाईं।
नाचहिं नट मर्कट की नाईं॥ ७–९८–१
परत्रिय लंपट कपट सयाने।
मोह द्रोह ममता लपटाने॥ ७–९९–१
कलिकाल बिहाल किए मनुजा।
नहिं मानत क्वौ अनुजा तनुजा॥ ७–१०१–३
गुन मंदिर सुन्दर पति त्यागी।
भजहिं नारि पर पुरुष अभागी॥ ७–९८–४
सौभागिनीं विभूषन हीना।
विधवन्ह के सिंगार नवीना॥७–९८–५

२ जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः।
तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः॥५८॥
तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च॥ ५९॥ मनु०, अध्याय ३

दिया। उन्होंने नारी को निम्न-स्थान प्रदान किया। जैसा संतुलन भारतीय-समाज में रहा है, वैसा अन्यत्र कहीं न रहा। फिर भी कहना पड़ेगा कि मध्यकाल में नारी आवश्यकता से अधिक नियंत्रित रही है।

पर्दा-प्रथा—

भारत में कई विभिन्न-संस्कृतियों में संघात और समन्वय होता रहा है। मुसलमान जब यहाँ आये तो उन्होंने कई बातें अपना लीं। हिन्दुओं की जाति-प्रथा की छूत उन्हें भी लग गयी। उनके यहाँ भी शेख-सैयद का भेद होने लगा। हिन्दू-स्त्रियों की भाँति मुस्लिम-स्त्रियाँ भी एक-पतिनिष्ठ होने लगीं। हिंदू-स्त्रियों में पर्दा-प्रथा का प्रचार कम था। राजभवन की महिलाओं में पर्दा रहा होगा, किंतु मुसलमानों की देखा-देखी इसका प्रचार बढ़ गया। विजयोन्मत्त मुस्लिम-युवक नारियों के साथ दुराचार करते थे।[1] नारी-अपहरण पर काजा भी न्याय नहीं करते थे।[2] संभवत: मुसलमानों की लोलुप-दृष्टि से परित्राण के लिए ही हिन्दुओं में इसका प्रचार जोर-शोर के साथ हो गया।

दोनों लेखक जिस युग में उत्पन्न हुए, उस युग में नारी पूर्णत: 'असूर्यम्पश्या' हो गयी थी। कृत्तिवास जहाँ तक वाल्मीकि का अनुसरण करते रहे, वहाँ तक उनकी सीता आदि नारियाँ धड़ल्ले के साथ लम्बे कथोपकथन करती हुई दिखाई पड़ती है। सीता राम को दो स्थानों पर डाँट भी लगाती हैं, जिसमें एक अवसर पर राम की सेना के पुरुष भी विद्यमान हैं। अन्य अवसरों पर वे अपनी सीता को युग के प्रभाव से बचा नहीं सके हैं। उन्होंने वन-गमन के समय कहा है, 'जो सीता सूर्य की किरणें भी नहीं देखती थीं, वे वन जा रही हैं और सब लोग देख रहे हैं।[1]

जे सीता ना देखितेन सूर्य्येर किरण।
हेन सीता वने जान देखे सर्व्व जन ॥ पृ० १०८ अयो०

पुष्पक-विमान पर राम के साथ बैठने के समय वे अपने मुख पर आँचल डाल लेती हैं। इतना ही नहीं, उनके बैठने का स्थान चारों ओर से कनात द्वारा घेर दिया गया। सुन्दरी सीता उसके बीच में बैठीं।[3]

कृत्तिवास के नारी-पात्र हिन्दू-जमींदारों के घर के हैं और तुलसी के ये पात्र साधारण जन-समाज के। हिन्दू-राजाओं अथवा जमींदारों में मुसलमानों के अनुकरण

---

१ अकबर के समय में मिरजा लाहौरी ने एक नववधु को विवाह मंडप से उड़ा दिया था। आइन० २९३ ब्लाखमन।

२ धुन्दकारी हुकुम कहओ का अपने ओ जोए परारि हा—पृ० ४२, कीर्त्तिलता-विद्यापति (काजी के हुक्म की बात क्या कहूँ, अपनी भी स्त्री परायी हो जाती है।)

३ चड़ेन पुष्पके राम सीता कुतूहले।
मुख ढाकिलेन सीता नेतेर अञ्चले ॥
नेतेर कानात् दिया घेरिल चोउरी।
तार मध्ये रहिलेन श्रीराम सुन्दरी ॥ कृत्ति०, लंका०, पृ० ४४७

में पर्दा अधिक था। साधारण-समाज में उतना पर्दा नहीं था, किन्तु नारी-सुलभ शील-संकोच की कमी न थी। फलतः तुलसी की अपेक्षा कृत्तिवास ने यह प्रथा अधिक दिखायी है।

मानस में पर्दे का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। वैसे मानस की जानकी सदैव लज्जावनता ही दिखायी देती हैं। गुरुजनों की उपस्थिति में वे राम के साथ बात करने में लजाती हैं। राम के वनगमन का दुःखदायी समाचार ज्ञात कर वे अकुला कर दौड़ी गयीं, किन्तु सास के चरणों में प्रणाम कर सिर झुका कर बैठी रहीं। आपत्ति-काल देख कर उन्होंने मर्यादा-भंग करके पति से बातचीत भी की तो सास को प्रणाम कर तथा अपनी अविनय के लिए क्षमा-प्रार्थना करने के उपरान्त।[१] ससुर से भी वे कुछ नहीं कहतीं। दशरथ उन्हें रोकना चाहते हैं, वे केवल सकुचा कर निरुत्तर बैठी रहती हैं। वन-पथ में ग्राम-वधुओं द्वारा राम का परिचय पूछने पर भी वे सकुचा गयीं। यह सकुचाना अन्य प्रकार का था, जिसमें माधुर्य भी है। किन्तु परिचय देने की उनकी क्रिया में अवगुंठनवती पुर-वधू की व्रीड़ा का चित्र ही नेत्रों के सम्मुख प्रस्तुत हो जाता है। उन्होंने घूंघट की ओट से सैन कर राम का परिचय दिया है।[२]

(इ) संस्कार—

समस्त भारत में सोलह-संस्कारों में लगभग सभी एक प्रकार से मनाये जाते हैं। संस्कारों की अनुष्ठान-पद्धतियों का वर्णन विभिन्न-गृह्य सूत्रों में भिन्नता रखता है, अतएव भिन्न-भिन्न प्रान्तों की पद्धतियों में भी कुछ अन्तर दिखलायी पड़ता है। अन्तर का दूसरा कारण लौकिक-रीतियाँ हैं। कृत्तिवास और तुलसीदास के समय में संस्कारों का जो रूप प्रचलित था, वह आज भी चला आ रहा है। दोनों लेखकों ने राजकुमार-राम से सम्बन्धित संस्कार-पद्धतियों का वर्णन किया है। यदि उस वर्णन में मणिमुक्ता-सुवर्ण आदि की चमक-दमक निकाल दी जाय तो शेष-वर्णन में लोक-जीवन की स्पष्ट झलक मिल जायगी।

दोनों रामायणकार धर्म-शास्त्र लिखने नहीं बैठे थे। प्रसंग से सम्बन्धित मुख्य संस्कारों का आवश्यकतानुसार स्वल्प अथवा विस्तृत वर्णन किया है।

कृत्तिवासी-रामायण में वर्णित संस्कार—

जातकर्म—यह जन्म के दिन का उत्सव था, छठें दिन षष्ठी[३] पूजा होती थी,

---

१ समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासुपद कमल जुग बंदि बैठि सिर नाइ॥ २—५७
लागि सासु पग कह कर जोरी।
छमबि देवि बड़ि अविनय मोरी॥ २-६३-५

२ बहुरि बदनु बिधु अंचल ढांकी।
पिय तन चितइ भौंह करि बांकी॥
खंजन मंजु तिरीछे नयननि।
निज पति कहेउ तिन्हहि सियं सयननि॥ मा० २-११६-६, ७

३ छय दिने षष्ठी पूजा निशि जागरणे। कृत्ति०, आदि० पृ० ६०

जिसे हिन्दी-भाषी छठी कहते हैं। इस दिन निशि-जागरण किया जाता है, क्योंकि इस दिन विश्वास किया जाता है कि ब्रह्मा आकर भाग्य-लिपि लिखते हैं। कृत्तिवास ने एक और प्रथा का वर्णन किया है जिसे आजकल (और संभवतः तब भी) बंगाल में 'आठ कौड़े' कहते हैं। प्रथा का वर्णन ज्ञात करने पर नाम की सार्थकता स्पष्ट हो जायगी। कृत्तिवास ने केवल इतना लिखा है कि राजा ने आठ लड़के बुलाकर उन्हें आठ प्रकार का भुना हुआ अन्न दिया, साथ ही कपड़े, सोना आदि वस्तुएँ भी दीं।[1]

इस प्रथा का आज भी प्रचलित पूर्ण-रूप इस प्रकार है—नवजात शिशु के मंगल के लिए आठ बालक बुलाये जाते हैं। सूप में आठ प्रकार का भुना हुआ अन्न रखकर सूप पीटा जाता है, स्त्रियाँ यह भी कहती जाती हैं—"आठ कौड़े, आठ कौड़े, छेले आछे भालो ?" फिर अन्न-सहित यह सूप बालकों को दे दिया जाता है।

ओदन-प्राशन—अथवा अन्न-प्राशन छठें मास होता था।[2] पिता-पुत्र के मुख में मिष्ठ-अन्न और जल देता था। फिर सब अनेक प्रकार के उपहार देते थे।

नामकरण—ओदन-प्राशन के साथ ही नामकरण होता था।[3]

हातेखड़ी—विद्यारंभ-संस्कार को बंगाल में 'हातेखड़ी' कहते हैं, क्योंकि बालक के हाथ में खड़ी देकर ही प्रथम बार उससे लिखवाया जाता है। यह संस्कार पाँच वर्ष की आयु में किया जाता था।[4]

यज्ञोपवीतः—धनुभंग के समय तक रामादि भाइयों का यज्ञोपवीत नहीं हुआ था, मिथिला में ही क्षौर-कर्म के साथ उनका यज्ञोपवीत किया गया।[5]

मानस—

तुलसी ने कुछ संस्कारों के नाम दिये हैं, किंतु तत्संबंधित प्रथाओं का विवरण नहीं दिया है। गीतावली में अवश्य ही कुछ विस्तार से वर्णन किया गया है। मानस में जातकर्म[6] संस्कार के समय धूमधाम उत्सवादि का वर्णन सुन्दर है। कृत्तिवासी-रामायण

---

१ दिल अष्ट कलाइ अष्टाहे शिशुगणे ॥
डाक दिया आने राजा बालक गणेरे।
कापड़ पूरिया सोना दिल सबाकारे ॥ पृ० ६०

२ छय मास वयस्क हइले चारिजन।
कराइल सबाकार ओदन प्राशन ॥ पृ० ६०
दशरथ चारि पुत्र लये निज कोले।
मिष्ट अन्न जल दिल वदन कमले।
सकले यौतुक दिल आसि राज धाम ॥ पृ० ६०

३ विचार करने सबे राखेन कि नाम। कृत्ति० आदि०, पृ०

४ पञ्च वर्ष गत हय हाते दिल खड़ी। कृत्ति० आदि० पृ० ६१

५ क्षौर कर्म्म करिलेन चारिटि नन्दने।
आर यज्ञोपवीत हइल चारिजने ॥ कृत्ति० आदि० पृ० ८४

६ नंदीमुख सराध करि जात करम सब कीन्ह। मानस १-१९३

के समान गीतावली में छठी के दिन स्त्रियों के निशि-जागरण का वर्णन है।[1] कुछ दिन बीतने पर कुल-पुरोहित को बुला कर नामकरण[2] संस्कार कराया जाता था। चूड़ाकर्म[3] के समय ब्राह्मणों को दक्षिणा दी जाती थी। कुमारावस्था प्राप्त करने पर यज्ञोपवीत[4] दिया जाता था, और तभी से विद्यारंभ होता था। अयोध्याकांड में कर्णवेध[5] का भी नामोल्लेख हुआ है।

कृत्तिवासी-रामायण के अरण्य-कांड में चूड़ाकर्म और कर्णवेध संस्कारों का उल्लेख-मात्र है।

चूड़ा कर्णवेध हय लोके चमत्कार। कृत्ति०अरण्य० पृ० १३४

विवाह-संस्कार—

दोनों लेखकों ने विवाह-संस्कार का विस्तृत वर्णन किया है, अतएव इसका पृथक-वर्णन अधिक समीचीन होगा।

कृत्तिवासी-रामायण के अनुसार—

अधिवास—गंध-माला-वस्त्र आदि द्वारा यह संस्कार आज भी मनाया जाता है। विवाह के दिन अथवा उससे एक दिन पूर्व वर-कन्या का अधिवास किया जाता है। प्रतिमा का भी अधिवास होता है। पहले अभिषेक के समय राजकुमार का भी अधिवास किया जाता था। कृत्तिवासी रामायण के अनुसार विवाह के अवसर पर कुशासन पर विराजमान पुरोहित यथा-विधान घट-स्थापन कराते थे। घट के ऊपर आम्रपत्र रहते थे और नीचे दूर्वा एवं धान। ब्राह्मणों की वेदध्वनि के मध्य नाना-आभरणों से सज्जित कन्या आकर स्वर्ण-पाट पर बैठती थी। ब्राह्मण वेद-मंत्र पढ़ कर कन्या के ललाट पर सुगन्धि-लेप करते थे। उसे अनेक प्रकार के वस्त्र और अलंकार दिये जाते थे। जलधारा के साथ कन्या को घर के भीतर भेज दिया जाता था।[6]

क्षौर-कर्म के उपरांत क्षत्रिय वर को यज्ञोपवीत दिया जाता था। उसके ललाट पर चन्दन लगाकर नूतन वस्त्राभूषणों से उसका भी शृङ्गार होता था।[7]

तत्पश्चात् मंगल एवं अभ्युदय के लिए 'नांदी-मुख अथवा वृद्धि-श्राद्ध'[8] किया जाता था। आज भी मांगलिक कार्यों के पूर्व छः पीढ़ी तक के पितरों का श्राद्ध करने की प्रथा है।

---

१ तिन्ह की छठी मंजुल मठी जग सरस जिन्हकी सरसई।
किये नींद भामिनि जागरन अभिरामिनी जामिनि भई। गीता ५ बाल०
२ नामकरण—मानस १-१९६, २
३ चूड़ाकर्म—मा०। १-२०२ ३
४ यज्ञोपवीत, विद्यारंभ—मा० १-२०३, ३,४
५ कर्णवेध, मा० २-९-६
६ कृत्ति० रामा० आदि०, पृ० ८३
७ कृत्ति० रामा० आदि०, पृ० ८४
८ कृत्ति० रामा० आदि, पृ० ८४

इसका उद्देश्य मंगल-कामना होता है। मानस में भी जातकर्म के समय नांदीमुख-श्राद्ध कराया गया है।[१]

माताएँ पुत्र-वर के हरिद्रा[२] लगाती थीं तथा सखियाँ उसके अंगों में पिठाली[३] (पिसा हुआ चावल) लगाती थीं। ये दोनों वस्तुएँ उबटन थीं। देह-परिष्कार एवं वर-वधू के मंगल के लिए हिंदी-भाषी जनता में भी उबटन लगाने की प्रथा का प्रचार है। हरिद्रा लगाने को ही बंगाल में 'गाये हलूद' (गात्र-हरिद्रा) कहते हैं। पवित्र-जल से स्नान के पश्चात् वर के हाथ में 'मंगल-सूत्र' बांधा जाता था। मस्तक पर पगड़ी बाँध कर अंगद, वलय, मुक्ताहार एवं अँगूठी से वर की सज्जा की जाती थी। क्षत्रिय-वर चतुर्दोल में बैठकर चलता था, जिसमें स्वर्णकलश की स्थापना रहती थी, तथा जो सोने की झालर और गज-मुक्ताओं से शोभित रहता था। बारात के साथ सजे-बजे रथ, घोड़े और हाथी चलते थे। बीच-बीच में नृत्य होते जाते थे।[४]

छायामंडप—इसके नीचे पहुँच कर वर ब्राह्मणों को प्रणाम करता था। वस्त्र और चंदन से उसका स्वागत होता था, यहीं सखियाँ वर का 'वरण विधान'[५] करती थीं, कृत्तिवास ने लिखा है कि स्त्रियों ने पैरों पर दधि और माथे पर दूर्वाधान प्रदान कर यह विधान किया।

यह पद्धति आज भी प्रचलित है। स्त्रियाँ 'वरण डाला' सजाती हैं। यह बाँस का सूप होता है, जिसे 'कूला' कहते हैं, इसमें पुष्प, दूर्वा और चंदन आदि रख कर उपर्युक्त प्रकार से वरण-विधान किया जाता है। सखियों के जाने के पश्चात् दोनों कुलों के पुरोहित अपने-अपने पक्ष का शाखोच्चार करते थे। कन्या का पिता गले में वस्त्र डालकर कहता था, 'तुम्हारे पुत्र को कन्या प्रदान कर मैं शरण में आया हूं।' इसी प्रकार वर का पिता भी अपने पुत्र को देकर शरण में आने की बात कहता था।[६]

स्नान-शृंगार से शोभित कन्या रेशमी चादर से सर्वांग ढक कर मंडप के नीचे आती थी। कन्या पुष्पाञ्जलि प्रदान कर वर को प्रणाम करती थी, फिर सात बार उसके आस-पास प्रदक्षिणा करती थी।[७] सात बार प्रदक्षिणा का सम्बन्ध सप्तपदी अथवा भाँवर से नहीं है। वर के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए ही इसे किया जाता था। विवाह के अतिरिक्त अग्नि-परीक्षा के समय भी सीता ने राम की सात बार प्रदक्षिणा की थी। अग्नि की भी प्रदक्षिणा की थी, किंतु केवल तीन बार।[८]

---

१ मानस १-१९३।

२ हरिद्रा माखाय चारि वरे कुतूहले। कृत्ति० आदि० पृ० ८४

३ अङ्गे तें पिठालि दिल सखीरा सकले॥ आदि०, पृ० ८४

४ कृत्ति० रामा० आदि०, पृ० ८४

५ नारीगण करिलेक वरण विधान।
पाये दधि दिलेन माथाय दूर्व्वाधान॥ आदि० पृ० ८४

६ कृत्ति० रामा० आदि०, पृ० ८४–८६

७ प्रदक्षिण सातवार करिल रामेर। कृत्ति०, आदि०, पृ० ८७

८ सातवार रामेर करेन प्रदक्षिण।
प्रदक्षिण अग्निरे करेन बार तिन॥ कृत्ति०, लंका०, पृ० ४४१

शुभदृष्टि—बंगाल में एक मधुर-प्रथा शुभदृष्टि कहलाती है। वर और कन्या प्रथम बार एक दूसरे को देखते हैं। कृत्तिवासी-रामायण में दशरथ और कौशल्या परस्पर-शुभदृष्टि करते हैं।[१] राम-सीता के विवाह के अवसर पर कृत्तिवास ने शुभदृष्टि करने की प्रथा का वर्णन इस प्रकार किया है—

> अन्तः पट घुचाइल जत बन्धुगण।
> सीता रामे परस्पर हैल दरशन ।। आदि०, पृ० ८७।

कृत्तिवास द्वारा वर्णित पद्धति आज बंगाल में प्रचलित नहीं है। अतएव बंगाली लोग इस सम्बन्ध में जिज्ञासा करने पर इसका अर्थ खींच-तान कर आधुनिक-पद्धति के अनुसार कर देते हैं। बंगाल में इस समय शुभदृष्टि इस प्रकार मनायी जाती है। वर छाया-मंडप के नीचे आकर खड़ा हो जाता है। कन्या की आँखों पर पान बाँध कर इस प्रकार आड़ कर दी जाती है कि उसे अपने पैरों के पास की पृथ्वी तो दिखाई पड़ती है, किन्तु सामने की वस्तुएँ दृष्टिगोचर नहीं होतीं। शुभदृष्टि कराने के समय कन्या को आसन-समेत इतना ऊँचा उठाते हैं कि वर-कन्या की दृष्टियों का मिलन हो जाता है। उनके सिरों के ऊपर वस्त्र भी डाल देते हैं ताकि अन्य लोग न देख सकें। कृत्तिवास के वर्णन से प्रतीत होता है कि इस प्रथा के समय वर-कन्या के मध्य वस्त्र की ओट कर दी जाती थी, इसके पश्चात् बन्धुगण वस्त्र को हटा देते थे, ताकि वर-कन्या परस्पर दर्शन कर सकें।

गृह्य-सूत्रों में इस प्रथा का वर्णन है, तथा इसका नाम 'परस्पर-समीक्षण' दिया है। आश्वलायन गृह्यसूत्र परिशिष्ट १.२३ का वर्णन कृत्तिवास के वर्णन से मिलता है। उसमें लिखा है—सबसे पहले वर और कन्या के बीच एक वस्त्र से आड़ कर दी जाती है। फिर शुभ-मुहूर्त में वस्त्र हटा दिया जाता है और दोनों एक दूसरे को देखते हैं। अनेक गृह्यसूत्रों में इसका वर्णन है।[२]

षष्ठी-पूजन तथा हास-परिहास—सखियाँ जलधारा के साथ कन्या को किसी अंधकारपूर्ण प्रकोष्ठ में ले जाकर लिटा देती थीं। फिर वर से आकर षष्ठी-पूजन के लिए कहतीं, उनकी आज्ञा होती कि कन्या को हाथ पकड़ कर उठा लाओ। कन्या को भय होता था कि उसका पति कहीं भूल से उसका चरण-स्पर्श न करले, इसलिए वर की सहायतार्थ वह अपने बाएँ हाथ की शंख-चूड़ी बजाकर संकेत कर देती थी कि हाथ यहाँ है, किन्तु सखियाँ कब मानने वालीं, वे तो यही कहती थीं कि पैर पकड़ कर उठाया है।[३]

---

१ शुभ क्षणे दुइजने शुभ दृष्टि करे। कृत्ति० आदि०, पृ० ३३

२ हिस्ट्री ऑफ़ धर्म-शास्त्र जिल्द २, भाग १, पृ० ५३३

३ वर के आनिते आज्ञा करे सखी गण। आसिया करून राम षष्ठीर पूजन ।।
हाते धरि आनाइल रामेरे तखन। सीता तोल हात धरि, बले बन्धुगण ।।
तखन भावेन मने सीता ठाकुरानी। पाये हात देन पाछे राम गुणमणि ।।
करिलेन सीता वाम हस्ते शङ्खध्वनि। हाते धरे सीतारे तोलेन रघुमणि ।।
स्त्रीलोकेरा परिहास करे छल पाये। केह बले हाते धरे केह बले पाये ।। आदि० पृ० ८७

षष्ठी—ये संतान-प्रदात्री देवी हैं।[1] इनकी पूजा संतानोत्पत्ति की कामना से करायी जाती थी। हिन्दी-भाषी जनता में भी विवाह के पश्चात् वर-वधू को मातृकाओं के पास ले जाते हैं, फिर उन्हें कपड़े में लिपटा हुआ बेलन देकर उसे दुलराने के लिए कहा जाता है। मूर्ख-दंपति यदि ऐसा कर बैठता है तो हास्य-भाजन होता है। प्रायः वर ही मूर्ख बनते हैं, कन्याएँ इन परिहासों से पूर्व परिचित होने के कारण बच जाती हैं। इस प्रकार बंगाल का षष्ठी-पूजन कुछ भिन्न रूप में यहाँ भी प्रचलित है।

कन्यादान—वर-कन्या पूर्ववत् मंडप के पास आकर बैठते थे। कन्या का पिता विविध-प्रकार से कन्या-दान करता था। कृत्तिवास ने 'विविध प्रकार' मात्र लिखा है, किन्तु ये प्रकार आज भी बंगाल में प्रचलित हैं एवं हिन्दी-भाषी जनता से उनका सादृश्य है। कन्या, वर और संप्रदान करने वाला तीनों उपवास रखते थे। गांठ-जोड़ना, दोनों के हाथ बांधना आदि अनेक प्रथाएं भी की जाती थीं। जलधारा देकर वर-कन्या फिर भीतर भेजे जाते थे। वहाँ उन्हें कन्या की माता भोजन कराती थी।[2]

बासर-घर—सखियाँ एक कमरे को खूब सजाती थीं, इसे ही बासर-घर[3] कहते थे। नैषधीय-चरित का 'कौतुकागार'[4]—यही बासरघर था। सखियाँ रात्रिभर वर-कन्या को बासर-घर में बिठाल कर हास-परिहास करती रहती हैं और सोने नहीं देती हैं। प्रातःकाल सखियाँ वर महोदय को तब उठने देती हैं जबकि वे वर की स्थिति के अनुसार उससे रुपये ऐंठ लेती हैं।

हिन्दी-भाषी क्षेत्र में हास-परिहास वर के कोहबर (कोष्ठवर) में जाने के समय होता है। इसका वर्णन मानस में हुआ है। हास-परिहास का अच्छा अवसर न्यूतनी के दिन 'कुँवर कलेवा' के समय होता है।

वासि-विये—वासि-विये का शाब्दिक अर्थ है—बासा विवाह अर्थात विवाह का दूसरा दिन। यह प्रथा भी आज तक प्रचलित है। कृत्तिवासी-रामायण में इस प्रथा का केवल नामोल्लेख है।[5] वासि-विये का बहुत महत्त्व है, वास्तव में विवाह इसी दिन पूर्ण माना जाता है, क्योंकि इसी दिन सप्तपदी, वर कन्या की प्रतिज्ञा आदि प्रथाएँ संपन्न होती हैं।

कन्या बिदा—कन्या की माता उसे सास, ससुर, पति आदि की सेवा करने का उपदेश देती थीं, फिर सभी स्त्रियाँ तथा दासियाँ मिल-भेंट कर बिदा करती थीं। वर-पक्ष के लोग कन्या को चतुर्दोल में बैठा कर चल देते थे।[6]

---

१ षष्ठी देवी की मूर्त्तियां वट आदि के नीचे स्थित रहती हैं, इनका वाहन बिड़ाल है, तथा ये गोद में शिशु लिए रहती हैं। देखिए चैतन्य-भागवत, आदिखंड ४-१६ की टिप्पणी

२ कन्यादान-कृत्ति० रामा० आदि०, पृ० ८७

३ कृत्ति० रामा० आदि०, पृ० ८७

४ नैषधीय चरित १६-४६

५ वासिविये सेइ स्थाने कैल दशरथ। कृत्ति० आदि०, पृ० ३५

६ कृत्ति० रामा० आदि० पृ० ८८

वधु-स्वागत—सजल-स्वर्ण-कुम्भ, ज्वलंत-घृत-दीप, कदलिखंभ, एवं अनेक वर्णों की पताकाओं के शोभा-संभार के मध्य तूर्यनाद के साथ वधु का स्वागत होता था।[1] उसके कक्ष में कलसी दी जाती थी। उसके मस्तक से खील और केला गिराते हुए वधु का गृह-प्रवेश होता था।[2]

मुख-दर्शन—शुभ-क्षण में गुरुजन अनेक प्रकार के अलंकारादि देकर वधु का मुख दर्शन करते थे।[3]

काल-रात्रि[4]—वासि-विये के पश्चात् वर-कन्या की रात्रि कालरात्रि कहलाती थी। बंगाल में आज भी कालरात्रि के दिन वर-कन्या साथ-साथ शयन नहीं करते। दशरथ ने यह नियम नहीं माना, सुमित्रा के साथ शयन किया फलस्वरूप सुमित्रा दुर्भगा[5] हो गयी। बंगाल में आजकल (तथा पहले भी) बेहुला की कथा का सम्बन्ध कालरात्रि के साथ माना जाता है। इसी रात को बेहुला (संस्कृत विपुला) के पति की मृत्यु सर्प-दंश से हुई थी। वासिविये के दिन ही विदा हो जाती है। इसी दिन को रात्रि के समय वर और वधू अलग रहते हैं। वर-कन्या के घरों में दूरी होने पर कालरात्रि मार्ग में ही बीत जाती है। आजकल ट्रेन के डिब्बे में मनाली जाती है।

बंगाल की यह प्रथा गृह्य-सूत्रों में वर्णित 'त्रिरात्रिवृत' का ही परिवर्तित रूप है। आपस्तंब[6] एवं बौधायन[7] गृह्य-सूत्रों में लिखा है कि वर-कन्या अपने मध्य में सुगंधि-लेप-युक्त उदुंबर-काष्ठ रख कर सोएँ। चौथे दिन ऋग्वेद के मंत्रों के साथ इसे पानी में फेंक दें। तीन दिन तक दोनों को छटपटा कर चकवा-चकवी जैसा जीवन व्यतीत करना पड़ता होगा। इसीलिए इसे बंगाल में काल-रात्रि कहने लगे होंगे। क्योंकि इस दिन बंगाली नव-दंपति को भी रात्रिकाल का चक्रवाक-दंपति बनना पड़ता था।

कुसुमशय्या—बंगाल में सुहागरात की प्रथा कुसुमशय्या अथवा फूलशय्या कहलाती है। दशरथ और सुमित्रा के विवाह के समय कुसुमशय्या का वर्णन है। 'उत्थानकौड़ि' नेग

१ कृत्ति० रामा० आदि०, पृ० ९०

२ कक्षे दिल कलसी मस्तके दिल डाला।
छड़ाइया फेले सेइखाने खइकला॥ कृत्ति० आदि०, पृ० ९०

३ शुभक्षणे रानीरा देखिल वधू मुख। कृत्ति० आदि०, पृ० ९०

४ कालरात्रि का वर्णन रामानंद चट्टोपाध्याय उड़ा गये हैं, किंतु दीनेशचंद्र सेन आदि के संस्करणों में इसका वर्णन हुआ है। राजा दशरथ सुमित्रा के साथ रथ में बैठ कर आये, मोहित होकर प्रेमालाप भी करते रहे। संभवतः यह वर्णन मर्यादा के प्रतिकूल होने के कारण चट्टोपाध्याय द्वारा उपेक्षित हुआ। दीनेशचन्द्र सेन ने इस प्रकार वर्णित किया है—

> वासि वियार पर दिन हय कालराति।
> स्त्री पुरुष एक ठांइ ना थाके संहति॥
> कालरात्रे जे नारी के करे परशन।
> 'सेइ स्त्री दुर्भाग्य हय ना हय खंडन॥ वाल ४२ (दी० च० सेन-संस्करण)

५ दुर्भगा नारी का कामसूत्र में जैसा वर्णन है उससे पता चलता है कि पति द्वारा उपेक्षिता नारी को ही दुर्भगा कहते होंगे।

६ आपस्तंब गृह्यसूत्र ८-८-१०

७ बौधा० गृह्यसूत्र १, ५, १६, १७

का भी वर्णन है जिसे आजकल 'शय्या तुलुनि' कहते हैं। प्रातःकाल सखियाँ आदि वर से नेग माँगती हैं। कृत्तिवास के समय यह नेग कौड़ियों में दिया जाता था। इसीलिए तब इसे उत्थान क ड़ि कहते थे।[1]

मानस में वर्णित विवाह-संस्कार—

मानस में भी विवाह के अवसर दो हैं। एक शंकर-पार्वती का विवाह, दूसरा राम और सीता का। स्वयंवर होने के कारण राम-सीता के विवाह के सम्बन्ध में उन सभी वैवाहिक-रीतियों का वर्णन न हो सका जोकि उत्तर प्रदेश में प्रचलित हैं। उपर्युक्त दोनों विवाहों का वर्णन मिला दिया जाय तो जो रूप सामने आयगा, वह ज्यों का त्यों आज भी गाँव-गाँव में प्रचलित है। इन वर्णनों में लोक-जीवन का चित्रण इतना सजीव हुआ है कि जनता में मानस के प्रचार पाने का यह भी एक कारण हो गया।

लग्न-पत्रिका—नक्षत्र, घड़ी एवं दिन शोधकर मुहूर्त्त निर्धारित किया जाता था। कन्या-पक्ष का पुरोहित वर-पक्ष के पास पत्रिका ले जाता था। वर पक्ष का पुरोहित उसे सब के सामने पढ़ कर सुनाता था। अनेक प्रकार की वाद्य-ध्वनि, सुमनवृष्टि एवं मंगल-कलसों की सजावट से प्रसन्नता प्रकट की जाती थी—मा० १०९०—४—८।

वर की सज्जा और शोभायात्रा—मुकुट, मौर, कंकण और कुंडल से वर का शृङ्गार किया जाता था। अनेक प्रकार के वाहनों की शोभायात्रा चल पड़ती थी। सखा लोग वर के साथ उपहास करते चलते थे।[2]

अगवानी—बारात आ जाने पर कन्या-पक्ष के लोग वर-पक्ष का स्वागत कर उन्हें जनवासा देते थे।[3] कहार लोग काँवर भर-भर कर भोज्य-पदार्थ पहुँचाते थे।[4] घरों में स्त्रियां उत्सुकता के साथ जानने की चेष्टा करती थीं कि बारात कैसी आयी है, वर कैसा है। और कहीं यह ज्ञात हुआ कि वर बूढ़ा है, कुरूप है अथवा पागल है, तो कुहराम

---

१ कुसुम शय्याय राजा शयन करिल।
शय्यार उत्थान कौड़ि दिलेन विस्तर॥ कृत्ति०, आदि० पृ० ३५
इस ग्रंथ में कुसुमशय्या का वर्णन वासिविये के पहले हुआ है। अतएव किसी किसी का मत है कि इस कुसुमशय्या का तात्पर्य सुहागरात से न होकर बासर घर वाले फूलों के बिछौने से है; किन्तु कठिनाई यह है कि उसमें लिखा है कि राजा नींद में अचेतन हो गये, बासर घर की प्रथा के अनुसार वर-वधू दोनों जाग्रत रहते हैं, सोने नहीं दिये जाते। अतएव यह सुहागरात ही होगी। यह हो सकता है कि राजा के द्वारा प्रथाओं के क्रम की अवहेलना करायी गयी है। वर्णन भी ऐसा ही है कि राजा मृगया खेलने के बहाने चुपके जाकर सुमित्रा से विवाह कर आये। वहीं उन्होंने कई प्रथाएँ मनालीं।

२ मानस १-९१-१—५,७ एवं १-९२, १—३,

३ लै अगवान बरातहि आए।
दिए सबहि जनवास सुहाए॥ १-९५-१ (मानस)

४ दधि चिउरा उपहार अपारा।
भरि भरि कांवरि चले कहारा॥ १-३०४-६ (मानस)

मच जाता था। बेचारी कन्या की माता कन्या को लेकर एकांत में बैठकर रोती थी, विवाह के बिचवानी अर्थात् मध्यस्थ को कोसा जाता था।[1]

द्वारचार—शुभ-मुहूर्त्त विचार कर बारात कन्या के द्वार पर प्रथम बार जाती थी। सजी-बजी स्त्रियाँ गीत गाती हुई परिछन[2] की तैयारी करती थीं। वर की आरती कर अर्घ्य दिया जाता था। तब वर को मंडप के पास आसन पर बिठाया जाता था। वहाँ उसे अर्घ्य देकर आरती की जाती थी। समधी भी परस्पर भेंट कर मंडप के पास आते थे। सभी बारातियों का सम्मान कर आसन दिया जाता था।

सखियाँ मंगल गान करती हुई कन्या को मंडप के पास ले आती थीं। दोनों ओर के कुल-गुरु आचार कराते थे। गौरी और गणपति[3] की पूजा करायी जाती थी। कन्या के माता-पिता वर का पाद-प्रक्षालन करते थे।

पाणिग्रहण और कन्यादान—वर-कन्या के कुल-गुरु दोनों के हाथ मिलाकर शाखोच्चार[4] करते थे। कुश और जल के साथ कन्या का पिता कन्यादान[5] करता था। विधिपूर्वक वर-कन्या की गाँठ जोड़कर भाँवरें[6] डाली जाती थीं। सबको उचित नेग देने के उपरान्त सिंदूरदान[7] होता था, अर्थात् वर-कन्या की माँग भरता था। अब गुरु की आज्ञा से वर-वधू एकासन पर बैठते थे।

लौकिक आचार—वैदिक आचार की समाप्ति पर सखियाँ मंगल गान करती हुई वर-वधू को कोहबर (कोष्ठवर) के लिए ले जाती थीं। दोनों को आसनों पर बिठा कर हास-

१ शंकर का विकट वेष देख कर मैना का पार्वती को गोद में लेकर रोने बैठ जाना तथा मध्यस्थ नारद को कोसना—

मैना हृदयं भयउ दुखु भारी।
लीनहि बोलि गिरीस कुमारी॥
अधिक सनेहं गोद बैठारी।
स्याम सरोज नयन भरे बारी।
जेहिं बिधि तुम्हहिं रूपु अस दीन्हा।
तेहिं जड़ बरु बाउर कस कीन्हा॥ १, ९५, ६-८ (मानस)
नारद कर मैं काह बिगारा।
भवनु मोर जिन्ह बसत उजारा॥ १-९६-१ (मानस)

२ परिछन (१-९५-३)

३ **गौरी-गणपति** की पूजा—१-३२२-८ छंद

४ **शाखोच्चार**-बर कुँअरि करतल जोरि साखोचारू दोउ कुलगुरु करैं १-३२३,८ छन्द (मानस)

५ **कन्यादान**—गहि गिरीस कुस कन्या पानी।
भवहिं समरपीं जानि भवानी॥ १-१००-२ (मानस)

६ करि होमु बिधिवत **गाँठि जोरी** होन लागीं भावँरी १-३२३-८ छन्द ४ (मानस)

७ राम सीय सिर सेंदुर देहीं। १-३२४-८ (मानस)

परिहास के साथ, लहकौर करायी जाती थी।[1] यह शब्द लघुकौर का विकृत रूप जान पड़ता है।

कोहबर—इसके समय वर सोने की सलाई से दो अलग-अलग जलती हुई बत्तियों को मिला कर एक कर देता है। लहकौर में वर और वधू अपने-अपने हाथ पर खीर अथवा मिष्ठ पदार्थ रख कर प्रायः एक दूसरे को खिलाते हैं। इसमें परिहास का लक्ष्य वर बनता है। कन्या लज्जा के कारण वर के हाथ से कुछ खाती नहीं। बेचारा घूंघट के भीतर हाथ भी नहीं डाल पाता कि वह मुँह मोड़कर बैठ जाती है। वर महोदय खिसिया से जाते हैं और सखियाँ हँस देती हैं। जब कन्या खिलाती है तो वर को दुविधा में रहना पड़ता है। चुपचाप खा लेता है तो ताने सुनने को मिलते हैं कि अभी से इतना प्रेम। नहीं खाता है तो सबकी सब भिड़कती हैं तथा लाज से छुई-मुई नयी दुलहिन का अपमान भी होता है। इसी अवसर पर वर के साथ अन्य कई प्रकार के हास-परिहास किये जाते हैं। बंगाल के वासर-घर जैसी स्थिति यहाँ उपस्थित हो जाती है।

जेवनार—सभी बाराती जेवनार के लिये बुलाये जाते थे। सभी के चरण पखार कर उन्हें पीढ़ों पर बिठालते थे। वर के पिता के चरण स्वयं कन्या का पिता पखारता था। सब के आगे पत्तल डाल कर अनेक प्रकार के व्यंजन परोसे जाते थे।[2] इस समय स्त्रियाँ बाराती पुरुषों तथा उनकी स्त्रियों का नाम ले लेकर गाली के मधुर गीत गाती थीं।[3] आचमन के पश्चात् पान चबाते हुए सभी बाराती जनवासे लौट जाते थे।

कन्या-विदा—कन्या अपने पोषित-पशु-पक्षी, मा, बाप, सखियों आदि से भेंटती थी। बड़े-बड़े धैर्यशाली-पिताओं का धैर्य भी इस समय भाग जाता था। मा अपनी बेटी को योग्य-वधू बन कर सभी की सेवा करने का उपदेश देती थी। बार-बार हृदय से लगा कर बेटी को पालकी में बिठा दिया जाता था।[4]

दोनों पक्ष के लोग भी आपस में सम्मान-प्रदर्शन कर बिदा होते थे।

वधू-स्वागत—वर पक्ष की स्त्रियाँ हरिद्रा, दूर्वा, दधि, पान, सुपाड़ी, अक्षत आदि

---

१ कोहबरहिं आने कुंअर कुंअरि सुआसिनिन्ह सुख पाइ कै।
अति प्रीति लौकिक रीति लागीं करन मंगल गाइ कै॥
लहकौरि सिखाव रामहि सीय सन सारद कहैं।
रनिवासु हास बिलास रस बस जन्म को फलु सब लहैं। १-३२६-१० छन्द २ (मानस)

२ मानस १-३२७-३२८

३ जेवंत देहिं मधुर धुनि गारी।
लै लै नाम पुरुष अरु नारी॥ मानस १-३२८-६

४ सुक सारिका जानकी ज्याए। कनक पिंजरन्हि राखि पढ़ाए॥
व्याकुल कहहिं कहाँ बैदेही। सुनि धीरजु परिहरइ न केही॥ मानस १-३३७, १, २
बन्धु समेत जनकु तब आए। प्रेम उमंग लोचन जल छाये॥
सीय बिलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम बिरागी। मानस १-३३७, ४-५
कन्या को शिक्षा—मानस, १-३३३-१-८

मांगलिक वस्तुएं लेकर वधु का परिछन करातीं थीं ।[1] पुर-नारियाँ अपना कुतूहल दमित न कर पाती थीं, वे पालकी का उघार हटा कर बार-बार नव-वधू का मुख देखा करती थीं ।[2] वर-वधू को अर्घ्य पाँवड़े देकर भीतर ले जाया जाता था, वहाँ आरती, धूप-दीप और नैवेद्य से उनका स्वागत होता था ।

चतुर्थी—तुलसीदास जी ने इस सम्बन्ध में विशेष कुछ न लिखकर केवल इतना कहा है कि शुभ-दिन शोध कर कंकण छोरे गये ।[3] वैसे इसी दिन से विवाह-सम्बन्धी सभी मंगल-विधानों की समाप्ति हो जाती है । ब्राह्मण पुरोहित इसी दिन अपने सामने वर-वधू द्वारा हार-जीत के कुछ खेल कराता है । वर-वधू के बन्धु-बान्धवी लोग दोनों के कंकणों में अनेक गाँठें लगा देते हैं । वर-वधु में जो एक दूसरे की गांठें नहीं खोल पाता, हारा माना जाता है । खुले हुए कंकणों के साथ वर के किसी स्वर्ण-आभूषण को ऊपर उछालना तथा वर-वधू का उन्हें छीनना, हारना जीतना, दोनों का एक दूसरे की पीठ में सात-सात कोड़े लगाना, वर का आटे की मछली का सींक के बाण से लक्ष्य-वेध करना आदि अनेक प्रथाएं संपादित की जाती हैं ।

चतुर्थी के पश्चात् ही सुहागरात होती है । इस प्रकार बंगालियों के कालरात्रि के बंधन के समान यहाँ भी बंधन लग जाता है ।

धर्मशास्त्रों में वर्णित 'चतुर्थी-कर्म' संस्कार से प्रकट होता है कि इसी दिन वर प्रथम-बार अपनी पत्नी के साथ समागम करता था । आगे चल कर यह प्रथा परिवर्त्तित होती गयी ।[4] संभवत: विवाह के चौथे दिन यह संस्कार होता था । आजकल वह बंधन नहीं है, किन्तु फिर भी विवाह के चार या पाँच दिन पश्चात् यह संस्कार अवश्य हो जाता है और इसे चलती भाषा में 'चतुरसी' कहते हैं ।

अन्त्येष्ठि-संस्कार—

इसके वर्णन में दोनों में ही अत्यधिक साम्य है । दाह के पूर्व शव का स्नान, नदी के किनारे चिता-निर्माण, सुगंधित पदार्थों का छिड़कना, तर्पण-दान आदि करने का दोनों ने समान वर्णन किया है, जैसा कि निम्न वर्णन से स्पष्ट हो जायगा ।

कृत्तिवासी-रामायण—इसके वर्णन के अनुसार शव को नदी के जल से स्नान कराने के पश्चात् शुक्ल-वस्त्र और उत्तरीय पहनाया जाता था । सुगंधि और कस्तूरी से सर्वांग भर देते थे और गले में माला पहना देते थे । चिता पर लिटाकर काष्ठ, अगुरु और चन्दन डाला जाता था । धेनुदान के पश्चात् घृत डाल कर अग्नि-दाह किया जाता था । जल से तर्पण कर पिंडदान होता था ।[5]

---

१ मानस, १-३४५, २,७
२ सिबिका सुभग ओहार उघारी ।
देखि दुलहिनिन्ह होहिं सुखारी ॥ मानस १-३४७,८
३ सुदिन सोधि कल कंकन छोरे । मानस १-३५६-१
४ हिस्ट्री ऑफ़ धर्मशास्त्र जिल्द २, भाग १, पृ० २०२-४
५ कृत्ति० रामा०, अयोध्या०, पृ० १२३

मानस—के अनुसार शव को वेदरीति से स्नान कराया जाता था, फिर विमान बना कर उसे ले जाते थे। चंदन, अगुरु और सुगंध का प्रयोग किया जाता था। नदी के तीर पर चिता बना कर दाह क्रिया की जाती थी। दाह करने वाला स्नान कर तिलांजलि देता था। दशगात्र की क्रिया की जाती थी। ब्राह्मणों को गाय, घोड़ा, हाथी, वस्त्र-अलंकार आदि दान किये जाते थे।[1]

दोनों ग्रंथों में वर्णित-संस्कार लगभग ज्यों के त्यों आज भी मनाये जाते हैं। नगरों की यांत्रिक-सभ्यता ने हमारा पारिवारिक जीवन छिन्न-भिन्न कर दिया है। भ्रमणशील परिवारों में पालित तथा नवीन-शिक्षा-प्राप्त युवती-युवक परंपरागत पद्धतियों से अपरिचित एवं विरक्त होते जाते हैं, किंतु फिर भी लाउडस्पीकर और बैंड की धूम, दावतों की शान और बिजली के शुभ्र-प्रकाश की तड़क-भड़क के मध्य भी हमारे संस्कार पूर्व-रूप में ही मनाये जाते हैं।

भारतीय गाँवों में तो इन रामायणों में वर्णित संस्कार-उत्सव आदि आज भी अविकल रूप में मनाये जाते हैं, केवल आर्थिक-स्थिति के अनुसार धूमधाम में अंतर हो सकता है।

(ई) उत्सवादि मंगल-विधान—

लगभग समस्त भारत में तोरण, बंदनवार, पताका, मंगलघट, घृत-दीप, वाद्य आदि की धूमधाम के साथ उत्सव मनाये जाते हैं।[2] अपने देश में चावल, हल्दी, दूब आदि की प्रचुरता के कारण ही संभवतः समस्त भारत में इन्हीं के द्वारा पूजन होता है।[3] हमारे दोनों कवियों ने उपर्युक्त पद्धति से ही मंगल-उत्सवों के समारोहों का वर्णन किया है।

रामायण में मंगल-उत्सव मनाने के प्रमुख चार अवसर हैं—राम-जन्म, राम-विवाह, वनगमन के पूर्व राज्याभिषेक की तैयारी एवं अयोध्या में रामादि का स्वागत तथा अभिषेक। इन सभी अवसरों के वर्णन से हमें तत्कालीन समारोहों के स्पष्ट चित्रण का ज्ञान प्राप्त होता है।

कृत्तिवास—ने इस प्रकार वर्णन किया है—प्रत्येक द्वार पर केला, नारिकेल और सुपाड़ी के वृक्ष रोप कर नाना वर्णों की पताकाएँ लगायी गयीं। ऊपर चंदोवा ताना गया। आम्र-पत्र से युक्त स्वर्ण-कुंभ रखे गये। कुलवधुओं और कन्याओं ने घृत के दीप जलाये। प्रत्येक घर में रत्नदीप जलाये गये। रथ, घोड़े और हाथी सजाये गये। लक्ष-लक्ष पताकाएँ उड़ने लगीं। स्त्रियों के लिए अलग से मंच बनाये गये, ताकि वे जनता की दृष्टि बचाकर उत्सव देख सकें।

धूप, नैवेद्य, घृत-दीप, फल, चंदन-काष्ठ, सुगंधि, दूर्वा और धान से पूजन हुआ।[4]

---

१ मानस १-१६६-१-८

२ आनन्दरामायण–तोय कुंभ मंडिपादिकानां पूजनमाकरोत्। २६८
कृत्रिम वृक्षांश्च पताकांश्च ध्वजांस्तथा। ३०६—सारकांड सर्ग ३

३ वाल्मीकि रामायण–बाल० सर्ग ७३, २१–२३

४ कृत्तिवास के वर्णन के लिए देखिए–आदि० पृ० ५६, ८४, ६० अयोध्या० पृ० ६४ एवं लंका० पृ० ४५४

तुलसीदास ने उत्सवादि का विस्तृत वर्णन किया है और कृत्तिवास ने भोज्य-पदार्थों का। अपने प्रभु राम से सम्बन्धित होने के कारण उन्होंने उत्सवों में पर्याप्त रुचि दिखलायी है। उत्सवों में प्रयुक्त सामग्री एवं उसका रूप दोनों रामायणों में एक समान है।[१]

आम, सुपाड़ी, केला, बकुल, कदंब और तमाल के वृक्ष रोपे गये। बंदनवार और पताकाएँ लगा कर कंचन-कलस द्वारों पर रखे गये। मणिमय दीप प्रज्ज्वलित किये गये। गलियाँ अरगजा से सींची गयीं। मणियों के चौक पूरे गये। वाद्यों की पंच-ध्वनि के बीच गज-गामिनी नारियाँ कंचन के थाल में आरती सजा कर मंगल-गान करने लगीं। वितान बनाने में निपुण कलाकारों ने अनोखे वितान बनाये। वे अनेक वर्ण की मणियों की सहायता से इतनी सुन्दर प्रकृति-रचना करते थे कि देखने वाले दंग रह जाते थे। हाथी, घोड़े और रथ सजाये जाते थे। अंबारी से शोभित हाथी घंटा-ध्वनि करते हुए घूमते थे।

स्त्रियाँ न्योछावर करतीं और आशिष देती थीं। वे हेमथालों में दधि, दूर्वा, रोचन, फल-फूल, तुलसी-दल, अक्षत, अंकुर, खीलें, पान-सुपाड़ी और हल्दी लेकर पूजन करती थीं। धूप के सुगंधित धुएँ से आकाश काला पड़ जाता था।

यदि मणि और कंचन को छोड़ दें तो शेष वर्णन ऐसा है जो हिंदू-समाज में प्रागैतिहासिक काल से अब तक चला आ रहा है।

(उ) स्नान-प्रसाधन—

स्नान—बंगाल में अधिकतर लोग जलाशयों में नहाते हैं। वे स्नान के पूर्व तेल मल लेते हैं। शरद् आदि के उपन्यासों में भी ऐसा वर्णन मिल जाता है कि पत्नी पति के सामने कटोरी में तेल रख कर कहती है कि स्नान कर आओ। १६वीं शताब्दी के मुकुन्दराम चक्रवर्ती अपनी दरिद्रता-जनित दुर्दशा का वर्णन करते हुए इस बात का दुःख प्रकट करते हैं कि वे तेल के बिना स्नान करते हैं।[२] चैतन्य-भागवत में भी स्नान के पूर्व तैल-प्रयोग का वर्णन मिलता है।[३]

स्नान के पश्चात् चंदन, अगुरु आदि सुगंधियों का लेप तथा माल्य धारण करने की प्रथा भी भारतीयों में रही है! कृत्तिवासी-रामायण में इन सभी का वर्णन हुआ है।

माखिया सुगंध तैल स्नान करिवारे।
केह जाय नदी ते केह वा सरोवरे।।
स्नान करि परे सवे विचित्र वसन।
सर्व्वाङ्गे लेपिया दिल सुगन्धि चन्दन।। आदि०, पृ० १२८

---

१ मानस १. ३४३–३४७, १. २८७–२८८, ३ एवं ७, ८, १–६

२ तैल विने कैल स्नान, करिल उदक पान
शिशु कांदे ओदनेर तरे।—चन्डी मंगल

३ जननी बलिया प्रभु लागिला डाकिते।
तैल देह मोरे. जाइ सिनान करिते।। आदिखंड, पृष्ठ अध्या०, १४४

दुइ शिशु लये सीता कराइल स्नान ।
अगुरु चन्दने अङ्गे करिला सुघ्राण ।। उत्तर०, पृ० ५५१

विशेष अवसरों पर पिठाली और गाये-हलूद नामक उबटन लगा कर स्नान कराया जाता था ।

मानस में भी उबटन लगा कर स्नान करने का वर्णन है—

भाइन्ह सहित उबटि अन्हवाए—१.३३५–३

गीतावली में तुलसी ने तेल चुपड़ कर एवं उबटन लगा कर स्नान करने का वर्णन किया है ।[1]

कृत्तिवासी-रामायण में शृङ्गार-प्रसाधन का कई बार चित्रण किया गया है । तुलसीदास ने सन्त होने के कारण इधर विशेष रुचि नहीं दिखलायी । भगवान् राम के रूप-शृङ्गार का यत्र-तत्र वर्णन अवश्य किया है ।

पुरुषों का शृङ्गार—कृत्तिवासी-रामायण के अनुसार पुरुष केशों का जूड़ा बाँध कर चंपा-नागेश्वर के फूल लगाते थे ।[2] पगड़ी भी बाँधते थे, जिसमें मोती और मणियाँ लगी रहती थीं ।[3] वे अँगूठी, कंकण, अंगद, वलय, कुण्डल, माणिक-मुक्ताओं के हार, केयूर, स्वर्णनवगुण (स्वर्ण-उपवीत) स्वर्ण-पाटा[4] और चरण-नूपुर[5] धारण करते थे । कृत्तिवास के समय संभवतः योद्धा लोग बजने वाले नूपुर धारण करते थे । मुकुन्दराम[6] ने इनका वर्णन किया है । चैतन्य भागवत[7] में भी मधुर-ध्वनि करने वाले नूपुरों का उल्लेख है ।

---

१ चुपरि उबटि अन्हवाय कै नयन आंजे,
रुचि रुचि तिलक गोरोचन को कियो है । गीता० बाल० १०

२ चांपा नागेश्वर दिया बांधिलेक जूड़ा । कृत्ति० लंका० २६७

३ मतिर पागड़ि परे थरे थरे मणि । कृत्ति० लंका० पृ० ३११

४ स्वर्ण—पाटा (सं. स्वर्ण-पट्टिका) उत्तरप्रदेश के गाँवों की स्त्रियाँ सोने की खौर माथे पर धारण करती रही हैं, उसे ही स्वर्ण पट्टिका कहते होंगे । इसे प्राचीन काल में पुरुष भी धारण करते थे ।
नैषधीय चरित में इसे मणिवीर-पट्टिका (१५—६१) तथा नारायणी व्याख्या में सुवर्ण-पट्टिका कहा है । दमयंती भी हाटक-पट्टिका धारण किये हैं । (१५—३२)

५ चरणनूपुर-राम अयोध्या लौट आने पर रुणुध्वनि करने वाले नूपुर पहने हैं-चरणे नूपुर बाजे रुणु रुणु ध्वनि-कृत्ति० उत्तर० ४६४ । रावण भी शार्दूल को चरण नूपुर प्रदान करता है-कृत्ति० लंका० पृ० २६६ । स्वयं कवि भक्ति के आवेश में कहता है—
यदि मोरे छाड़ प्रभु आमि नाहि छाड़िव ।
बाजन नूपुर हये चरणे बाजिव ।। कृत्ति० लंका० ,पृ० २६६
कृत्तिवास के अलंकारों के लिए देखिए—आदि०, पृ० ८६, सुंदर० ,पृ० २३४ और लंका०, पृ० २६६

६ पाद पद्मे रजत नूपुर विलक्षण ।
तदुपरि मल्ल शोभे जगत मोहन । चंडी मंगल

७ रजतनूपुर मल्ल शोभे श्री चरणे ।
परम मधुर ध्वनि गजेन्द्र गमन ।। चैतन्य-भागवत अन्त्य खंड अ० ५—५१८

मानस—इसके अनुसार पुरुष माथे पर चंदन की खौर[1] अथवा गोरोचन[2] का तिलक लगाते थे। बालों को फूलों के गुच्छे से सजाते थे।[3] वे कनक-फूल[4] नागमणियों की माला[5], गज-मुक्ताओं का कंठा[6] एवं मुद्रिका[7] आदि धारण करते थे।

किशोर-पुरुष एक प्रकार की टोपी लगाते थे जिसे चौंतनी[8] कहते थे। बच्चे पीत झंगुलियाँ[9] पहनते थे।

नारी का शृङ्गार—

मध्यकाल में बंगला एवं हिन्दी-भाषी क्षेत्रों के स्त्री-पुरुषों के वस्त्राभूषण में पर्याप्त साम्य था। दोनों ही क्षेत्रों की स्त्रियाँ साड़ी[10], चोली, ओढ़नी आदि वस्त्र तथा अनेक प्रकार के आभूषण धारण करती थीं। प्रसाधन-सामग्रियों में भी समानता थी। काजल और सिंदूर का उपयोग तो आज भी दोनों क्षेत्रों में समान रूप से होता है। कृत्तिवास ने नारी के प्रसाधन का विशद् चित्रण किया है, अतएव उसका अलग से वर्णन किया जाता है।

कृत्तिवासी-रामायण—इसके अनुसार स्त्रियाँ आंवले का तेल और उबटन (पिठाली) का सेवन कर स्नान करती थीं। रेशमी-वस्त्र से पानी पोंछ कर अलंकार धारण करती थीं।[11] केशों में कंघी कर फूलों से चोटी गूंथती थीं। कोई-कोई मूंगे के आच्छादन से सजाती थीं।[12] माथे पर सिंदूर एवं नयनों का कज्जल तो हिन्दू नारी का सौभाग्य-सूचक प्रसाधन है।[13]

---

१ मानस १–२१८-४

२ गोरोचन–गोपित्त निर्मित पीतरंग का सुगंधित द्रव्य, मानस पृ० ७.७६.५

३ मानस १–२३२–२

४ मानस १–२१८-७

५ मानस १–२१८–५

६ कंठा–(मानस १–२४३) कंठ के पास गले में पहनने की चुस्त माला, जोकि बड़े-बड़े मनकों की होती है। गाँवों में विवाह के समय वर के गले में सोने का कंठा पहनाया जाता है, अब इसकी प्रथा बन्द सी हो गयी है। गाँव की रामलीला के अंगद, हनुमान आदि अभी भी इसे धारण करते है। कृत्तिवास भी इस अलंकार से परिचित जान पड़ते हैं– गला ते निर्मित मणि माणिक्येर काँठि–आदि०, पृ० ७८

७ मानस ४–२२–१०

८ मानस १–२४२–७

९ मानस १–१९८–११

१० साड़ी की प्रथा बंगाल की ओर अधिक रही। हिन्दी-भाषी-क्षेत्र में लहँगे का प्रचार अधिक था।

११ केह तैल देय गाय केह आमलकी।
पिठालि माखाये केह अङ्गे तूले मलि।
नेतेर वसने केह मुछाइछ वारि।
यत्ने पराय वस्त्र जतेक सुन्दरी॥ कृत्ति० लंका०, पृ० ४३८

१२ **केशरचना**—देखिए कृत्ति० रामा० किष्कि० पृ० २०० एवं लंका०, पृ० ४३८। कलकत्ते की सड़कों पर संध्याकाल बंगाली स्त्रियाँ आज भी फूलों से चोटी अथवा जूड़ा सजाये घूमती दिखलायी पड़ेंगी। उनके इस शौक को पूरा करने के लिए जूही (यूथिका) आदि फूलों की अनेक दूकानें खुली हुई हैं।

१३ कज्जल—बंगाली स्त्रियाँ आज भी आँखों में काजल लगाकर कानों की ओर उसकी नोकें बढ़ा देती हैं। ऐसा प्रचार बंगाल में पहले भी था। नैषधीय-चरित की नारायणी-व्याख्या में वर्णित है–प्राच्योहि सुन्दर्यो विलोचने नेत्रप्रान्तनिर्गतया कर्णोपान्तस्पर्शिन्याञ्जनरेखया भूषयन्ति १५। ३४। कपाले सिन्दूर दिल नयने कज्जल–कृत्ति० आदि०, पृ० ३१

अलका-तिलका—मुख पर गोरोचन, चन्दन आदि की तिल-पुष्पाकृति-पत्र लेखा की जाती थी, जिसे अलका-तिलका कहते थे। हिन्दी में पुष्पदन्त और विद्यापति ने भी इसका वर्णन किया है। हिन्दी के विद्वानों ने इस शब्द की अशुद्ध व्याख्या की है।

'हिन्दी-काव्य-धारा' में पुष्पदन्त के आदिपुराण पृ० ३९ से संगृहीत पद्य में अलका-तिलका का वर्णन इस प्रकार है—

कवि अलय तिलय देविहि करइ-पृ० २००।

महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन ने इसका पद्यानुवाद करते समय इसे 'मलयतिलक' (अर्थात् चन्दन तिलक) बताया है—पृ० २०१।

विद्यापति की 'कीर्त्तिलता' में लिखा है—

अलक तिलका पत्रावली खण्डते

श्री बाबूराम सक्सेना ने अलक का अर्थ केश और तिलका का तिलक लगा कर इस प्रकार व्याख्या की है—'केश रचना करतीं, तिलक और पत्रावली कतर कर लगातीं' —पृ० ३५

श्री शिवप्रसादसिंह ने भी सक्सेना जी का समर्थन करते हुए लिखा है—'अलकों को सजातीं, तिलक और पत्रावली के खंड लगातीं—(कीर्त्तिलता और अवहट्ट भाषा—पृ०७३) कीर्त्तिलता में वेश्याओं के श्रृंगार के सम्बन्ध में इसी स्थल पर कहा है—'केश-पाश बन्धन्ते'। अलक का अर्थ केश ही होता तो इसका वर्णन दुबारा क्यों किया गया ?

पदावली के कई विद्वान् सम्पादकों ने 'अलक-तिलक' शब्द की व्याख्या करते समय अलक को अलक्तक—आलता माना है और तिलक को टीका। श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, श्री वसन्तकुमार माथुर एवं डा० गुणानन्द जुयाल आदि ने ऐसा ही अर्थ किया है।

इस प्रकार हिन्दी के विद्वानों ने अलका-तिलका के अलका शब्द के इतने अर्थ दिये हैं—चन्दन, केश और अलक्तक। आगे के वर्णन से स्पष्ट हो जायगा कि ये तीनों अर्थ अशुद्ध हैं।

सम्भवतः संस्कृत-साहित्य में 'अलका-तिलका' शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। इस का प्रयोग अपभ्रंश भाषाओं में था। पुष्पदंत का काल १०वीं शताब्दी माना जाता है। विद्यापति का काल १४ एवं १५ वीं शताब्दी है। लगता है, १५वीं शताब्दी तक 'अलका तिलका' का प्रयोग भारत के पूर्वांचल प्रदेश में प्रचलित था। बंगाली रामायण-कार कृत्तिवास ने इसी शताब्दी में रचित अपनी रामायण में इसका प्रयोग इस प्रकार किया है—

बिन्दु-बिन्दु गोरोचना शोभा करे अति।
अलका तिलका रेखा अर्द्ध-अर्द्ध पाति ॥—किष्कि०, पृ० २००

बंगाली शब्दकोषों में 'अलका-तिलका' का अर्थ पत्रावली दिया गया है। मुख पर कुंकुम, गोरोचन अथवा चन्दन की पत्र-लेखा को ही अलका-तिलका कहते थे। वैसे स्तनों पर भी पत्रलेखा की जाती थी 'उरोज पत्रावलि नेत्र कज्जले' (नैषधीय चरित, १५—२२)। पदमावत में वर्णन है—

रचि पत्रावलि मांग सिन्दूरा ।।३
चन्दन चित्र भए वहु भांती ।४।२६७

श्री वासुदेवशरण अग्रवाल ने पदमावत की टीका में चन्दनचित्र अथवा पत्रावली के विषय में लिखा है—'पत्रच्छेद्यों की सहायता से चन्दन द्वारा चित्रित फूल-पत्ती अथवा पुतलियों के चित्र । ललाट, स्तन आदि पर फूल-पत्तियों के कटाव, पत्रावली अथवा पत्रलता की रचना जो पत्तों के खाके काट कर वनाई जाती थी । इन्हें ही संस्कृत में 'विशेषक' कहते हैं–(पदमावत, टिप्पणी २६७-४७, पृ० २८१)

कृत्तिवास के 'बिन्दु-बिन्दु गोरोचना' एवं 'अर्द्ध-अर्द्ध पाति' (पाति-पंक्ति) शब्दों से प्रकट होता है कि भ्रू-युगल के ऊपर अर्ध-अर्ध पंक्ति में जो गोरोचना की बिन्दु रचना होती थी, वही 'अलका-तिलका' है । इसके नाम से भी स्पष्ट हैं कि यह अलक और तिलक के स्थल अर्थात् ललाट की पत्रलेखा है ।

अत: 'अलका-तिलका' का अर्थ है–ललाट पर पत्रलेखा ।

आज भी बंगाली कन्याएँ विवाह आदि के विशेष अवसरों पर भौंहों के ऊपर तथा नेत्रों के नीचे कपोलों तक चन्दन आदि की सहायता से बिन्दु-रचना करती हैं। हिन्दी-भाषी क्षेत्र में रामलीला के समय राम एवं सीता आदि पात्रों के ललाट एवं कपोलों पर भी सुन्दर बिन्दु-रचना की जाती है । शरद्-पूर्णिमा के दिन झेंझी का खेल रचने वाली अन्तर्वेदीय कन्याएँ भी भ्रू-युगल पर बिन्दु-रचना करती हैं ।

हिंगुल—कृत्तिवास के समय स्त्रियाँ पैरों की उंगलियाँ हिंगुल से रंगा करती थीं, 'हिंगुल मण्डित ताँर पायेर अंगुलि' (अयो० ११५) डा० सुकुमारसेन ने पत्र द्वारा मुझे सूचित किया था कि यह हरिताल से बना हुआ रंग विशेष होता है, इससे प्रतिमा भी रंगी जाती है, उस काल की स्त्रियाँ अपनी उंगलियाँ इसी से रंगा करती थीं । उन्होंने इसे पीत-वर्ण माना है ।

भारतीय-वैद्य हिंगुल के गुण-दोष से परिचित हैं। यह तिक्त, कषाय और कटु होता है । तथा चक्षु-रोग, कफ़, पित्त, कुष्ठज्वर, प्लीहा आदि के लिए रोगनाशक है । यह तीन प्रकार का होता है—श्वेत, पीत और रक्त । स्त्रियाँ जिस हिंगुल का प्रयोग करती थीं, वह रक्त-वर्ण का था । 'चलंतिका' बंगला-कोष ने इसे पारद-गंधक निर्मित घोर रक्त-वर्ण द्रव्य मान कर इसे रससिंदूर कहा है । मोनियर-विलियम[1] भी इसे ऐसा ही मानते हैं ।

यह महावर का ही एक प्रकार होगा । तुलसी ने दूल्हे के पैरों में महावर लगाने का वर्णन किया है ।[2]

वस्त्र—वस्त्रों में नेत की साड़ी, पाट की पाछुड़ी (उत्तरीय) एवं जरी के काम की चोली (सोनार कांचलि)[3] का प्रयोग होता था ।

१ ए प्रिपेरेशन ऑफ़ मर्क्युरी विद सल्फ़र, वरमीलियन संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी-मोनियर-विलियम ।
२ जावक जुत पद कमल सुहाए—मानस १—३२६—१
३ बुके पराइया दिल सोनार कांचलि । कृत्ति० आदि०, पृ० ८६

नेत—(सं० नेत्र) कृत्तिवासी-रामायण में नेत शब्द का बहुत प्रयोग हुआ है। डा० मोतीचन्द्र इसे बंगाल में १४ वीं शताब्दी तक प्रचलित मजबूत रेशमी-वस्त्र मानते हैं।[1] सुकुमार सेन के पत्रानुसार यह सूक्ष्म-रेशमी वस्त्र था, बाण के हर्षचरित में प्रयुक्त 'नेत्र' के वर्णन के आधार पर श्री वासुदेवशरण अग्रवाल भी इसे महीन रेशमी कपड़ा मानते हैं।[2] कृत्तिवासी-रामायण के अनुसार नेत-वस्त्र की पताकाएँ और कनातें बनायी जातीं थीं। स्त्रियाँ इसकी साड़ी अथवा ओढ़नी धारण करती थीं, पुरुष भी नेत की धोती पहनते थे। कृत्तिवास की आत्मजीवनी से पता चलता है कि नेत की पाछुड़ी बिछायी भी जाती थी।

१—नेतेर पताका उड़े जय घण्टा बाजे। लंका०, पृ० ३०६
२—नेतेर कानात् दिया घेरिल चोउरी। लंका०, पृ० ४४७
३—मुख ढाकिलेन सीता नेतेर अञ्चले। लंका०, पृ० ४४७
४—वीर परिधाने परे नेतेर जे फालि। लंका०, पृ० ३२६
५—तार उपरे पड़ियाछे नेतेर पाछुड़ि। कृत्ति० आत्म-विवरणी, पृ० ५८४

पाटेर पाछड़ा—

कृत्तिवास ने लिखा है कि सीता पाट का पाछड़ा[3] ओढ़ कर मंडप के नीचे आयीं। उन्होंने अपनी आत्मजीवनी में लिखा है कि गौड़ेश्वर ने उन्हें पाट का पाछड़ा प्रदान किया।[4] ज्ञात होता है कि रेशमी उत्तरीय को पाटेर पाछड़ा कहते थे, जिसे स्त्री-पुरुष दोनों धारण करते थे।

पाट (पट) भी रेशमी-वस्त्र होता था, किन्तु यह नेत्र की अपेक्षा मजबूत जान पड़ता है क्योंकि कृत्तिवास के आत्म-विवरण के अनुसार इसका चन्दोवा बनता था।[5] चैतन्य भागवत के वर्णन के अनुसार भी पाट और नेत्र भिन्न-वस्त्र थे।[6]

तुलसी ने भी पाटंबर शब्द का प्रयोग किया है और यह भी बताया है कि पाट-कीट से इसका निर्माण होता है।[7]

पाछड़ा—संस्कृत के प्रच्छद-पट से बना है, इसी से हिंदी के पिछौरा-पिछौरी शब्द बने हैं। अमरकोश (२–६–११६) में निचोलक और प्रच्छद-पट दोनों को चादर माना है। श्री वासुदेवशरण अग्रवाल भी प्रच्छदपट को आस्तरण अथवा चादर मानते हैं।[8]

---

१ प्राचीन भारतीय वेशभूषा—डा० मोतीचंद्र—पृ० १५७
२ हर्षचरित-एक सांस्कृतिक-अध्ययन-वासुदेवशरण अग्रवाल—पृ० २३
३ पाटेर पाछड़ा दिल सकल शरीरे। कृत्ति० आदि०, पृ० ८६
४ राजा गौड़ेश्वर दिला पाटेर पाछड़ा। कृत्तिवास आत्म-विवरण, पृ० ५८५
५ पाटेर चांदोआ शोभे माथार उपर। ·················वही···········पृ० ५८४
६ पट्ट-नेत शुक्ल पीत नील नाना वर्णे॥ चैतन्य-भागवत-अन्त्य खंड, अ० १०, श्लोक ९६
७ पाट कीट तें होइ तेहिं तें पाटंबर रुचिर।
कृमि पालइ सबु कोइ परम अपावन प्रान सम॥ ७।९५ ख.
८ हर्षचरित-एक सांस्कृतिक अध्ययन—श्री वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ७९

पीत पिछौरी—मानस में राम के पीताम्बर[1] का वर्णन हुआ है, इसे ही तुलसी ने गीतावली में पीत पिछौरी[2] कहा है। पिछौरी और पाछड़ा शब्दों का उद्गम एक है, जैसा कि बताया जा चुका है। सूरदास ने भी पीत पिछौरी शब्द का प्रयोग किया है।[3] आज भी उत्तर-प्रदेश के लोग चद्दर को पिछौरा कहते हैं। प्रायः श्वेत चद्दर को ही पिछौरा कहा जाता है।

मानस के अनुसार पीतवस्त्र को 'पिअर उपरना' भी कहते थे,[4] जिसके पहनने की एक विशेष क्रिया को 'काखा सोती'[5] (कक्ष श्रोत्र) कहते थे।

कृत्तिवास ने भी राम के पीत-वस्त्र का वर्णन किया है।[6]

गंगाजल वस्त्र—बंगाल में इस नाम का वस्त्र प्रचलित था। गंगाजल जैसा अर्थात् हलका गेरुआ रंग का होने के कारण इसे गंगाजल नाम दिया गया था। बंगाली स्त्रियों की कई साड़ियों में एक गंगाजल साड़ी भी हुआ करती थी।[7] कृत्तिवास ने जो वर्णन किया है, उससे ज्ञात होता है कि वीर-पुरुष भी इसे धारण करते थे। वीर-पुरुषों के परिधान को वीर-धटि करते थे, यह कमर में फेंट लपेट कर पहनी जाती थी। कृत्तिवासी-रामायण के योद्धा-लोग गंगाजल वस्त्र की वीरधटि बाँध कर युद्ध करने जाते हैं।[8]

अलंकार—बंगाली-रामायणकार के समय स्त्रियाँ हाथ में शंख-चूड़ी, बाजूबंद, स्वर्ण-कंकण, केयूर और स्वर्णताड़ पहनती थीं। नाक में मुक्तासहित वेसर, कान में मकर-कुंडल और कर्णफूल, गले में हार एवं मणिमाला, तथा अंगुलियों में हीरक अंगूठी धारण करती थीं। कटि में किंकिणी एवं पैर में पाशुलि तथा बजने वाले नूपुर पहने जाते थे।[9]

शंख-चूड़ी—बंगाली-नारी का सौभाग्य-चिह्न है, जिसे आज शांखा कहते हैं। नैषधीय चरित में भी 'कंबु-वलय[10] का वर्णन हुआ है।

स्वर्णताड़—कुहनी के ऊपर पहना जाता था। यह सोने की चौड़ी पत्ती से बनता था। कई छोटी पत्तियाँ डोरों द्वारा इस प्रकार संलग्न रहती हैं कि उनसे एक चौड़ी पट्टी सी बन जाती है। हिन्दी में इस अलंकार को टाड़ अथवा टड़िया कहते हैं।

---

१ केहरि कटि पट पीत धर सुषमा सील निधान। मानस १—२३३
२ मंगल मय दोउ अंग मनोहर ग्रथित चूनरी पीत पिछौरी ॥ गीता०, बाल० पृ० १०३
३ कटि तट पीत पिछौरी बांधे। रामचरित (सूरदास) सम्पादक प्रभुदयाल मित्तल, पृ० ६
४ पिअर उपरना काखा सोती। मानस १-३२६-७
५ काखासोती—दुपट्टा को बाएं कंधे और पीठ से ले जाकर दाहिनी बगल के नीचे से निकालते थे।
६ आंटिया सुपीत वस्त्र बान्धिलेन राम। कृत्ति० आदि०, पृ० ७३
७ इसका वर्णन बँगला लोक-गीतों में बहुत है।
८ वीर धटि परे केह नाम गंगाजल। कृत्ति० लंका०, पृ० ३१८
वीर परिधाने परे नेतेरे ये फालि।
तिन शत फेर दिया बांधिल कांकालि ॥ कृत्ति० लंका०, पृ० ३२६
९ कृत्तिवासी-रामायण में नारी के श्रृङ्गार-प्रसाधन के लिए देखिए —(१) इन्दुमती श्रृङ्गार, आदि० ३१, (२) विवाह के समय सीता का प्रसाधन, आदि० ८६ (३) वन जाने के समय सीता का श्रृङ्गार अयोध्या० ११०, (४) सम्भवा की रूप-सज्जा, किष्कि० २००, रावण-वध के उपरांत लंका में राक्षसियों द्वारा सीता का प्रसाधन और श्रृङ्गार करना-लंका० ४३८
१० नै० च० १५-५५

पाशुलि—किस प्रकार का अलंकार था, इसका ठीक पता अभी नहीं चल सका है। कोई इसे पाजेब समझता है, कोई कड़ा (आंगटा)। सुकुमार सेन इसे नूपुर के समान पैर का अलंकार मानते हैं। नूतन बांग्ला अभिधान में इस शब्द को प्राचीन कवि-प्रयुक्त मानते हुए इसका अर्थ किया है—पैरों की अँगुलियों की अँगूठी विशेष।

मानस—इसमें गोस्वामी जी ने स्त्रियों के प्रसाधन का वर्णन नहीं किया है। आवश्यकता पड़ने पर 'सहज सिंगार किएं' मात्र कह कर आगे बढ़ गये हैं। वैसे कई अलंकारों का वर्णन किया है—कंकण, किंकिणि, कुण्डल, कनकफूल, चूड़ामणि, ताटक, नूपुर, मंजीर एवं मुद्रिका आदि।[1] कृत्तिवास ने भी लगभग इन सभी अलंकारों का प्रयोग किया है।

(ऊ) कुछ अन्य सामग्री—

१—भोजन

भारत कृषि-प्रधान देश है, अतएव यहाँ के खाद्य-पदार्थों में दुग्ध तथा धान्य की प्रचुरता रहती है। लगभग समस्त भारत में चावल उत्पन्न होता है, बहुत बड़े भाग में गन्ना और गेहूँ भी पैदा होता है। गोपालन तो एक धार्मिक-कार्य ही रहा है। अतएव हमारे भोज्य-पदार्थों में दुग्ध, चावल, गेहूँ एवं शकर से बने पदार्थों की अधिकता रहती है। फलों में केला और आम सभी स्थानों पर पाये जाते हैं। बंगाल में इनके अतिरिक्त नारियल और कटहल भी। दोनों ग्रन्थों में वर्णित भोज्य-पदार्थों का वर्णन पढ़ने पर पता लग जायगा कि उनमें समानता है। सभी भारतीयों के भोजन में बहुत कुछ समानता रहती है। कृत्तिवास ने विविध पकवानों के नाम गिनाये हैं। प्रबन्ध-कौशल की दृष्टि से नाम गिनाना ठीक नहीं रहता, इसलिए तुलसी ने षट्रस-व्यंजन आदि का उल्लेख मात्र किया है, अथवा एकाध भोज्य के नाम गिना दिये हैं। उनकी कसर पहले ही जायसी ने अपने 'पदमावत' में निकाल दी है। कृत्तिवास ने वर्णन कर अच्छा ही किया। बंगाल में प्रचलित अनेक-खाद्य वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है। इनमें से अनेक पकवान विशेष अवसरों पर ही बनाये जाते हैं। सामान्य-दैनिक भोजन दोनों प्रदेशों का समान है।

पुराणों अथवा संस्कृत-महाकाव्यों में वर्णित चार प्रकार के पदार्थों का वर्णन दोनों ने किया है।

> चर्व्य चोष्य लेह्य पेय सुगन्धि सुस्वाद।
> यत पाय तत खाय नाहि अवसाद।।कृत्ति० अयो०, पृ० १२८
> चारि भाँति भोजन बिधि गाई। मानस १–३२८–४

कृत्तिवासी-रामायण में वर्णित भोज्य-पदार्थः—

चावलों की राशि, दधि, दुग्ध, पायस, घृत, उज्ज्वल-शर्कर, संदेश, मधु, पापड़ (पांपड़), रोटी (रुटि), लूची और कचौड़ी (कचूरी)।

---

१ कंकण-किंकिणि-नूपुर-१-२२९-१। कुंडल-गोलाकार आभूषण, मकर आदि अनेक आकृति का होता था। १-२४२-४। कनकफूल-१-२१८-७। चूड़ामणि—५।२६।२। ताटंक—६।१३ क। मंजीर—नूपुर-युक्त पाजेब १-३२१-८ छंद, मुद्रिका २-२०१-३।

फल—केला, आम, नारियल, कटहल, द्राक्षाफल, सिंघाड़ा (पानिफल) और कमल नाल ।

मछलियाँ—रोहिता, चीतल, और कै ।[1]

कुछ विशिष्ट पदार्थ–मोतीचूर, मोदक, खाजा, खुरमा, जलेबी (जिलेपी) । भंडा-बड़ा लड्डू ।

सरुचाकलि—पूस-पार्वण अथवा मकर-संक्रांति के दिन उर्द और चावल पीस कर अनेक पर्त्त की रोटी सी बनाकर गुड़ अथवा शकर की चासनी में डुबा लेते हैं ।

लवण ठिकरि—नमकीन पकवान ।

क्षीरे लाडू—दुग्ध जात मिष्ठान्न ।

क्षीर सा—दुग्ध-जात-मिष्ठान्न ।

रसकरा—चासनी–पगे हुए नारियल के लड्डू, कृत्तिवास ने इन्हें नारिकेल लाडू भी कहा है ।

मनोहरा—चीनी के लेप-युक्त संदेश ।

अमृता—दाल से प्रस्तुत कुण्डली के आकार का मिष्ठान्न ।

पिठे—(पिष्टक) पिसे हुए दाल, चावल, छाना, नारियल आदि के संयोग से बना मिष्ठान्न ।

पूलि—(पूलिका) पिष्टक–विशेष ।

गजा—कई पर्त्तों वाला मैदे का एक पकवान, जिसे घी में तलकर चासनी में डुबाते हैं ।

गंगाजल लाडू–गंगाजल के रंग का अर्थात् हल्के गेरुआ रंग का लड्डू विशेष ।

झाल लाडू—कई लोगों से इस पदार्थ के सम्बन्ध में पूछा, किन्तु कोई इस पकवान का अर्थ बताने में समर्थ न हुआ । विभीषण ने बन्दरों के प्रीति-भोज के समय इसे भी परोस दिया । खाने वाले सिर खुजलाते थे और थू-थू करते थे ।[2] नैषधीय-चरित में इसी प्रकार के एक पदार्थ का वर्णन है जिसके खाने से नल के साथी बारातियों की भी यही स्थिति हो गयी थी । नैषधीयचरित[3] के वर्णन के अनुसार यह भोज्य-पदार्थ, काला-तिल और दही से बना तथा श्वेत चरपरा था ।

बड़ा— कृत्तिवास ने ताल-बड़ा, कला-बड़ा एवं छाना-बड़ा का उल्लेख किया है ।

छाना-भाजा-छाना से प्रस्तुत तरकारी की भाँति खाया जाने वाला भोज्य-पदार्थ ।[4]

शर्बत—गंगाजल में शर्करा और कपूर मिलाकर बनाया जाता था ।

१ कै (कोइ—कवयी)=यह मछली पानी से बाहर देर तक रह सकती है ।

२ कृत्ति० रामा०, लंका०, पृ० ४४६

३ नैषध-चरित, पृ०१६—७३,७४

४ कृत्तिवास के समस्त भोज्य पदार्थों के लिए देखिए—अयोध्या, पृ० १२५, १२८, लंका० ३५२, ३६६, ४५२, उत्तर० ५४७

मानस के भोज्य पदार्थ—

कृत्तिवासी-रामायण के अनुसार मानस में भी शकर[१] (खाँड़) दूध[२], दधि[३], नवनीत[४], घृत[५] और चावल[६] का वर्णन हुआ है। इनके अतिरिक्त दाल[७], पूप[८], (मीठी पूड़ी), मोदक[९], चिउड़ा[१०], चबैना[११], मेवा[१२], मधुपर्क[१३] एवं विविध पकवानों[१४] की चर्चा की है। इनमें भी दूध, नवनीत, खाँड और चबैना उपमान के रूप में आये हैं। मछलियों में पाठीन खाद्य बतायी गयी है।

मधुपर्क—दही, घी, जल, शहद और चीनी मिश्रित पेय।

चबैना—भुना हुआ अथवा उबाला हुआ अन्न।

मुखशुद्धि—

पानादि द्वारा मुख-शुद्धि भारतीयों की अपनी प्रथा है। जिस प्रकार दोनों रामायणों में लोग खाने के पूर्व हाथ पैर मुखादि का प्रक्षालन करते हैं, उसी प्रकार भोजन के उपरांत भी। तत्पश्चात् पान-कपूर आदि से मुख-शुद्धि करते हैं। साथ ही चंदन, सुगन्ध और मालाएँ धारण करते थे।

कृत्ति० रामा०—सोनार डाबरे तारा करे आचमन।
रतन बाटाय करे ताम्बूल भक्षण ॥ लंका०, पृ० ४४६
कर्पूर ताम्बुल माल्य दिलेन चन्दन। आदि०, पृ० ३६
सुतृप्त हइया राम करे आचमन।
कर्पूर ताम्बूले करेन मुखेर शोधन ॥ आदि०, पृ० ८८

मानस—अंचइ पान सब काहूं पाए।
स्रग सुगन्ध भूषित छबि छाए ॥ १–३५४–२

---

१ मानस १–२७५
२ मानस १–३१३—८
३ मानस १–३०४—६
४ मानस ७–१२४—७
५ मानस १–३२८
६ मानस १–३२८
७ मानस १–३२८
८ मानस ७–७६—१०६
९ मानस १–२४५—१
१० मानस १–३०४—६
११ मानस २–२६—६
१२ मानस १–३३२—४
१३ मानस १–३२२—८ छंद १
१४ मानस १–३३२—४

२—मनोरंजन

कृत्तिवास के रामादि की दिनचर्या-वर्णन में तत्कालीन कुछेक मनोरंजनों की झलक मिल जाती है—मल्ल-विद्या, गुल्ली-डंडा, नाठरि एवं मृगया[१]।

तुलसी ने मानस में मनोरंजन के विषय में केवल दो का ही चित्रण किया है—मृगया[२] एवं चौगान[३]। उन्होंने गीतावली में कुछ अधिक मनोरंजनों का चित्रण किया है। जैसे—गोली, भौंरा, एवं चकई-डोरी।

चौगान—मानस की अपेक्षा गीतावली[४] में इस खेल का विस्तृत वर्णन है। ब्रिग्स के अनुसार यह खेल तत्तार लोगों ने फारस में प्रारंभ किया था[५]। कुतुबुद्दीन की मृत्यु (१२१० ई०) इसी खेल के कारण हुई।

आईने अकबरी[६] में इस खेल का विशद् वर्णन है। इस खेल में दस खिलाड़ी एक बार में खेलते थे, शेष प्रतीक्षा करते थे। एक घड़ी बीत जाने पर दो बैठ जाते थे और दो नये खिलाड़ी खेलने लगते थे। पलास की लकड़ी हल्की होती है और जलाने पर देर तक जलती रहती है। अकवर ने इस लकड़ी से रात के समय खेलने के लिए जलती हुई गेंदों का आविष्कार किया था। अकबर खेलने के बल्लों में सोना-चाँदी लगवाता था, बल्ले के टूट जाने पर जिसके हाथ वह पड़ता वही सोना चाँदी ले जाता। बल्ले को हेंगुर कहते थे—(पदमावत—४८६—६—सं० वासुदेवशरण अग्रवाल)[७] चौगान खेल का विशद् वर्णन डा० वासुदेवशरण अग्रवाल संपादित पदमावत की टीका में हुआ है। दोनों कवियों ने मनोरंजन जिन प्रकारों का वर्णन किया है, वे दोनों कवियों के क्षेत्रों में प्रचलित थे। मृगया और चौगान शाही-खेलों को छोड़ दिया जाय तो शेष आज भी बालकों द्वारा खेले जाते हैं।

---

१ प्रातःकाल चारि भाइ जान माल धरे।
मल्ल विद्या शिखिल सकले समादरे॥
गुलि दांड़ा निया राम नाठरि खेलानि ;
रामेर विक्रमे सब मालेर पयान॥ कृत्ति० आदि०, पृ० ६३
नाठरि-संभवतः लाठी का खेल।

२ बंधु सखा संग लेहिं बुलाई। बन मृगया नित खेलन जाई॥ मानस १—२०४—१

३ ते तव सिर कंदुक सम नाना। खेलहिं भालु कीस चौगाना॥ मानस ६—२६—५

४ राम लषन इक ओर भरत रिपुदवन लाल है इक ओर भये।
सरजु तीर सम सुखद भूमिथल गनि गनि गोइयां बांटि लये॥
कंदुक-केलि कुसल हय चढ़ि चढ़ि मन कसि कसि ठोंकि ठोंकि खये।
कर कमलनि विचित्र चौगानें खेलन लगे खेल रिझाये॥
एक लै बढ़त एक फेरत सब प्रेम-प्रमोद-बिनोद-मये। बाल०-४३ गीता०

६ आईने अकबरी—ब्लाखमन—आइन २६

७ देखिए-पदमावत-४८६—६, ६३६—६ एवं ६२८—८ तथा रामचन्द्रिका—२६-११-लाला भगवान दीन की व्याख्या।

३—वाद्य

भारत में वैसे ही अनेक वाद्य प्रचलित थे, मुस्लिम-जाति से संसर्ग स्थापित होने पर इनकी संख्या और भी बढ़ गयी। मंगल-अवसरों के अतिरिक्त युद्ध-क्षेत्र में भी वाद्यों का भी प्रयोग हुआ करता था। कृत्तिवास ने समस्त वाद्य-वृन्द के लिए वाद्यभांड शब्द का प्रयोग किया है। आधुनिक बैंड शब्द वाद्यभांड का ही समानार्थक है।

कृत्तिवास एवं तुलसी दोनों ने पंच-शब्द वाद्यों का उल्लेख किया है—

पञ्च शब्दे वाद्य बाजे ना जाय गणन। कृत्ति०-लंका०, पृ० ३३२,
पंच सबद धुनि मंगल गाना। मानस—१-३१८-३

पंच-वाद्य इस प्रकार थे—

तंत्री, ताल, झांझ, नगाड़ा और तुरही[1]।

कुछ वाद्य हिन्दी एवं बंगला-भाषी-क्षेत्रों में समान रूप से प्रचलित थे, इनका उल्लेख दोनों रामायणों में हुआ है।

कृत्ति० रा०			मानस	
(१) घण्टा	लंका०,	पृ०२८३	घंट	१-३०१-७
(२) झाँझि	लंका०,	पृ० २८३	झांझि	१-२६२—१
(३) डम्बूर	,,	२९९	डमरू	१-९१—५
(४) दुन्दुभी	,,		दुंदुभी	२-२६२—१ (धौंसा)
(५) करताल	,,	२८३	ताल	६-६—६
(६) पाखोआज	,,		पखाउज	६-६—६ (पक्ष वाद्य)
(७) मृदङ्ग	,,		मृदंग	१-२६२—१
(८) वीणा	,,	२९९	वीना	६-९—९ (वीणा)
(९) भेरि	,,		भेरि	१-२६२—१
(१०) शङ्ख	,,		संख	,,
(११) शाहनाई	,,	२८३	सहनाई	,, (फा० शहनाई)

कृत्तिवास ने अपने महाकाव्य के अनेक स्थलों पर कई बार वाद्यों की लम्बी-सूची प्रस्तुत की है। ये वाद्य इस प्रकार हैं[2]—

काहाल—(काहल) श्री वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार यह एक नगाड़ा था जिसका नीचे का भाग फूल का बनाया जाता था। इसकी जोड़ी नौबत खाने में बजायी जाती थी। (हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन-६७)। इसके सम्बन्ध में वे आगे कहते हैं कि काहली नाम से अभी तक एक बाजा प्रचलित है जो लगभग दो फुट लम्बा सुनार की फुकनी की तरह का होता है जिसके निचले हिस्से में कुप्पीनुमा फूल होता है। कभी-कभी दो काहलियाँ एक साथ फूंकी जाती हैं। काहली में कूकने जैसी आवाज निकलती है। (वही—१४०)

---

१ तुलसी-शब्द-सागर।
२ देखिए-कृतिवासी-रामायण, आदि०,पृ० ३३, लंका, पृ० २८३, २९९, ३०६, ३६६, ३८८ उत्तर० ५११।

काड़ा—ढाक-जातीय वाद्य-विशेष—(चलंतिका)

कांस-कांसी–(कांस्य), मंजीरा।

खञ्जनी—खंजड़ी।

खमक—एक प्रकार का ग्राम्य ग्रानद्ध-यंत्र, पटह—विशेष—(शब्द-बोध-ग्रभिधान)

चौतारा—तानपूरा-जातीय चार-तार का यंत्र-विशेष–(शब्द-बोध-ग्रभि०)

जयढोल एवं जयढाक } जयसूचिका ढक्का—श० बो० ग्रभि०। ए लार्ज ड्रम ग्रॉफ विक्टरी–(मोनियर-विलियम)

जगझम्प—ढाक-जातीय वाद्य-यंत्र—(चलंतिका)

टमक—टामक=डिमडिमी (शब्द सागर) 'सुजान चरित' में भी इसका टामक नाम है—१७३ (एक मुँह माँदल नुमा ढोल)

टिकारा—नगाड़ा-जातीय वाद्य-यंत्र—(चलंतिका)

डम्फ—डफ (ग्ररबी दफ़)

ढाक—ढक्क।

ढेमचा—ढेमसा=दमामा—देशज—(शब्द-बोध-ग्रभिधान)

तासा—(ग्ररबी तास) चमड़ा मढ़ा हुग्रा एक बाजा जो गले में लटका कर दो पतली लकड़ियों से बजाया जाता है।

तबल-तबोल—तबला की ग्राकृति के वाद्यों का जोड़ा, जो दो लकड़ियों से बजाया जाता है।

तबला—तबला।

तूरी—(तूर्य) तुरही।

दण्डी—दंडी नामक वाद्य का वर्णन सुजान-चरित (१३६) एवं पृथ्वीराज रासो (मृदंगी दंडिका ताली-४५।१६) में भी हुग्रा है। कोई इसे ढोलक कहता है ग्रौर कोई तंत्री-वाद्य।

दगर-दगड़—(द्रगड़) ढाक-जातीय वाद्य-यंत्र (चलंतिका)

दामामा—(फ़ारसी दमामा)

पिनाश—(पिनाक)–तंत्री-युक्त वाद्य-यंत्र—(चलंतिका) वासुदेवशरण ग्रग्रवाल के ग्रनुसार यह धनुष की भाँति होता है, जिसमें तीन ग्रथवा सात तूंबे लगे रहते हैं—(पदमावत-परिशिष्ट)

पड़ा—(पटह) ढाक-तंत्री-पटह के सम्बन्ध में श्री वासुदेवशरण ग्रग्रवाल लिखते हैं—छोटा ताशेनुमा बाजा होता था जिसे डोरी से गले में बाँध कर बजाते थे। (हर्ष-चरित एक सांस्कृतिक-ग्रध्ययन–६)

बाँसी—वंशी।

महरी-मोहरी—चैतन्य भागवत में भी इसका उल्लेख है—(१०–६१)। वासुदेवजी के ग्रनुसार यह हिन्दी की महुग्ररि (मधुकरी) है। जगदलपुर, बस्तर,

के अपने मित्र शानी जी ने सूचित किया है कि वहाँ की आदिम जातियों में मोहरी नाम का बाजा आज भी प्रचलित है, जिसकी आकृति क्लार्नेट जैसी और आवाज शहनाई जैसी होती है। ऊपर का भाग बाँस का होता है और निम्न-भाग पीतल का।

मादल—(मृदंग विशेष) मर्दल।

मोचङ्ग—मुहचंग—देखिए, सुजानचरित—१७३।

मन्दिरा—मंजीर-कांस्य निर्मित वाद्य-विशेष।

रणसिङ्गा—सींग की आकृत्ति का वाद्य-विशेष।

सेतारा—सितार।

कृत्तिवास के कुछ ऐसे वाद्य भी हैं जिनका पता नहीं लग सका
कि ये क्या थे और कैसे थे।

उरमाल, ताय, धूसरी, विन्दुयान, भोङ्ङ्ग, रुद्रक (डमरू ?) और सिन्धु। सिन्धु का उल्लेख हिन्दी के काव्य-ग्रन्थों में हुआ है।[1]

राम-काड़ा--राम-काड़ा से तात्पर्य बड़ा-ढाक होगा। बंगाल में राम शब्द बड़ापन सूचक है, जैसे कि राम-पाखी=मुर्गी, राम-छागल=बड़ा बकरा, रामधनु=इंद्र-धनु।

तुलसीदास ने नफीरि (फा० नफीरी=तुरही) ६—४०—३ निसाना (फा० निसान-डंका) ६—७८—८ और पनव (पणव) छोटा नगाड़ा ६—७८—८ का प्रयोग भी किया है। उन्होंने गीतावली में कुछ और वाद्यों का भी वर्णन किया है।

कृत्तिवास ने कई स्थानों पर वाद्यों की लम्बी सूची दी है, सभी स्थलों का वर्णन एक सा है। कृत्तिवास द्वारा वर्णित कई वाद्यों का उल्लेख सुजान-चरित में भी हुआ है। उसमें कुछ अन्य वाद्यों की भी चर्चा है।[2]

(४) अस्त्र-शस्त्र—

कृत्तिवास एवं तुलसीदास के समय तक योद्धा लोग धनुष-बाण, तलवार, भाला आदि प्राचीन अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग करते आ रहे थे। तुलसी के काल तक आग्नेयास्त्रों का प्रयोग बहुत हो गया था। उन्होंने युग की परिस्थितियों से प्रभावित होकर राम-राक्षसों के युद्ध में विविध गोला भी चलवा दिये हैं। कृत्तिवास एक तो तुलसीदास से पहले आविर्भूत हुए थे, दूसरे उनका बंगाल भारत के पूर्व में पड़ता है, अतएव उनके अस्त्र-शस्त्रों के नामों में मुसलमानों का प्रभाव प्रकट नहीं होता। तुलसी के एक दो नाम फ़ारसी के हैं।

निम्न शस्त्रास्त्रों का दोनों रामायणों में वर्णन हुआ है—

१—अंकुश—कृत्तिवासी-रामायण में इसे डाङ्गस कहा गया है। यह शब्द देशज है। (लंका०—३२९) मानस (१—२५६)।

---

१ सिंधू बज्जन बज्जयौ

२ सुजान-चरित-सूदन कवि, पृ० १३६, १७३

२—कुठार—कृत्तिवासी-रामायण लंका० २७७, मानस ६—३६—८।

३—खांड़ा—(खड्ग) कृत्तिवासी-रामायण (खांड़ा-लंका० २८५), मानस (२—१६१—३) आईने-अकबरी में खांड़ा को सीधी तलवार बताया गया है—आईन-३५। दोनों ने तलवार और असि का भी प्रयोग किया है।

४—गदा—कृत्ति० रामा० (लंका०—२९३), मानस (६–६३–४) रामचन्द्र दीक्षितार इसे लोहे का भारी दंड मानते हैं, जिसके सिरे पर सौ नोंकें रहती हैं।[1]

५—चक्र—कृत्ति०रामा० (लंका०३३७), मानस (६—९०—५६) गोलाकार, मध्य में छेद, ८, ६ अथवा ४ आरे का[2]।

६—छुरी—कृत्ति०रामा० (लंका० ३२९), मानस (२—२१—१)

७—तोमर—कृत्तिवास ने तोमरधारी सेना का वर्णन किया है।[3] मानस (६—३६—८) कौटिल्य के व्याख्याकार के अनुसार यह बाण की तरह का नोंक वाला एक लौह दंड होता था। इसकी लम्बाई ४, ४½ और ५ हाथ होती थी। यह दो प्रकार का होता था—१—सर्वायसम और २—दंड।[4]

८—नाराच—कृत्ति० रामा० (लंका० ३२२), मानस (३–१९ छंद, पंक्ति ८) यह पूर्णतः लोहे का बाण होता था, इसका दूर फेंकना कठिन था।

९—पाश—कृत्ति० रामा० (लंका० २८७), मानस (५–२०–१) मूंज, चमड़ा अथवा सूत की रस्सियों से बना हुआ अस्त्रविशेष, जिससे शत्रु को बाँधा जा सकता था।

१०—भिन्दिपाल—कृत्ति० रामा० (भिन्दपाल–लंका० ३२२), मानस (भिंडिपाल ६-३९-७) एक हाथ लंबा भारी गदा सा होता था, नीचे का सिरा चौड़ा और मुड़ा हुआ रहता था।[5] कोई-कोई इसे गोंफना मानते हैं।

११—भल्ल—कृत्ति० रामा० (अयो० १०५), मानस (६–८२–६) शक्ति, शेल और शूल भी भालों के प्रकार थे जिनका वर्णन इन कवियों ने किया है। त्रिशूल का भी उल्लेख है।

१२—मुद्गर—कृत्ति० रामा० (लंका० ३०६), मानस (३–३९–८) इसकी आकृति व्यायाम के लिये घुमाये जाने वाले मुद्गर के समान होती थी, किन्तु यह अवश्य ही लोहे का होता होगा क्योंकि दीक्षितार के मतानुसार इससे पत्थर तोड़े जाते थे।[6]

---

१ वार इन ऐंशिएंट इण्डिया–वी० आर० रामचन्द दीक्षितार, पृ० ११३

२ ……………वही……………वही……………१०९

३ आर कत ढाली शूली तोमरी खर्परी।
जाइतेछे रथे गजे घोटके ते चड़ि॥ कृत्ति०, लंकाकांड।

४ वार इन ऐंशिएंट इंडिया, वी० आर० रामचन्द दीक्षितार, पृ० ९८–९९

५ ……………वही…………… १०६

६ ……………वही…………… ११३

दोनों रामायणों में योद्धा लोग कवच-धारण करते हैं। मानस में कवच को वर्म, अंगरी (२-१९०-५) और सनाह (२-१९५-२) कहा है। कृत्तिवासी रामायण में संस्कृत के संनाह के स्थान पर साना अथवा शाना (लंका० ३२४) प्रयुक्त हुआ है, इसी स्थल पर कवच भी कहा है। शिरस्त्राण के लिए कृत्तिवासी रामायण में टोपर (लंका०-३३२) और मानस में कूंड़ि (२-१९०-५) कहा है। ढाल के लिए दोनों ने वर्म शब्द का प्रयोग किया है। (कृत्तिवासी-रामायण अयो० १०५), (मानस ७-२१-८ छंद १)

मानस के कुछ अन्य हथियार—

करवाल, कृपाण (६—१००—छंद २) किरिच (७-१२१—६) गोला (६-४८-१०) परिघ=मूसलाकार अस्त्र। किवाड़ बन्द करने के काम भी आता था। (३—१८—१४ छंद)

कृत्तिवास के अन्य अस्त्र-शस्त्र—

कृत्तिवास ने जाठा, झकड़ा (?) मुषल, टाङ्गी और सावल का वर्णन किया है।

जाठा—लौह-यष्ठि (उत्तर० ५१४)। टाङ्गी (सं० टङ्क) परशु-जातीय अस्त्र। मोनियर-विलियम के संस्कृत-कोश में इसे एक प्रकार की तलवार भी कहा है।

मुषल—मूसल की आकृति का अस्त्र-विशेष (उत्तर० ५१४)

सावल—(सं० शर्वला) दंडाकार खननास्त्र। कीर्त्तिलता में इसका वर्णन है— सावर एक हांक तन्हि का हाथ-९२।

कृत्तिवास द्वारा प्रयुक्त दो अन्य शस्त्रों में लोहार पावड़ा (लंका० ३७६) खननास्त्र प्रतीत होता है एवं कर्णिक (लंका० ३३१) चूना-बालू लगाने का औजार है, जिसे मिस्त्री काम में लाते हैं। इसे गाँवों में कन्नी कहते हैं।

कृत्तिवास ने १०० से भी ऊपर अनेक बाणों का अनेक स्थलों पर वर्णन किया है। इनमें से कुछ बाण देवताओं के नाम पर हैं, जैसे कि इंद्रबाण, रुद्र-बाण आदि। इनका वर्णन पारंपरिक जान पड़ता है। कुछ बाण आकृति के अनुसार नाम-धारण किये हैं, जैसे कि सूची-मुख। (सुई जैसी नोंक वाला) अर्धचंद, काकमुख आदि। कृत्तिवास ने कुछ बाणों की विशेषताएँ भी बतायी हैं।

सिंह-शार्दूल बाण के चारों ओर काँटे होते थे—लंका०, पृ० २७९। महापाश (उत्तर०, पृ० ५५१) और अस्त्रकला बाण (उत्तर०, पृ० ५६५) से शत्रु का गला और हाथ बाँध लिये जाते थे। अश्वकला-बाण (उत्तर० पृ० ५६०) घोड़ों के गले काट देता था। बेडापाक-बाण (उत्तर०, पृ० ५५०) कुम्हार के चाक की तरह घूम-घूमकर सब का वध करता था।

कृत्तिवास यह भी बताते हैं कि किस बाण का निराकरण किस बाण से किया जा सकता था।[१] सर्प-बाण का खग-बाण से। पर्वत-बाण का पवन-बाण से। कुहू-बाण का

---

१ लंका०, पृ० ३५१

चिकुर-वाण से. हस्तिवाण का सिंहवाण से एवं अग्निवाण का वरुण-वाण से निराकरण होता था।

कृत्तिवास ने अनेक बाणों की जो लंबी तालिका कई स्थलों पर प्रस्तुत की है, उसमें कितने कल्पित हैं और कितने वास्तविक, कहा नहीं जा सकता। बाणों के अधिकांश नाम इस प्रकार हैं—

विष्णुजाल, इन्द्रजाल, ब्रह्मजाल, वरुण, रुद्र, कुवेरास्त्र, गान्धर्व, वैष्णव, उल्कामुख, सूची-मुख, शिलीमुख, सूर्य-मुख, चन्द्रमुख अश्वमुख, अग्निमुख, काकमुख, भैरव-मुख, असुर-मुख, धूम्र-मुख, कूर्म्ममुख, कपोतक, हयग्रीव, कर्णिकार, राजहंस, त्रिशूल, अंकुश, वज्र, विष्णुचक्र षट्चक्र, शतधार, सिंहदंत, वज्रदंत, कालदंत, अर्धचन्द्र, क्षुरपा, खुरपार्श्व, यमज, कालान्त, अनल, विद्युत, खरशाण, नक्षत्र, गगन·······ऐषिक, विकट, आशुग, क्षुरधार, पशु, पक्षी, अग्नि, आतंक, विह्वल-मातङ्ग, गजांकुश, शिलाचूर्ण, कालानल, रिपुहंता, विश्वहंता, विपक्ष-संहार, नील, हरित, लाल, अमर्त्त, समर्थ, विरोचन, सप्तसार, सप्तधाराधर, वर्द्धमान, भंग, विभंग, सन्तापन, विलापन, शोषक, अशोक, अङ्ग, संकट, सार्थकि, पथिक, माल्यवान, हीरावस्तु, शारङ्ग, हीरा, जीरा, कुरूपा, सुरूपा, कर्णरेखा।[1]

---

१ बाणों के संपूर्ण वर्णन के लिए देखिए—कृत्ति० रामा० आदि० ७६, लंका० २७९ २८७, ३०३, ३४७, ३५१, ३६४, ३६५, ३७५, उत्तर० ५१२, ५५०, ५५१, ५६०, ५६५.

अध्याय ४

कृत्तिवास की मौलिकता

१—विद्वानों की विभिन्न-धारणाएं, स्वमत

२—कृत्तिवास की मौलिकता

३—बंगाली-प्रभाव

४—कृत्तिवास के आधारभूत-ग्रंथ

कृत्तिवास एवं रामायण के सम्बन्ध में बंगाली लेखकों की धारणाएँ

असंस्कृतज्ञ——

कृत्तिवास ने रामायण का सृजन पांचाली[1] के ढंग पर किया था। अतएव यह ग्रन्थ लोक-काव्य जैसा अधिक हो गया है। उसकी यह धारा देखकर बंगाली-साहित्य के कई विद्वान् यह समझते रहे कि वस्तुतः कृत्तिवास संस्कृत नहीं जानते थे, उन्होंने पुराण सुनकर रामायण की रचना की होगी। श्री हरिश्चन्द्र ने १८७० में स्वसंपादित कृत्तिवासी-रामायण की भूमिका में इस प्रकार की धारणा का समर्थन किया है तथा कृत्तिवासी की रचना में ही इसका प्रमाण खोजा है—

कृत्तिवास पण्डित विदित सर्व्व लोके।
पुराण शुनिया गीत रचिल कौतुके[2] ॥

कुछ लोगों का विचार था कि कथकों के मुख से कहानी सुनकर कृत्तिवास ने अपनी रामायण की रचना की थी। असित बोस का कहना है कि प्रचलित कृत्तिवासी-रामायण के अनेक स्थलों की वाल्मीकि-रामायण से भिन्नता देखकर अनेक विद्वानों को लगा कि कृत्तिवास संस्कृत में व्युत्पन्न नहीं थे। कथक और रामायण-गायकों के मुख से रामायण की कथा सुनकर उन्होंने रामायण की रचना की। नाना आलोचनाओं से अब यह मिथ्या-संस्कार अपगत हो गया है।[3] उपेन्द्रनाथ प्रभृति लेखकों ने भी अपनी-अपनी कृत्तिवासी-रामायणों की भूमिका में कृत्तिवास के असंस्कृतज्ञ होने का खंडन किया है।

अंत में उनके प्रति इस मिथ्या-धारणा की इतनी उपेक्षा हुई कि विद्वानों ने इसके बारे में बात करना ही बंद कर दिया। अपेक्षाकृत अर्वाचीन संस्करणों की भूमिकाओं अथवा कृत्तिवास-सम्बन्धी अन्य लेखों में इसकी चर्चा नहीं हुई है।

अतएव उनके संस्कृतज्ञ होने का प्रमाण देना व्यर्थ है। उपर्युक्त उद्धरण के विरोध में केवल एक उद्धरण देना समीचीन होगा——

एइ सब गाइल गीत जैमिनी भारते।
सम्प्रति जे किछु गाइ वाल्मीकिर मते ॥उत्तर०, पृ० ५६६।

(यहाँ तक जैमिनी-भारत के अनुसार वर्णन हुआ है, अब जो कुछ वर्णन होगा, वह वाल्मीकि के अनुसार होगा।)

---

१ पांचाली प्रबन्धे गीत कृत्तिवास गाय—लंका०, पृ० २६५

२ रामानंदी संस्करण, अरण्यकांड, पृ० १४२ पर यह उद्धरण मिलेगा।

३ असित बोस संपादित कृत्तिवासी रामायण, भूमिका-पृष्ठ ञ।

और कृत्तिवास ने वस्तुतः किया भी ऐसा है। उन्होंने कई पुराण-नाटकादि से सहायता ली है, जैसा कि आगे सिद्ध हो जायगा। विना संस्कृत-ज्ञान के यह सम्भव न होता। दीनेशचंद्र सेन ने कृत्तिवास को शास्त्रज्ञ पंडित माना है।[1]

अनुवादक—

दूसरे प्रकार के विद्वानों का वर्ग कृत्तिवासी-रामायण को वाल्मीकि-रामायण का भाषानुवाद कहता था। एक ओर कृत्तिवास को अनुवादक कहा जाता, तो दूसरी ओर इसका खंडन भी रहता कि वे वस्तुतः अनुवादक नहीं हैं। दीनेशचंद्र सेन ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वंग भाषा ओ साहित्य' में कृत्तिवास की रचना का अनुवाद-शाखा के अन्तर्गत विचार किया है।[2] इसी ग्रन्थ में वे यह भी सिद्ध करते हैं कि इस रचना को ठीक अनुवाद नहीं कहा जा सकता।[3] कृत्तिवासी-रामायण के स्वसम्पादित संस्करण की भूमिका में उन्होंने कहा है कि कृत्तिवास ने आदि-कवि की संपत्ति निजस्व कर ली थी। उन्होंने उसका न तो अपहरण किया और न ही अनुवाद किया। उन्होंने नूतन-काव्य रचना की थी।

जे० सी० घोष ने प्राचीन बँगाला साहित्य के तीन विभाग करते हुए दिखाया है कि कृत्तिवासी-रामायण संस्कृत से बंगला अनुवाद वाले विभाग में आती है।[4] आगे वे यह भी कहते हैं कि कृत्तिवास की कविता वाल्मीकि की रामायण का स्वतंत्र अनुवाद है।[5] वे स्पष्ट कर देते हैं कि कृत्तिवास संस्कृत-रामायण का शब्दशः अनुवाद नहीं करना चाहते थे, उन्होंने इसकी मुख्य-कथा का अपने ढंग से पुनर्कथन किया है।[6]

भ्रम का प्रारम्भ--

कृत्तिवासी-रामायण का प्रथम-संस्करणश्रीरामपुर के मिशनरी-प्रेस से प्रकाशित हुआ था, उसके मुख-पृष्ठ पर लिखा था—

THE RAMAYAN
A POEM
IN FIVE VOLUMES,
TRANSLATED FROM THE ORIGINAL SANSKRIT,
BY KIRTEE BASS
VOL. I
SERAMPORE,
PRINTED AT THE MISSION PRESS.
1802.

---

१ वङ्ग भाषा ओ साहित्य-दीनेशचंद्र सेन, पृष्ठ ७६।
२ अनुवाद शाखा— (क) कृत्तिवास-वङ्ग-भाषा ओ साहित्य—दीनेशचंद्र सेन, पृष्ठ ७५।
३ वङ्ग-भाषा ओ साहित्य—दीनेशचंद्र सेन, पृष्ठ ७८।
४ बेंगाली-लिटरेचर—जे० सी० घोष, पृ० ३२।
५ बेंगाली-लिटरेचर—जे० सी० घोष, पृ० ३७।
६ बेंगाली-लिटरेचर—जे० सी० घोष, पृ० ३६।

इसी प्रकार बँगला में भी लिखा था[1]—

'वाल्मीकि कृत

रामायण

महाकाव्य

कीर्त्तिवास बाङ्गालि भाषाय रचित

प्रथम काण्ड

१८०३

हरिदास घोष, सतीशचंद्र शील प्रभृति संपादक भी अपने ग्रंथ के मुख-पृष्ठ पर कृतिवासी-रामायण को संस्कृत से अनुवाद लिखते रहे। धीरे-धीरे ऐसा लिखने की पद्धति बंद होती गयी। आधुनिक सर्वाधिक प्रचलित संस्करण दीनेशचंद्र सेन एवं रामानन्द चट्टोपाध्याय के है जिनमें ऐसा नहीं लिखा गया है।

खंडन—

१३१५ बंगाब्द में रवीन्द्र बाबू ने अनुवाद होने का खंडन किया था। उन्होंने लिखा था कि इस बंगला-महाकाव्य में कवि वाल्मीकि अथवा वेदव्यास का सामाजिक आदर्श रक्षित नहीं हुआ है। इसके मध्य प्राचीन बंगाल-समाज ने ही अपना हृदय व्यक्त किया है। सर्वश्री राजशेखर वसु, पूर्णचंद दे, योगेन्द्रनाथ वसु, उपेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय एवं गोपाल हाल्दार प्रभृति विद्वानों ने अलग-अलग कृत्तिवास के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है, उसका सार यह है—कृत्तिवास ने वाल्मीकि को भित्ति-स्वरूप स्वीकार किया था। वे अनुवादक नहीं थे, अनुवादक मानने पर भी वे भावानुवादक हैं, शब्दानुवादक नहीं। मोटे रूप में कृत्तिवासी-रामायण को वाल्मीकि रामायण का सार (Epitome) कहा जा सकता है[2]। सुकुमार सेन ने अपने इतिहास में अनुवाद शब्द का उल्लेख ही नहीं किया है, इससे प्रकट है कि वे निर्विवाद रूप से उन्हें मौलिक मानते हैं।

स्वमत—

वाल्मीकि-रामायण का आधार लेकर संस्कृत में ही कई काव्य एवं नाटकों का सृजन हुआ, किन्तु उनकी मौलिकता में हम संदेह नहीं करते। तुलसी के रामचरित-मानस में कई पुराण, नाटक, वाल्मीकि-रामायण एवं अध्यात्म-रामायण का अनुसरण है, कहीं कहीं पर शब्दानुवाद भी है, परन्तु हम उसे किसी संस्कृत-ग्रंथ का अनुवाद नहीं मानते।

१ योगीन्द्रनाथ वसु संपादित कृतिवासी रामायण की भूमिका।

२ राजशेखर वसु संपादित वाल्मीकि रामायण की भूमिका।

पूर्णचन्द दे संपादित कृतिवासी रामायण की भूमिका।

योगीन्द्रनाथ वसु ,, ,, ,,

उपेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ,, ,, ,,

बांग्ला साहित्येर रूपरेखा—गोपाल हाल्दार, पृ० ५७-५८।

केशवदास को भी हम मौलिक लेखक मानते हैं। कृत्तिवास भी उतने ही प्रामाणिक हैं जितने उपर्युक्त कवि। यह दूसरी बात है कि उनकी कृति में वह पांडित्य नहीं है जो कि संस्कृत अथवा हिन्दी के कवियों में है, कारण कुछ भी हो। उनकी रामायण का आधे से अधिक भाग वाल्मीकि-रामायण के आधार पर स्वतन्त्रता के साथ वर्णित है, शेष कदाचित कई नाटकों, काव्यों, पुराणों एवं स्वतन्त्र-कल्पना के अनुसार है। वाल्मीकि-रामायण से तुलना करने पर दोनों का अंतर स्पष्ट हो जाता है। कृत्तिवास आदि-कवि कहे गये हैं, उनके पूर्व बंगला-साहित्य का कोई ऐसा ग्रन्थ न था जिससे उन्हें भाषा, शैली अथवा भाव आदि की प्रेरणा मिलती। उनके पूर्व कविता का रूप पांचाली, मंगल अथवा विजय-काव्य जैसा था। गायक लोग पैर में घुंघरू बाँध कर गाते थे। कृत्तिवास ने भी संभवतः लोकरुचि का ध्यान रख कर उसे परिष्कृत करने के लिए तथा स्वयं भी इस काव्य-धारा से प्रभावित होकर इस प्रकार का काव्य लिखा था।

३—कृत्तिवास की मौलिकता

(अ) वाल्मीक से अंतर का कारण—

वाल्मीकि रामायण में सभी कुछ विशाल है। घटनाओं का विपुल चित्रण है। नाना देश, वनस्पति, जीव-जन्तु एवं मनुष्य-जातियों का चित्रण हमें उसमें मिलता है। ऐसे विशद-चित्रण आदि-काव्य की महानता के साथ ही शोभा पाते हैं। कृत्तिवास ने वाल्मीकि के ऐसे स्थलों का वर्जन किया है। वाल्मीकि-रामायण में कई स्थलों पर पुनरुक्ति है, जो अधिक नहीं खलती। कृत्तिवासी-भाषा-रामायण में खल सकती थी। कृत्तिवास ने इस पुनरुक्ति-दोष से भी बचने की चेष्टा की है।

उन्होंने कई काव्य, नाटक एवं पुराणों से भी अपनी कथा-वस्तु ग्रहण की थी। इसी अध्याय के अंतिम भाग में इसे दिखाने का प्रयत्न किया गया है। जहाँ उन्होंने वाल्मीकि-रामायण का अनुसरण करते हुए भी परिवर्तन, परिवर्द्धन एवं घटनाओं के स्वतंत्र-नियोजन किये हैं, उनके कारण निम्न हैं—

१—भक्ति—

राम मारीच को बाण से फेंक देते हैं और वह कई योजन दूर जाकर गिरता है—वाल्मीकि के इस प्रसंग में कृत्तिवास ने यह और जोड़ दिया है कि वह राम-राम जप करने लगा। गरुड़ राम-लक्ष्मण को केवल नाग-पाश से मुक्त करने आये थे। कृत्तिवासी-रामायण में वे राम से अनुरोध कर उनके कृष्णावतार का रूप देखने की प्रार्थना करते हैं और अपने विशाल-पंखों की आड़ में राम का वह रूप देख कर ही अपने स्थान पर जाते हैं। प्रारम्भ से अन्त तक इसी प्रकार भक्ति का रंग मिलता है। फलतः कहानी भी बिलकुल नयी और भिन्न सी जान पड़ती है। कृत्तिवासी-रामायण का प्रारंभ ही भक्ति से हुआ है। प्रारंभ में ही नारायण अपने को चार अंशों में प्रकाशित करते हैं, नारद उनके इस रूप पर मुग्ध एवं चकित होकर शंकर के पास जिज्ञासा-समाधान के लिए गये। रत्नाकर दस्यु की कथा भी भक्ति के कारण ही जोड़ी गयी। भक्ति के कारण ही लंका का युद्ध-क्षेत्र वैष्णवी-अखाड़ा बन गया। युद्ध के स्थान पर वहाँ राक्षसों और राम का भक्ति-आलाप होने लगा है।

२—कथकता का आधार—

ऊपर बताया जा चुका है कि कृत्तिवासी-रामायण का निर्माण पांचाली के ढंग पर हुआ था। पहले काव्य में नृत्य के साथ गायन होता था। कथक लोग भी लयात्मक-गद्य में कहानियाँ सुनाया करते थे। लोक-धारा से प्रभावित होकर तथा उसे प्रभावित करने के लिए कृत्तिवास ने भी उसी प्रकार के काव्य की सर्जना की। जिस प्रकार हिन्दी-भाषी क्षेत्र में आल्हा गाते समय गायक प्रत्येक वस्तु की कुछ विशद वर्णना कर जाता है, तेगा की खटखट और तलवार की छपक-छपक के साथ अन्य-अन्य शस्त्रों की विकट मार का

लंबा वर्णन करने लगता है। उसी प्रकार कृत्तिवास भी जहाँ जोश में आ गये, वहाँ इसी प्रकार की बातें लिखने लग गये हैं। इसी कारण उन्होंने अतिशयोक्तियों से भी काम लिया है। वाल्मीकि-रामायण में दुंदुभी राक्षस की हड्डियाँ १० योजन दूर फेंकी जाती हैं, तो कृत्तिवासी-रामायण में १०० योजन दूर। धनुष का आकार सत्तर योजन है।[1] सहस्त्रार्जुन रावण को बांधकर सत्तर योजन के विस्तार का पत्थर उसकी छाती पर रख देता है।[2] शत्रुघ्न बचपन में ८० मन की वांटुल से खेला करते थे।[3]

नील और रावण का युद्ध वाल्मीकि-रामायण में वर्णित है। नील रावण को भाँति-भाँति से छकाता है, कृत्तिवास जोश में आकर उसे छकाने की नयी युक्ति निकालते हैं। नील रावण के मस्तक पर प्रस्राव कर देता है, जिससे कि उसके दसों मुख भीग जाते हैं।[4]

३—तत्कालीन-परिस्थिति—

प्रत्येक लेखक पर तत्कालीन समाज का प्रभाव पड़ता है, कृत्तिवास पर भी वह कम नहीं है, अपितु कहीं-कहीं पर आवश्यकता से अधिक है। गंगावतरण के प्रसंग में कृत्तिवास अनेक स्थानों से गंगा बहाते हुये लाये तो अपनी जन्मभूमि के गाँवों का भी वर्णन करने लग गये, भूल गये कि राम के काल में इनका अस्तित्व था भी या नहीं।[5] ब्राह्मणों की छुआछूत वाली भावनाओं के कारण अनेक प्रसंग जोड़ दिए हैं। उनके राक्षसों में मुसलमानों की झलक दिखायी पड़ती है। ब्राह्मण होने के कारण ही संभवतः राम और गुह मिलन नहीं जँचा, अतएव गुह के साथ यह प्रसंग जोड़ा कि वह शाप-ग्रस्त वामदेव विप्र है। वामदेव के शाप के लिये भी फिर एक कथा गढ़नी पड़ी है।

४—पात्रों की कलंक-मुक्ति—

वाल्मीकि-रामायण के परवर्ती-रामकथा-साहित्य में कई पात्रों को निर्दोष सिद्ध करने के लिये शाप-वरदानों की कल्पना की गयी है। कृत्तिवास एवं तुलसीदास ने भी ऐसा किया है। कृत्तिवास ये कैकेयी और मंथरा के सम्बन्ध में इसी प्रकार के प्रसंग जोड़े हैं। राम को सीता की परीक्षाओं के दोष से मुक्त करने के लिये तारा और मंदोदरी के शापों की कल्पना की है।

---

१ आदि कांड, पृ० ६५।

२ पाथर तुलिया दिल सत्तर योजन उत्तर०, पृ० ४१२।

३ लंका कांड, पृ० ३११।

४ लंका कांड, पृ० ३०२।

५ मेड़ातला नाम स्थाने जाय सरिद्वरा॥
गङ्गारे लइया जान आनन्दित हैया।
आसिया मिलल गङ्गा तीर्थ जे नदीया॥
रथे चड़ि भगीरथ जान आगुयान।
आसिया मिलल गङ्गा सप्त ग्राम स्थान॥
आकना माहेश गङ्गा दक्षिण करिया।
विहरोदेर घाटे गङ्गा उत्तरिल गिया॥ आदि०, पृ० २४।

५ — लोक-प्रचलित कथानक—

ये कथानक भी दो प्रकार के थे—१–विशुद्ध भारतीय—पक्षियों आदि की सहायता एवं उनके प्रति राम और सीता के वरदान वाले प्रसंग, तथा २–पारस्य कथाएं—मुसलमानों के संसर्ग से प्रचलित कथाओं की छाप भी यत्रतत्र दिखलायी पड़ती है। वाल्मीकि-रामायण में गरुड़ राम के स्मरण करने मात्र से आ गये, कृत्तिवासी-रामायण में उनके माथे पर टंकार पड़ती है[१], तब आते हैं। महीरावण का खड़ी[२] लेकर अपने स्मरण करने वाले का पता लगाने की घटना अलाउद्दीन के चिराग-प्रसंग का स्मरण दिला देती है।

(आ) चरित्र-चित्रण—

वाल्मीकि-रामायण एवं कृत्तिवासी-रामायण के रचना-काल में कम से कम डेढ़-दो सहस्त्र-वर्ष का अंतर है। इतने दीर्घ-काल में देश की परिस्थितियाँ बहुत बदल गयी थीं। वह काल महोरस्क, दीर्घबाहु और गंभीर-प्रकृति आर्य-सामंतों का था। ब्राह्मण भी तपस्वी, आत्म-विश्वासी, निर्भीक एवं तत्त्व-जिज्ञासु होते थे। कृत्तिवास के काल तक आते-आते मुसलमानों के शासन में परतंत्र बंगाली बलवीर्य-हीन हो गये थे। जलवायु के कारण भी शरीर दुबला-पतला रहता था, अतएव उनके स्वभाव में आवेश अधिक था।

कृत्तिवास का एक-एक पात्र बंगाल की भूमि एवं जलवायु की उपज है। वाल्मीकि-रामायण के अनुसार दंडकारण्य के ऋषि तप और स्वाध्याय में निरत रहकर उपनिषदों का ज्ञान-विस्तार कर रहे थे। राक्षसों से संतप्त होकर भी वे उनके डर से थर-थर काँपते नहीं थे। कृत्तिवासी-रामायण में ये डरपोक मुनि आपस में काना-फूँसी करते हैं और दंडक-वन छोड़ भाग जाने की मंत्रणा करते हैं। विभांडक ऋषि पक्के वैष्णव-पुजारी बनाये गये हैं, वे ताम्रघटी और तुलसी की माला लेकर तपस्या करने जाते हैं[३]। 'शान्तं पापम्,' की भावना प्रकट करने का इनका ढंग भी विचित्र था। वे बिल्कुल बंगाली-ढंग से दोनों कानों पर हाथ रख कर विष्णु-विष्णु कहते थे[४]--

(१) श्री विष्णु बलिया विप्र काने दिल हात। आदि०, पृ० २९।

(२) श्री विष्णु बलिया बूड़ी छुंइल दुइ कान। आदि०, पृ० ४८।

बंगाल के किसी-किसी अंचल में नाक पर हाथ रख कर बातें करने की प्रथा है, स्त्रियाँ विशेष रूप से ऐसी चेष्टाएं करती हैं। कृत्तिवास का रावण धनुष नहीं उठा सका तो चिंतित होकर नाक पर हाथ रखता है[५] और कहता है, मामा अब क्या उपाय किया जाय, धनुष तो उठता नहीं है।

---

१ गरुड़ेर ललाटे ते पड़िल टङ्कार—लंका, पृ० २९१।

२ पातिलेक अङ्क मही खड़ी लये हाते। एके एके त्रिभुवन लागिल गणिते। लंका—पृ० २९७।

३ ताम्रवाटि हाते निल, तुलसि तुलसी। तपस्या करिते गेल विभाण्डक ऋषि। आदि०, पृ० ४९।

४ आज भी बंगाली लोग दोनों कानों पर हाथ रख कर ना बाबा, ना बाबा कहते देखे जाते हैं।

५ दीनेशचंद्र सेन का कहना है—पूर्व बंगाल की स्त्रियाँ आश्चर्य प्रकट करने के लिए नाक पर हाथ रखती हैं—बंगली रामायन्स, पृ०८८।

नाके हात दिया बले, कि करि उपाय।
कि हइबे मामा धनु, तुला नाहि जाय ।। आदि०, पृ० ६६ ।

अष्टाध्यायी, वृत्ति-वार्तिक, भाष्य, व्याकरण एवं छंद-शास्त्र में प्रवीण पंडित हनुमान[1] कृत्तिवासी-रामायण में राक्षसों की यज्ञवेदी पर मूत्र-विसर्जन[2] करने वाले बंदर मात्र हो गये।

वाल्मीकि-रामायण के पात्रों का शोक साधारण नहीं होता। पुत्र की मृत्यु का समाचार ज्ञात कर सहज-क्रोधी रावण अत्यन्त कुपित होता है[3], तथा कृत्तिवासी-रामायण में वह धूल में लोट-पोट लगाता है—

पुत्र शोके कान्दि राजा गड़ागड़ि जाय।
दशमुण्ड कलेवर धूला ते लोटाय ।। लंका०, पृ० १७८ ।

(इ) राम का ब्रह्मत्व एवं भक्ति की प्रधानता—

बाल्मीकि-रामायण में आदर्श क्षत्रिय-योद्धा महामना-राम का चित्रण है। अवतार वाले अंश यदि प्रक्षिप्त न भी माने जायँ तो भी राम के ब्रह्मत्व के दर्शन कहीं भी उनके चरित्र में नहीं होते। कृत्तिवास तक आते-आते राम की अवतार-विषयक कल्पना का बहुत प्रचार हो गया था। वे इस समय तक परब्रह्म हो गये थे। राम के ब्रह्मत्व के कारण उनका सम्बन्ध सभी पात्रों से अन्य प्रकार का हो गया, जैसा कि वाल्मीकि रामायण में नहीं है। राम और ऋषियों का सम्बन्ध क्षत्रिय और ब्राह्मण का न रहकर उपास्य और उपासक का हो जाता है[4], इसी प्रकार राम और राक्षसों का सम्बन्ध[5] शत्रु-शत्रु का न होकर उपर्युक्त प्रकार का हो जाता है। फलस्वरूप चरित्र एवं घटनाओं पर प्रभाव पड़ा और वाल्मीकि-रामायण से कृत्तिवासी-रामायण मूलतः भिन्न दृष्टिकोण लेकर चली।

---

१ ससूत्र वृत्यर्थपदं महार्थ, ससंग्रहं सिद्धयति वै कपीन्द्रः। न ह्यस्य कश्चित् सदृशोस्ति शास्त्रे, वैशारदे छन्द गतौ तथैव ।। वाल्मीकि, ७-३६-४५।

२ कृत्तिवासी-रामायण लंका०, पृ० ३७३ ।

३ आविवेश महान् कोपःपुत्र व्यसन सम्भवः। प्रकृत्या कोपनं ह्येनं पुत्रस्य पुनराधयः ।। वाल्मी० ६-९३-१७।

४ वनमध्ये अनेक मुनिर निवसति।
श्री रामेरे देखिया हरिषे करे स्तुति ।।
राज्ये थाका वने थाका तोमार समान।
यथा तथा थाक राम तुमि भगवान ।। अरण्य०, पृ० १३४ ।

५ युद्धक्षेत्र में अतिकाय, तरणीसेन, वीरबाहु नामक राक्षस एवं स्वयं रावण राम के दर्शन से भक्ति-गद्गद् होकर उनकी स्तुति करने लग जाते हैं— लंका-कांड।

३—बंगाली-प्रभाव

(१) भाव-प्रवणता—

बंगाली अपने को मनोधर्मी की अपेक्षा प्राणधर्मी अधिक मानते हैं। बंगाली-लेखकों में भी सहृदयता अधिक पायी जाती है। उनकी अश्रु-विगलित-भावुकता के प्रमाण आज भी रवीन्द्र एवं शरद के साहित्य के रूप में विद्यमान है। स्वर्गीय श्री दीनेशचन्द्र सेन ने भी बंगालियों की भाव-प्रवलता की ओर लक्ष्य करते हुए कहा है कि आँसू इस देश की एक प्रधान-शक्ति है।[1] कृत्तिवास की रामायण भी प्रारम्भ से अन्त तक आँसुओं से भीगी है, प्रत्येक पात्र का हृदय नारी का हृदय जान पड़ता है। शोक-प्रसंग उपस्थित होने पर वह किसी प्रकार के संयम का परिचय न देकर खुले हृदय से दुखी व्यक्ति के दुःख में समरस होता दिखायी पड़ता है। स्नेह-शील राम बालिवध के उपरांत बालि की करुणा एवं अन्य अनेक पात्रों के विलाप से स्वयं भी रो पड़ते हैं। रावण की मृत्यु होने पर उसके पर्वत के समान अंग को पृथ्वी पर लोटता देखकर दयालु राम हाय-हाय करने लगे। उन्होंने धनुष-धारण करना अस्वीकार कर दिया।[2]

तरणी-सेन नामक राक्षस के वध के उपरांत उनकी समस्त-सेना अस्त्र-शस्त्र फेंक कर रोने बैठ जाती है—

> शोकाकुल हइया कान्देन विभीषण।
> श्रीराम लक्ष्मण आर जत कपिगण॥
> सुग्रीव अंगद कान्दे वीर हनुमान।
> कान्देन सुषेण आदि मंत्री जाम्बुवान॥ लंका०, पृ० २५४।

अवतार के समय विष्णु और लक्ष्मी का बिछोह दुःख भी साधारण पति-पत्नी जैसा है, उनमें कहीं दैविक-गुरुत्व नहीं दिखायी पड़ता। दोनों को अलग-अलग जन्म लेना पड़ेगा, इस कल्पना से ही दोनों विलख कर रोये हैं।

(२) संस्कारादि-पद्धतियाँ एवं लोक-व्यवहार—

प्रायः समस्त-भारत में संस्कारादि वैदिक-रीति से मनाने के कारण सभी प्रदेशों की पद्धतियों में समानता है। साथ ही देश-काल के अनुसार प्रत्येक प्रदेश की पद्धतियों में लोक-रीतियाँ भी मिल गयीं, जिसके कारण प्रदेशों की पद्धतियों में भिन्नता आ गयी।

---

१ (चक्षुजल एतद्देशेर एकटि प्रधान शक्ति) 'वङ्ग० भाषा ओ साहित्य'—सेन, पृ० ७७

२ पर्व्वत जिनिया अंग-धरणी लोटाय।
देखिया दयाल राम करे हाय हाय॥ लंका०, पृ० ४३२।
रावण वधिया दुख हइल अपार।
ना धरिव धनु राम कैला अङ्गीकार॥ लंका०, पृ० ४३५।

वेदाचार के अतिरिक्त कई प्रकार के आचार[1] प्रचलित हैं, जिनमें स्त्री-आचार प्रमुख हैं। वाल्मीकि रामायण में वर्णित जन्म, विवाह आदि संस्कार शास्त्रोक्त ढंग से मनाये गये हैं, किन्तु कृत्तिवासी-रामायण में शास्त्रोक्त रूप की रक्षा कम हो पायी है। उनकी रायायण के सभी संस्कार ठीक उसी प्रकार के हैं जिस प्रकार आज भी वे बंगाल में अनुष्ठित होते हैं। रामादि के जन्म पर आठ लड़कों को बुलाकर आठकौड़े नामक संस्कार मनाया जाता है। विवाह के समय होने वाली शुभदृष्टि, षष्ठीपूजन, बासरघर, बासिबिये, कालरात्रि प्रभृति कई लोक-रीतियाँ[2] केवल बंगाल में ही मनायी जाती हैं, वहाँ इनका आज भी प्रचार है।

विवाह के समय कन्या के ऐसे आभूषणादि का वर्णन किया गया है जिनका परिचय वाल्मीकि की सीता से न होगा। कृत्तिवास की सीता हाथ में शंख-चूड़ी[3] (शाँखा) पहनती है। पद एवं वय में अपने से छोटी सधवा के माँग में सिन्दूर भर कर आशीर्वाद दिया जाता है—बंगाल की इस प्रथा का पालन अनुसूया सीता के साथ कर रही है।

ब्राह्मणी सीतार भाले दिलेन सिंदूर। अरण्य०, पृ० १३४।

बंगाल में प्रणाम करते समय गले में वस्त्र डाल लेते हैं। कृत्तिवासी-रामायण में स्थान-स्थान पर यह पद्धति दृष्टिगोचर होती है। रावण राम के समक्ष युद्ध के निमित्त उपस्थित होने पर धनुष-बाण फेंक देता है और इसी बंगाली-पद्धति से प्रणाम करता है—

हातेर धनुक बाण फेले भूमि तले।
कर जुड़ि करे स्तव वस्त्र दिया गले॥ लंका, पृ० ४१५

भोज्य पदार्थों के प्रसंग में बंगाली खाद्य—आम्र, कटहल, मछली और चावल का वर्णन अधिक किया गया है।

उलुध्वनि—

बंगाल में किसी शुभ-अनुष्ठान के समय स्त्रियाँ उलुध्वनि करती हैं। कुछ शंख[4] बजाती हैं और कुछ मुख से 'ऊ ऊ ऊ ऽ ऽ ऽ ऽ' जैसी ध्वनि करती हैं जिसे ही उलुध्वनि कहते हैं। सारा गृह, प्रकोष्ठ आदि उलुध्वनि से गूंज उठते हैं। काम करने वाली महिलाएं काम भी करती जाती हैं, उलुध्वनि भी करती जाती हैं। इतना ही नहीं, बाहर से आने वाली निमंत्रित देवियाँ भी जोश में आकर बाहर से ही ध्वनि करती चली आती हैं। जन्म, यज्ञोपवीत, विवाह आदि के मंगल-अवसरों पर उलुध्वनि अधिक धूम-धाम से सुनायी पड़ती है।

---

१ ग्रामाचारं कुलाचारं वृद्धाचारं तथा पुनः।
देशाचारं प्रमदाचारादीनकरोन्नृपः॥ १-३-२९७ आनंद रामा०।

२ इनका वर्णन अध्याय तीन में हो चुका है।

३ शंख चूड़ी—नैषधीय चरितम् (१५-४५) से कम्बु-वलय अर्थात् शंख के वलय का उल्लेख है। नारायणी टीका में इसे स्पष्ट किया गया है—गौड देश में विवाह के समय शंख-वलय धारण करने का आचार है।
(गौड देशे विवाहकालेशङ्ख-वलयधारणमाचारः)

४ जय जय हुलाहुलि दिल नारीगण—आदि०, पृ० ५७।
जय जय हुलाहुलि दिल सब नारी—आदि०, पृ० ५८।

कृत्तिवासी-रामायण में राम के जन्म के समय स्त्रियाँ उलुध्वनि करती हैं। लेखक ने 'उलु' शब्द का प्रयोग न कर 'हुलाहुलि' लिखा है। मोनियर-विलियम, आप्टे[१] एवं वाचस्पति तारानाथ के संस्कृत शब्द-कोषों में हुलहुली शब्द की जो व्याख्या[२] की है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि हुलहुली, हुलाहुलि और उलु समानार्थक शब्द हैं।

नैषधीय-चरित के लेखक श्रीहर्ष बंगाली माने जाते हैं[३]। दमयंती के विवाह के अवसर पर उनके काव्य की स्त्रियाँ भी उलुध्वनि करती हैं—

सैवाननेभ्यः, पुरसुन्दरीणामुच्चैरूलूलुध्वनि रुच्चचार। १४, ५१

इसकी नारायणी-टीका[४] में भी इसे गौड़ देश में प्रचलित रीति माना है। संभवतः मुरारी कवि भी बंगाली थे। उन्होंने अनर्घराघव[५] नाटक में बंगाल-देश में प्रचलित उलुध्वनि का ही चित्रण किया है। वैसे छांदोग्य-उपनिषद्[६] एवं अथर्ववेद[७] में भी इसका वर्णन है, किन्तु बंगाल की इस जीवित-रीति का वैदिक वाङ्मय में वर्णित उलूलु घोष से अंतर जान पड़ता है। हो सकता है कि वैदिक उलूलु ही परिवर्तित होकर केवल बंगाल में वर्तमान उलुध्वनि के रूप में जीवित रह गयी हो।

मानस में पंच-शब्द[८] और पंच-ध्वनियों का वर्णन है, टीकाकार पंच-ध्वनियों की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—वेदध्वनि, जयध्वनि, वंदिध्वनि, शंखध्वनि एवं हुलूध्वनि।

पंच सबद धुनि मंगल गाना।
पट पांवड़े परहिं विधि नाना॥ १-३१८-३

यदि मानस की पंच-ध्वनियाँ यही हों, तब भी यह निश्चत रूप से नहीं कहा जा सकता कि तुलसी बंगाल की इस विशेष-ध्वनि से परिचित थे। उन्होंने अपने पूर्ववर्त्ती साहित्य के आधार पर इसका उल्लेख कर दिया है। वैदिक एवं लौकिक संस्कृत-साहित्य से प्रकट होता है कि किसी समय भारत के अनेक जनपद उलुध्वनि से परिचित थे, किन्तु कम से

---

१ मोनियर विलियम एवं आप्टे के शब्द-कोषों में 'हुलहुलि' शब्द का अर्थ, 'मांगलिक अवसरों पर स्त्रियों की अस्पष्ट 'ध्वनि' दिया है।

२ वाचस्पत्य बृहत् संस्कृतामिधान में वाचस्पति तारानाथ हुलहुली शब्द को हुल का द्वित्व बतलाते है। वे इसको स्त्रियों की मंगल-ध्वनि कहते हुए इसे उलुध्वनि भी मानते हैं। हुलहुली स्त्री हुलः, क आभीक्ष्णे द्वित्वम् गौरा० ङी षू। स्त्रीणांमङ्गल ध्वनि भेदे (उलुउलु) त्रिका०।

३ बाङ्गालीर इतिहास—नीहाररंजन राय—पृ० ५३५।

४ विवाहाद्य त्सवे स्त्रीणां धवलादि मङ्गलगीति विशेषा गौड देशे उलूलुः, इत्युच्यते। सोऽप्यव्यक्तवर्ण उच्चार्यते। स्वदेश रीतिः कविनोक्ता।

५ वैदेही करवन्ध मङ्गल यजुः सूक्तं द्विजानां मुखे।
नारीणां च कपोल कन्दल तले श्रेयानुलूलुध्वनि॥ ३-५५ अनर्घ-राघव।

६ छांदोग्य-उपनिषद् (३-१९-३) में वर्णित उलूलव के सम्बन्ध में शाङ्कर-भाष्य में बताया गया है—उलूलव उरुरवो विस्तीर्ण रवा (उलूलव-उरुरव अर्थात सुदूर-व्यापी-शब्द वाले घोष)

७ अथर्ववेद (४-१९-६) में आये हुए उलुलय के संबंध में सायण का कहना है कि यह-अनुकरण शब्द है।

८ पंच-शब्द—तंत्री, ताल, झांझ, नगारा और तुरही।

कम मध्य-काल से यह ध्वनि बंगालियों की अपनी विशेषता होकर रह गयी है। कृत्तिवास ने बंगाल की इस विशेषता को अपने काव्य में प्रतिबिंबित किया है, यही दिखाना यहाँ अभीष्ट है।

३—धर्म-साधना—

कृत्तिवासी-रामायण के काल तक भारत में अनेक प्रकार की उपासनाएं प्रचलित हो गयी थीं। आर्य-उपासनाओं में विष्णु, शिव एवं शक्ति की पूजा का प्राधान्य था। विष्णु के कृष्ण-अवतार को विशेष ख्याति मिली थी। कृत्तिवासी-रामायण के गरुड़-राम-भेंट प्रसंग में यह प्रभाव स्पष्ट है। हर-पार्वती, कोंदल में शंकर-पार्वती का वह रूप दिखायी पड़ता है जो बंगाली-गृहस्थों द्वारा सदैव पूजित रहा है।

वाल्मीकि-रामायण के मूल-रूप में किसी देवी-देवता की भक्ति नहीं दिखायी गयी है। इंद्र का उल्लेख अवश्य ही आदर के साथ होता है। वाल्मीकि-रामायण के वर्द्धित-रूप में भी इस प्रकार की उपासनाएं वर्णित नहीं है। कृत्तिवास तत्कालीन प्रचलित अनेक धर्म-साधनाओं से प्रभावित हैं। उनकी रामायण में राम के पश्चात् सबसे अधिक प्रभाव जान पड़ता है शक्ति का। शक्ति पार्वती के अतिरिक्त अपने को तीन रूपों में अभिव्यक्त करती हैं—(१) लंका की रक्षिणी के रूप में वे चामुंडा हैं, (२) महीरावण की उपास्या के रूप में वे महामाया योगाद्या हैं, और (३) रावण की रक्षिणी अम्बिका भी हैं। अम्बिका की पूजा के रूप में बंगाली-कवि ने बंगाली समाज की श्रृद्धांजलियां दुर्गा-मा के चरणों में अर्पित की हैं। बंगाली-जनता को यह प्रसंग अत्यधिक प्रिय है। कुछ आलोचक इस प्रसंग को प्रक्षिप्त मानते हैं। उनका कहना है कि किसी शाक्त ने शक्ति की महत्ता बढ़ाने के लिए इसे जोड़ दिया है। यदि यह प्रक्षिप्त भी हो, तो भी बंगाली मनोवृत्ति का सच्चा प्रतिनिधित्व करता है। वैसे प्रक्षिप्त नहीं जान पड़ता। एक ओर यदि राम उन्हें मूल-शक्ति, परात्परा, परमा-प्रकृति आदि विशेषण प्रदान कर स्थिति-प्रलय की कारण-स्वरूपा मा मानते हैं, तथा त्रिदेवों से भी ऊँचा स्थान देते हैं, तो शक्ति भी राम को ब्रह्मसनातन, अच्युत एवं परमा-प्रकृति जानकी का पति मानकर उनकी स्तुति करती हैं।

यदि यह प्रसंग प्रक्षिप्त नहीं है तो कृत्तिवास ने दोनों के मुख से एक दूसरे की प्रशंसा कर राम-भक्ति एवं दुर्गा-भक्ति के मध्य समन्वय करना चाहा है। बंगालियों का प्रिय-प्रसंग इस प्रकार है—

राम की शक्ति-पूजा—राम से युद्ध करते समय व्याकुल होकर रावण ने अम्बिका का स्मरण किया। जलदवरणी अम्बिका ने उसे गोद में ले लिया। राम ने बिंबाधरा एवं कादंबिनी-कुंतला काली को देखा तो छिन्न-कमल के समान पृथ्वी पर लोट कर रुदन करने लगे। विधाता ने कहा देवी का अकाल-बोधन[1] कर शरत्-पूजा करनी पड़ेगी।

मृण्मय-मूर्ति एवं घट-स्थापन कर गीत, नाट्य एवं चंडी-पाठ के साथ राम षष्ठी से लेकर नवमी तक देवी की उपासना करते रहे, किन्तु देवी अदृश्य-रूप से पूजा-ग्रहण करती

१ देवी तथा अन्य देव भी चार-मास शयन करते हैं। देवी की पूजा बसंत में की जाती है। शरद-ऋतु में उन्हें जगाकर पूजा की गयी थी। इसे ही अकाल-बोधन कहते हैं।

हुई भी सामने साक्षात् रूप से उपस्थित नहीं हुई। परात्पर-राम कातर होकर रो उठे। तब विभीषण के कहने से हनुमान देवीदह से १०८ नील-पद्म ले आये। मंत्र के साथ एक-एक पुष्प की भेंट होने लगी। देवी ने कौतुक-पूर्वक एक पुष्प चुरा लिया। एक की कमी पड़ने पर राम ने हनुमान को पुनः भेजना चाहा, किन्तु, अब सारे संसार में एक भी नील-पद्म शेष न था। देवी के कृत्य से परिचित होकर राम उन्हें पचासों संबोधन-प्रदान करते हुए कातर होकर स्तुति करने लगे। देवी नहीं पसीजीं। राम सिर पर आघात कर अत्यधिक व्याकुल होकर विलाप कर उठे। अन्त में उन्हें स्मरण आया कि लोग उन्हें नील-कमलाक्ष कहते हैं, उनके नेत्र फुल्ल-नीलोत्पल के समान हैं। यदि इन्हीं में से एक निकाल कर अर्पित कर दिया जाय तो अनुष्ठान पूरा हो जायगा। बस, उन्होंने तूण से बाण निकाल कर नेत्र निकालना चाहा कि कात्यायिनी ने हाथ पकड़ कर कहा, 'हे जगत-गोस्वामी प्रभु, यह क्या कर रहे हैं? आपका संकल्प पूर्ण होगा, इस प्रसंग का पूरे नौ-दस पृष्ठों तक वर्णन है।[1]

वाल्मीकि-रामायण के किसी संस्करण में इसका वर्णन नहीं है, किन्तु कृत्तिवास के तीन-चार शताब्दी पूर्व लिखे गये कालिका-पुराण एवं बृहद्धर्म-पुराण में इस पूजा का संकेत-मात्र है। स्पष्ट है कि इस प्रकार की पूजा से बंगाल की जनता बहुत पहले से परिचित है और आज तो राम की पूजा शक्ति-पूजा के उल्लास में अदृश्य सी हो गयी है।

निराला जी ने अपनी 'राम की शक्ति-पूजा' नामक कविता की प्रेरणा कृत्तिवास के इसी प्रसंग से ली है[2]।

---

१ कृत्तिवासी रामायण लंका० पृ० ४१७-२६।

२ देखिए-अपरा—निराला।

४—कृत्तिवास के आधारभूत ग्रंथ

गोस्वामी तुलसीदास की भाँति ही पं० कृत्तिवास ने भी अनेक पुराणों से सहायता ली है। उन्होंने अपनी रामायण की कथा-वस्तु का अधिकांश वाल्मीकि-रामायण के अनुसार वर्णित किया, किन्तु शेष पर कई राम-कथा साहित्यों का प्रभाव है। यहाँ कृत्तिवासी-रामायण के उन स्थलों का वर्णन होगा जो वाल्मीकि-रामायण में नहीं आये हैं, किन्तु उनका वर्णन अन्य ग्रन्थों में हुआ है। अन्य ग्रंथों के वर्णनों से कृत्तिवासी-रामायण के स्थलों की समता ही दिखायी जा सकती है, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि कृत्तिवास के आधारभूत ग्रन्थ यही हैं। हो सकता है कि किसी-किसी प्रसंग के लिए कृत्तिवासी-रामायण तथा अन्य राम-कव्यों को अपने समान-स्थलों के लिए समान-प्रेरणा मिली हो और आज उसका उद्गम अज्ञात हो गया हो। जिन ग्रन्थों के कथा-प्रसंगों का कृत्तिवास के वर्णनों से अधिक साम्य है—उन्हें प्राथमिकता देकर नीचे का वर्णन हुआ है।

(१) आनंद रामायण—(१५-१६वीं शताब्दी)[१]

आनंद रामायण के निम्नांकित प्रसंगों का वर्णन कृत्तिवासी-रामायण से समानता रखता है। आनंद रामायण कृत्तिवासी-रामायण का उत्समूल नहीं जान पड़ती। दोनों के समान प्रसंगों का उत्समूल अवश्य एक है।

सीता का पिंडदान—कृत्तिवासी-रामायण एवं आनंद-रामायण में सीता राम की अनुपस्थिति में पिंड-दान करती हैं। राम आकर प्रमाण माँगते हैं। कई साक्षियों के मिथ्या होने के पश्चात् अन्त में किसी एक के द्वारा सीता के पिंडदान का प्रमाण मिल जाता है[२]। कृत्तिवासी-रामायण के कुछ संस्करणों में इनका वर्णन है, सभी में नहीं।

नल वरदान—नल के हाथ के फेंके हुए पत्थर तैरने लगेंगे। इस प्रकार का वरदान दोनों रामायणों में है। कृत्तिवास में वर देने वाले ब्रह्मा है और आनन्द-रामायण में कोई द्विज है।

मान सरोवरे ब्रह्मा छिप कुशी लये।
सेइ स्थाने आसि सन्ध्या करेन वसिये॥
छिप कुशी राखि जान सरोवर-तीरे।
ताहा आमि तुलि लये फेलिलाम नीरे॥
× × ×
आमि वर दिव तोरे शुन रे वानर।
तुइ छुँले जले जेन भासये पाथर॥ कृत्ति०, सुन्दर०, पृ० २५५।

---

१ इस प्रसंग में वर्णित राम-कथा का रचना-काल श्री बुल्के की 'राम-कथा' पुस्तक के अनुसार दिया गया है।

२ कृत्तिवासी-रामायण-अयोध्याकांड-हीरेन्द्रनाथ दत्त, संपादित-पृष्ठ ६३—६५।
आनंद-रामायण, यात्रा-कांड, सर्ग ७।

द्विजस्य जान्हवी तोये शालिग्रामस्वनेनहि ।
त्यक्तस्तदातेन शप्तः पाषाणादि तरिष्यति ।। १–१०–६७ आनंद-रामा०

अंगद का लांगुलासन—दोनों में राम-दूत अंगद रावण के सामने पूँछ का आसन लगाकर बैठते हैं—

कुण्डली करिया लेज[1] बसिल सभा ते । कृत्ति० लंका०, पृ० २७५ ।
रावणं बोधयामास सभायां लांगुलासने ।। १–१०–२२१ आनन्द-राम० ।

रावण की चिता—रावण की चिरकाल तक जलती हुई चिता का वर्णन तो दोनों में हैं, किन्तु कारण भिन्न-भिन्न हैं। कृत्तिवासी-रामायण में रावण-वध के उपरांत विधवा मन्दोदरी राम के पास जाकर उन्हें प्रणाम करती है। राम उसे सीता समझ कर सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद देते हैं। भूल ज्ञात होने पर वे कहते हैं कि तुम सदैव चिता प्रज्ज्वलित रखो, तुम्हारा सौभाग्य भी चिरकाल तक रहेगा।

रावण चिता, रहिवे सर्व्वथा,
चिरकाल रवे आयते।। कृत्ति० लंका०, पृ० ४३५ ।

आनन्द-रामायण में वर्णित है कि रावण का शरीर आज भी जल रहा है। शरीर जलने के दो कारण बतलाये गये हैं—(१) राम के हाथ से वध होने के कारण वह मुक्त हो गया, किन्तु अनेक ब्रह्म-हत्या एवं पाप कर्मों के कारण उसका शरीर जल रहा है। (२) रावण ने राम से वर माँगा था कि लोकों के बीच उसका सदैव स्मरण किया जाय। राम ने उसकी चिता को प्रज्ज्वलित रखकर मनोकामना पूर्ण कर दी।[2]

सेतु-भंग—लंका से लौटते समय लक्ष्मण धनुष हूल कर सेतु-भंग करते हैं[3] आनंद रामायण में स्वयं राम धनुष से सेतु-भंग करते हैं[4]।

सीता वनवास—सीता-वनवास के चित्र-प्रसंग में दोनों रामायणों में समानता होते हुए भी अन्तर है। समानता यह है कि दोनों में सीता से रावण का चित्र बनाने के लिए कहा जाता है और वे जल में देखी हुई छाया के आधार पर चित्र बनाती भी हैं। अन्तर दो बातों में है— (१) कृत्तिवासी-रामायण में पूरे शरीर का चित्र बनाया गया है और आनंद-रामायण में अंगूठे मात्र का; (२) कृत्तिवासी-रामायण में राम चित्र देखकर सीता पर सत्य-संदेह करते हैं और आनंद रामायण में कपट-संदेह[5] करते हैं।

---

१ लेज=पूंछ ।

२ आनंद-रामायण-राज्य-कांड, सर्ग २०, १–१६ ।

३ लक्ष्मण लइया धनु नामिला जाङ्गाले ।।
धनु हुले तिन खानि पाथर खसाय । कृत्ति०-लंका०, पृष्ठ ४४८ ।

४ इत्युक्त्वा रघुवीरस्तु राक्षसेंद्रस्य वाक्यतः ।
पुष्पकाद्भुविचोत्तीर्य धृत्वा कोदंडमुत्तमम् ।।४७।।
बभंज सेतुं तत्कोट्या धनुष्कोटिरितीर्यते ।।४८।। द्वादश सर्ग, सारकांड. (आनंद रामायण)

५ कृत्तिवासी-रामायण, पृष्ठ ५२४ ।
आनंद-रामायण-जन्म-कांड, सर्ग ३, श्लोक ३७–५६ ।

लंका निर्माण[1]—लंका के बनने के सम्बन्ध में गरुड़ तथा गज-कच्छप वृत्तान्त के वर्णन में दोनों रामायणों में अन्तर है। आनंद-रामायण में लंका बनने का संकेत मात्र है, कृत्तिवासी-रामायण में उसका विशद वर्णन है।

(२) हनुमन्नाटक (१०००-११०० ई०)

सीता का पूर्व-राग एवं चिंता—राम को देख कर सीता को उनसे पूर्व-राग हो गया, किंतु उन्हें चिंता है कि धनुष तो कछुए की पीठ सा कठोर है और राम हैं फूल से सुकुमार। पिता के कठोर प्रण[2] का ध्यान कर उन्हें निराशा होती है। कृत्तिवास ने इस प्रकार की पंक्तियाँ हनुमान्नाटक के श्लोक से ग्रहण की हैं।

कमठ कठोर धनु, श्रीराम कोमल तनु
केमन तुलिबे शराशन।
(कत शत वीर गणे, ना पारिल उत्तोलने)
पितार दारुण एइ पण ॥ कृत्ति० आदि०, पृ० ७८।

सीता-द्वेष—परशुराम ने राम के ब्रह्मत्व की जाँच के लिए अपना धनुष प्रदान किया। सीता को चिंता हुई, एक धनुभंग होने से राम का मेरे साथ विवाह हुआ, अब इस धनुष के भंग होने पर क्या मुझे कई सौतें प्राप्त होंगी।

आर बार धनुक आनिल भृगु मुनि।
ना जानि हइबे मोर कतेक सतिनी॥ कृत्ति० आदि०, पृ० ८६।

तच्चापमाकर्षति ताटकारावाकर्णमाकर्ण्य विशालनेत्रा।
सासूय मैक्षिष्ट विदेहजासौ कन्यां किमन्यां परिणेष्यतीति॥ १-४६ हनु०

सीता और पथ-वधु[3]—ग्राम-वधुओं द्वारा सीता से राम का परिचय पूछना और उनका लजा कर संकेत से उत्तर देने का प्रसंग कृत्तिवास ने भी तुलसी की भाँति हनुमन्नाटक से लिया है।

लक्ष्मण-रेखा—लक्ष्मण-रेखा का वर्णन कृत्तिवासी-रामायण एवं हनुमान्नाटक दोनों में है। अन्य राम-काव्यों में भी है।

बालि-वध से ग्लानि तथा अन्य जन्म में उसका प्रतिशोध—आनंद-रामायण में भी बालि द्वारा कृष्णावतार में प्रतिशोध लेने की बात कही गयी है, किन्तु उसमें राम को बालि-वध से ग्लानि नहीं होती है। हनुमन्नाटक में राम को दुःख हुआ है। वे कहते हैं—महावीरं अनपराधिनं बालिनं हत्वा मन्दभाग्यः कथमहं जानकी सुखमनुभविष्यामि ५-५५।

---

१ कृत्तिवासी-रामायण, उत्तर० पृष्ठ ४७०-७२।
आनंद-रामायण, सार-कांड, सर्ग ६।

२ कमठपृष्ठ कठोरमिदं धनुर्मधुरमूर्त्तिरसौ रघुनन्दनः।
कथमधिज्य मनेन विधीयतामहहतात पणास्तवदारुणः। (१-६ हनु०)

३ कृत्तिवासी-रामायण, अयोध्या०, पृ० ११५।
हनुमन्नाटक—३-१५।

कृत्तिवासी-रामायण में भी वे वालि को मार कर बहुत लज्जित हैं तथा धनुर्बाण फेंक कर दुखी होकर बैठे हैं[१]। अंतर यह है कि हनुमन्नाटक में राम स्वयं दुःखी होकर कहते हैं कि उस जन्म में तुम मुझे मारोगे[२] और कृत्तिवासी-रामायण में तारा उन्हें ऐसा शाप देती है[३]।

अङ्गद-रावण संवाद--रावण से कथोपकथन करते हुए दोनों के अंगद एक जैसी उक्तियाँ करते हैं। ये पंक्तियाँ अवश्य ही हनुमन्नाटक से गृहीत हुई हैं।

(३) पद्मपुराण

पद्मपुराण के उत्तरखंड (१४००-१५०० ई०) में राम-कथा का संक्षिप्त वर्णन है। दो एक प्रसंगों के लिए कृत्तिवास ने प्रेरणा ली है। भगवान् राम चतुर्भुज-रूप धारण कर कौशल्या को स्वप्न में दिखायी पड़ते हैं[४]।

पद्म-पुराण के पाताल-खंड में शंकर जनक को हर-धनु प्रदान करते हैं, जिसे केवल राम उठा सकेंगे।[५] कृत्तिवास ने इस प्रसंग को थोड़ा सा परिवर्तित कर अपनाया है।[६]

पाताल-खंड (गौड़ीय-संस्करण)—कृत्तिवास पर इस खंड का प्रभाव ही अधिक जान पड़ता है। राजा सुदास कल्माषपाद (अध्याय ४), रघुराजा का दान[७] (अध्याय ८), अनावृष्टि, शनि और राजा-दशरथ-भेंट, जटायु-मैत्री[८] (अध्याय १२); सिन्धु-मुनि-वृत्तांत और उसके पिता के शाप को अनुग्रह मानना[९] (अध्याय १४), दुदुंभी[१०] अप्सरा का मंथरा

१ कृत्तिवासी-रामायण, पृष्ठ १७६-७७ किष्कि०।

२ हनुमन्नाटक—५-५७।

३ विना दोषे मारिले जेमन कपीश्वरे।
मारिवे तोमारे राम सेइ जन्मान्तरे॥ कृत्तिवासी किष्कि०, पृष्ठ १७८।

४ कृत्ति०, आदि०, पृ० ५६ एवं पद्मपुराण उत्तर०, २६९।

५ मामोपायं वद यथा विवाहे श्रेयो भविष्यति रामश्च जामाता भविष्यति। ८७। शंभुरपि तथा करोमीत्युवाच राम एव नाथः सीताया भविष्यति च कृत्वा स्वस्त्यद्यैव करिष्यामि गृहाणाजगवं धनुरिदम्॥८८॥ पाताल-खंड, अ० ११२।

६ कृत्तिवासी-रामायण, आदि०, पृष्ठ ६४।

७ महाराज रघु के दान की कथा रघुवंश, पद्मपुराण-पाताल खंड (गौड़ीय संस्करण) एवं कृत्तिवासी-रामायण तीनों में एक-सी है।

८ यह प्रसंग इस प्रकार है—वृष-राशि में स्थित रोहिणी से शनि संचार की इच्छा करने लगे, फलतः दशरथ के राज्य में अनावृष्टि के कारण अकाल पड़ गया। राजा दशरथ ने शनि पर चढ़ाई कर दी। शनि की वक्र-दृष्टि से उनका रथ जल गया। पतनोन्मुख राजा को रथ घोड़े सहित जटायु ने बचाया। राजा पुनः शनि के पास गये। इस बार शनि ने प्रसन्न होकर उनकी बात मान ली। शनि ने कुछ कथाएँ भी सुनायीं। कृत्तिवासी, आदि०।

९ तव शापे मुनि मम हरिष अन्तर।
शाप नहे हइल आमार पुत्र वर॥
(कृत्तिवासी-रामायण, आदि० पृष्ठ ४२)

१० कृत्तिवासी-रामायण, आदि०, पृष्ठ ६५।

होना, (अध्याय १५) अहल्या[1] पाषाणी को पदस्पर्श से मानवी बनाना (अध्याय १६) तथा फूल-धनु[2] से राम का राक्षस पर शर-संधान (अध्याय ४) आदि प्रसंग कृत्तिवास ने अपने ग्रंथ में वर्णित किये हैं। यद्यपि इनमें से अधिकांश वर्णन रघुवंश से मिलते हैं, किन्तु कृत्तिवास पर सीधा प्रभाव पाताल-खंड (गौड़ीय संस्करण) का ही है।

(४) रघुवंश (४०० ई०)

(१) रघुवंश के अनुसार निःसंतान राजा दिलीप दुःखी होकर कहते हैं कि जब मैं अपने पूर्वजों को जलदान करता हूँ तो मेरे निःश्वासों से जल उष्ण हो जाता है। कृत्तिवास ने भी ऐसा ही वर्णन किया है। उनकी रामायण में राजा दशरथ दिलीप का स्थान ले लेते हैं।

तर्पणेर काले आमि पितृलोक आनि।
अञ्जलि करिया दिइ तपर्णेर पानि॥
शीत जल उष्ण हय नाकेर निश्वासे।
आमा हैते गेल वंश जल दिवे के से॥ कृत्ति० आदि०, पृ०, ४६।

मत्परं दुर्लभं मत्वा नूनमार्वाजतं मया।
पयः पूर्वैः स्वनिः श्वासैः कवोष्णमुपभुज्यते। रघुवंश १–६७

(२) राम का जन्म होते ही रघुवंश में रावण के मुकुट की मणियाँ पृथ्वी पर गिर जाती हैं। कृत्तिवासी-रामायण में रावण के मुकुट गिर जाते हैं, सिंहासन भी हिल उठता है—

आचम्बिते रावणेर सिंहासन दोले।
माथार मुकुट खसि पड़े भूमि तले। कृत्ति० आदि०, पृ० ५८।

दशानन किरीटेभ्यस्तत्क्षणं राक्षसश्रियः।
मणिव्याजेन पर्यस्ताः पृथिव्यामश्रुबिन्दवः॥ रघु०, १०–७५

(५) जैमिनी भारत (११००–१२०० ई०)

कृत्तिवास ने अपनी रामायण के उत्तरकांड की अधिकांश कहानी के लिए जैमिनी-भारत से प्रेरणा ली है। सीता वनवास के लिए रजक-प्रसंग इसी पुराण (अध्याय २६, २७) से लिया है। रावण ब्राह्मण था। उसके वध से ब्रह्म-हत्या का पाप मानना तथा राम का अश्वमेध-यज्ञ करना भी इसी के अनुसार वर्णित है। जैमिनी-भारत का छः-सात अध्याय-व्यापी लव-कुश-जन्म एवं राम-सेना से युद्ध वाला प्रसंग (अध्याय २९–३६) भी कृत्तिवास ने वर्णित किया है। इसे उन्होंने स्वीकार भी किया है।[3]

---

१ कृत्तिवासी-रामायण आदि० पृ० ७५।
२ वही पृ० ६२।
३ एइ सब गाइल गीत जैमिनी भारते। कृत्तिवासी–उत्तर०, पृ० ५६८।

(६) श्री मद्भागवत-पुराण (छठी अथवा सातवीं शताब्दी)

शत्रु को अवतार की सूचना—श्री मद्भागवत-पुराण में जब कंस नंद-कन्या को वसुदेव-पुत्री समझ पृथ्वी पर पटक कर मारना चाहता है, वह आकाश में उठ कर घोषणा करती है कि उसका हंता उत्पन्न हो चुका है। कृत्तिवास ने भी राम के जन्म पर आकाश-वाणी करायी है कि चक्रपाणि का जन्म हो गया है, जिसे सुन कर रावण बहुत चिंतित है। कंस के मंत्री कंस को नवजात-शिशुओं का संधान कर मार डालने का परामर्श देते हैं। कृत्तिवासी-रामायण में भी रावण शुक और सारन को इसलिए भेजता है कि वे नवजात-शिशुओं में शत्रु का पता लगा कर उसका वध कर सकें।

एइ काले आकाशे हैल दैव वाणी।
दशरथ घरे ते जन्मिल चक्रपाणि॥
शुनिया चिन्तित बड़ राजा दशानन।
डाक दिया बले, शुन शुक ओ सारन॥
एके एके देखे आइस पृथिवी भुवने।
आमार शत्रुर जन्म हइल कोन खाने॥
एखनि मारिवे तारे अति शिशुकाल।
प्रवल हइले सेइ बाड़िवे जञ्जाल॥ कृत्ति०—आदि०, पृ० ५६।
किं मया हतया मन्द जातः खलु तवान्तकृत।
यत्र क्व वा पूर्वशत्रुर्मा हिंसीः कृपणान् वृथा॥१२॥
अनिर्दशान् निर्दशांश्च हनिष्यामोऽद्य वै शिशून्॥३१॥
(अध्याय ४, दशम-स्कंध)

यमुना की सहायता—श्री मद्भागवत में यमुना ने नवजात कृष्ण सहित वसुदेव को मार्ग दे दिया था और कृत्तिवासी-रामायण में उन्होंने रामादि को चित्रकूट की ओर जाते समय मार्ग दे दिया। वे घुटनों तक रह गयीं—

ताहार गभीर जल पाताल प्रमाण।
रामेर प्रभावे हय हांटुर समान॥ कृत्ति०, अयोध्या०, पृ० ११५।

भयानकावर्तशताकुला नदी
मार्गं ददौ सिन्धुरिव श्रियःपतेः॥१०—३—५०॥ भागवत

(७) अध्यात्म-रामायण (१३००—१४०० ई०)[1]

दस्युवाल्मीकि—कृत्तिवास[2] और अध्यात्म-रामायण[3] का वाल्मीकि-प्रसंग मिलता-जुलता है। इन बातों में समानता है–वाल्मीकि की लुटेरी वृत्ति, ऋषि-भेंट, ज्ञान-दान,

१ वा० श० अग्रवाल के मत में इसका रचना-काल गुप्तों का शासन-काल है।
२ कृत्तिवासी-रामायण बालकाण्ड २–४।
३ अध्यात्म-रामायण २, ६, ६५–८८।

मरा-मरा का जप, तपस्या और वाल्मीकि बनना आदि। अन्तर नाम और जाति का है। कृत्तिवास ने उनका नाम रत्नाकर बताया है।

लक्ष्मण का संयम—कृत्तिवासी-रामायण के अनुसार जो वीर १४ वर्ष तक निद्रा, स्त्री-मुख-दर्शन एवं आहार त्याग दे, वही मेघनाद का वध कर सकता है। अध्यात्म-रामायण में भी ऐसा लिखा है, अवधि केवल १२ वर्ष की है।

चौद्द वर्ष निद्रा नाहि जाय जेइ जन।
चौद्द वर्ष स्त्री मुख ना करे दरशन।।
चौद्द वर्ष जेइ वीर थाके अनाहारे।
इन्द्रजीते वधिवारे सेइ जन पारे।। कृत्ति० उत्तर०, पृ० ४६७।

यस्तु द्वादश वर्षाणि निद्राहार विवर्जितः ।।६४।।
तेनैव मृत्युर्निर्दिष्टो ब्रह्मणास्य दुरात्मनः ।।६५।। अध्या०, युद्ध०, पृ० ८।

कृत्तिवास को वाल्मीकि का अनुवादक-मात्र मानना उनके प्रति अन्याय होगा। उपर्युक्त संस्कृत-ग्रंथों के साथ कृत्तिवासी-रामायण के कथा-प्रसंगों की तुलना करने पर स्पष्ट है कि वे अन्य-ग्रंथों के प्रति भी ऋणी हैं। राम का अस्तित्व ऐतिहासिक है, उन पर ग्रन्थ लिखने पर वाल्मीकि-रामायण जैसे ऐतिहासिक-महाकाव्य का आधार लेना ही पड़ता है, कृत्तिवास ने भी वह आधार लिया है। उन्होंने जहाँ कहीं वाल्मीकि-रामायण का अनुसरण किया है, वहाँ केवल उसके कथा-प्रसंगों से प्रेरणा लेकर अपनी जन्मभूमि के जलवायु-परिस्थिति के अनुकूल राम-कथा का चित्रण किया है। भाव-सौंदर्य, कथन-शैली, चरित्र-चित्रण, अंतः प्रकृति एवं बाह्य-प्रकृति-चित्रण आदि सभी दृष्टियों से कृत्तिवास में मौलिकता है। वे वाल्मीकि अथवा तुलसी जैसे प्रतिभावान् नहीं हैं किन्तु मौलिक अवश्य हैं।

अध्याय ५

कृत्तिवासी-रामायण एवं मानस की कथावस्तु

(तुलनात्मक-विवेचन)

१—बाल-कांड

२—अयोध्या-कांड

३—अरण्य-कांड

४—किष्किंधा-कांड

५—सुन्दर-कांड

६—लंका-कांड

७—उत्तर-कांड

रामकथा-साहित्य के विकास का मूल-आधार वाल्मीकि-रामायण है। आर्य-प्रभावित क्षेत्र से दूर के प्रदेशों की कथाओं में स्थानीय-प्रभावों के कारण अन्तर आ गया है। प्रायः समस्त उत्तर-भारत की रामकथाएँ-वाल्मीकि रामायण के अधिकांशतः निकट हैं। कृत्तिवास एवं तुलसीदास भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से आदि-रामायण से ही प्रेरणा लेकर चले हैं। जहाँ कहीं आदि-रामायण से भिन्नता दृष्टिगोचर होती है, उसका एक प्रमुख कारण भक्तिवाद है। दोनों भाषा-रामायणों के समय तक राम-भक्ति का प्रचार हो चुका था, साथ ही राम के जीवन से सम्बन्धित अनेक नाटक एवं काव्य भी लिखे जा चुके थे। हमारे दोनों लेखकों ने वाल्मीकि का मूल-आधार लेकर भी अन्य ग्रन्थों के दृष्टिकोण एवं कथानकों से भी सहायता ली है। वाल्मीकि से अन्तर का कारण युगीन-परिस्थितियाँ भी हैं। इस युग में मर्यादा का ध्यान अधिक रहने के कारण कई कथानकों का रूप परिवर्त्तन हुआ है, जैसा कि आगे चलकर अहल्या आदि के सम्बन्ध में हम देखेंगे।

हिन्दी एवं बंगला भाषी क्षेत्रों की कुछ अपनी सांस्कृतिक विशेषताएँ हैं, फिर लेखक के अपने व्यक्तित्व की भी विशेषता रहती है। फलस्वरूप दोनों की कथाओं में भी अन्तर आ गया है। दोनों ग्रन्थों में जहाँ-कहीं मूल से अन्तर है एवं कथानक की पारस्परिक भिन्नता है, वहाँ कारण-निर्देश करने की चेष्टा की गयी है।

बाल-कांड

वाल्मीकि-रामायण के बाल एवं उत्तरकांड प्रक्षिप्त माने गये हैं। परवर्ती रचनाकारों ने इन दोनों कांडों में कई कथा-प्रसंगों का समावेश कर दिया है, अतएव ये आधिकारिक-कथावस्तु के बहिर्भूत प्रतीत होते हैं। कृत्तिवास ने वाल्मीकि का अधिकांशतः अनुसरण करते हुए भी कई संस्कृत-ग्रन्थों की सहायता ली है। कहीं-कहीं ऐसे प्रसंग भी आ गये हैं जो कहीं नहीं पाये जाते, हो सकता है उनमें कृत्तिवास की अपनी कल्पना हो। इसी प्रकार तुलसीकृत मानस में भी कई पुराणों के आख्यान तथा तुलसी की अपनी कल्पना का समावेश है। बालकांड के सुविधापूर्वक अध्ययन के लिए इसे दो भागों में बाँट लेना उचित है—पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध।

पूर्वार्द्ध—इस विभाग में वे कथाएँ आती हैं जिनका राम के जीवन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। यहाँ दोनों लेखकों में समानता नहीं है, समानता तो उत्तरार्द्ध से प्रारंभ होती है। दोनों ही लेखक राम का ब्रह्मत्व प्रमाणित करने के लिए प्रारंभ से ही सजग जान पड़ते हैं। कृत्तिवास ने वाल्मीकि-रामायण का अनुसरण करते हुए भी अपने उद्देश्य के अनुसार परिवर्तन कर कथा प्रारंभ की है। वे आरंभ में ही रामावतार के पूर्व नारायण का स्वेच्छा से चार अंशों में प्रकाशित होना दिखलाते हैं[1]। नारद उनके इस रूप का रहस्योद्घाटन कराने शंकर के पास पहुँचते हैं। शंकर उन्हें बतलाते हैं कि रावण का संहार करने के लिए नारायण इसी रूप में जन्म लेंगे। साथ ही शंकर वाल्मीकि-ऋषि का पूर्व-वृत्तांत बतलाते हैं, जबकि वे रत्नाकर दस्यु[2] थे। कृत्तिवास के वाल्मीकि दस्यु से ऋषि बने हैं, जबकि वाल्मीकि-रामायण के वाल्मीकि आदि से अंत तक तपः स्वाध्याय-निरत वाग्विद् तपस्वी हैं। अयोध्याकांड में तुलसी ने भी उनके दस्यु-वृत्तांत की ओर संकेत किया है[3]।

क्रौंच-वेदना से पीड़ित आदि-कवि का प्रथम-सर्जन तथा रामायण-रचना की प्रेरणा का वर्णन कर कृत्तिवास चंद्र-वंश एवं सूर्य-वंश के राजाओं का उल्लेख करते हैं। फिर मांधाता से लेकर दशरथ तक की वंशावली प्रस्तुत करते हैं। वंशावली के अनेक राजाओं का नामोल्लेख करते हुए उन्होंने प्रमुख राजाओं के जीवन की महत्त्वपूर्ण-घटनाओं का भी

१ कृत्ति० रामायण आदि०, पृष्ठ १,२।

२ ,, ,, आदि० ,, २,४।

३ उलटा नामु जपत जगु जाना।
वालमीकि भए ब्रह्म समाना ॥ २-१९३-८

रत्नाकर नाम पौराणिक अथवा संस्कृत लौकिक-साहित्य में नहीं पाया जाता, किन्तु अध्यात्म-रामायण (अयोध्या कांड, सर्ग ६-६५-८८ एवं आनंद-रामायण (राज्यखंड सर्ग १४ छंद १) में वाल्मीकि के दस्यु-जीवन और 'मरा मरा' कह कर उद्धार पाने की घटना का वर्णन है।

वर्णन किया है, जैसे कि—हरिश्चन्द्र की परीक्षा, सगर का अश्वमेध, भगीरथ का गंगा-आनयन, गंगावतरण सम्बन्धी कई उपकथाएं, रघु का पराक्रम और दान, अज-इंदुमती प्रसंग आदि। ये प्रसंग वाल्मीकि-रामायण में नहीं हैं। दिलीप से लेकर अज तक का वर्णन रघुवंश एवं पद्म-पुराण के पातालखंड (गौड़ीय संस्करण) के आधार पर हुआ है। राजा दशरथ के सम्बन्ध में भी अनेक वृत्तान्त जुड़े हैं—उनके सात सौ विवाह, सुमित्रा के प्रति कौशल्या और कैकयी का डाह, सुमित्रा का दुर्भगा होना, दशरथ और शनि से भेंट, जटायु से मैत्री, गणेश-जन्म-वृत्तान्त, अंध-मुनि-पुत्र-वध और उसका शाप, शंवर-असुर-वध, कैकेयी को दो वरदानों की प्राप्ति आदि। कृत्तिवास ने पूर्वार्द्ध में पद्मपुराण के पाताल खंड (गौड़ीय संस्करण) से अधिक सहायता ली है। इसी से उसमें ऐसे प्रसंग हैं जो वाल्मीकि अथवा तुलसी के ग्रंथों से नहीं मिलते।

तुलसी का पूर्वार्द्ध भी आधिकारिक कथा-वस्तु से बाहर का जान पड़ता है, फिर भी वह असंबद्ध-सा नहीं है। कृत्तिवास ने जिस-प्रकार के मूलकथा-बहिर्भूत प्रसंगों का वर्णन किया है, तुलसी ने उससे सदा बचने की चेष्टा की है। कथा के संगठन के लिए कृत्तिवास के उपर्युक्त प्रसंग अनावश्यक हैं। तुलसी द्वारा वर्णित कई उपाख्यान रामकथा के विकास में सहायक नहीं हैं, किन्तु यहाँ तुलसी रामभक्ति के प्रचण्ड प्रचारक रूप में उपस्थित हैं। अपने राम को सर्वोच्च-देव सिद्ध करने के लिए वे प्रारंभ से ही अनेक देवों आदि की बंदना करते हैं। सबकी वंदनाओं का एकमात्र उद्देश्य 'राम चरन रति' की प्राप्ति है। राम से सम्बन्धित होने के कारण वे अयोध्यापुरी, राम-परिवार तथा राम से सम्बन्धित अन्य लोगों की बंदना करते हैं। राम-कथा-लेखक कवियों की बंदना के साथ-साथ संत-असंत सहित चौरासी-लाख जीव-धारियों तक की स्तुति करते हैं, क्योंकि समस्त ब्रह्मांड ही सियाराम मय है[1]।

अब तुलसी को राम के ब्रह्मत्व के प्रचार के लिए दूसरी समस्या का समाधान करना था। उनके समय के पूर्व कबीर आदि ने निर्गुण राम की भक्ति का उपदेश दिया था। उनका कहना था—दसरथ सुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम का मरम है आना॥ तुलसी ने विद्वत्ता-पूर्वक सगुण-निर्गुण राम में एकरूपता स्थापित की। इसी को सिद्ध करने के लिए उन्होंने कई शाप एवं वर सम्बन्धी आख्यान प्रस्तुत किये। ये आख्यान निरर्थक नहीं हैं, सभी मिल कर राम के ब्रह्मत्व के प्रमाण-स्वरूप आये हैं। राम के ब्रह्मत्व के सम्बन्ध में उस युग में जितनी भी शंकाएं हो सकती थीं, वे सती और पार्वती के मुख से प्रस्तुत की गयी हैं, शंकर द्वारा उनका समाधान किया गया है। सती-पार्वती आदि प्रसंग शिवपुराण से गृहीत हुए हैं, किन्तु तुलसी ने उन्हें बिल्कुल मौलिक ढंग से प्रस्तुत किया है। बालकांड के पूर्वार्द्ध में तुलसी ने अनेक पुराणों से कथा लेकर उसकी सम्यक् योजना अपनी उद्देश्य-पूर्ति के लिए बड़ी दक्षता के साथ की है।

---

१ सीय राम मय सब जग जानी।
करउं प्रनाम जोरि जुग पानी॥ १-७-२

अवतार-सम्बन्धी-प्रसंग

कृष्ण को राम से पहले विष्णु का अवतार माने जाने का श्रेय मिल चुका था। कृष्ण का व्यूह-अवतार भी पांचरात्र-मत के अनुसार प्रचलित हो चुका था। हो सकता है, वासुदेव, संकर्षण प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध की भाँति ही नारायण का चार-भाइयों सहित रामावतार प्रसिद्ध हुआ हो। विष्णु-धर्मोत्तर-पुराण (अ०२१२) तथा नारद-पुराण (उत्तरखंड अ० ७५) में भी राम के इस व्यूह-अवतार का समर्थन है।

वाल्मीकि-रामायण के बाल, युद्ध एवं उत्तर कांड में अवतार का उल्लेख है। यदि इस अवतार वाले अंश को प्रक्षिप्त भी मान लिया जाय तो भी कम से कम यह तो मानना पड़ेगा कि इस प्रक्षेप ने परवर्ती-रामायणकारों को अवतारवाद की कल्पना दी। रामकथा से संबंधित अवतार की कल्पनाएँ मुख्यतः दो प्रकार की हैं—

१—रामादि चारों भाई विष्णु के चार अंशों से उत्पन्न हैं। (वाल्मीकि रामायण)
२—राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न क्रमशः विष्णु, शेष, शंख और सुदर्शन के अवतार हैं। (अध्यात्म-रामायण १-४-१७-१८)

कृत्तिवास ने प्रथम कल्पना का अनुसरण किया है—

श्री राम-भरत आो शत्रुघन-लक्ष्मण।
एक अंशे चारि अंश हइला नारायण॥ पृ० १—आदि०

तुलसीदास ने बहुत कुछ दूसरी कल्पना का अनुसरण किया है। पहली कल्पना का अनुसरण करने पर राम विष्णु के चतुर्थांश मात्र रह जाते, जबकि तुलसी उन्हें परब्रह्म बनाना चाहते हैं। अतएव उन्होंने दूसरी कल्पना में भी थोड़ा परिवर्तन कर लिया। लक्ष्मण तो शेषावतार हैं, किन्तु भरत और शत्रुघ्न को शंख और सुदर्शन का अवतार होना नहीं दिखाया है। आकाशवाणी के समय उन्होंने कहा है कि अंशों के साथ अवतार होगा।[1] मानस में अध्यात्म-रामायण का अनुसरण अधिक हुआ है। अतएव अंशों से तुलसी का तात्पर्य शंख और सुदर्शन से ही है।

अवतार के कारण—

राम-साहित्यों का उद्देश्य प्रायः रावण-वध ही है। रावण का वध करने के लिए ही विष्णु राम अवतार लेते हैं। कृत्तिवासी-रामायण में जब नारद विष्णु को उपर्युक्त रूप में देखते हैं तो ब्रह्मा को साथ लेकर शिवजी से नारायण के इस रूप का रहस्य ज्ञात करने जाते हैं। शिवजी कहते हैं—पृथ्वी-मंडल पर रावण राक्षस होगा, उसका वध करने के लिए नारायण भूतल पर जन्म लेंगे।[2]

१ अंसन्ह सहित मनुज अवतारा।
लेहउँ दिनकर बंस उदारा॥ १-१८६-२

२ रावण राक्षस हवे पृथिवी मण्डले।
ताहारे वधिते जन्म लवेन भूतले॥ पृ० २ (आदि-काण्ड)

मानस में भी राम के अवतार का प्रमुख उद्देश्य रावण का उद्धार ही जान पड़ता है। तुलसी ने माना है कि कल्प-कल्प में राम एवं रावण आदि अवतीर्ण होते हैं। राम तो वही एक हैं किन्तु रावण बदलते रहते हैं। मानस में चार कल्पों में रावण का जन्म हुआ है।

१—प्रथम कल्प में जय और विजय[१] रावण तथा कुंभकर्ण हुए। इस कल्प में कश्यप और अदिति[२] के वर-स्वरूप राम का जन्म हुआ।

२—द्वितीय कल्प में जलंधर[३] रावण हुआ। राम को भी वृन्दा के शाप के कारण जन्म लेना पड़ा।

३—तृतीय कल्प में हर-गण रावण और कुंभकर्ण हुए और राम को नारद[४] के शाप के फलस्वरूप अवतार लेना पड़ा।

४—चतुर्थ कल्प में प्रताप-भानु[५] आदि रावणादि हुए तथा मनुशतरूपा[६] को वरदान देने के कारण राम उनके पुत्र बनकर उत्पन्न हुए।

---

१ जय-विजय—विष्णु के द्वारपाल थे। आनंद-रामायण (राज्यकांड सर्ग १४-१-३०) एवं श्रीमद्भागवत (स्कंध ७, अ० १, ३५-४६) दोनों में इनके तीन जन्म तक राक्षस होने का वर्णन है। आनंद-रामायण में अश्विनीकुमार शाप देते हैं और भागवत में सनकादि ऋषि।

२ कश्यप और अदिति—वाल्मीकि-रामायण में दिखाया है कि कश्यप और अदिति के तप से प्रसन्न होकर भगवान् ने वामन का रूप धारण कर उनके पुत्र रूप में जन्म लिया।

अथ विष्णुर्महातेजा अदित्यां समाजायत।
वामनं रूपमास्थाय वैरोचनिमुपागमत्॥ वा० रा० (१-२९-१९)

वाल्मीकि रामायण में उनके दशरथ-कौशल्या बनने का उल्लेख नहीं है, किन्तु अध्यात्म-रामायण में है। (अध्यात्म रामा० १-२-२५-२७) तुलसी ने उसी का अनुसरण किया है। तुलसी ने दिखाया है कि इन दोनों ने भगवान् को पुत्र-रूप से प्राप्त करने की तपस्या की थी।

३ जलंधर-वृन्दा—वृन्दा और जलंधर वृत्तान्त तुलसी ने परिवर्तित कर अपनाया है। आनन्द-रामायण (सार कांड, सर्ग ४-७८-११८), शिवपुराण (युद्ध खंड-अध्याय २३) एवं पद्मपुराण उत्तरखंड में विष्णु ने पतिव्रता वृन्दा का सतीत्व भंग किया, फलतः जलंधर देवताओं से युद्ध करता हुआ मारा गया। वृन्दा ने भेद खुलने पर विष्णु को शाप दिया, किन्तु जलंधर को रावण बनाने की कल्पना तुलसी की है—

तहां जलंधर रावन भयऊ।
रन हति राम परम पद दयऊ॥ १-१२३-२

४ हरगण और नारद का शाप—शिवपुराण (रुद्र संहिता सृष्टि खंड अ, ३४) एवं अद्भुत-रामायण (सर्ग ४) के अनुसार है।

५ राजा प्रताप-भानु—इसके रावण होने में तुलसी ने बहुत कुछ कल्पना से काम लिया है।

६ मनु-शतरूपा—भागवत के ८ वें स्कंध (अ० १-७) में स्वायंभुव मनु और शतरूपा तप करते हुए दिखाये गये हैं। आगे दसवें स्कंध (अ० ३-३२-४१) में लिखा है कि स्वायंभुव मन्वंतर में देवकी और वसुदेव पृश्नि और सुतपा थे। तब इन्होंने तपस्या कर भगवान् को पुत्र-रूप में प्राप्त किया था। तुलसी को भी इसी से प्रेरणा मिली। पद्मपुराण (उत्तरखंड २६९ अ) में स्वायंभुव मनु ने सहस्र वर्ष तक तप कर भगवान् को पुत्र रूप में माँगा। उन्होंने पुत्र होना स्वीकार कर लिया। यहाँ शतरूवा नहीं है।

कृत्तिवासी-रामायण में कहीं व्यवस्थित रूप से इन शाप और वरदानों का उल्लेख नहीं है किन्तु यत्र-तत्र बिखरे रूप में इनका परिचय मिल जाता है।

१—वृन्दा-शाप—युद्धकांड में लेखक ने वृन्दा के शाप का संकेत किया है। गरुड़ राम-लक्ष्मण को नाग-पाश से मुक्त करते हुए कहते हैं—तुम विष्णु के अवतार, जगत के पति हो। पतिव्रता (वृन्दा) के शाप से अपने को भूल गये हो—

तुमि विष्णु अवतार जगतेर पति।
पतिव्रता शापे आछे आपना विस्मृति॥ लंका०, पृ० २९१

२—जय-विजय—युद्ध-कांड में रावण के विषय में जो कुछ कहा है, उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वह पूर्व-जन्म में वैकुंठ-नगर में नारायण का द्वारी था। शाप-वश वह तीन-जन्म से पृथ्वी-मंडल पर घूम रहा है।

देखह मने विचारि, रावण तोमार द्वारी,
पूर्व्वे छिल वैकुंठ नगरे। लंका०, पृ० ४२५
महीतले भ्रमिते हयेछे तिन जन्म। लंका० पृ० ४३१

३—मनुशतरूपा अथवा कश्यप-अदिति—भगवान् विष्णु एक स्थान पर कहते हैं—"दशरथ एवं कौशल्या ने पूर्व-जन्म में मेरी बहुत सेवा की है। मैंने उनके घर जन्म लेने का वर दिया है।[1] जिस प्रकार ऊपर के दो प्रसंगों में वृन्दा अथवा जय-विजय का नाम नहीं लिया, किन्तु संकेत उन्हीं की ओर है। इसी प्रकार यहाँ भी मनु-शतरूपा अथवा कश्यप-अदिति की ओर संकेत है।

राजा प्रतापभानु और सौदास कल्माषपाद—

इस राजा की कथा का वर्णन दोनों ने किया है, किन्तु अपने-अपने उद्देश्य के अनुसार तोड़-मरोड़ कर। यह कथा शुद्ध रूप में भागवत-पुराण (स्कंध ९–९–२०–३८) एवं पद्म-पुराण पाताल खंड (गौड़ीय संस्करण) में पायी जाती है। तुलसीदास ने इस प्रसंग से बहुत कम लिया है। कृत्तिवास ने उपर्युक्त पुराणों के अनुसार राजा का नाम सौदास ही स्वीकार कर यह भी दिखाया है कि राजा के राक्षस-शत्रु की पत्नी (भागवतादि में राक्षस-शत्रु के भाई) ने पुरोहित का रूप धारण कर वशिष्ठ को नर-मांस परोस दिया। वशिष्ठ ने नर-मांस का ज्ञान कर राजा सौदास को राक्षस होने का शाप दिया। यहाँ तक सभी कहानियों में समता है। तुलसीदास ने राजा का नाम प्रतापभानु बताया है; तथा ब्राह्मण लोग शाप देते हैं। कृत्तिवासी-रामायण एवं पुराणों में केवल १२ वर्ष तक राक्षस रहने का शाप था। तुलसी ने राजा प्रताप-भानु को तीन-तीन जन्म तक राक्षस होने का शाप दिलाया है। यही आगे चल कर अपने राज-परिवार सहित राक्षस हुआ। मानस में वर्णित रावण यही है।

---

१ दशरथ कौशल्या उभये आमि जानि॥
पूर्व्वे ते आमाय सेवा करेछे विस्तर।
जन्मिब तोमार घरे दियाछि, ए वर॥ आदि-कांड, पृ० ५४

कृत्तिवास का प्रसंग यहाँ से और भी आगे पुराणानुसार चला है। राजा ने भी क्रोध कर वशिष्ठ को शाप देने के लिए जल हाथ में लिया, किन्तु पत्नी के समझाने पर उसे अपने ही पैरों पर डाल लिया, फलतः पैर जल जाने के कारण वह कल्माषपाद हो गया। पुराणों में उसे एक और शाप मिला किन्तु बारह वर्ष पश्चात् वह स्वयं राक्षसत्व के शाप से मुक्त हो गया। कृत्तिवास ने इस प्रसंग का वर्णन गंगा-स्नान का महात्म्य दिखाने के लिए किया है। उनके अभिशप्त राजा को एक अन्य वरदंत नामक ब्रह्मराक्षस से ज्ञात होता है कि गंगा-स्नान से मुक्ति हो सकती है। वे दोनों एक मुनि से एक-एक बूंद गंगा-जल पाकर शाप से मुक्त हो जाते हैं।[1]

सीता-जन्म—

कृत्तिवास और तुलसी दोनों ने ही सीता को लक्ष्मी अथवा आद्या-शक्ति का अवतार माना है। वाल्मीकि-रामायण में उन्हें लक्ष्मी का अवतार नहीं माना गया। राम-कथा-साहित्य में सीता के जन्म से सम्बन्धित कई कथाओं का प्रचार है, यहाँ तक कि किन्हीं कथाओं में तो उनका रावण अथवा दशरथ की पुत्री के रूप में ही उल्लेख है। किन्तु भारतीय-रामकथा-साहित्य में वाल्मीकि-रामायण का भूमिजा-वाला मत ही मान्य हुआ है। वाल्मीकि-रामायण पढ़ कर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं—

१—रावण से अपने अपमान का बदला लेने के लिये वेदवती[2] ने सीता का जन्म लिया।

२—सीता भूमिजा एवं जनक-पालिता है।

३—वे सुशीला, सुन्दरी एवं पति-परायणा नारी हैं, लक्ष्मी की अवतार नहीं।

कृत्तिवास ने उपर्युक्त बातें मान लीं, साथ ही उन्हें लक्ष्मी भी मान लिया। देवी-भागवत (९-१६) आदि पुराणों में वाल्मीकि के वृत्तान्त की कमी को पूरा कर लिया गया था। इन पुराणों ने वेदवती को पहले ही लक्ष्मी मान लिया था।

देवताओं के निवेदन पर जब विष्णु अवतार लेने के लिए प्रस्तुत होते हैं। उस समय लक्ष्मी को विरह-कातर देख कर ब्रह्मा उन्हें भी अनारी-संभवा होकर जन्म लेने के लिए कहते हैं।

मानस में इन प्रसंगों में किसी का भी वर्णन नहीं है। वृन्दा और नारद ने शाप दिया था कि तुम भी स्त्री के विरह में दुःखी होकर नर-रूप में भटकोगे। इसी को सत्य करने के लिए उन्होंने सीता-सहित अवतार लिया।

नारद बचन सत्य सब करिहउं।
परम सक्ति समेत अवतरिहऊं ॥ १-१८६-६

---

१ सौदास-वृत्तांत—कृत्तिवासी-रामायण पृ० २५-२७ आदि०।

२ वेदवती—एषा वेदवती नाम पूर्वमासीत्कृते युगे।
त्रेता युगमनुप्राप्य वधार्थं तस्य रक्षसः।
उत्पन्ना मैथिलकुले जनकस्य महात्मनः ॥ वाल्मी० रामा० ७-१७-३८

राम के साथ सीता की स्थिति "गिरा अरथ जल बीचि सम[1]" अभिन्न है, मनु-शतरूपता को वर देने के समय भी राम अपनी आदि-शक्ति सीता के साथ[2] हैं। वे अकेले कैसे जन्म लेते, सीता को भी जन्म लेना पड़ा।

प्रसंग की संबद्धता देखते हुए यहीं सीता की उत्पत्ति बता देना अनुपयुक्त न होगा। यह प्रसंग राम-जन्म से पहले हो जायगा। कृत्तिवासी-रामायण में भी वह पहले ही वर्णित है।

जिस स्थान पर वेदवती ने प्राण-त्याग किया था, मिथिला-नगरी बस गयी। संतान की इच्छा से हल जोतते समय जनक को अंडा (डिम्ब) मिला। उससे एक कन्या निकली।[3]

इस प्रकार का वर्णन 'दीनेश चन्द्र सेन एवं रामानंद-संस्करणों में है, किन्तु किसी किसी संस्करण में लिखा है—'जनक के हल जोतते समय उर्वशी आकाश-मार्ग से निकली, जनक उसे देख कर स्खलित हुए, उस समय पृथ्वी ऋतुमती थी अतएव वह गर्भवती हो गयी। उससे ही डिम्ब का निर्माण हुआ[4], यह प्रसंग ही सत्य जान पड़ता है। वाल्मीकि-रामायण के गौड़ीय-संस्करण में भी इसका वर्णन है।[5] मर्यादावादी संपादकों ने इस प्रसंग को परिवर्त्तित किया है।

तुलसी ने जन्म के विषय में कुछ नहीं लिखा। ऐसे प्रसंगों पर वे सदैव बच कर निकल जाते हैं।

---

१ मानस—१-१८

२ बाम भाग सोभति अनुकूला।
आदि शक्ति छबिनिधि जग मूला॥ १-१४७-२

३ कृत्तिवासी-रामायण (रामानंदी-संस्करण) पृ० ५५, आदि०
वही—(दीनेशचन्द्र सेन संस्करण) पृ० ६३, आदि०

४ सुबोध मजुमदार संपादित संस्करण—
स्वहस्ते लाङ्गले राजा यज्ञभूमि चषे।
उर्व्वशी चलिया जाय उपर आकाशे॥
ताके देखिया कामे जनक मोहित।
हठात् ऋषिर वीर्य हइल स्खलित॥
दैवयोगे पृथिवी आछिल ऋतुमती।
ऋषि वीर्य पड़िले हइल गर्भवती॥
डिम्ब रूपे भूमि मध्ये बहुकाल छिल : पृष्ठ ५६, आदि०

५ अन्तरीक्षे च गच्छन्तीं दिव्य-रूपां मनोरमाम्।
मेनकां वै ह्यप्सरसं द्योतयन्तीं दिशस्त्विषा॥ ३-४-८
तां दृष्ट्वा रूप सम्पन्नां मन्मथस्य रतिमिव।
तस्यासीन्मानसी बुद्धिस्तदा धैर्य्य विचालिनी॥
३-४-६ वाल्मीकि-रामायण
(गौड़ीय संस्करण)

अवतार के लिए देवताओं का विष्णु-स्तवन—

धर्म की ग्लानि होने पर भगवान् अवतार धारण करते हैं। रावण द्वारा उत्पीड़ित सभी देवता समझते हैं कि अवतार का यही उपयुक्त अवसर है। दोनों लेखकों की कृतियों में इस प्रकार का प्रयास है; किन्तु भिन्न-भिन्न ग्रंथों से प्रभावित होने के कारण उनके वर्णन में भी भिन्नता हो गयी है।

वाल्मीकि-रामायण एवं कृत्तिवासी-रामायण में देवता पुत्रेष्टि-यज्ञ के समय दशरथ की आहुतियों से खिंच कर एकत्र होते हैं। वाल्मीकि-रामायण[1] में यहीं भगवान् भी आ जाते हैं, और देवताओं के कहने से अवतार ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं। कृत्तिवासी-रामायण में ऐसा नहीं हुआ। यहाँ तुलसी से समानता है। सभी देवता मिल कर ब्रह्मा के साथ विष्णु भगवान् के यहाँ क्षीर-सागर गये। भगवान् एक उदार एवं निश्चित शासक जैसे जान पड़ते हैं। वे सो रहे थे। देवताओं के जगाने पर उठे। रावण के प्रति क्रोध एवं आवेश-प्रदर्शन, ब्रह्मा को धिक्कार-दान एवं लक्ष्मी के साथ रुदन आदि के पश्चात् वे अवतार-ग्रहण की स्वीकृति दे देते हैं।

मानस ने अध्यात्म की अपेक्षा भागवत का अनुसरण अधिक किया है। अध्यात्म-रामायण (१–२–८) में भगवान् स्वयं प्रकट होते हैं। कृत्तिवासी-रामायण एवं वाल्मीकि-रामायण में भी वे प्रकट हुए हैं। भागवत[2] में ब्रह्मा के स्तुति करने पर आकाशवाणी सुनायी पड़ी है। इसी प्रकार तुलसी ने भी दिखाया कि देवता निश्चय नहीं कर पाते कि प्रभु कहाँ हैं। शिव जी उन्हें सर्व-व्यापक बता कर वहीं स्तुति करने को कहते हैं। दृप्त-स्वर में आकाशवाणी सुनाई पड़ती है—

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा।
तुम्हहिं लागि धरिहऊं नर बेसा।। १—१८६—१

प्रभु की सर्व व्यापकता प्रकट करने की दृष्टि से तुलसी का यह प्रसंग कृत्तिवास के प्रसंग से महत्त्वपूर्ण है। वैसे देवताओं की दुर्दशा का वर्णन कृत्तिवास ने अच्छा किया है[3]।

---

१ वाल्मीकि-रामायण (१–२५ सर्ग)

२ श्रीमद्भागवत—१०—१—२०—२१

३ इन्द्र, चन्द्र, अग्नि आदि देवताओं की चाकरी का हाल कह कर यम और शनि के विषय में बतलाते हैं कि यम रावण के घोड़ों के लिए घास काट लाते हैं और शनि लंकापुरी में कपड़ा धोते हैं। जगत के कर्त्ता ब्रह्मा को वहाँ बच्चे पढ़ाने पड़ते हैं। (कृत्ति० रामायण, पृष्ठ ५४, आदि०)

उत्तरार्द्ध

पुत्रेष्ठि-यज्ञ

राम-कथा के इस अंश से लगभग सभी रामायणों में समानता मिलने लगती है। विद्वानों के मत में वाल्मीकि-रामायण का पुत्रेष्टि-यज्ञ प्रक्षिप्त है। महाभारत एवं भागवत आदि ग्रंथों में दशरथ के संतान-लाभार्थ किसी यज्ञ करने का उल्लेख नहीं है। वाल्मीकि-रामायण में वे अश्वमेध एवं पुत्रेष्टि-यज्ञ एक साथ करते देखे जाते हैं। कालांतर में राम-कथाकारों ने केवल पुत्रेष्टि-यज्ञ का वर्णन प्रारंभ कर दिया।

१—दशरथ का शोक—दशरथ को संतान न होने का दुःख है। कृत्तिवासी-रामायण में वे कहते हैं—अपुत्रक होने के कारण कोई उनका मुख नहीं देखता। जब वे अंजलि भर कर पितरों को जलदान करते हैं तो उष्ण निःश्वासों से वह पानी भी उष्ण हो जाता है[1]। मानस के दशरथ भी ग्लानि अनुभव करते हैं कि उनके कोई पुत्र नहीं है[2]।

२—ऋष्यश्रृंग-आनयन—मानस के अनुसार दशरथ की ग्लानि देख कर वशिष्ठ तुरन्त ऋष्यश्रृंग को निमंत्रित करने का प्रवन्ध करने लग जाते हैं[3]। कृत्तिवासी-रामायण में दशरथ स्वयं ऋषि को बुलाने के लिए कहते हैं। दशरथ ने शब्द-वेधी बाण चला कर सिन्धु नामक अंध-मुनि-पुत्र का वध कर दिया था। अंध-दंपति ने मरते समय शाप दिया था कि पुत्र के विरह से तुम्हारे भी प्राण निकलेंगे। दशरथ के लिए यह शाप वरदान बन गया, क्योंकि पुत्र तो होगा।[4]

इसी दंपति ने कहा था कि ऋष्यश्रृंग द्वारा यज्ञ कराने पर संतति होगी। वाल्मीकि-रामामण में ऋष्यश्रृंग के जन्म का वृत्तांत, राजा रोम-पाद के यहाँ अनावृष्टि, वेश्याओं द्वारा ऋषि को भरमा कर लाना, वर्षा होना तथा शांता नामक राजकन्या (दशरथ की पुत्री) का दान आदि विस्तृत रूप से वर्णित हैं। कृत्तिवास ने भी इसका

---

१ अपुत्रक आमि पाइ मने बड़ दुःख।
प्रभाते ना देखे लोक अपुत्रकेर मुख॥
तर्पणेर काले आमि पितृलोक आनि।
अञ्जलि करिया दिइ तर्पणेर पानि॥
शीत जल उष्ण हय नाकेर निश्वासे।—कृत्ति०-रामा०, पृ० ४६, आदि०
—(तुलनीय रघुवंश-१-६७)

२ एक बार भूपति मन माहीं।
भै गलानि मोरें सुत नाहीं॥ मानस—१-१८८-१

३ सृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा।
पुत्र काम सुभ जग्य करावा॥ मानस १-१८८-५

४ तव शापे मुनि मम हरिष अन्तर।
शाप नहे, हइल आभार पुत्रवर॥ कृत्ति० आदि०, पृ० ४२
तुलनीय-पद्मपुराण, पाताल-खंड (गौड़ीय संस्करण) अध्याय—१४

विस्तृत वर्णन किया है।[1] विस्तार एवं मर्यादा-हीनता के भय के कारण तुलसी ने पूरे कथानक की उपेक्षा कर दी।

३—यज्ञ—कृत्तिवास ने तुलसी की अपेक्षा यज्ञ की धूमधाम विस्तार से दिखायी है। तीन-तीन कोटि मुनि निमंत्रित होकर आये थे। कृत्तिवासी रामायण के अनुसार यज्ञ से विष्णु प्रकट होकर केवल ऋष्यश्रृंग को दर्शन देकर चरु प्रदान करते हैं; और मानस में स्वयं अग्निदेव ने आविर्भूत होकर पायस दिया है।

पायस-वितरण—पायस-वितरण के रूप में रामायणों में भिन्नता है। पायस के अंशों से ही रामादि का जन्म हुआ था। जो चारों भाइयों को विष्णु के चार-अंश मात्र मानना चाहते थे, उन्होंने पायस का समान वितरण कराया है। इस वितरण में सुविधा भी थी; किन्तु जो राम तथा उनके भाइयों में क्रमानुसार उच्चता का श्रेणि-विभाग कराना चाहते थे, उन्होंने वितरण में समता नहीं रखी है[2]।

	कौशल्या	कैकेयी	सुमित्रा
(१) कृत्तिवासी रामायण	१/४	१/४	१/४ + १/४
(२) मानस	१/२	१/४	१/८ + १/८

रघुवंश एवं अध्यात्म-रामायण में भी कृत्तिवासी-रामायण जैसा वितरण है। कृत्तिवास ने इन्ही ग्रंथों से प्रेरणा ली है। वाल्मीकि-रामायण में वितरण विषम था। तुलसी को वाल्मीकि-रामायण से एक आपत्ति थी, भक्त-शिरोमणि भरत का अंश लक्ष्मण से कम हो जाता था। वाल्मीकि-रामायण के उत्तर-पश्चिम संस्करण पर आधारित रामायण-मंजरी का विवरण तुलसी के मनोनुकूल हुआ। उसके अनुसार अयोध्याकांड के नायक भरत को राम के पश्चात् स्थान मिल जाता है।

अनुपात के पश्चात् वितरण के ढंग में भी भिन्नता है। कृत्तिवासी-रामायण में रघुवंश के समान राजा ने आधा-आधा भाग दे दिया। रघुवंश में कौशल्या अर्चिता हैं

१ कृत्ति० रामा० (पृ० ४७–५०) ऋष्यशृङ्ग-संबंधी-वृत्तांत।

		कौशल्या	कैकयी	सुमित्रा
२	वाल्मीकि-रामायण	१/२	१/८	१/४ + १/८
	रामायण-मञ्जरी	१/२	१/४	१/८ + १/८
	मानस	१/२	१/४	१/८ + १/८
	रघुवंश, अध्यात्म रामा० एवं कृत्तिवासी रामायण	१/४	१/४	१/४ + १/४

(वाल्मीकि-रामायण—१, १६, २८, ३०
(रामायण-मंजरी— ७४, बालकांड
(रघुवंश— १०, ५५, ५६
(अध्यात्म-रामायण—१, ३, १०, १२
(कृत्तिवासी-रामायण—पृ० ५६, आदि०
(मानस— १, १८६, ४
(पद्मपुराण, उत्तरखंड—२६६ अ० ५६, ६०

एवं कैकेयी प्रिया इसीलिए आधा-आधा भाग पा गयीं, सुमित्रा इन्हें प्रिय है ही, वे स्वयं दे देंगी। कृत्तिवासी-रामायण में भी कौशल्या और कैकेयी सुमित्रा को आधा-आधा भाग दे देती हैं, किन्तु अपने-अपने पुत्र का साथी बनाने का वचन लेकर।

मानस में राजा ने पहले आधा भाग कौशल्या को दिया, फिर आधे के दो भाग कर एक अंश कैकेयी को दिया। शेष चतुर्थांश के भी दो भाग कर कौशल्या और कैकेयी के हाथों से ही प्रसन्न-मन के साथ सुमित्रा को दिलाया।

प्रसन्न-मन से दिया, इससे स्पष्ट है कि तुलसी की तीनों रानियों में प्रेम है, जबकि कृत्तिवासी की तीनों रानियों में सहज स्वाभाविक सौतिया-डाह-युक्त नारियों का दर्शन होता है। तुलसी ने रामादि भाइयों की माताओं के गौरव की रक्षा की है, जबकि कृत्तिवासी ने मनोवैज्ञानिक यथातथ्य-चित्रण की।

जन्म और बाल-लीला—

राम-कथा के प्रसार और विकास के समय कृष्ण-जन्म-सम्बन्धी अलौकिक-घटनाओं का प्रचार हो चुका था। राम-भक्तों का मन भी इन अलौकिक-घटनाओं की ओर आकर्षित हुआ। उन्होंने भी अपने इष्ट-देव के उच्चता-ज्ञापन के लिए भागवत में वर्णित कृष्ण-सम्बन्धी आख्यानों का राम-कथा पर आरोप कर दिया है। इस प्रकार का प्रयास अध्यात्म-रामायण में भी है, जिसका अनुसरण तुलसी ने किया है। भागवत-पुराण में जन्म के उपरांत कृष्ण अपना 'चतुर्भुजं शङ्खगदार्युदायुधम्[1]' रूप देवकी-वसुदेव को दिखाते हैं।

कृत्तिवास ने चतुर्भुज-रूप[2] जन्म के पूर्व स्वप्न में दिखाया है, तुलसी ने जन्म के उपरान्त। कौशल्या देखकर विनय करती है और वे शिशु बनकर रोने लगते हैं।[3] भागवत-पुराण में कृष्ण चतुर्भुजरूप धारण कर उनसे बोलते भी हैं। वे वसुदेव-देवकी को बताते हैं कि पूर्व जन्म में इन्होंने भगवान् को पुत्र-रूप से प्राप्त करने का वरदान प्राप्त किया था।[4] कृत्तिवास ने भी ऐसा कहलाया है—

> पूर्व्वेते आमार सेवा करेछ आदरे।
> सेइ पुण्ये जन्मिलाम तोमार उदरे॥ पृ० ५६, आदि०

---

१ श्रीमद्भावत १०-३-९

२ स्वप्ने शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म शार्ङ्गधारी।
चतुर्भुज रूपे देखा दिलेन श्री हरि॥ ५६ आदि-कांड

३ सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा। १-१९१ छंद

४ श्रीमद्भागवत—१०-३-३२

जन्म के समय की परिस्थिति—

भागवत में कृष्ण के जन्म के समय की परिस्थिति का सुन्दर चित्रण[1] है। कृत्तिवास ने यत्किंचित अनुसरण किया है—

शुभ ग्रह सकल उदित स्थाने स्थाने।
दशदिक मङ्गल सकल तारागणे ।। पृ० ५७, आदि०

तुलसी ने कुछ विशद् वर्णन किया है—

मध्य दिवस अति सीत न घामा।
पावनकाल लोक विश्रामा ।।
सीतल मंद सुरभि वह बाऊ।
हरषित सुर संतन मन चाऊ ।।
बन कुसुमित गिरिगन मनि आरा।
स्रवहिं सकल सरिताऽमृत धारा ।। १–१६०–२–४

रावण की चिंता—

कृत्तिवास ने कुछ और भी वर्णन किये हैं। राम का जन्म होते ही रावण के मुकुट माथे से खिसक कर भूमि पर गिर[2] पड़े। यहाँ रघुवंश[3] का प्रभाव है। आगे फिर कृत्तिवास ने कृष्ण-जन्म की परिस्थिति से प्रेरणा ली है। कृष्ण-जन्म के उपरांत योग-माया की आकाश-वाणी सुनकर तथा अपने संहारक का जन्म ज्ञात कर कंस नवजात-शिशुओं के वध के लिए सन्नद्ध हो गया था। उसने कई चर भी खोज के लिए भेजे थे।[4] कृत्तिवास ने भी आकाशवाणी करायी है जिसे सुन कर रावण ने शुक-सारन को पता लगाने भेजा है।[5]

विश्वामित्र द्वारा राम-लक्ष्मण की याचना—

याचना-वाला प्रसंग समान है, अंतर यही है कि कृत्तिवास के विश्वामित्र अग्निमूर्ति जान पड़ते हैं और मानस के विश्वामित्र मन ही मन प्रमुदित होने वाले ज्ञानी-ऋषि।

प्रवंचना—कृत्तिवासी-रामायण के अनुसार दशरथ ने विश्वामित्र को धोखा देकर पहले भरत और शत्रुघ्न को दिया था। मार्ग में परीक्षा लेने पर भरत ने भीरुता प्रकट की,

---

१ श्रीमद्भागवत में इस प्रकार का वर्णन है—आकाश के सभी नक्षत्र, ग्रह और तारे शांत और सौम्य हो रहे थे। दिशाएं स्वच्छ-प्रसन्न थीं। निर्मल-आकाश में तारे जगमगा रहे थे।…नदियों का जल निर्मल हो गया था। रात्रि के समय भी सरोवरों में कमल खिल रहे थे। वन में वृक्षों की पत्तियाँ रंग-बिरंगे पुष्पों के गुच्छों से लद गयी थीं। कहीं पक्षी चहक रहे थे, तो कहीं भौंरे गुनगुना रहे थे। उस समय परम पवित्र और शीतल-मंद-सुगंध वायु अपने स्पर्श से लोगों को सुख-दान करती हुई बह रही थी। (३–१०–१–३)

२ कृत्तिवासी रामायण, पृ० ५८ आदि०।

३ रघुवंश, १०–७५

४ श्रीमद्भागवत-स्कन्ध १० अध्याय ४–३१

५ कृत्ति० रामायण पृ० ५६ आदि०।

पोल खुल गयी ।[1] दशरथ को राम-लक्ष्मण विश्वामित्र के हाथों सौंपने पड़े । आदिवासियों में भी ऐसी कथा प्रचलित[2] है ।

ताड़का-वध—ताड़का-वध सामान्यतः एक-समान है । कृत्तिवासी रामायण में उसकी भयंकरता का अच्छा चित्रण है । तुलसी ने अध्यात्म-रामायण के अनुसार उसका उद्धार कर उसे निज[3] पद दिया है । वाल्मीकि-रामायण में उसे शाप-ग्रस्त यक्षिणी बताया है, किन्तु उसके उद्धार के विषय में नहीं लिखा, कृत्तिवास ने भी नहीं लिखा ।

अहल्या-उद्धार—अहल्या की कथा दोनों लेखकों की कृतियों में एक ही सी है । तुलसी ने बहुत संक्षेप में कथा का वर्णन किया है । दोनों की समानताएं निम्न प्रकार हैं—

१—दोनों ने अहल्या को शिला बनाया है ।
२—दोनों ने राम की चरण-रज से उसका उद्धार होना माना है ।

वाल्मीकि-रामायण की कहानी में यथार्थता एवं स्वाभाविकता अधिक है । वैसा वर्णन इन रामायणकारों की परिस्थिति में अच्छा आदर्श उपस्थित न करता, अतएव इन दोनों लेखकों ने परिवर्त्तन किया है । वाल्मीकि के अनुसार वर्णन इस प्रकार है—

१—वाल्मीकि रामायण—अहल्या के रूप पर मुग्ध होकर उसकी सहर्ष सम्मति से इन्द्र ने उसके साथ अंग-संग किया[4] ।

भाषा-रामायणकारों को नारी की यह उच्छृंखलता पसंद नहीं आयी । उनके पहले भी लेखकों ने इस प्रसंग को ढँकने की चेष्टा की थी । कृत्तिवासी-रामायण के इस अंश को भी संपादक लोगों ने परिवर्तित कर दिया । रामानन्दी-संस्करण में लिखा है—भ्रम में पड़ कर अहल्या ने यह पाप किया[5] । दीनेशचन्द्र सेन के संस्करण में केवल यह लिखा है—इन्द्र की बातों से अहल्या की बुद्धि भ्रष्ट हुई ।[6] किन्तु लगता है कि सुबोध-संपादित संस्करण में इस प्रसंग का वास्तविक रूप रक्षित है । इस संस्करण के अनुसार इन्द्र गौतम का शिष्य है । एक दिन दाँव लगा कर यह गौतम का वेश धारण कर आया । पतिव्रता अहल्या ने उसे पति समझ शृंगार कर रमण किया । उसके जाने के बाद गौतम ने आकर पूछा. प्रातःकाल यह शृंगार और रति चिन्ह कैसे ? वह बोली स्वयं कर्म

१ कृत्ति० रामायण पृ० ७१ आदि० ।

२ रामकथा—बुल्के, अनु० ३२४ ।

३ मानस—१—२०८—६

४ मुनिवेष सहस्राक्षं विज्ञाय रघुनंदन ।
मतिं चकार दुर्मेधा देवराज कुतूहलात् ॥ १-४८-२० वाल्मी० रामा०

५ भ्रमे पड़ि अहल्या से पापे ते मजिल—पृ० ७५, आदि०

६ इन्द्रेर कथाय हल बुद्धिर भ्रंशन—पृ० ८४, आदि०
(दीनेशचन्द्र-संपादित संस्करण)

करके मुझे दोष देते हो।[१] सुबोध वाला प्रसंग ही सत्य हो तो भी ज्ञात हो जायगा कि बंगाली-रामायणकार ने भी अहल्या को निर्दोष सिद्ध करने की चेष्टा की है। वैसे भी कुमारिल भट्ट ने इस कथा में ऐतिहासिक सत्य न देख कर इसे रूपक माना है।[२]

तुलसी प्रसंग को एकदम उड़ा गये हैं। गौतम नारी 'साप-बस' क्यों हुई, उसका दोष था भी या नहीं, दोष भी किस प्रकार का था, यह सब लिखना उन्हें रुचिकर नहीं लगा। उनकी परिस्थिति में वैसे ही लोगों में विलासिता कम नहीं थी, संत तुलसीदास उसे बढ़ावा क्यों देते।

२—वाल्मीकि-रामायण में इन्द्र छिप कर जाते समय पकड़ा गया। कृत्तिवास के रामानन्द एवं दीनेशचन्द्र संपादित संस्करणों तथा मानस में इन्द्र से गौतम की भेंट अथवा उसके अभिशप्त होने का वर्णन नहीं है। सुबोध के संस्करण में मुनि ध्यान लगा कर इन्द्र की करतूत जान कर उसे सहस्र-भग[३] होने का शाप देते हैं।

अहल्या का शाप—कृत्तिवासी-रामायण के सभी संस्करण तथा मानस में अहल्या के पत्थर बनने का शाप है। रघुवंश[४], पद्मपुराण[५] (पाताल खंड—गौड़ीय संस्करण) एवं हनुमन्नाटक[६] आदि राम-कथा साहित्य में भी उसे शिला स्वीकार किया गया है।

१ गौतमेर शिष्य इन्द्र अति प्रियतम॥
एक दिन गौतम गेलेन तपस्याय।
गौतमेर वेशे इन्द्र प्रवेशे तथाय॥
....
पतिव्रता नाहि लङ्घे पतिर वचन।
तखन शयन गृहे करिल गमन॥
....
तपस्या करिया मुनि आइलेन घरे।
अहल्या आसन दिल अति समादरे॥
गौतम बलेन प्रिये जिज्ञासि तोमारे।
श्रृङ्गार लक्षण कैन तोमार शरीरे॥
अहल्या बलेन प्रभु निवेदि तोमारे।
आपनि करिया कर्म्म दोषह आमारे॥
सुबोध-संस्करण ७७

२ प्राङ० मौर्य विहार –पृ० ६१, देवप्रसाद त्रिवेद

३ 'योनिमय होक तोर सर्ब्ब कलेवर' –सुबोध-संपादित कृत्तिवासी रामायण, पृ० ७७
'योनिलम्पट दुष्टात्मन्सहस्र भगवान्भव'–अध्यात्म-रामा० १–५–२६

४ प्रत्यपद्यत चिराय यत्पुनश्चारु गौतमवधूः शिलामयी।
स्वंवपुःस किल किल्बिषच्छिदां रामपादरजसामनुग्रह॥
रघु० ११–३४

५ पद्मपुराण, पातालखंड–गौड़ीय संस्करण–अध्याय १६

६ पदकमल रजोभिर्मुक्त पाषाण देहा।—हनुमन्नाटक अंक ३–१६

वाल्मीकि-रामायण में उसे सभी जीवों से अदृश्य रह कर निराहार तप करने का शाप दिया है। राम के दर्शन से ही उसकी मुक्ति होगी।[1]

और ठीक भी है। इतने दिन के घोर प्रायश्चित से वह पवित्र भी हो गयी थी। राम की चरण-रज का महत्त्व बढ़ाने के लिए रघुवंश आदि में शिला की कल्पना की गयी है।[2]

पति से मिलन—यहाँ भाषा-रामायण लेखकों में समानता नहीं है। कृत्तिवास लिखते हैं कि अहल्या को देख कर मुनि प्रसन्न हुए।[3] स्पष्ट है कि उन्होंने अहल्या को स्वीकार कर लिया।

तुलसी को यह बात नहीं जँची। एक कुकृत्य के पश्चात् गौतम के साथ अहल्या का पुनर्मिलन नारी-पवित्रता के आदर्श को प्रस्तुत नहीं कर सकता था, जोकि उनके युग में आवश्यक था। और यदि भगवान् राम की चरण-रज देकर भी उसका पवित्र होना नहीं दिखाते तो इसका अर्थ है कि उनकी चरण-रज का कोई विशेष महत्त्व नहीं। अतएव उन्होंने दिखाया कि 'गै पति लोक अनन्द भरी।[4]' पति लोक को गयी, अर्थात् गौतम अब इस लोक में नहीं थे। दोनों का मिलन इस लोक में न होकर अन्य लोक में हुआ।

वाल्मीकि-रामायण[5] एवं अध्यात्म[6]-रामायण में इसी लोक के मिलन का वर्णन है।

अध्यात्म-रामायण के अनुसार मानस में अहल्या राम की स्तुति भी करती है।

सीता-राम विवाह

धनुष का इतिहास—यद्यपि तुलसी ने धनुष-प्राप्ति का वर्णन नहीं किया किंतु मानस के संकेतों से प्रकट होता है कि कृत्तिवास के दृष्टिकोण से उनका साम्य है। कृत्ति-

---

१ वायु भक्षनिराहारा तप्यन्ती भस्मशायिनी।
अदृश्या सर्वभूतानामाश्रमेऽस्मिन्निवत्स्यसि॥ १-४८-३१
(वाल्मीकि-रामायण)

२ अध्यात्म-रामायण में वह शिला नहीं होती।
'शिलायां तिष्ठ'—शिला में निवास का शाप था।
(१-५-२७) वह प्राणियों से अदृश्य रह कर तप कर रही थी। (१-५-३३, ३८)

३ अहल्या के देखिया सानन्द महामुनि-कृत्ति० रामा०
(रामानन्दी संस्करण) पृ० ७५

४ मानस—१-२१० छंद।

५ गौतमोऽपि महातेजा अहल्यासहितः सुखी।
वाल्मीकि रामा० १-४९-२२

६ ययौ पतिम्—अध्या० रामायण १-५-६१

जन्म के समय की परिस्थिति—

भागवत में कृष्ण के जन्म के समय की परिस्थिति का सुन्दर चित्रण[१] है। कृत्तिवास ने यत्किंचित अनुसरण किया है—

शुभ ग्रह सकल उदित स्थाने स्थाने।
दशदिक मङ्गल सकल तारागणे ।। पृ० ५७, आदि०

तुलसी ने कुछ विशद् वर्णन किया है—

मध्य दिवस अति सीत न घामा।
पावनकाल लोक विश्रामा ।।
सीतल मंद सुरभि वह बाऊ।
हरषित सुर संतन मन चाऊ ।।
बन कुसुमित गिरिगन मनि आरा।
स्रवहिं सकल सरिताऽमृत धारा ।। १–१९०–२–४

रावण की चिंता—

कृत्तिवास ने कुछ और भी वर्णन किये हैं। राम का जन्म होते ही रावण के मुकुट माथे से खिसक कर भूमि पर गिर[२] पड़े। यहाँ रघुवंश[३] का प्रभाव है। आगे फिर कृत्तिवास ने कृष्ण-जन्म की परिस्थिति से प्रेरणा ली है। कृष्ण-जन्म के उपरांत योग-माया की आकाश-वाणी सुनकर तथा अपने संहारक का जन्म ज्ञात कर कंस नवजात-शिशुओं के वध के लिए सन्नद्ध हो गया था। उसने कई चर भी खोज के लिए भेजे थे।[४] कृत्तिवास ने भी आकाशवाणी करायी है जिसे सुन कर रावण ने शुक-सारन को पता लगाने भेजा है।[५]

विश्वामित्र द्वारा राम-लक्ष्मण की याचना—

याचना-वाला प्रसंग समान है, अंतर यही है कि कृत्तिवास के विश्वामित्र अग्निमूर्ति जान पड़ते हैं और मानस के विश्वामित्र मन ही मन प्रमुदित होने वाले ज्ञानी-ऋषि।

प्रवंचना—कृत्तिवासी-रामायण के अनुसार दशरथ ने विश्वामित्र को धोखा देकर पहले भरत और शत्रुघ्न को दिया था। मार्ग में परीक्षा लेने पर भरत ने भीरुता प्रकट की,

१ श्रीमद्भागवत में इस प्रकार का वर्णन है—आकाश के सभी नक्षत्र, ग्रह और तारे शांत और सौम्य हो रहे थे। दिशाएं स्वच्छ-प्रसन्न थीं। निर्मल-आकाश में तारे जगमगा रहे थे।…नदियों का जल निर्मल हो गया था। रात्रि के समय भी सरोवरों में कमल खिल रहे थे। वन में वृक्षों की पत्तियाँ रंग-बिरंगे पुष्पों के गुच्छों से लद गयी थीं। कहीं पक्षी चहक रहे थे, तो कहीं भौंरे गुनगुना रहे थे। उस समय परम पवित्र और शीतल-मंद-सुगंध वायु अपने स्पर्श से लोगों को सुख-दान करती हुई बह रही थी। (३–१०–१–३)

२ कृत्तिवासी रामायण, पृ० ५८ आदि०।

३ रघुवंश, १०–७५

४ श्रीमद्भागवत-स्कन्ध १० अध्याय ४–३१

५ कृत्ति० रामायण पृ० ५९ आदि०।

पोल खुल गयी।[1] दशरथ को राम-लक्ष्मण विश्वामित्र के हाथों सौंपने पड़े। आदिवासियों में भी ऐसी कथा प्रचलित[2] है।

ताड़का-वध—ताड़का-वध सामान्यतः एक-समान है। कृत्तिवासी रामायण में उसकी भयंकरता का अच्छा चित्रण है। तुलसी ने अध्यात्म-रामायण के अनुसार उसका उद्धार कर उसे निज[3] पद दिया है। वाल्मीकि-रामायण में उसे शाप-ग्रस्त यक्षिणी बताया है, किन्तु उसके उद्धार के विषय में नहीं लिखा, कृत्तिवास ने भी नहीं लिखा।

अहल्या-उद्धार—अहल्या की कथा दोनों लेखकों की कृतियों में एक ही सी है। तुलसी ने बहुत संक्षेप में कथा का वर्णन किया है। दोनों की समानताएं निम्न प्रकार हैं—

१—दोनों ने अहल्या को शिला बनाया है।
२—दोनों ने राम की चरण-रज से उसका उद्धार होना माना है।

वाल्मीकि-रामायण की कहानी में यथार्थता एवं स्वाभाविकता अधिक है। वैसा वर्णन इन रामायणकारों की परिस्थिति में अच्छा आदर्श उपस्थित न करता, अतएव इन दोनों लेखकों ने परिवर्त्तन किया है। वाल्मीकि के अनुसार वर्णन इस प्रकार है—

१—वाल्मीकि रामायण—अहल्या के रूप पर मुग्ध होकर उसकी सहर्ष सम्मति से इन्द्र ने उसके साथ अंग-संग किया[4]।

भाषा-रामायणकारों को नारी की यह उच्छृंखलता पसंद नहीं आयी। उनके पहले भी लेखकों ने इस प्रसंग को ढँकने की चेष्टा की थी। कृत्तिवासी-रामायण के इस अंश को भी संपादक लोगों ने परिवर्तित कर दिया। रामानन्दी-संस्करण में लिखा है—भ्रम में पड़ कर अहल्या ने यह पाप किया[5]। दीनेशचन्द्र सेन के संस्करण में केवल यह लिखा है—इन्द्र की बातों से अहल्या की बुद्धि भ्रष्ट हुई।[6] किन्तु लगता है कि सुबोध-संपादित संस्करण में इस प्रसंग का वास्तविक रूप रक्षित है। इस संस्करण के अनुसार इन्द्र गौतम का शिष्य है। एक दिन दाँव लगा कर यह गौतम का वेश धारण कर आया। पतिव्रता अहल्या ने उसे पति समझ शृंगार कर रमण किया। उसके जाने के बाद गौतम ने आकर पूछा. प्रातःकाल यह शृंगार और रति चिन्ह कैसे? वह बोली स्वयं कर्म

---

१ कृत्ति० रामायण पृ० ७१ आदि०।

२ रामकथा—बुल्के, अनु० ३२४।

३ मानस—१—२०८—६

४ मुनिवेष सहस्राक्षं विज्ञाय रघुनंदन।
मतिं चकार दुर्मेधा देवराज कुतूहलात्॥ १-४८-२० वाल्मी० रामा०

५ भ्रमे पड़ि अहल्या से पापे ते मजिल—पृ० ७५, आदि०

६ इन्द्रेर कथाय हल बुद्धिर भ्रंशन—पृ० ८४, आदि०
(दीनेशचन्द्र-संपादित संस्करण)

करके मुझे दोष देते हो।[१] सुबोध वाला प्रसंग ही सत्य हो तो भी ज्ञात हो जायगा कि बंगाली-रामायणकार ने भी अहल्या को निर्दोष सिद्ध करने की चेष्टा की है। वैसे भी कुमारिल भट्ट ने इस कथा में ऐतिहासिक सत्य न देख कर इसे रूपक माना है।[२]

तुलसी प्रसंग को एकदम उड़ा गये हैं। गौतम नारी 'साप-बस' क्यों हुई, उसका दोष था भी या नहीं, दोष भी किस प्रकार का था, यह सब लिखना उन्हें रुचिकर नहीं लगा। उनकी परिस्थिति में वैसे ही लोगों में विलासिता कम नहीं थी, संत तुलसीदास उसे बढ़ावा क्यों देते।

२—वाल्मीकि-रामायण में इन्द्र छिप कर जाते समय पकड़ा गया। कृत्तिवास के रामानन्द एवं दीनेशचन्द्र संपादित संस्करणों तथा मानस में इन्द्र से गौतम की भेंट अथवा उसके अभिशप्त होने का वर्णन नहीं है। सुबोध के संस्करण में मुनि ध्यान लगा कर इन्द्र की करतूत जान कर उसे सहस्र-भग[३] होने का शाप देते हैं।

अहल्या का शाप—कृत्तिवासी-रामायण के सभी संस्करण तथा मानस में अहल्या के पत्थर बनने का शाप है। रघुवंश[४], पद्मपुराण[५] (पाताल खंड—गौड़ीय संस्करण) एवं हनुमन्नाटक[६] आदि राम-कथा साहित्य में भी उसे शिला स्वीकार किया गया है।

१ गौतमेर शिष्य इन्द्र अति प्रियतम ॥
एक दिन गौतम गेलेन तपस्याय।
गौतमेर वेशे इन्द्र प्रवेशे तथाय ॥
....
पतिव्रता नाहि लङ्घे पतिर वचन।
तखन शयन गृहे करिल गमन ॥
....
तपस्या करिया मुनि आइलेन घरे।
अहल्या आसन दिल अति समादरे ॥
गौतम वलेन प्रिये जिज्ञासि तोमारे।
शृङ्गार लक्षण कैन तोमार शरीरे ॥
अहल्या वलेन प्रभु निवेदि तोमारे।
आपनि करिया कर्म्म दोषह आमारे ॥
सुबोध-संस्करण ७७

२ प्राङ० मौर्य विहार -पृ० ६१, देवप्रसाद त्रिवेद

३ 'योनिमय होक तोर सर्व्व कलेवर' -सुबोध-संपादित कृत्तिवासी रामायण, पृ० ७७
'योनिलम्पट दुष्टात्मन्सहस्र भगवान्भव'-अध्यात्म-रामा० १-५-२६

४ प्रत्यपद्यत चिराय यत्पुनश्चारु गौतमवधूः शिलामयी।
स्वंवपुःस किल किल्बिषच्छिदां रामपादरजसामनुग्रह ॥
रघु० ११-३४

५ पद्मपुराण, पातालखंड-गौड़ीय संस्करण-अध्याय १६

६ पदकमल रजोभिर्मुक्त पाषाण देहा।—हनुहन्नाटक अंक ३-१९

वाल्मीकि-रामायण में उसे सभी जीवों से अदृश्य रह कर निराहार तप करने का शाप दिया है। राम के दर्शन से ही उसकी मुक्ति होगी।[१]

और ठीक भी है। इतने दिन के घोर प्रायश्चित से वह पवित्र भी हो गयी थी। राम की चरण-रज का महत्त्व बढ़ाने के लिए रघुवंश आदि में शिला की कल्पना की गयी है।[२]

पति से मिलन—यहाँ भाषा-रामायण लेखकों में समानता नहीं है। कृत्तिवास लिखते हैं कि अहल्या को देख कर मुनि प्रसन्न हुए।[३] स्पष्ट है कि उन्होंने अहल्या को स्वीकार कर लिया।

तुलसी को यह बात नहीं जँची। एक कुकृत्य के पश्चात् गौतम के साथ अहल्या का पुनर्मिलन नारी-पवित्रता के आदर्श को प्रस्तुत नहीं कर सकता था, जोकि उनके युग में आवश्यक था। और यदि भगवान् राम की चरण-रज देकर भी उसका पवित्र होना नहीं दिखाते तो इसका अर्थ है कि उनकी चरण-रज का कोई विशेष महत्त्व नहीं। अतएव उन्होंने दिखाया कि 'गै पति लोक अनन्द भरी।[४]' पति लोक को गयी, अर्थात् गौतम अब इस लोक में नहीं थे। दोनों का मिलन इस लोक में न होकर अन्य लोक में हुआ।

वाल्मीकि-रामायण[५] एवं अध्यात्म[६]-रामायण में इसी लोक के मिलन का वर्णन है।

अध्यात्म-रामायण के अनुसार मानस में अहल्या राम की स्तुति भी करती है।

सीता-राम विवाह

धनुष का इतिहास—यद्यपि तुलसी ने धनुष-प्राप्ति का वर्णन नहीं किया किंतु मानस के संकेतों से प्रकट होता है कि कृत्तिवास के दृष्टिकोण से उनका साम्य है। कृत्ति-

१ वायु भक्षनिराहारा तप्यन्ती भस्मशायिनी।
अदृश्या सर्वभूतानामाश्रमेऽस्मिन्निवत्स्यसि ॥ १–४८–३१
(वाल्मीकि-रामायण)

२ अध्यात्म-रामायण में वह शिला नहीं होती।
'शिलायां तिष्ठ'—शिला में निवास का शाप था।
(१–५–२७) वह प्राणियों से अदृश्य रह कर तप कर रही थी। (१–५–३३, ३४)

३ अहल्या के देखिया सानन्द महामुनि-कृत्ति० रामा०
(रामानन्दी संस्करण) पृ० ७५

४ मानस—१-२१० छंद।

५ गौतमोऽपि महातेजा अहल्यासहितः सुखी।
वाल्मीकि रामा० १–४९–२२

६ ययौ पतिम्—अध्या० रामायण १–५–६१

वासी-रामायण के अनुसार देवता शंकर के यहाँ एकत्र होकर चिंता करते हैं कि कुछ ऐसा उपाय किया जाय कि सीता का विवाह केवल राम से हो। शंकर परशुराम को एक धनुष देकर कहते हैं कि इसे जनक को देकर कहो कि जो इस धनुष को भंग करे सीता उसी को दी जाय। इस धनुष को तीनों लोकों में नारायण को छोड़ कर कोई नहीं उठा सकता।[१]

तुलसी ने धनुष-प्राप्ति का इतिहास नहीं लिखा, इसकी कोई विशेष आवश्यकता भी नहीं थी। उन्होंने स्थान-स्थान पर इसे शंकर का धनुष[२] कहा है। स्पष्ट है कि यह शंकर का धनुष था। परशुराम की उक्तियों से भी स्पष्ट है कि जनक को उन्होंने ही यह धनुष दिया होगा।

वाल्मीकि-रामायण में कहा गया है कि देवताओं ने शंकर के धनुष को निमि की छठी-पीढ़ी में उत्पन्न देवरात को दिया था। जनक ने इसी के द्वारा पराक्रम की परीक्षा कर सीता का स्वयंवर रचा।[३]

कृत्तिवास पद्मपुराण से प्रभावित जान पड़ते हैं। इसी के प्रसंग को उन्होंने परिवर्तित कर उपस्थित किया है। पद्मपुराण के पातालखंड में जनक ही शिव से प्रार्थना कर ऐसा उपाय जानना चाहते हैं जिससे केवल राम ही सीता के पति हो सकें। शंकर उन्हें एक धनुष दे देते हैं, जिसे केवल राम ही उठा[४] सकेंगे।

सीता-स्वयंवर—कृत्तिवास के वर्णन से ऐसा प्रकट नहीं होता कि सीता का स्वयंवर राम की उपस्थिति में हुआ। सभी देश के राजा एक साथ नहीं बुलाये गये। जनक का प्रण सुन-सुन कर वे आते रहते थे और असफल होकर बच्चों की टिटकारी सुन कर चले जाते थे। इसी प्रकार लक्ष्मण सहित राम आ पहुँचे। राम ने धनु-भंग कर यथा-नियम सीता का पाणि-ग्रहण किया।

मानस में स्वयंवर के समय ही राम-लक्ष्मण का आगमन होता है। सभी पर राम का प्रभाव छा जाता है और जिस समय सभी राजा परास्त हो जाते हैं तथा जनक अत्यधिक क्षुब्ध होकर कह उठते हैं– 'बीर बिहीन मही मैं जानी'[५] उसी समय राम का उठकर धनुष-भंग करना उनके चरित्र का प्रकर्ष करता है। इस प्रकार के नाट्य-चमत्कार प्रस्तुत करने में उन्होंने संस्कृत के नाटकों से सहायता लेकर भी उनसे अधिक सफलता पायी है।

कृत्तिवास और तुलसी के वर्णन में अंतर का कारण है– भिन्न ग्रन्थों का अनुसरण। तुलसी नाटकों के सहारे चले हैं और कृत्तिवास वाल्मीकि-रामायण के अनुसार वर्णन

१—कृत्तिवासी रामायण, आदि पृ० ६४

२—राम चहहिं संकर धनु तोरा–मानस–१–२५६—२

× × ×

जानि कठिन सिव चाप बिसूरत—मानस—१–२३४—१

३—वाल्मीकिरामायण १–६६–८, १२, १५.

४—पद्मपुराण, पाताल-खंड-अध्याय-११२-८७, ८८

५—मानस–१-२५१-३

करते हैं। वाल्मीकि-रामायण के अनुसार राम के मिथिला पहुँचने के पूर्व ही स्वयंवर हो चुका है। जिसमें सभी पराजित राजाओं ने मिलकर मिथिला घेर कर सीता का हरण करना चाहा था।[१] अयोध्याकांड में सीता की उक्ति से स्पष्ट हो जाता है—

सुदीर्घंतु कालस्य राघवोऽयं महाद्युतिः।
विश्वामित्रेण सहितो यज्ञं द्रष्टुं समागतः ॥२. ११८[२]. ४४

रावण की उपस्थिति—दोनों रामायणों में रावण सीता को व्याहने की इच्छा लेकर आया है। यहाँ दोनों पर 'प्रसन्न-राघव' का प्रभाव है। प्रसन्न-राघव में बाण और रावण दोनों आते हैं तथा दोनों असफल होकर लौटते हैं। कृत्तिवासी-रामायण में धनुभंग के पूर्व रावण आता है और असफल तथा लज्जित होकर चुपके वहाँ से खिसक जाता है। मिथिला के बच्चे उसके पीछे टिटकारी देते हुए[३] चले हैं। रामादि इस घटना के बहुत दिन पश्चात् मिथिला पहुँचते हैं। मानस में रावण और बाण दोनों आते हैं किन्तु धनुष को केवल देख कर चुपके चलते बनते हैं।[४] प्रसन्न-राघव एवं कृत्तिवासी-रामायण में एक बात की समानता और है। इन दोनों ग्रन्थों में रावण बिना धनुष चढ़ाये ही सीता माँगता है। न देने पर वह हरण की भी कामना रखता है।[५] रावण के पराभव का विस्तार कृत्तिवास ने इसलिए दर्शित किया कि नायक के संमुख प्रतिनायक प्रारम्भ से ही हीन-वीर्य सिद्ध हो जाय। यद्यपि यह प्रसंग वाल्मीकि-रामायण में नहीं है, किन्तु रावण का उल्लेख महावीर-चरित एवं अनर्घ-राघव में किसी न किसी रूप में आया है। तुलसी ने सारी स्वयंवर-सभा का आयोजन ही रामचरित्र के उत्थान के लिए किया है। वे प्रारम्भ से ही धीरे-धीरे सभी पर अपना सिक्का बैठाते चले जाते हैं। राम के इस प्रकर्ष-क्रम में रावण का विस्तृत-वर्णन कथा के मध्य कुछ अवधान ही उपस्थित करता, अतएव उसका साधारण रूप से उल्लेख कर तुलसी आगे बढ़ गये। साथ ही प्रति-नायक द्वारा धनुष उठाने का प्रयास भी न दिखा कर उसके चरित्र को पहले से ही न गिरा कर कथा के कुतूहल की रक्षा की गयी है।

१—वाल्मीकि-रामायण १—६६—२०—२४

२—(स्वयंवर) के दीर्घकाल के पश्चात् महाद्युति-राघव विश्वामित्र के साथ यज्ञ देखने आये।

३—पलाइया चलित लङ्कार अधिकारी।
सकल बालक देय तारे टिटकारी॥
(कृत्तिवासी पृ० ६७, आदि०)

४—रावनु बानु महाभट मारे।
देखि सरासन गवँहिं सिधारे॥
(मानस १—२४६—२)

५—आगे सीता आनिया आमारे कर दान।
यात्रा काले भाङ्गिया जाइव धनुखान॥
(कृत्ति० पृ० ६६ आदि)
देखिए प्रसन्न-राघव—अंक १.

पूर्वानुराग—सीता का पूर्वानुराग दोनों ने दर्शित किया है। कृत्तिवास पर हनुमन्नाटक और तुलसी पर प्रसन्न-राघव नाटक का प्रभाव है। वाल्मीकि में पूर्वानुराग नहीं दिखाया गया है।

कृत्तिवासी-रामायण में प्रथम-दर्शन स्वयंवर-सभा में ही होता है, जबकि राम प्रवेश करते हैं और सीता अट्टालिका पर खड़ी होकर सखियों से राम-लक्ष्मण का परिचय ज्ञात कर राम पर मुग्ध हो जाती हैं। फिर पिता की प्रतिज्ञा के स्मरण से दुःखी[1] होकर अनेक देवी देवताओं की स्तुति करती हैं। ये देवता हैं—गजानन, हुताशन, महेन्द्र, वरुण, दिग्पाल और महादेव। सबसे अंत में कात्यायिनी-देवी की भी स्तुति करती है।[2]

प्रसन्न-राघव-नाटक में राम-सीता का पारस्परिक दर्शन पुष्प वाटिका में स्थित चंडिकायतन में होता है। मानस में भी ऐसा ही है। कृत्तिवासी-रामायण में सीता राम को देख कर एकदम मुग्ध हो जाती हैं। तुलसी ने ऐसा नहीं दिखाया। राम के चरित्र का प्रकर्ष पहले से ही कर दिया है। सीता आदि सभी राम को बिना देखे ही उनके पराक्रम की चर्चा सुन चुके हैं। पुष्प-वाटिका में उन्हें साक्षात् कामदेव का अवतार देख कर सीता उन पर मुग्ध हुईं। इस प्रेम की पीठिका पहले ही तैयार हो चुकी थी। तुलसी पूर्वानुराग दिखा तो गये किन्तु मर्यादा का ध्यान उन्हें भूलता नहीं, इसलिए यह भी साथ में कह देते हैं—'प्रीति पुरातन लखइ न कोई'।[3] प्रसन्न-राघव के अनुसार तुलसी ने भी राम-सीता के उभयपक्षीय-प्रेम का चित्रण किया है, कृत्तिवास ने केवल सीता का। राम-सीता के पूर्वानुराग का विभावानुभाव सहित वर्णन तुलसी ने जिस पवित्रता के साथ किया है वैसा संसार का कोई भी कवि संभवतः नहीं कर सका।

देवी-स्तुति—दोनों रामायणों में अभीष्ट-सिद्धि के लिए सीता देवी से स्तुति करती है—

कात्यायनी भगवती, कर जोड़े करि स्तुति,
पति देह राम गुणनिधि। पृ० ७६, आदि०

मानस में भी विनती करती हैं किन्तु राम अथवा विवाह का नाम लेकर केवल कहती हैं—'मोर मनोरथ जानहुँ नीकें'। मानस १–२३५–३

विनय-स्वीकार—कृत्तिवासी-रामायण में आकाशवाणी द्वारा[4] सीता को आश्वासन दिया गया कि राम तुम्हारे स्वामी होंगे। मानस में स्वयं देवी ने कहा—सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजहिं मन कामना तुम्हारी।।[5]

१—तुलनीय हनुमन्नाटक—अंक १
कृत्तिवासी-रामायण—पृष्ठ ७८–७६, आदि०

२ कृत्तिवासी-रामायण-पृ० ७६, आदि०

३ मानस–१–२२८–८

४ आकाशे हइल दैव वाणी।।
शुन गो जनक सुता, ना हइओ दुःखयुता,
स्वामी तव राम गुणमणि।। कृत्ति० पृ० ७६, आदि०

५ मानस, १–२३५–७

धनुभंग—कृत्तिवासी-रामायण में राम विश्वामित्र के कहने पर धनुगृह में जाकर उसे तोड़ देते हैं। मानस में यों ही धनुष नहीं तोड़ दिया जाता। पहले सभी राजा अपना-अपना बल आजमा लेते हैं। सभी की सफलता पर विदेह तक विचलित हो जाते हैं,[1] जिसके कारण लक्ष्मण को दर्पोक्ति करनी पड़ती है;[2] अंत में राम उठ कर धनुभंग करते हैं।

लक्ष्मण दिग्पाल, कमठ, अहि कोल और धरणी को सावधान भी करते हैं कि राम धनु तोड़ना चाहते हैं।[3]

विवाह—कृत्तिवासी-रामायण में राम विवाह के लिए आपत्ति करते हैं, वे दो शर्तें रखते हैं—१—पिता की उपस्थिति और २—चारों भाइयों का एक साथ विवाह।[4] पिता दशरथ को लाने के लिए विश्वामित्र स्वयं भेजे जाते हैं। मानस में दशरथ को बुलाने का प्रस्ताव विश्वामित्र ने किया किन्तु लेने के लिए दूत भेजे गये।[5] वाल्मीकि-रामायण में भी दूत ही जाते हैं।[6] बंगाल की घटक वाली प्रथा को पूरा करने के लिए ही विश्वामित्र को घटक[7] बन कर जाना पड़ा है। वे सोचते भी जाते हैं—मैं अयोध्या घटक होकर जा रहा हूँ। श्रीराम-लक्ष्मण के विवाह कराने का मेरा यश तीनों लोकों में फैल जायगा।[8]

विवाह-पद्धति का विस्तृत वर्णन है। दोनों रामायणों की पद्धतियों में लौकिक एवं वैदिक रीतियों का सम्मिश्रण है।

परशुराम-भेंट—दोनों रामायणों में स्थल का भेद है। कृत्तिवासी रामायण में परशुराम का आगमन बरात विदा के पश्चात् मार्ग में होता है। ऐसा ही वाल्मीकि-रामायण में है। मानस में उनका आगमन धनुभंग के पश्चात् विवाह के पूर्व होता है। तुलसी का वर्णन प्रसन्न-राघव नाटक के अनुसार नाटकीय-चमत्कार से पूर्ण है। राम ने धनुष तोड़ा, दुष्ट-राजा सामूहिक-युद्ध की तैयारी में तत्पर हुए, लक्ष्मण क्रुद्ध हैं, सीता वहाँ से

---

१ वही १-२५१-१-६

२ वही १-२५२-२५३

३ वही (१-२५६-१) तुलनीय हनुमन्नाटक, अंक १—२१।

४ कृत्ति० रामायण, पृ० ८०, आदि०

५ दूत अवधपुर पठवहु जाई।
आनहिं नृप दसरथहि बोलाई॥ १-२८६-१

६ वाल्मीकि-रामायण १-६८-१

७ घटक—वर-कन्या के जोड़े मिलाने वाले ब्राह्मण-पुरोहित।
अब इनकी एक जाति ही बन गयी है।

८ ए कथा शुनिया मुनि भाविलेन मने।
घटक हइया जाइ अयोध्या भुवने॥
एइ यश आमार घूषिवे त्रिभुवने।
विवाह दिलाम आमि श्रीराम लक्ष्मणे॥ (कृत्ति० पृ० ८०—८१ आदि०)

तुरन्त रनिवास में भेज दी गयीं, इसी समय रौद्र-रस की साकार-मूर्ति भृगुपति ने अकस्मात् प्रवेश किया और युद्ध के लिए सन्नद्ध राजा लोग लवा-पक्षी के समान डर कर छिप गये।[१]

मानस में परशुराम से संवाद का प्रसंग बहुत लम्बा है। मानस के लक्ष्मण की व्यंगोक्तियाँ काव्य की दृष्टि से सुन्दर हैं, किन्तु वे लक्ष्मण के चांचल्य को ही अधिक प्रकट करती हैं, वैसे अस्वाभाविक नहीं हैं, इस प्रकार की उक्तियाँ मानस में अन्य किसी स्थल पर नहीं हैं, यहाँ ही हैं। इस समय लक्ष्मण बालक थे अतएव बाल-चपलता रहना स्वाभाविक है। कृत्तिवासी रामायण के लक्ष्मण कम बोलते हैं, उनमें चपलता नहीं सहज-क्रोध है। मानस में राम अत्यधिक विनय-सम्पन्न होकर बोलते हैं, किन्तु कृत्तिवास के राम परशुराम की उपेक्षा सी करते हुए आत्मविश्वास के साथ परीक्षा देने को प्रस्तुत होते हैं।

दोनों ग्रन्थों की उक्तियों में कुछ साम्य है—

१—बालकेर अपराध क्षम महावीर। कृत्तिवासी रामायण, पृ० ८९
नाथ करिय बालक पर छोहू। मानस १—२७६—१

२—तुच्छ ज्ञान कर देखि तपस्वी ब्राह्मण। कृत्तिवासी रामायण, पृ० ८८
निपटहिं द्विज कर जानहि मोही।
मैं जस विप्र सुनावउं तोही।। मानस १—२८२—१

३—रूषिया कहेन शक्त सुमित्रार कुमार।
कथाय कि फल कर वीरेर आचार।। कृत्तिवासी रामायण, पृ० ८९
सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु। मानस १–२७४

अयोध्याकांड

राज्याभिषेक—(१) कृत्तिवासी-रामायण एवं मानस दोनों ग्रंथों के दशरथ राम के अभिषेक की आकांक्षा रखते हैं। कृत्तिवासी-रामायण में वे कपट-अभिनय करते हैं। विवाहोत्सव की धूम अभी चल रही थी। यौतुक लेकर भिन्न-भिन्न देशों से आये हुए राजाओं ने मिलकर राजा दशरथ से प्रार्थना की कि वे राम को अभिषिक्त कर दें। राजा कपट-क्रोध दिखाकर पूछते हैं—'क्या मैं अयोग्य हूँ।' फिर प्रसन्न होकर भीत राजाओं को आश्वासन देते हैं कि परिहास किया था, भय करने की आवश्यकता नहीं है।[२] यह प्रसंग वाल्मीकि के वर्णन से परिवर्तित कर प्रस्तुत किया गया है।[३]

---

१ मानस १—२६५—२६७—३।

२ कृत्तिवासी रामायण—अयोध्याकांड, पृ० ९१।

३ वाल्मीकि-रामायण में उन्होंने राजाओं की सम्मति जानने का प्रयास किया है, किन्तु किसी प्रकार का क्रोध प्रकट नहीं किया है। —२— अध्याय २।

मानस के गंभीर दशरथ इस प्रकार का अभिनय नहीं दिखाते। कान के समीप श्वेत केशों से वृद्धावस्था का ज्ञान कर[1] तथा राम की योग्यता का विचार कर वे वशिष्ठ को अपनी आकांक्षा से परिचित कराते हैं,[2] फिर मंत्रियों की सम्मति से अभिषेक की तैयारियाँ प्रारम्भ हो जाती हैं। तुलसी ने यहाँ रघुवंश[3] से भी सहायता ली है।

(२) राम एवं कौशल्या आदि को इस शुभ-संवाद की सूचना भिन्न ढंग से दी जाती हैं। कृत्तिवासी-रामायण में राजा दशरथ राम को राज-सभा में ही दो बार बुलाते हैं। पहली बार बुला कर वे राजनीति की शिक्षा देते हैं एवं द्वितीय बार वे रात के देखे कुस्वप्नों का उल्लेख कर कहते हैं कि भरत नहीं हैं, उनकी अनुपस्थिति में कल पुष्य-नक्षत्र में अभिषेक हो जाना चाहिए। वाल्मीकि-रामायण[4] का वर्णन इसी प्रकार का है।

मानस के अनुसार वशिष्ठ स्वयं जाकर राम को सूचित करते हैं। अध्यात्म-रामायण[5] का अनुसरण हुआ है।

कृत्तिवासी रामायण में राम स्वयं कौशल्या को अभिषेक का शुभ-संवाद देते हैं। मानस में कौशल्या को यह समाचार राम के मित्रों से मिला है, जिससे प्रसन्न होकर वे सुमित्रा-सहित मंगल-विधान में लग जाती हैं।

मंथरा-कैकेयी-प्रसंग—

वाल्मीकि-रामायण में कैकेयी को मंथरा ने उभाड़ा है। उसका कारण यही है कि वह कैकेयी की ज्ञाति-दासी है, तथा स्वामिनी की उन्नति तथा हित चाहती है। यही यथार्थ रूप है। आगे कैकेयी को दोष-मुक्त करने के लिए कुछ कारणों की सृष्टि की गयी है। हमारे दोनों ग्रंथों में भी ऐसा प्रयास हुआ है।

कृत्तिवासी रामायण—इस ग्रंथ में दोष-मोचन के दो कारण दिये गये हैं—

(१) कैकेयी को भड़काने वाली मंथरा दुन्दुभी नाम की अप्सरा थी। रावण के संहार के लिए विधाता ने इसका सृजन किया था।[6] अन्य कई ग्रंथों[7] में भी इस प्रसंग का उल्लेख है।

---

१ श्रवन समीप भए सित केसा।
मनहुँ जरठ पनु अस उपदेसा॥ २—१—७

२ मानस २—२—१ एवं २—३—२

३ तं कर्णमूलमागत्य रामे श्रीर्न्यस्यतामिति।
कैकेयी शङ्कयेवाह पलितच्छद्मना जरा॥ रघुवंश-१२-२

४ वाल्मीकि-रामायण अयो० सर्ग ३, एवं ४

५ अध्यात्म-रामायण, अयोध्याकांड सर्ग २-१६

६ पूर्व्व जन्मे छिल नामे दुन्दुभि अप्सरा॥
मरिबे रावण जाते विधाता सेइ जाने।
विधाता सृजिल तारे एइ से कारणे॥ कृ० रा० अयो०, पृ० ९५

७ आनंद रामायण—सार कांड, सर्ग २, श्लोक २, ३।
कृष्ण जन्म में यही कुब्जा हुई।
पाताल खंड, पद्मपुराण (गौड़ीय संस्करण) अध्याय १५
दुन्दुभी प्रजापति की आज्ञा से धरती पर आकर कैकेयी की मंथरा दासी हो गयी।
रामोपाख्यान—(वन पर्व, अ० २७६) में आनन्द-रामायण जैसा वर्णन है।

(२) कैकेयी के दोष-मोचन का दूसरा कारण एक ब्राह्मण का शाप है। बाल्यकाल में एक ब्राह्मण पर व्यंग करने के कारण उसने शाप दिया कि सभी लोकों में तेरा अपयश होगा। रामायण-मंजरी[1] में भी ऐसा ही वर्णन है।

मानस में सरस्वती मंथरा की बुद्धि फेर देती हैं। वे परायी-विभूति न देख सकने वाले देवताओं के अनुरोध को अनिच्छा होते हुए संपादित करती हैं।[2] तुलसी का यह वर्णन अध्यात्म-रामायण[3] के अनुसार है।

दोनों रामायणकार राम के गमन का उद्देश्य राक्षस-वध सिद्ध करना चाहते हैं। साथ ही भरत जैसे साधु-पुरुष की माँ को भी अधिक कलंकित करना उनका उद्देश्य नहीं है, अतएव एक ही दृष्टिकोण से दोनों लेखकों ने उपर्युक्त प्रसंगों की योजना की है।

कैकेयी के वरदान—

दोनों लेखकों ने दो वरदानों की बात कही है, किन्तु तुलसी ने यह नहीं बताया कि दो वरदानों की प्राप्ति कैसे हुई। कृत्तिवास ने वरदान-प्राप्ति का वर्णन पुत्रेष्टि-यज्ञ (बालकंड) के पहले किया है।

प्रथम वर—शंबर के साथ युद्ध में घायल होकर राजा दशरथ सर्वप्रथम कैकेयी के पास पहुँचे, उसने अस्त्र-संजीवनी-विद्या के बल से राजा को स्वस्थ कर दिया। इस प्रकार प्रथम वर की प्राप्ति हुई।

द्वितीयवर—देवता-लोगों ने षडयंत्र कर दशरथ के नख में व्रण कर दिया। वैद्य ने आकर कहा, या तो घोंघे के शोरवे के पान से यह व्रण ठीक होगा, अथवा इसे कोई चूस कर ठीक करे। पति की व्यथा न देखी गयी और कैकेयी ने उसे चूस कर ठीक कर दिया। इस बार राजा ने द्वितीयवर देना चाहा।

दोनों ही बार मंथरा ने कैकेयी को सम्मति देकर फिर किसी दिन के लिए इन वरों को थाती स्वरूप रखवा लिया।[4]

कैकेयी कोप-भवन में—

मंथरा द्वारा राम के राज्याभिषेक का समाचार पाकर दोनों रामायणों की कैकेयी की प्रतिक्रिया एवं उक्तियों में निम्न समानताएँ हैं—

१—समाचार से प्रसन्नता तथा पुरस्कारदान—

राम राजा हइल आमार बहु मान।
शुभ वार्ता कहिलि, कि देव तोरे दान।। (कृत्ति०, अयो०, पृ० ९६)

---

१ कैकेय्या ब्राह्मणः पूर्वं मूर्खो बाल्ये विडम्बितः।
तच्छापाद् भवत्तस्या मतिः कीर्त्ति पराङ्मुखी।।श्लोक ७०३
—बाल०, रामायण-मंजरी।

२ मानस २-११-५, ६ एवं २-१२।

३ अध्यात्म-रामायण में सरस्वती मंथरा एवं कैकेयी दोनों में प्रविष्ट हुई हैं। मन्थरां प्रविशस्वादौ कैकेयीं च ततः परम्—२-२-४५।

४ कृत्तिवासी रामायण, पृ० ४५, ४६ आदि-कांड।

राम तिलकु जौं साँचेहु काली ।
देउँ भागु मन भावत काली ।। मानस, २–१४–४

२—राज्य का अधिकारी ज्येष्ठ पुत्र होता है—

पितृ राज्य ज्येष्ठ पुत्र पाइते उचित । कृत्ति०, अयो०, पृ० ९६
जेठ स्वामि सेवक लघु भाई ।
यह दिनकर कुल रीति सुहाई ।। मानस—२–१४–३

३—उसके प्रति राम का समादर-भाव उसी के शब्दों में—

आमार गौरव राम राखे अतिशय । कृत्ति०, अयो०, पृ० ९६
कौसल्या सम सब महतारी ।
रामहि सहज सुभायँ पियारी ।।
....
मो पर करहिं सनेहु बिसेषी । मानस २–१४–५, ६

आगे भी दोनों के संवाद एवं उसके परिणाम में समानता है। कैकेयी से राजा की भेंट एवं वर-याचना भी दोनों रामायणों में वाल्मीकि-रामायण के समान है।

राजा दशरथ काम के वशीभूत होकर कैकेयी के पास जाते हैं। कृत्तिवास[1] एवं तुलसीदास[2] दोनों ने ही उन्हें काम-विवश दिखाया है। वाल्मीकि रामायण में तो कहा ही है—मन्मथ-शरैर्विद्धं कामवेग-वशानुगम्। २–११–१। कैकेयी को कोपवती देख कर दोनों ग्रंथों के दशरथ एक समान व्यवहार करते हैं। वे कैकेयी को प्रसन्न करने के लिए डींगें मारते हैं, शपथ करते हैं और जब कैकेयी निष्ठुरता-पूर्वक अपने दो वर माँग लेती है तो राम-प्रेम के कारण उसके चरण पकड़ गिड़गिड़ाते हैं—

कृत्ति० रामायण—कैकेयीर पाये राजा लोटे भूमि तले । अयो०, पृ० १००
मानस— गह पद बिनय कीन्ह बैठारी । २–३३–६

राम का बुलाया जाना—

सुमंत्र के आने पर कृत्तिवासी-रामायण में स्वयं दशरथ राम को बुलाने के लिए कहते हैं, किन्तु मानस में दशरथ इतने विकल हैं कि बोलते नहीं। कैकेयी जैसी कपट भरी बातें करती हैं उसमें मानस, वाल्मीकि-रामायण[3] एवं अध्यात्म-रामायण[4] में समानता है।

१ कैकेयी युवती नारी, दशरथ बुड़ा ।
बुड़ार युवती नारी प्राण हैते बाड़ा ।। कृत्ति० रामा०, अयो०, पृ० ९९ ।

२ सूल कुलिस असि अंगवनि हारे । ते रतिनाथ सुमन सर मारे ।। मानस २–२४–४ ।

३ वाल्मीकि-रामायण २–१४–६४ ।

४ अध्यात्म-रामायण—
तमाह कैकेयी राजा रात्रौ निद्रां न लब्धवान् ।। २–३–४४ ।
राम रामेति राममेवानुचिन्तयन् ।
प्रजागरेण वै राजा अस्वस्थ इव लक्ष्यते ।
राममानीय शीघ्रं त्वं राजा द्रष्टुमिहेच्छति ।। २–३–४५

मानस में कहती है—राजा को रात भर नींद नहीं आयी, कारण ईश्वर जाने। राम-राम रट भोर किया है। शीघ्र राम को बुला लाओ तभी समाचार पूछना।[1] इन रामायणों में दशरथ का न बोलना ही उनकी वेदना की पराकाष्ठा प्रकट करता है।

आगे वन-गमन तक की घटनाओं में समानता है। असमानता है तो चरित्रों के चित्रण में।

सीता के भाग्य में वनवास—

राम के साथ जाने का आग्रह करती हुई कृत्तिवास की सीता कह रही हैं कि बाल्य-काल में मुझे देख कर मुनि कहा करते थे कि जनकराज, तुम्हारी पुत्री पति के साथ वनवास करेगी। ब्राह्मण का कथन कभी मिथ्या नहीं होता। बनवास मेरे ललाट पर लिखा है।[2] ऐसा ही वर्णन अध्यात्म-रामायण[3] एवं आनन्द-रामायण[4] में भी है। मानस में यह प्रसंग नहीं है।

राजा शिवि—

कृत्तिवासी-रामायण में राजा शिवि के दान का वर्णन है। वाल्मीकि में दो दाताओं की दान-शीलता का वर्णन है—

१—राजा शैव्य ने श्येन को अपना शरीर दे दिया।[5]

२—तेजस्वी अलर्क ने अन्धे ब्राह्मण को अपने नेत्र दे दिये।[6]

कृत्तिवास ने दोनों कथाओं का गड़बड़-घोटाला करते हुए वर्णन किया है कि शिवि नामक राजा ने एक अंधे ब्राह्मण को अपने दोनों नेत्र दान कर दिये।[7] आधिकारिक कथा-वस्तु से इस कथा का कोई सम्बन्ध नहीं, कैकेयी दशरथ को पानी पर चढ़ाने के लिए इस कथा का उल्लेख करती है। मानस में इसका वर्णन नहीं है।

त्रिजट-प्रसंग—

त्रिजट-प्रसंग[8] भी मानस में न होकर कृत्तिवासी-रामायण में है। इसका वर्णन वाल्मीकि[9]-रामायण के अनुसार है। राम वन जाते समय त्रिजट नामक ब्राह्मण से कहते हैं, तुम डंडा फेंक कर जितनी गायों को घेर लोगे वे सब तुम्हारी हो

१ परी न राजहि नीद निसि हेतु जान जगदीसु।
राम राम रटि भोरु किय कहइ न मरमु महीसु॥ मानस २–३८
आनहु रामहि वेगि बोलाई। समाचार तब पूछेहु आई। मानस २–३८–१

२ कृत्तिवासी-रामायण, अयो०, पृ० १०६

३ अध्यात्म-रामायण, २–४–७५, ७६

४ आनंद-रामायण, सार-कांड, सर्ग ६—७—८

५ वाल्मीकि रामायण २–१४–४

६ वाल्मीकि-रामायण २–१४–५

७ ऐ अन्ध शिविराजे सत्य कराइल।
निज दुइ चक्षु शिवि तांरे दान दिल॥ (कृत्ति०, अयो०, पृ० १००),

८ कृत्तिवासी-रामायण, अयो०, पृ० १०७-१०८

९ वाल्मीकि-रामायण, २-३२-२९ से ४५ तक।

जायँगी। उस दुर्वल ब्राह्मण ने कमर में वस्त्र बाँध कर इतने जोर से डंडा फेंका कि वह हजारों गायों को पार करता हुआ निकल गया।

राम-गुह-मैत्री—

मानस में राम-गुह-मैत्री राम के वनवास के समय ही होती है। कृत्तिवासी-रामायण में गुह के सम्बन्ध में आदि-कांड के अंतर्गत दो प्रसंगों का वर्णन है। अन्ध-मुनि की हत्या से बचने के लिए वशिष्ठ-पुत्र वामदेव ने राजा दशरथ से कहा कि तीन बार राम नाम लेने से हत्या का पाप चला जाता है। दशरथ ने वैसा ही किया। जब वशिष्ठ कहीं से लौट कर आये तो पुत्र वामदेव से बहुत अप्रसन्न हुए, और बोले, एक बार राम का नाम लेने से कोटि ब्रह्म-हत्याओं के पाप से मुक्ति मिल जाती है, तूने तीन बार राम-नाम क्यों कहलाया, जा तू चंडाल हो जा।

एक राम नामे कोटि ब्रह्म हत्या हरे।
तिन बार राम नाम बलालि राजा रे॥
मोर पुत्र हैया तोर अज्ञान विशाल।
दूर ह रे वामदेव हवि रे चंडाल॥ कृत्ति० रामा०, आदि०- पृ० ४३.

सूय-ग्रहण के अवसर पर राजा दशरथ गंगा स्नान के लिए चले तो मार्ग में गुह ने दशरथ की सेना को घेर कर राम का दर्शन करना चाहा, क्योंकि वशिष्ठ ने उसके उद्धार का उपाय राम-दर्शन बताया था। शाप के समय राम का जन्म नहीं हुआ था। दशरथ ने गुह से युद्ध कर उसे नाग-पाश से बाँध लिया। गुह ने राम के दर्शन की एक युक्ति निकाली। बँधे होने पर भी वह पैर से धनुष पर बाण चढ़ा कर शर-संधान करने लगा। कुतूहलवश शिशु-राम उसे देखने के लिए बाहर निकल आये, बस वह दंडवत होकर विनय करने लगा। राम ने समस्त-वृत्तांत से परिचित होकर लक्ष्मण द्वारा अग्नि-प्रज्ज्वलित कर उसके साथ मैत्री कर ली।[1]

कल्पना का कारण—

(१) राम-नाम के महत्त्व का विस्तार।
(२) कृत्तिवास का जात्यभिमान।

वाल्मीकि-रामायण में राम, वशिष्ठ आदि से गुह की भेंट होती है, उसे आलिंगन भी दिया जाता है। कृत्तिवास के युग में अस्पृश्यता की भावना बहुत ही उग्र थी। अतएव चंडाल को अभिशप्त-ब्राह्मण बना दिया।

गुह के यहाँ विश्राम—कृत्तिवासी-रामायण में राम गुह के यहाँ ठहर कर प्रातःकाल गुह द्वारा लायी गयी नौका से गंगा पार कर गये। मानस में राम गुह के यहाँ नहीं ठहरते।

ग्राम बासु नहिं उचित सुनि गुहहि भयउ दुखु भारु। २-८८
वाल्मीकि-रामायण में भी वे अपने को कुशचीराजिनंधरं फल-मूलाशिनं। (२-५०-४०) कहते हैं। अध्यात्म-रामायण (२-६-६८-६६) में भी ऐसा ही कहते हैं।

१ कृत्तिवासी-रामायण, अयो०, पृ० ६७-६८

लक्ष्मण-गुह-संवाद—मानस में लक्ष्मण और गुह जाग कर राम-सीता की रखवाली करते समय वार्त्तालाप करते हैं। वाल्मीकि-रामायण में वार्त्ता के विषय केवल राम हैं। अध्यात्म-रामायण[1] में लक्ष्मण गुह को १२ श्लोकों में कर्मफल, सुख-दुख, माया आदि के विषय में दार्शनिक उपदेश देते हैं। मानस[2] में भी लगभग २० अर्धालियों में अध्यात्म-रामायण का अनुवाद सा कर दिया है।

वाल्मीकि-रामायण का अनुसरण करने वाले कृत्तिवास ने गुह-लक्ष्मण वार्त्तालाप को अनावश्यक समझ उपेक्षित किया है।

केवट-प्रसंग—केवट-प्रसंग कृत्तिवासी-रामायण में अहल्या-उद्धार के तुरंत पश्चात् एवं मानस में चित्रकूट-यात्रा के समय रखा है। कृत्तिवास का स्थल अधिक स्वाभाविक है, क्योंकि अहल्या का तरना सुन कर ही केवट डर गया था। अध्यात्म-रामायण[3] में इसी अवसर पर केवट का वर्णन है।

कृत्तिवास के अनुसार कैवर्त्त ने सुना कि पाषाण मुक्त हो गया है; वह नौका लेकर जंगल में भाग गया। तपोधन विश्वामित्र कैवर्त्त को बुला कर कहते हैं कि न आने पर मैं तुम्हें भस्म कर दूँगा। कैवर्त्त कातर होकर विनय करता है कि मेरी नौका जीर्ण-शीर्ण शत-छिद्र-मय है। तीनों लोगों को कंधे पर बैठा कर पार कर दूँगा। पद-धूलि से यदि नौका मुक्त हो जाय तो मैं अपने बाल-बच्चों का पोषण किसके द्वारा करूँगा। मुझे मेरी गृहिणी गाली देगी कि मुनि के कहने पर नौका खो दी[4]।

अध्यात्म-रामायण में कैवर्त्त के भागने और विश्वामित्र के धमकाने का वर्णन नहीं है और मानस के इस प्रसंग में वे स्वयं अनुपस्थित हैं। शेष-वर्णन तीनों रामायणों का एक सा है। कृत्तिवासी-रामायण के वर्णन से कवितावली[5] का वर्णन अधिक साम्य रखता है। दोनों भाषा-रामायणकारों के केवट में एक अंतर यह भी है कि कृत्तिवास का कैवर्त्त सच ही डर गया है। उसे भय है कि कहीं सच ही नौका स्त्री न बन जाय। मानस का 'प्रेम लपेटे अटपटे'[6] वचन वाला केवट बड़ा चतुर है, वह भगवान् के चरण पखार कर चरणामृत लेने के लिए यह अभिनय सा कर रहा है।

---

१ अध्यात्म-रामायण (२-६-४-१५)

२ मानस २-६१-३ से २-६३-१ तक।

३ अध्यात्म-रामायण (१-६-२-५)

४ पाषाण हइल मुक्त कैवर्त्त ता शुने।
नौकाखानि लइया से पलाइल वने॥
नौका खानि जीर्ण मम शत छिद्र मय।
कि दिया पुषिब आमि मम पोष्यगुलि।
करिवेक गृहिणी आमारे गालागालि॥ आदि कांड, पृ० ७५

५ एहि घाट तें थोरिक दूर अहै कटि लौं जल थाह दिखाइहौं जू।
परसे पग धूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू।
तुलसी अवलंब न और कछू, लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू।
बरु मारिए मोहिं, बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू॥ (अयो० ६-कवितावली)

६ मानस २-१००

तापस-भेंट—

मानस में राम से एक अल्पवयस्क तेजस्वी तापस की भेंट होती है ।[1] कुछ लोगों के मत में ये स्वयं तुलसीदास हैं ।

ग्राम-वधू-प्रसंग—

मानस में तीनों सुकुमार-पथिकों के प्रति ग्राम-वधुओं की ममता पठनीय है। कृत्तिवास ने इतनी मार्मिकता के साथ वर्णन नहीं किया। उनकी रामायण में ग्राम-वधुएं मुनि-पत्नियाँ हो जाती हैं। इन स्त्रियों ने सीता से राम का परिचय पूछा है, सीता लजा जाती है और संकेत द्वारा पति का परिचय देती हैं। सर्व-प्रथम यह प्रसंग हनुमन्नाटक में आया है, वहीं से भाषा-रामायणकार इन दोनों लेखकों ने प्रेरणा ली है।

(२) प्रश्न—पथि पथिक वधूभिः सादरं पृच्छमाना
कुवलय दल नीलः कोऽयमार्ये तवेतिः । हनु० ३–१५

× × × ×

दूर्व्वादिल श्याम अग्रे अति मनोहर ।
आजानु लम्बित भुज-रक्त ओष्ठाधर ।।
सुन्दर वदन देखि अति मनोहर ।
धनुर्व्वाण करे उनि के हन तोमार ।।
(कृत्ति० रामायण, अयोध्या-कांड, पृष्ठ ११५)

× × × ×

स्यामल गौर किसोर वर, सुन्दर सुषमा ऐन ।
सरद सर्वरीनाथ मुख, सरद सरोरुह नैन ।।
(२–११६ मानस)

कोटि मनोज लजावनि हारे ।
सुमुखि कहहु को आहि तुम्हारे ।। २–११६–१ मानस ।

(२) सीता का व्रीडा भाव एवं संकेत द्वारा उत्तर—
स्मित विकसित गण्डं व्रीड विभ्रान्त नेत्रं
मुखमवनमयन्ती स्पष्टमाचष्ट सीता ।। हनु० ३–१५

× × × ×

नवीन कमल मुख भ्रू भङ्ग रचित ।
पुलके मण्डित गण्ड अल्प विकसित ।।
लाजे अधोमुखी सीता ना बलेन आर ।
इङ्गिते बुझान, स्वामी इनि जे आमार ।। कृ० रा० अयो० पृ० ११५, ।

---

१ मानस-तेहि अवसर एक तापसु आवा ।
तेज पुंज लघु बयस सुहावा ।। (२–१०९–७)

मानस में सीता सकुचा गयीं, फिर सलज्ज मुस्करा कर लक्ष्मण का परिचय देकर चुप हो गयीं। राम का परिचय उपर्युक्त प्रकार से ही दिया, किन्तु तुलसी के परिचय-दान में अधिक माधुर्य है।

बहुरि बदन बिधु अंचल ढाँकी।
पिय तन चितइ भौंह करि बांकी॥
खजन मंजु तिरीछे नयननि।
निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सयननि॥ मा० २–११६–६–७

राम–वाल्मीकि-संवाद—

वाल्मीक-रामायण और कृत्तिवासी-रामायण में राम मुनि के आश्रम में पहुँच कर कुटिया बनाकर रहने लगते हैं।

अध्यात्म-रामायण में राम के निवास करने के पूर्व वाल्मीकि-राम-संवाद हुआ है। राम पूछते हैं, ऐसा स्थान बताइए जहाँ मैं सुख-पूर्वक रह सकूँ। सर्ग ६ के ५२ से लेकर ६२ तक के श्लोकों में राम के रहने के लिए स्थान बताया जाता है। जिसका सारांश इस प्रकार है—जो लोग सदाचारी हैं, जो अपने हाथ-पैर तथा नेत्रादि-इन्द्रियों से भगवत-सेवा अथवा अन्य शुभ-कर्म करते रहते हैं, उनके हृदय-मंदिर में आप निवास कीजिए। मानस में अध्यात्म-रामायण का यह प्रसंग लगभग ज्यों का त्यों है।[1] अध्यात्म-रामायण की अपेक्षा मानस में इसका विस्तृत वर्णन है।

संवाद के इस प्रसंग द्वारा भक्ति में सदाचार एवं शुद्धाचार का प्रचार किया गया है।

अंध-मुनि-शाप तथा दशरथ-मरण—कृत्तिवासी-रामायण में अंध-मुनि-शाप का वर्णन दो स्थानों पर हुआ है। बालकांड[2] में राम-जन्म के पूर्व एवं अयोध्याकांड में दशरथ की मृत्यु की पूर्व-स्मृति के रूप में कई ग्रंथों में अंध-मुनि के पुत्र-वध का वृत्तांत है, किन्तु कृत्तिवास में यह प्रसंग पद्मपुराण, पाताल-खंड (गौड़ीय-संस्करण) के आधार पर वर्णित हुआ है। पातालखंड में ही उसका नाम सिन्धु[3] कहा गया है, कृत्तिवास ने भी उसे सिन्धु[4] कहा है। हिन्दी-भाषी-क्षेत्र में इसका नाम श्रवणकुमार प्रसिद्ध है।

कृत्तिवास ने दोनों अवसरों पर इस प्रसंग का पूरा वर्णन किया है। तुलसी ने इस कथा की ओर संकेत-मात्र किया है—

तापस अंध साप सुधि आई।
कौसल्यहि सब कथा सुनाई॥ मा० २–१५४–४

चित्रकूट पर—भरत-शत्रुघ्न के अयोध्या आने से लेकर चित्रकूट जाने तक की घटनाओं में साम्य है। प्रसंग एक से हैं। वर्णन का ढंग दोनों का अपना है। कृत्तिवासी-रामायण में कैकेयी चित्रकूट नहीं जाती, मानस में जाती है। मानस में जनक भी उपस्थित हैं।

---

१ मानस—२-१२७ से १३१ दोहे तक।
२ कृत्तिवासी-रामायण, आदि-कांड, पृ० ४०–४२, अयोध्याकांड, पृ० ११६।
३ पद्मपुराण, पाताल खंड-(गौड़ीय संस्करण) अध्याय १४।
४ अन्धक मुनिर पुत्र सिन्धु नाम धरे-कृत्ति० रामा०, पृ० ४०।

मानस में चित्रकूट-सभा का वर्णन अत्यधिक भव्य है। कृत्तिवासी-रामायण में थोड़े बहुत वार्त्तालाप के उपरांत मामला पट जाता है। वे पादुकाएँ माँग कर ले जाते हैं। तुलसी ने बड़े मार्मिक ढंग से धर्म-संकट प्रस्तुत किया है। बड़े ऊहापोह के पश्चात् अन्तिम-निर्णय होता है।

सीता का पिंड-दान—हीरेन्द्रनाथ दत्त-संपादित अयोध्या-कांड में सीता के पिंड-दान की अद्‌भुद-कथा का वर्णन है। अनाम-संस्करण में भी इसका वर्णन मिलता है। दोनों के इस प्रसंग में बहुत कुछ एकता है।

राजा ने राम की अनुपस्थिति में सीता से कहा, मुझे बालू के पिंड दे दो। रेत से खेलती हुई सीता ने पिंड दे दिये। राम ने समाचार ज्ञात कर सीता से इसका प्रमाण माँगा। हीरेन्द्रनाथदत्त-संपादित संस्करण[1] के अनुसार ब्राह्मण, तुलसी, फल्गु एवं वट-वृक्ष ने साक्षी दी। अनाम-संस्करण में केवल तीन हैं, फल्गु नहीं है। वट-वृक्ष ने सत्य-साक्षी दी अतएव वह पुरस्कृत हुआ, किन्तु अन्य सीता द्वारा अभिशप्त हुए।

आनन्द-रामायण में ऐसा प्रसंग है। उसमें कुछ अंतर है। सीता दुर्गा की पूजा के लिए बालू के पिंड बना रही थीं, भूतल से दशरथ का हाथ बार-बार निकल कर पिंड ग्रहण कर लेता। सीता भीत होकर वहाँ से चली आयीं। राम ने भी श्राद्ध-क्रिया की तो गृहीत न हुई, उन्हें सीता द्वारा ज्ञात हुआ कि सीता श्राद्ध कर चुकी हैं। राम के साक्षी माँगने पर सीता ने आम्र, फल्गु, तीर्थ-वासी-ब्राह्मण, ओतु (बिड़ाल) गाय, और अश्वत्थ को साक्षी रूप में प्रस्तुत किया किन्तु इनके मिथ्या-भाषण के कारण इन्हें शाप भी दिया। सातवें साक्षी सूर्य ने सत्य बात कह दी।[2]

---

१ कृत्तिवासी-रामायण (अयोध्याकांड) हीरेन्द्रनाथदत्त संपादित, पृ० ६३, ६४, ६५।

२ आनन्द-रामायण-यात्रा-कांड, सप्तम-सर्ग।

अरण्य-कांड

जयंत-काक-प्रसंग—

वाल्मीकि-रामायण में जयंत-प्रसंग मूलरूप से केवल सुन्दर-कांड में था। सीता ने हनुमान को अभिज्ञान-स्वरूप वह दम्पति-सीमित प्रसंग सुनाया है। कालांतर में यह प्रसंग दाक्षिणात्य-संस्करण में प्रक्षिप्त-रूप तथा गौड़ीय एवं पश्चिमोत्तरीय संस्करण में मूलरूप में प्रविष्ट हो गया।[1] वाल्मीकि-रामायण में इसका स्थान भरत के चित्रकूट आगमन के पूर्व है। कालिदास ने इसे भेंट के उपरांत (रघुवंश-सर्ग-१२) दिखाया है। इस प्रकार इस प्रसंग के तीन स्थल हुए। १—अयोध्याकांड में भरत-राम-भेंट के पूर्व, २—अरण्यकांड में भेंट के उपरांत और ३—सुन्दर-कांड में सीता-हनुमान के संवाद के समय।

कृत्तिबास ने प्रथम एवं तृतीय स्थान पर दो बार एक ही कथा दुहरायी है। मानस में रघुवंश के अनुसार केवल एक बार वर्णन हुआ है, उसमें पुनरुक्ति नहीं हुई।

कृत्तिवासी-रामायण के रामानंदी-संस्करण में जयंत-काक वृत्तान्त छापा नहीं गया। संपादक ने अश्लीलता से बचने के लिए इस प्रसंग की अवहेलना की है। दीनेशचन्द्र सेन[2] एवं सुबोधचन्द्र मजुमदार[3] के संस्करणों में इसका वर्णन उपर्युक्त दो स्थलों पर एक समान है। अतएव इस प्रसंग के लिए वर्णन दीनेशचन्द्र सेन के संस्करण के अनुसार किया जायगा।

कृत्तिवासी-रामायण के दोनों वर्णन वाल्मीकि-रामायण के सुन्दरकांड वाले वर्णन से मिलते हैं। लगभग सभी भारतीय राम-कथा-साहित्यों[4] में एक सा वर्णन है—इन्द्र-सुत जयंत का काक बनकर सीता के स्तनों पर चोंच मारना, राम का अभिमंत्रित ऐषिकास्त्र-प्रहार करना, जयंत की कहीं रक्षा न होना और राम की शरण में आकर एक चक्षु दान कर त्राण पाना।

मानस—

मर्यादा-वादी तुलसी को स्तन में चोंच-प्रहार वाली बात मनोनीत नहीं हुई। यहाँ उन्होंने अध्यात्म-रामायण के अनुसार लिखा कि काक सीता के चरणों में चोंच मार कर भाग गया।

सीता चरन चोंच हति भागा। ३—०—७

---

१ राम कथा—बुल्के-४०० अनु०।

२ दीनेशचन्द्र सेन-संपादित कृत्तिवासी-रामायण-अयोध्याकांड, पृ० १२७-२८ एवं सुन्दरकांड, पृ० २५७।

३ सुबोधचन्द्र मजुमदार-संपादित कृत्तिवासी-रामायण-अयोध्याकांड, पृ० ११३ एवं सुन्दरकांड, पृ० २१६। अनाम-संस्करण में भी ऐसा ही वर्णन है।

४ हनुमन्नाटक—अंक ६. ३२। पद्मपुराण—उत्तर-खंड, अध्याय २६६, १६४, ६५

अध्यात्म-रामायण में वह अंगूठे में चोंच मारता है तथा मांस के लोभ से ही वह प्रहार करता है।[1]

मत्पादाङ्गुष्ठमारक्ते विददारामिषाशया।
(अध्या० रामा०, सुन्दर का०, ३–५४)

मानस का शेष वर्णन कृत्तिवास जैसा ही है। कृत्तिवास में एक नवीनता यह है कि राम का बाण ब्राह्मण-रूप धारण कर जयंत का पीछा करता है और बोलता भी है।

से ऐषिक बाण तबे हइल, ब्राह्मण !!
× × ×
द्विज वेषे कहे गिया वासरेर ठाइ।
श्री रामेर बाण आमि ऐ काक चाइ।।
(दीनेश० संपा० कृत्ति० रामा०, पृ० २५७)

हीरेन्द्रनाथ दत[2]–सम्पादित अयोध्याकांड में वाल्मीकि के अयोध्याकांड वाले प्रसंग का प्रभाव है।

अत्रि-मुनि-भेंट—

वाल्मीकि-रामायण एवं अध्यात्म-रामायण में अत्रि मुनि से राम की भेंट अयोध्या-कांड में ही हो जाती है, किन्तु हमारे दोनों भाषा-रामायणकारों ने यह भेंट अरण्य-कांड में दिखायी है।

राम क्रमशः अत्रि, शरभंग, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य-अनुज आदि अनेक ऋषियों से भेंट करते हैं, ऋषि अतिथि अथवा राजा के रूप में उनका स्वागत करते हैं। वाल्मीकि-रामायण, अध्यात्म-रामायण एवं कृत्तिवासी रामायण में राम ही ऋषियों को प्रणाम करते हैं, किन्तु तुलसी के राम सर्वत्र प्रणाम ग्रहण करते हैं। कृत्तिवास ने राम को सर्वत्र विष्णु का अवतार मानते हुए भी ब्राह्मणों की मर्यादा अक्षण्ण रखी है।

---

१ आनन्द-रामायण—सीतांगुष्ठं मृदु रक्तं विददारामिषाशया।। (सार-कांड, ६–८७)।

२ हीरेन्द्रबाबू वाले अयोध्याकांड के संस्करण में सीता गंगा में मांस धोते समय पक्षियों को मांस खिलाती जाती हैं। जयंत नामक काक अन्य पक्षियों के भाग का मांस भी खा जाता है। सीता के वर्जन करने पर वह उनके स्तनों पर बैठ गया। भोजनोपरांत राम-सीता के सो जाने पर अंचल के हट जाने से खुले स्तनों पर उसने नखाघात किया। कथा समान है, पृष्ठ ५५।

रामायण-मंजरी में भी ऐसा ही वर्णन है। उसमें स्तनों पर आघात करने का संकेतमात्र है—

मांस शेषस्य रक्षायै समादिष्टा प्रियेण सा।
पक्षतुण्डनखाघातैः काकेनोद्वेजिता भ्रशम।।१४३
इतस्ततो विलुलिता भ्रश्यत् कौशेयकांशुका।
प्रीतये साभवद्भर्तुर्दृष्टार्ध कुच कुड्मला।।१४४
काकेन कोपिता तीव्रं सा दष्टाधरपल्लवा।
प्रियं प्रणयगर्भेण चक्षुषा क्षणमैक्षत।। १४५ आरण्य पर्व।

सीता-अनुसूया-संवाद—में पतिव्रत की शिक्षा दी जाती है। तुलसी की शिक्षाओं में शिवपुराण की मैना-वाली उक्तियों का प्रभाव है।[1] कृत्तिवासी-रामायण की अनुसूया सीता को उपदेश नहीं देती उसके पतिव्रत की प्रशंसा करती है।

कृत्तिवासी-रामायण में वाल्मीकि-रामायण का अनुसरण कर अनुसूया के जिज्ञासा करने पर सीता द्वारा अपने जन्म एवं स्वयंवर की कथा का वर्णन कराया है। तुलसी सदैव कथा की पुनरुक्ति से बचते रहे हैं।

विराध-वध—वाल्मीकि के अनुसार—

(१) भयानक-आकृति विराध ने वैदेही को गोद में लिया अङ्कनादाय वैदेहीम्—(३-२-१०)

(२) सीता को भार्या बनाना चाहता है। इयं नारी वरारोहा मम भार्या-भविष्यति—(३-२-१३)

(३) विराध सब प्रकार से अमर है, अतएव वे उसे धरती में जीवित गाढ़ देते हैं। (३, ४, २४, २५)

(४) उद्धार हो जाने पर वह अपना परिचय देता है कि वह कुबेर का तुंबरु नामक गन्धर्व था, रंभा पर आसक्त होने के कारण वह शाप-ग्रस्त हुआ।

(१) कृत्तिवासी-रामायण में सीता को गोद में लेकर उड़ना दिखलाया गया है, किन्तु अध्यात्म-रामायण के अनुसार तुलसी ने ऐसा नहीं दिखाया। वे माता जानकी के शरीर का स्पर्श राक्षस से नहीं कराना चाहते थे। वाल्मीकि-रामायण में स्वयं राम बहुत विकल हो गये हैं। वे कहते हैं कि, वैदेही का राक्षस द्वारा छुआ जाना देख कर मुझे जैसा दुःख होता है, वैसा दुःख मुझे न तो पिता के मरने पर हुआ और न राज्य-हरण पर।[2]

(२) विराध-वध की कथा तुलसी ने संक्षिप्त कर दी। जब सीता-हरण ही नहीं दिखाया तो उनका भार्या होना कैसे दिखाते। कृत्तिवास को भी यहाँ मर्यादा का ध्यान आया, अतएव वे दिखाते हैं कि राक्षस सीता को भक्षण करना चाहता है।[3]

(३) जीवित-राक्षस को पृथ्वी में गाढ़ देने वाली बात संभवतः कृत्तिवास को भी नहीं जँची। उन्होंने घोर युद्ध दिखाते हुए भी उसकी मृत्यु दिखा कर लक्ष्मण द्वारा अग्निदाह करा दिया।[4]

(४) कृत्तिवास ने भी विराध को कुबेर का चर बताया है किन्तु उसका नाम किशोर लिखा है, अध्यात्म-रामायण में वह अभिशप्त-विद्याधर है। वाल्मीकि-रामायण एवं कृत्ति० रामायण में वह अपना पूर्व-रूप प्राप्त कर राम के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हुआ चला

---

१ शिव-पुराण, पार्वती-खंड।

२ परस्पर्शात्तु वैदेह्या न दुःखतरमस्ति मे।
पितुर्वियोगात्सौमित्रे स्वराज्य हरणात्तथा॥
(२-२-२१ वाल्मी०-रामायण)

३ सीतारे खाइते चाहे मेलिया वदन—कृत्ति० अरण्य०, पृ० १३५।

४ लक्ष्मणेर उद्योगे दानव देह पुड़े। अरण्य०, १३६।

जाता है। अध्यात्म-रामायण में वह राम की भक्ति माँगता है। मानस में राम उस पर दया कर अपना धाम देते हैं। इस प्रकार राम के पतितोद्धारक रूप का उत्कर्ष दिखाने के लिए न उसे यक्ष आदि माना और न पूर्व-रूप ही प्रदान किया। राम-धाम दिलाया है। तुलसी ने अति संक्षेप में विराध का वध दिखाया है।[1]

शरभंग-ऋषि—वाल्मीकि-रामायण में शरभंग से राम की भेंट के पूर्व इन्द्र मिलने आते हैं। वे मुनि को ब्रह्मलोक में लेने के लिए आये हैं। कृत्तिवासी रामायण में लिखा है कि वे राम के लिए धनुष-बाण की व्यवस्था करने आये थे मानस में इन्द्र-शरभंग की भेंट नहीं है।

आगे कृत्तिवासी रामायण और मानस में समानता मिलती है। दोनों में वे राम के भक्त दिखाये गये हैं, वे राम के दर्शन करते हुए अग्नि में जलने की कामना करते हैं।[2]

वाल्मीकि-रामायण में वे भक्त नहीं दिखाये गये। वे तो वैसे ही प्राण-त्याग करने वाले थे। राम को आया हुआ ज्ञात कर जलने में थोड़ी देर कर दी। वे राम को 'नर शार्दूल' एवं 'प्रिय अतिथि' ही मानते हैं।[3] उन्होंने जो राम से कहा कि मुहूर्त भर मेरी ओर देखते रहो, सो इसलिए नहीं कि दर्शन-लाभ उठाना चाहते हों, अपितु मानों उन्हें अपने देह, त्याग का चमत्कार दिखा रहे हों।[4]

गोमती—कृत्तिवास ने यहाँ भूल से गोमती नदी का उल्लेख किया है। 'गोमती पारे शरभंग निकेतन' पृ० १३६। यह नदी संभवत: गौतमी है। अध्यात्म-रामायण में आया है—'अस्ति पञ्चवटी नाम्ना आश्रमो गौतमी तटे।' (३–३–४८)।

सुतीक्ष्ण प्रसंग—कृत्तिवास ने वाल्मीकि-रामायण के अनुसार सुतीक्ष्ण नामक किसी साधारण ऋषि से भेंट करने का वर्णन किया है। तुलसी को अध्यात्म-रामायण से प्रेरणा मिल गयी। अध्यात्म-रामायण में सुतीक्ष्ण राम की स्तुति में कई श्लोक कहते हैं।[5] यहीं तुलसी की भक्ति-भावना मुखर हो उठी। मानों सुतीक्ष्ण के स्थान पर उन्होंने अपने को ही प्रतिस्थापित कर लिया। प्रेम-भक्ति के उन्माद[6] का यहाँ अनोखा वर्णन है जो कृत्तिवास के वर्णन से सर्वथा भिन्न है। अध्यात्म-रामायण से भी भिन्नता दिखायी है। मानस में राम सुतीक्ष्ण के हृदय में अपना चतुर्भुज-रूप दिखाते हैं।

---

१ मिला असुर विराध मग जाता।
आवत ही रघुबीर निपाता॥
तुरतहिं रुचिर रूप तेहिं पावा।
देखि दुखी निज धाम पठावा॥
(मानस ३–६–७–८)

२ कृत्ति० अरण्य० १३६, मानस—३–७–६

३ प्रियातिथिम—(३–५–३०), नर शार्दूल (३–५–३१) (वाल्मी० रामायण)

४ नर व्याघ्र मुहूर्त्तं पश्य तात माम्– ३–५–३८
यावज्जहामि गात्राणि जीर्णं त्वचमिवोरम्– ३–५–३९
रामस्तु विस्मितो भ्रात्रा भार्यया च सहात्मवान्—३–५–४०

५ अध्यात्म-रामायण—३, २, २६–३४

६ मानस— ३–९–१२ से ३–११ तक।

सीता का हिंसा-भय—कृत्तिवासी-रामायण का यह प्रसंग मानस में नहीं है। वाल्मीकि-रामायण एवं कृत्तिवासी-रामायण में लिखा है कि राम का उद्देश्य राक्षस-वध जानकर सीता उन्हें हिंसा से विरत करना चाहती हैं। सीता एक ऋषि का उदाहरण देती हैं। उसके पास धरोहर में रखी हुई तलवार थी। शस्त्र-धारण करने के कारण ही वह हिंसा-वृत्ति में लीन हुआ, अतएव राम-लक्ष्मण को शस्त्र-धारण करना छोड़ देना चाहिए। कृत्तिवास ने उस ऋषि का नाम भी बतलाया है—दक्ष। फिर स्वतन्त्र-कल्पना कर लिखा है कि एक बार उसने बूढ़े-गीध पर शस्त्र-प्रहार किया।

इस प्रसंग में बौद्ध-धर्म के प्रभाव की अपेक्षा वैष्णवों के अहिंसा-प्रेम का ही प्रभाव अधिक जान पड़ता है।[1]

मांडकर्णि ऋषि—पंचाप्सर सरोवर के नीचे से उठने वाली गीत-वाद्य-ध्वनि सुनकर राम को ऋषियों ने बताया—यहाँ एक तप-भ्रष्ट ऋषि मांडकर्णि पंच-अप्सराओं के साथ सरोवर के नीचे प्रासाद बनाकर बिहार करते हैं। वाल्मीकि-रामायण के इस प्रसंग का उल्लेख कृत्तिवास-रामायण में हुआ, किन्तु मानस में नहीं। कथानक के विकास के लिए इस प्रसंग का कोई महत्त्व भी नहीं है। कृत्तिवास ने ऋषि का नाम नहीं दिया, किन्तु वाल्मीकि-रामायण में उनका नाम मांडकर्णि है।[2]

अगस्त्य-ऋषि—वाल्मीकि-रामायण में अगस्त्य राम का समादर एक समर्थ-राजा मान कर करते हैं। ब्रह्म मानकर नहीं। उन्हें ज्ञात है कि राम राक्षसों का वध करने के लिए वन में आये हैं। कृत्तिवासी रामायण एवं मानस में अगस्त्य उन्हें ब्रह्म समझते हैं।[3] सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अन्य रामायणों के राम की भाँति मानस के राम[4] भी अगस्त्य को प्रणाम करते हैं। अध्यात्म-रामायण में भी ऐसा है, उसी से मानस प्रभावित है, नहीं तो सर्वत्र ऋषि-लोग ही राम की पद-वंदना करते हैं।

वातापि-इल्वल—इन सहोदरों का अगस्त्य द्वारा दंडित होना कृत्तिवास ने वाल्मीकि के अनुसार दिखलाया है।

जटायु-मैत्री—मानस में जटायु-भेंट के विषय में केवल इतना लिखा है, 'गीधिराज से भेंट भइ बहु विधि प्रीति बढ़ाइ[5] कृत्तिवासी-रामायण में जटायु कहता है, मैंने पहले दशरथ का उपकार किया है, इसीलिए उनसे मेरी मित्रता है।

पूर्व्वे दशरथे करेछि उपकार।
तेइं से ताहार सङ्गे मित्रता आमार।। अरण्य० पृ० १३८।

कृत्तिवास ने बालकांड में मैत्री का वर्णन किया है। राजा दशरथ अनावृष्टि रोकने के लिए शनि के पास गये किन्तु उसकी ज्वलंत-दृष्टि से दशरथ का रथ जल गया। वे घोड़े

१ कृत्ति० रामा०—अरण्य-कांड, पृ० १३७
२ कृत्ति० रामा० अरण्य० पृ० १३७-१३८, वाल्मीकि रामायण० ३-सर्ग ११
३ कृत्ति० रामा०—अरण्य०, पृ० १३६, मानस—३—११—८
४ मुनि पद कमल पड़े द्वौ भाई—मानस—३—११—१०
५ मानस—३—१३।

सहित नीचे गिरने लगे। जटायु-पक्षी ने पर पसार कर उन्हें सहारा दिया। दशरथ उससे बहुत प्रसन्न हुए, अग्नि को साक्षी मानकर उससे मैत्री की।[१]

लक्ष्मण की जिज्ञासा—अध्यात्म-रामायण में लक्ष्मण राम से मोक्ष के साधन की जिज्ञासा करते हैं और राम उन्हें गुह्याद-गुह्यतर रहस्य बताते हैं। (अरण्य० सर्ग ४) मानस में भी लक्ष्मण राम से ईश्वर, जीव, माया, भक्ति आदि के विषय में पूछते हैं, राम उन्हें विस्तार से समझाते हैं।[२]

वाल्मीकि-रामायण में लक्ष्मण-राम वार्त्तालाप अवश्य होता है किन्तु उसका प्रसंग सर्वथा स्वाभाविक एवं घरेलू है। लक्ष्मण भरत की प्रशंसा कर कैकेयी की निंदा करते हैं, तो राम उन्हें निंदा से वर्जित कर भरत के ही गुणगान करने देते हैं—(अरण्य० अ० १६)

माया-सीता—भारत में सीता नारी की पवित्रता की चरम-आदर्श हैं। जिस समय मुसलमानों का शासन था नारी की पवित्रता का प्रयोजन और भी बढ़ गया था। अतएव रावण द्वारा अस्पृष्ट सीता का वर्णन करने के लिए माया-सीता की कल्पना हुई। तुलसी पर अध्यात्म-रामायण[३] का प्रभाव है। वाल्मीकि-रामायण[४] में तो रावण सीता को केश एवं जांघ पकड़ कर उठाता है।

कृत्तिवास ने माया-रूप तो नहीं दिखाया किन्तु सीता को इस प्रकार लांछित होते हुए उनकी भी भक्ति-कल्पना न देख सकी। उन्होंने केवल इतना लिखा है—रावण ने सीता को पकड़ कर रथ पर चढ़ा दिया[५]।

मानस में जिस समय लक्ष्मण फल-मूल लेने जाते हैं, राम सीता को बुला कर कहते हैं—जब तक नर लीला कर राक्षसों का विनाश न कर लूँ, तब तक तुम अग्नि में निवास करो। सीता भी अपना प्रतिबिंब राम के पास छोड़ कर आग में समा गयीं[६]।

इस प्रकार अब रावण जिस सीता का हरण करेगा वह छाया-सीता होगी, वास्तविक नहीं। अध्यात्म-रामायण में रावण इस छाया-सीता को भी नहीं छूता है। नखों से पृथ्वी खोद कर पृथ्वी-सहित उठा ले जाता है[७]।

सीता-हरण—वाल्मीकि-रामायण एवं कृत्तिवासी रामायण में सीता-हरण का उद्देश्य समान है। रावण बहिन के अपमान तथा भाई के वध का प्रतिशोध लेने के साथ-साथ सुन्दरी सीता को भी प्राप्त करने के लिए मारीच के पास उपस्थित हुआ है। शूर्पणखा ने सीता का ऐसा सुन्दर वर्णन किया है कि वह मन ही मन उन्हीं के बारे में सोचता रहता है—

१ कृत्ति० रामायण, आदि०, पृ० ३७-३८।
२ मानस—३-१४ से ३-१६।
३ अध्यात्म-रामायण—३-७-२, ३।
४ वामेन सीतां पद्माक्षीं मूर्धजेषु करेण सः। —३-४६-१७।
ऊर्वोस्तु दक्षिणेनैव परिजग्राह पाणिना। —३-४६-१८ (वाल्मीकि-रामायण)।
५ कृत्ति० रामा०—सीतारे धरिया रथे तुलिल रावण। अर० ? पृ० १५२
६ मानस (३, २३, १-४)
७ ततोविदार्य धरणीं नखैरुद्धृत्य बाहुभिः—अध्या० रा०—३-७-५१।

सुन्दरी सीतार कथा भावे मने मने। अरण्य०, पृ० १४५

अध्यात्म-रामायण में वह विरोध-बुद्धि के द्वारा भगवान् के पास जाना चाहता है, क्योंकि भक्ति से वे शीघ्र प्रसन्न नहीं होते[1]। इसीलिए वह निश्चित है। यदि राम भगवान् हैं तो मृत्यु होने पर स्वर्ग मिलेगा और नहीं तो राक्षसों का राज्य तो भोगेगा ही[2]।

मानस में भी सीता-हरण का यही कारण है, उसके दोनों हाथों में लड्डू हैं। यदि राम साधारण नर हैं तो उन्हें मार कर वह प्रतिशोध लेगा, साथ ही सीता जैसी सुन्दरी प्राप्त करेगा—

जौं नर रूप भूप सुत कोऊ।
हरिहउं नारि जीति रन दोऊ ।। ३–२२–६

यदि ब्रह्म हुए तो हठ-पूर्वक युद्ध कर प्रभु के बाण से प्राण-त्याग करेगा, क्योंकि तामस-शरीर से भजन तो होने से रहा—

तौं मैं जाइ बैरु हठि करऊं।
प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊं।। ३–२२–४
होइहि भजनु न तामस देहा।
मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा ।। ३–२२–५

सीता-लक्ष्मण—मारीच के 'हा लक्ष्मण' शब्द से भ्रमित होकर जब सीता ने लक्ष्मण से राम की सहायता के लिए जाने को कहा तो लक्ष्मण उन्हें छोड़ जाने को प्रस्तुत नहीं हुए। सीता ने उनकी भर्त्सना की। वाल्मीकि-रामायण,[3] अध्यात्म-रामायण[4] और कृत्तिवासी-रामायण में सीता ने लक्ष्मण के प्रति जो कुछ कहा, वह लगभग समान है—(१) तू भरत का भेजा हुआ है। (२) राम को मरवा कर मुझे ग्रहण करना चाहता है और (३) यदि तू नहीं जायगा तो मैं आत्म-हत्या कर लूंगी।

आमा प्रति लक्ष्मण तोमार बुझि मन ।।
भरत लइल राज्य तुमि लह नारी।
भरतेर सने तव आछे सारी भारी ।।
अपर पुरुषे यदि जाय मम मन।
गलाय कटारी दिया त्यजिव जीवन ।। कृत्ति०, अरण्य, पृ० १५०

अपने प्रमुख पात्रों के शील की जितनी रक्षा तुलसी ने की है, अन्य कोई राम-कथाकार नहीं कर सका है। सीता के मुख से निकले ये शब्द भले ही उनके विकलता-युक्त उन्माद के सूचक हों, तथा कथा की स्वाभाविकता की दृष्टि से रोचक हों, किन्तु सीता के चरित्र को वे कदापि गरिमा प्रदान नहीं करते। तुलसी ने यहाँ अध्यात्म-रामायण की लीक भी छोड़ कर इतना ही कहा है—

---

१ विरोध बुद्ध्यैव हरि प्रयामि
द्रुतं न भक्त्या भगवान्प्रसीदेत्—अध्या० रामा० ३–५–६१।

२ अध्यात्म-रामायण—३–५–६०।

३ वाल्मीकि-रामायण—३ सर्ग, ४५।

४ अध्यात्म-रामायण, ३–७–३१–३४।

मरम वचन जब सीता बोला । ३-२७-५

इसी शील की रक्षा के कारण लक्ष्मण चुप रह जाते हैं, कहते कुछ नहीं । उन्हें कितनी व्यथा हुई होगी, किन्तु एक शब्द तक नहीं बोले । न स्वयं छोटे बने और न सीता को छोटा कहा । कृत्तिवास ने भी लक्ष्मण को चुप रखा है । वे साक्षी देकर जाने के लिए प्रस्तुत होते हुए बोले—

आमारे विदा करो सीता ठाकुरानी ।
आर किछु ना बलह दुरक्षर-दाणी ।। अरण्य०, पृ० १५१

वाल्मीकि-रामायण में लक्ष्मण सीता को धिक्कारते हैं—'धिक्त्वामद्य' । कहते हैं, 'तुमने दुष्ट स्त्री का स्वभाव दिखाया है, तुम्हारा अनिष्ट होने को है'[1] । ऐसा ही अध्यात्म-रामायण में कहा है—

मामेवं भाषसे चण्डि धिक् त्वां नाशमुपैष्यसि । ३-७-३६

लक्ष्मण की रेखा—देवताओं की साक्षी देकर तथा कुटिया के आस-पास रेखा खींच कर लक्ष्मण चले आये । यह वृत्तांत कृत्तिवास में है—

गण्डि दिया वेड़िलेन लक्ष्मण से घर ।
प्रवेश ना करे केह घरेर भितर ।। अरण्य०, पृ० १५०

वाल्मीकि-रामायण एवं अध्यात्म-रामायण में लक्ष्मण-रेखा का वर्णन नहीं है, अन्य कई ग्रंथों में है ।[2]

मानस में सीता हरण के समय रेखा का व र्न नहीं हुआ, किन्तु लंका-कांड में मंदोदरी ने रावण से कहा है—

रामानुज लघु रेख खचाई ।
सोउ नहिं नांघेउ असि मनुसाई ।। ६-३५-२

सीता-हरण, जटायु-युद्ध, ऋष्यमूक-पर्वत पर बैठे बन्दरों को देख कर वस्त्राभूषण फेंकने की कहानी में कोई विशेष अन्तर नहीं है । वाल्मीकि-रामायण में रावण-जटायु के युद्ध का लम्बा वर्णन है, कृत्तिवास ने संक्षिप्त करके भी तुलसी की अपेक्षा विस्तार दिया है । वाल्मीकि-रामायण के वर्णन में स्वाभाविकता अधिक है । मानस में रावण सीता को लेकर शीघ्र अशोक-वन में पहुँचा दिया जाता है—

एहि बिधि सीतहिं सो लै गयऊ ।
बन अशोक महं राखत भयऊ ।। ३-२८-२६

ऐसा अध्यात्म-रामायण के अनुसार किया है । वाल्मीकि-रामायण में सुविस्तृत वर्णन है, इसीलिए कृत्तिवास सीता को इतना शीघ्र अशोक-वन नहीं ले गये । बीच में भी कई घटनाएं होती जाती हैं । अशोक-वन में पहुँच कर वह सीता को फुसलाता-धमकाता है ।

---

१ वाल्मीकि-रामायण ३, ४५, ३२, ६३ ।

२ आनन्द-रामायण-मयैतां धनुषरेखां कृतांत्वपरितोऽधुना-सर्ग ७, ९८ (सार कांड) ।
हनुमन्नाटक—अंक ३--२७ एवं अंक ४-६ ।

सुपार्श्व—संपाति के पुत्र सुपार्श्व का वर्णन वाल्मीकि-रामायण में हुआ है, किन्तु किष्किन्धा कांड के ५९ में अध्याय में। कृत्तिवास ने इसे अरण्य-कांड में रख कर इस प्रसंग को सूच्य के स्थान पर अभिनेय बना दिया है। वाल्मीकि-रामायण में संपाति बताता है—एक बार मेरे पुत्र ने आकर कहा कि मैंने आज एक काले पुरुष को सुन्दर स्त्री के साथ जाते देखा। उन्हें खाने के लिए मैंने मुख खोला तो वह गिड़गिड़ाने लगा और मैंने उसे जाने दिया क्योंकि मधुर-भाषी जनों पर प्रहार करने वाला कोई ही इस पृथ्वी पर निकलेगा। (३, ५९, १६–१८)

कृत्तिवास ने इस वृत्तांत का स्थल ही नहीं बदला, वरन् रूप भी बदला है। कृत्तिवासी-रामायण में सुपार्श्व को देवता बतलाते हैं कि यह सीता का हरण किये जा रहा है। इसीलिए वह रथ रोक कर पंखों से सीता-सहित उसे ढक लेता है, ध्यान है कि सीता को चोट न आए किन्तु वाल्मीकि का सुपार्श्व सीता से परिचित नहीं है, वह दोनों को खाने के लिए प्रस्तुत हो गया था। वाल्मीकि-रामायण में वह केवल साधारण गिड़गिड़ाने पर छोड़ देता है, किन्तु कृत्तिवासी-रामायण में रावण सबल तर्क रखता है। सुपार्श्व उसके तर्कों से प्रभावित होकर उसे छोड़ देता है।[१]

अध्यात्म-रामायण में यह वर्णन नहीं है तथा इसका कोई विशेष प्रयोजन भी नहीं था, अतएव तुलसी ने इसकी उपेक्षा कर दी।

जटायु-उद्धार—सीता के विरह में दुःखी राम रक्त-रंजित गृद्ध को सीता का भक्षक समझ कर यदि उसे मारने के लिए प्रस्तुत हो जायं तो यह सर्वथा स्वाभाविक है। सीता के प्रति प्रेम की तन्मयता भी इससे व्यक्त होती है। जब वह सब समाचार देता है तो राम रो पड़ते हैं।[२] कृत्तिवासी रामायण, पृष्ठ १५९–६०।

अध्यात्म-रामायण में भी राम गीध को निशाचर समझ कर मारने के लिए प्रस्तुत हैं—पश्य हन्मि निशाचरम् ३–८–२५। तुलसी के गंभीर, शील-सम्पन्न राम जाते ही उसके सिर पर हाथ रख देते हैं—'कर सरोज सिर परसेउ' और उसकी 'बिगत भई सब पीर'–३–३०।

दोनों भाषा-रामायणों में जटायु राम-भक्त है। वह इस प्रकार की मृत्यु को अपना सौभाग्य मानता है।[३]

कबंध-वध—कृत्तिवास ने कबंध युद्ध का पूरा परिचय दिया है। उसकी भीषण आकृति, राम लक्ष्मण से संवाद, भुज-कर्त्तन आदि वाल्मीकि-रामायण के अनुसार वर्णित है। मानस में केवल एक पंक्ति में वर्णन है—

आवत पंथ कबंध निपाता—३–२२–६

---

१ (१) मेरी तुम्हारी शत्रुता नहीं। (२) राम ने मेरी बहिन का अपमान किया है। (३) राम ने मेरे भाइयों का वध किया है। इसीलिए प्रतिशोध के लिए राम की सुन्दरी का हरण कर रहा हूँ—कृत्ति० अरण्य०, पृ० १५५।

२ वाल्मीकि-रामायण ३, ६७, १०–२२।

३ कृत्ति० रामा० अरण्य, पृ० १६०।
मानस ३, ३०, ७–८।

पूर्व-कथा में भेद है। कृत्तिवास उसे कुवेर नाम का सुन्दर दैत्य बताते हैं, जिसे किसी ऋषि ने शाप देकर ऐसा वर दिया। इसके पश्चात् इन्द्र ने वज्र मार कर विरूप कर दिया।[1]

मानस में वह गन्धर्व है तथा उसे दुर्वासा ने शाप दिया है।[2] तुलसीदास को कबंध की कथा से एक सुअवसर मिल गया। उन्होंने अन्य बातों की उपेक्षा कर ऐसा संकेत किया कि कबंध को विप्र-द्रोह करने के लिए शाप मिला, इसी बहाने विप्र-गुण-गान कर दिया—

पूजिय बिप्र सील गुन हीना।
सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना॥ ३, ३३, २

शबरी—प्रसंग दोनों रामायणों में समान है। तुलसी ने यहाँ भक्ति-निरूपण बड़ी सुन्दरता के साथ किया है।

नारद-भेंट—तुलसी ने राम-नारद मिलन की स्वतन्त्र उद्भावना की है। नारद ने सोचा कि उन्हीं के कारण प्रभु राम शाप-शिरोधार्य कर सीता के विरह में दुःखी हैं, अतएव वे राम को प्रसन्न करने एवं उनसे वर माँगने जाते हैं। इस भेंट के उद्देश्य निम्न हैं—

(१) राम-नाम-महत्व-वर्णन।
(२) भक्त और ज्ञानी का भेद तथा राम का भक्त के प्रति पक्षपात।
(३) संत-लक्षण-कथन।

---

१ कृत्ति० रामा० अरण्य०, पृ० १६१।

२ मानस—३, ३२, ७, ८
वाल्मीकि-रामायण एवं अध्यात्म-रामायण में भी वह गन्धर्व है, किन्तु वाल्मीकि० में शाप देते हैं स्थूल-शिरा ऋषि और अध्यात्म-रामायण में अष्टावक्र।

किष्किन्धा-कांड

सुग्रीव-मैत्री—राम-लक्ष्मण को देखकर सुग्रीव का भय तथा हनुमान के प्रयत्न से दोनों पक्षों की मैत्री आदि का वर्णन दोनों रामायणों में समान हैं। मायावी की कथा दोनों रामायणों में विस्तारपूर्वक वर्णित है, क्योंकि इसी घटना से बालि-सुग्रीव का वैमनस्य हुआ था।

कृत्तिवास ने दुंदभी राक्षस का युद्ध और मातंग ऋषि के शाप का आदि-रामायण के अनुसार वर्णन किया है। तुलसी इस प्रसंग को टाल गये हैं।

शक्ति-परीक्षा—कृत्तिवासी रामायण में राम दुंदुभी की अस्थियों को पद की ठोकर से शत-योजन दूर फेंक देते हैं, सुग्रीव का कहना है कि ये तो सूखी हड्डियाँ हैं। बालि और रावण प्रसंग का उल्लेख कर वह कहता है कि इससे तो अच्छा यह है कि आप रावण से न लड़ें। हम दोनों भाइयों में मैत्री करा दें। हम दोनों सीता ला देंगे। आगे जब राम सप्त-ताल वेध करते हैं[1] तब उसे प्रतीति होती है कि राम के प्रसाद से वह राज्य-दंड और छाता (छत्र) पा जायगा।

मानस में परीक्षा कुल एक अर्धाली में हो गयी—

> दुंदुभि अस्थिताल दिखराए।
> बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए ॥ ४–६–१२।

सुग्रीव पर प्रतिक्रिया भी अन्य प्रकार की होती है, वह राज-पाट आदि का मोह छोड़कर राम का भक्त बन जाना चाहता है।[2]

बालि-रावण—बालि अपने ही मुख से कहता है कि एक बार रावण मुझसे युद्ध करने आया था। मैंने उसे पूँछ से बाँध कर चार समुद्रों में गोते लगवाये थे। कृत्तिवासी-रामायण[3] में यह प्रसंग आया है। इसी का विस्तृत-वर्णन उत्तर-कांड[4] में किया है।

तारा-शाप—(१) कृत्तिवासी रामायण में बालि-बध से तारा को बहुत क्षोभ हुआ, उसने राम को दो शाप दिये। प्रथम-शाप के अनुसार बहु-परिश्रम से प्राप्त सीता राम के पास नहीं रह सकेगी। कुछ दिन साथ रहकर स्वर्गवास करेगी।

> सीतारे आनिव घरे बहु परिश्रमे ॥
> × × ×
> किन्तु सीता ना रहिवे सदा तव पाश।
> किछु दिन थाकिया करिवे स्वर्गवास ॥ किष्कि०, पृ० १७८।

---

१ कृत्तिवासी रामायण, किष्कि०, पृ० १७१।

२ अब प्रभु कृपा करहु एहि भांती।
सब तजि भजनु करो दिन राती ॥ मानस–४–६–२१।

३ रावण आसियाछिल रण करिवारे।
लेज बान्धि डुबाइलाम चारि पारावारे ॥ (कृत्ति० रामा०, किष्कि०, पृ० १७६)

४ कृत्ति० रामा०, उत्तरकांड, पृ० ४६३–६४।

कृत्तिवास ने यह प्रसंग वाल्मीकि-रामायण के गौड़ीय-संस्करण से लिया है। उत्तरकांड में राम ने सीता की पुनः-परीक्षा ली थी, जिसके फलस्वरूप सीता पाताल में समा गयीं। राम को इस दोष से मुक्त करने के लिए वाल्मीकि-रामायण के गौड़ीय-संस्करण में यह शाप जोड़ा गया। इसमें स्पष्ट लिखा है कि सीता भूतल में जायगी, जबकि कृत्तिवास लिख रहे हैं कि वह स्वर्गवास करेगी।

अचिरेण तु कालेन त्वयावाणैरुपार्ज्जिता।
न सीता मम शापेन चिरं त्वयि भविष्यति ॥
आत्मनः शौचमाधार्य पतिव्रत गुणा सती।
याच्यमाना त्वया सीता पुनर्यास्यति भूतले ॥[१]

(२) तारा दूसरा शाप देती है कि जिस प्रकार तुमने निर्दोष कपीश्वर बालि को मारा उसी प्रकार जन्मान्तर में वे भी तुम्हें मारेंगे[२]। आनन्द[३]-रामायण में स्वयं राम कहते हैं कि तू उस जन्म में मुझे भील रूप में मारेगा। हनुमन्नाटक[४] में भी राम कहते हैं कि तू मुझे सोते हुए उस जन्म में मारेगा। हनुमन्नाटक में राम बालि को मारकर दुःखित भी दिखाये गये हैं; कृत्तिवासी-रामायण में भी वे बालि-वध से लज्जित हैं। अतएव कृत्तिवास के वर्णन और हनुमान्नाटक के वर्णन में समानता है।

इस शाप में भी कृत्तिवास आदि ने राम के बालि-वध-दोष को ढकने की चेष्टा की है।

मानस—में पाताल-प्रवेश की घटना की उपेक्षा हुई, अतएव उसे दोष मानकर शापादि की कल्पना करने की आवश्यकता नहीं थी। तुलसी ने बालि-वध का दोष नहीं माना है, अतएव तारा के द्वितीय-शाप जैसी सफाई का भी प्रयोजन नहीं था।

कृत्तिवास तारा के मुख से सती-धर्म की प्रशंसा करा रहे हैं, यही तारा बालि के जीवन-काल में सुग्रीव की अंकशायिनी रही और बालि की मृत्यु के पश्चात् भी। उसके मुख से सती की महिमा शोभा नहीं देती। मानस में अनुसूया, कौशल्या अथवा सीता जैसी महिलाओं के मुख से ही सती-महिमा सुनने को मिलेगी। तुलसी ने तारा को इतना वाचाल भी नहीं बनाया है। यह बिलखती हुई आती है और राम उसे ज्ञान देकर माया हर लेते हैं—दीन्ह ग्यान हरि लीन्हीं माया—मानस ४-१०-३

सीता की खोज और भूगोल—सुग्रीव के ज्ञान के बहाने वाल्मीकि-रामायण में भारत की भौगोलिक-स्थिति का अत्यधिक सुन्दर चित्रण किया गया है, कृत्तिवास ने भी अनुकरण करने की चेष्टा की है। वास्तव में ये वर्णन संस्कृत के महाकाव्य में ही शोभा पाते हैं, तुलसी ने इनकी उपेक्षा कर अच्छा ही किया।

---

१ वाल्मीकि-रामायण (गौड़ीय-संस्करण) ४, २०, १५, १६।

२ बिना दोषे मारिले जेमन कपीश्वरे।
मारिवे तोमारे राम सेइ जन्मान्तरे ॥ (कृत्ति० रामा०, किष्कि०, पृ० १७८)

३ आनंद-रामायण, सार-कांड, सर्ग-८, ६६।

४ शुद्धिर्भविष्यति पुरन्दर नन्दनत्वं
मामेव चेदहह पातकिनं शयानम्। अं० ५, ५७ हनुमन्नाटक।

स्वयं-प्रभा—वाल्मीकि की स्वयं-प्रभा कृत्तिवास की संभवा हो गयी। स्वयं-प्रभा का परिचय वाल्मीकि-रामायण, अध्यात्म-रामायण एवं कृत्तिवासी-रामायण में भिन्नता रखता है। तुलसी इस पचड़े में नहीं पड़े, नाम-परिचय सभी उड़ा गये—'तेहिं सब आपनि कथा सुनाई'।[1] कृत्तिवासी-रामायण में उसे सजी-बजी युवती दिखाया है, मानस में वह तापसी है[2]। वाल्मीकि-रामायण एवं अध्यात्म-रामायण में भी वह धर्मचारिणी अथवा योगिनी है[3]।

मानस में स्वयं-प्रभा को राम-भक्त भी दिखाया है। वह बन्दरों की आँखें मुँदवा कर उन्हें तप-तेज से समुद्र के किनारे भेज देती है और वह स्वयं राम से मिल कर तथा अनपायिनी-भक्ति पाकर बदरी-वन को चली जाती है। तुलसी का वाल्मीकि से यह परिवर्त्तन अध्यात्म-रामायण के कारण है। उसमें भी लिखा है—त्यक्त्वा गुहां शीघ्रं ययौ राघव सन्निधिम्—४-६-५९। वाल्मीकि-रामायण एवं कृत्तिवासी-रामायण में वह कहीं नहीं जाती।

संपाति—

(१) कृत्तिवासी-रामायण एवं मानस दोनों में ही बन्दरों से संपाति की भेंट समान है। दोनों ग्रंथों में जटायु और संपाति की उड़ान भरने की कथा भी समान है।

(२) दोनों ग्रंथों में राम-कथा श्रवण करने अथवा राम के दूतों के दर्शन से उसके नये-पंख उग आते[4] हैं। राम-कथा का महत्त्व बढ़ाने के लिए वाल्मीकि-रामायण में निशाकर-मुनि स्वयं ही पक्ष-दान करने की सामर्थ्य रखते हैं किन्तु वे संपाति द्वारा लोक-हित कराने के लिए उसे बानर-दूतों की प्रतीक्षा करने के लिए कहते हैं। उनके कथन से राम-कथा अथवा राम के दर्शन का महत्त्व प्रकट नहीं होता[5]। कृत्तिवास-रामायण में हनुमान संपाति को सम्पूर्ण राम-कथा सुनाते हैं। वाल्मीकि-रामायण में स्वयं संपाति सुनाता है, उसने यह कथा निशाकर मुनि से सुन रखी थी। संपाति के मुख से सुनाना ही अधिक उपयुक्त था। वैसे महाकाव्य में पुनरुक्ति-दोष से बचने की चेष्टा होनी चाहिए, मानस में इसीलिए इसका वर्णन नहीं हुआ।

(३) यहीं इस प्रसंग में हनुमान वाल्मीकि-मुनि की पूर्व कथा दुहराते हैं। वे पहले व्याध थे—वाल्मीकि छिलेन पूर्व्वे व्याध अवतार। (किष्कि०, पृ० २०७)

(४) कृत्तिवासी-रामायण में एक और प्रसंग है जो कि मानस में नहीं है। संपाति-पुत्र सुपार्श्व बानरों को पीठ पर चढ़ा कर पार कर देना चाहता है किन्तु अंगद स्वीकार नहीं करते। यह प्रसंग वाल्मीकि-रामायण के गौड़ीय-संस्करण[6] के अनुसार है।

---

१ मानस—४-२४-४।

२ मानस—४-२४ (नारि तप पुंज)।

३ (वाल्मीकि-रामायण—धर्मचारिणी—४-५३-२।
अध्यात्म-रामायण—योगिनी—४-६-४०।

४ कृत्तिवासी-रामायण—सात काण्ड रामायण हनुमान कय।
सम्पाति पक्षीर पाखा हइल उदय ।।—किष्कि०, पृ० २०१।
मानस—राम कृपा कस भयउ सरीरा—(अर्थात् पंखे निकल आये)—४-२८-२।

५ वाल्मीकि-रामायण—४-६२-१३ एवं ४-६३-१०।

६ वाल्मीकि-रामायण (गौड़ीय-संस्करण) ४, ६३, १६।

सागर-तरण—स्थल-भेद—कृत्तिवासी-रामायण में सभी वानरों का बल-कथन, अंगद-जाम्बवान् की उक्ति तथा हनुमान का प्रोत्साहन आदि प्रसंग इस कांड में न होकर सुन्दर-कांड में हैं। किन्तु दाक्षिणात्य-संस्करण (वाल्मीकि-रामायण) एवं मानस में इसी कांड के अंतर्गत होने के कारण इनका विवेचन इसी कांड में होगा।

समुद्र पार जाने के विषय में अंगद दोनों रामायणों में जो कुछ कहते हैं उसमें समानता है—

कृत्तिवासी-रामायण—एक लाफे पड़ि गिया स्वर्णपुरी लङ्का।
आसिबारे नाहि पारि ताहा करि शङ्का ।। सुन्दर०, पृ० ११३

मानस—अंगद कहइ जाऊं मैं पारा।
जियं संसय कछु फिरती वारा ।। ४, २९–१

दोनों ग्रंथों में जाम्बवान् अंगद की दुर्बलता उसे कटक का नायक बताकर तथा कटक को छोड़कर जाने का निषेध कर ढक लेते हैं। दोनों में ही जाम्बवान् के युवाकालीन बल का समान वर्णन है।

हनुमान-जन्म-वृत्तान्त—हनुमान को शाप दिया गया था कि उन्हें बल का स्मरण नहीं होगा। जाम्बवान् उन्हें स्मरण दिलाते हैं जिससे कि वे अपनी शक्ति से परिचित होकर समुद्र पार जा सकें।

कृत्तिवास ने हनुमान से सम्बन्धित कई कथाओं का वर्णन किया है।[1] विस्तार-भय से मानस में इन घटनाओं का वर्णन नहीं है। अध्यात्म-रामायण में भी नहीं है।

कृत्तिवास के अनुसार संक्षिप्त-वर्णन इस प्रकार है—

हनुमान पवन के अवतार हैं। वाल्मीकि रामायण में अंजनी और पवन के आलिंगन-स्वरूप उनकी उत्पत्ति मानी गयी है, किन्तु कृत्तिवास ने इसे स्वीकार नहीं किया। जन्म के उपरांत हनुमान सूर्य को पका-फल समझ कर खाने दौड़े, राहु इन्द्र के पास दौड़ा गया। इन्द्र ऐरावत लेकर आ धमके। हनुमान ने सूर्य को छोड़कर ऐरावत पर आक्रमण कर दिया। इन्द्र ने वज्र-प्रहार कर हनुमान को मूर्च्छित कर दिया।

एक और कथा है; हनुमान के पिता ने प्रभास-तीर्थ में ऋषियों को कष्ट देने वाले धवल-हाथी का संहार कर महाबली पुत्र का वर प्राप्त किया था। (कृत्तिवासी-रामायण, सुन्दरकांड, पृ० २१४-२१५)

---

१ वाल्मीकि-रामायण (दाक्षिणात्य-संस्करण) उत्तरकांड, सर्ग—३३, ३४, ३६ में हनुमान से सम्बन्धित एवं कृत्ति० रामायण में वर्णित सभी प्रसंगों का वर्णन है।

सुन्दर-कांड

मैनाक, सुरसा एवं सिंहिका की कथाएँ दोनों रामायणों में लगभग समान हैं। मानस में हनुमान सौजन्य-वश मैनाक का अनुरोध रखने के लिए स्पर्श मात्र कर चले जाते हैं। कृत्तिवासी-रामायण में वे विश्राम नहीं करते। कृत्तिवासी-रामायण में मैनाक और इन्द्र के संघर्ष का भी वर्णन है। सुरसा और सिंहिका की कथा में भी समानता है। मानस में संक्षिप्त वर्णन है, जबकि कृत्तिवास में मानस की अपेक्षा कुछ अधिक विस्तार है।

लंकिनी—वाल्मीकि-रामायण[1] एवं अध्यात्म-रामायण[2] में लंका-नगरी राक्षसी का रूप धारण कर लंका की रक्षा करती है।

मानस में लंकिनी नामक राक्षसी को लंका नगरी का साक्षात् रूप नहीं बताया गया है, किन्तु कथा समान है। वह हनुमान को प्रवेश करने से वर्जित करती है। वे उस पर मुष्टि-प्रहार करते हैं। रक्त-वमन करती हुई लंकिनी ब्रह्मा द्वारा दी गयी पहचान का उल्लेख करती है कि जब तू बानर द्वारा ताड़ित होगी, तो रावण का सर्वनाश होगा।[3]

कृत्तिवासी-रामायण में हनुमान की भेट लंकिनी से न होकर उग्र-चंडा अथवा चामुंडा से होती है। चामुंडा बड़ा भयंकर रूप-धारण किये हैं। वे खर्पर, खांडा और मुंडमाल धारिणी शिवजी की प्रिया हैं। हनुमान ने भीत होकर पूछा—'माता, यहाँ क्यों हो?' वे उत्तर देती हैं, 'जब ब्रह्म ने स्वर्ण-लंकापुरी का सृजन किया था, तभी से मैं इसकी रक्षा करती हूँ। जब तक राम का अवतार नहीं होता और बानर दूत बन कर नहीं आता, तब तक शंकर जी ने यहाँ निवास करने के लिए कहा है।' चामुंडा हँसती हुई वहाँ से कैलाश चली गयीं।[4]

कथा-वर्णन से स्पष्ट है कि लंका—राक्षसी का रूप—परिवर्तन कर चामुंडा कर दिया गया है। यह परिवर्त्तन शाक्त-प्रभाव के कारण कृत्तिवास के पहले ही वृहद्धर्म-पुराण[5] में हो चुका था।

भक्त-विभीषण—कृत्तिवासी-रामायण में हनुमान विभीषणादि राक्षसों के भवन देखते हुए निकल जाते हैं। किसी के यहाँ रुकते नहीं हैं। किसी से मिलते भी नहीं।

मानस में विभीषण-भेंट विशेष महत्त्व रखती है। भ्रातृ-द्रोह से बचाने के लिए विभीषण को पहले से ही भक्त बना कर राम में अनुरक्त दिखा दिया; और हनुमान से मिला दिया। बेचारा दाँतों के बीच जीभ के समान दयनीय-जीवन व्यतीत कर रहा था, राम की शरण जाने पर भक्त ही सिद्ध होता है, भ्रातृ-द्रोही नहीं। तुलसी ने उसके घर का वातावरण ही राम-मय बना दिया है।

---

१ वाल्मीकि-रामायण—अहं हि नगरी लंका—५-३-३०।

२ अध्यात्म-रामायण—लंकापुरी साक्षाद्राक्षसी वेष-धारणी—५-१-४३।

३ मानस—४, ३, १-८।

४ कृत्तिवासी-रामायण—चामुंडा-प्रसंग—सुन्दर-कांड, पृष्ठ २२२—२२३।

५ वृहद्धर्म-पुराण—अध्याय २०—पूर्व खंड।

(१) रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाय।
नव तुलसिका बृंद तहं देखि हरष कपिराय ॥ ५–५
(२) राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा।—५–५–३।

आनन्द-रामायण में विभीषण को राम-कीर्त्तन में रत पाया जाता है।[१]

कृत्तिवास ने भी विभीषण को भ्रातृ-द्रोह से बचाने की चेष्टा की है, जिसका वर्णन उन्होंने गौड़ीय-संस्करण (वाल्मीकि रामायण) के आधार पर किया है, इसका वर्णन आगे होगा।

मानस का विभीषण ही हनुमान को सीता-दर्शन की युक्ति बतलाता है।[२] अध्यात्म-रामायण में लंकिनी द्वारा ज्ञात हुआ। वाल्मीकि-रामायण एवं कृत्तिवासी-रामायण[३] में वे स्वयं ढूँढ़ लेते हैं।

रावण का कामावेश—दोनों रामायणों में रावण सीता को प्रसन्न करना चाहता है, किन्तु सीता खूब खरी-खरी सुनाती हैं। रावण मारने को दौड़ता है तो मंदोदरी बचा लेती है।

इस समानता के अतिरिक्त कृत्तिवास ने स्वतन्त्र कल्पना भी की है—रावण पहले तो मारने को दौड़ता है फिर सीता को देख कर उनके मोह में अचेतन हो जाता है और खांडा फेंक कर उन्हें बल-पूर्वक पकड़ने दौड़ता है (बलात्कार करना चाहता है।)[४]

इसी समय मंदोदरी उसे पकड़ कर नल-कूबर के शाप की याद दिलाती है तथा कहती है कि नारी-स्पर्श करते ही प्राण निकल जायेंगे।

अवधि—कृत्तिवासी-रामायण[५] में रावण सीता को दो-मास की तथा मानस[६] में एक मास की अवधि दे जाता है। वाल्मीकि-रामायण में भी दो-मास की अवधि दी है।

हनुमान-सीता-भेंट—कृत्तिवासी-रामायण में हनुमान पहले छिप कर राम-कथा सुनाते हैं, फिर आत्म-प्रकाश कर प्रतीति के लिए अंगूठी देते हैं। मानस में पहले अदृश्य रहकर अंगूठी टपका देते हैं, फिर प्रकट होकर परिचय देते हैं।

संदेश के आदान-प्रदान के पश्चात् कृत्तिवासी-रामायण में हनुमान सीता को अपनी पीठ पर चढ़ाकर ले जाना चाहते हैं और उन्हें अपनी शक्ति से आश्वस्त करने के लिए विराट् रूप दिखाते हैं।[७] मानस के हनुमान ने भी 'कनक भूधराकार भयंकर[८]' शरीर दिखाया

---

१ आनन्द-रामायण—दृष्ट्वा विभीषणं रामकीर्त्तनेतृष्ट मानसम्—१–६–२४।

२ मानस—जुगुति विभीषण सकल सुनाई। ५–७–५

३ कृत्ति० रामा० पृ० २२५—सुन्दर कांड।

४ कृत्ति० रामा०–रावण सीतारे देखि मोहे अचेतन।
खाण्डा फेलि जाय बले धरिते तखन ॥ (पृ० २२७, सुन्दर कांड)

५ कृत्ति० रामा०— दुइ मासे रावण दियाछे प्राणदान। (सुन्दरकांड, पृ० २३१)

६ मानस— मास दिवस महं कहा न माना।
तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना ॥ ५–६–६

७ कृत्ति० रामा०, सुन्दरकांड, पृष्ठ २३१।

८ कनक भूधराकार सरीरा।
समर भयंकर अति बलबीरा ॥ मानस, ५–१५–८

है, किन्तु वहाँ उनका उद्देश्य राम-सैन्य की शक्ति से परिचित कर सीता को मुक्ति की आशा प्रदान करने के लिए है ।

कृत्तिवासी-रामायण में सीता हनुमान की पीठ पर बैठ कर जाने के लिए प्रस्तुत नहीं हुई । दो कारण बताये हैं—(१) सागर पार करते समय डरकर नीचे गिर सकती हैं । (२) पर-पुरुष का स्पर्श कैसे करें । कृत्तिवास सीता की शुद्धता दर्शित करने के लिए उन्हें पर-पुरुष के स्पर्श से बचाने के लिए सजग दिखायी पड़ते हैं । उत्तर-कांड में भी वे अपनी सफाई देते समय कहती हैं, मैंने शिशुकाल से ही किसी पुरुष का स्पर्श नहीं किया है । हनुमान के साथ न जाने का तीसरा कारण भी बताती हैं—(३) रावण के समान ही क्या मेरी चोरी करोगे, उसे मारकर मेरा उद्धार करो तभी बहादुरी है ।[1] यहाँ क्षत्राणी बोल उठी है ।

लंकादाह—अशोक वन उजाड़ने से लेकर हनुमान-रावण-संवाद तक के वर्णन में समानता है । विभीषण ही हनुमान को मृत्युदंड से बचाता है । दंड-स्वरूप पूँछ में आग लगायी जाती है ।

विभीषण-का-गृह—दोनों रामायणों में विभीषण का घर जलने से बच जाता है । वाल्मीकि-रामायण में लिखा है—वर्जयित्वा महातेजा विभीषणं गृहं प्रति-५-५४-१६ । विभीषण का घर क्यों छोड़ दिया ! संभवतः इसलिए कि उसने रावण को नीति की शिक्षा देकर हनुमान के प्राण बचाये थे ।

कृत्तिवासी-रामायण में न जलने का कारण ब्रह्मा का वर बताया है । कुंभकर्ण का घर भी नहीं जला, क्योंकि एक तो वह पेड़ों की आड़ में था, दूसरे उसकी मृत्यु युद्ध के समय लिखी थी[2] । मानस के अनुसार भक्त होने के कारण विभीषण का घर बच गया है ।

हनुमान के न जलने का कारण—कृत्तिवासी-रामायण में सीता ने प्रथम भेंट में ही हनुमान को आग से न जलने का वर दे दिया है । इसके अतिरिक्त लंका-दाह के समय उन्होंने अग्नि से प्रार्थना भी की थी—'यदि मैं मनसा-वाचा-कर्मणा सती होऊँ तो हनुमान जलने से बच जाए ।

काय मनो वाक्ये यदि आमि हइ सती ।
तवे तव ठांइ हनु पावे अव्याहति ।।—सुन्दर०, पृ० २३७

---

१ केमने तोमार पृष्ठे आमि हव स्थिर ।
सागरे पड़िले खावे हाङ्गर कुमीर ।।
पर पुरुषे स्पर्श नाहिं लय मन ।
कि करिव बले धरि आनिल रावण ।।
रावणेर मते कि करिवे मोरे चुरी ।
ताके मारि उद्धारह तवे बाहादुरी ।। (कृत्ति० रामा० सुन्दर० पृ० २३१)

२ ब्रह्मावरे विभीषणेर गृह नाहि पोड़े ।
कुम्भकर्ण गृह बांचे गाछेर आओड़े ।।
× × ×
युद्ध करि मरिवार निर्व्वन्ध जे आछे ।
तेंइ अन्य घर पोड़े तार घर बांचे ।। (कृत्ति० रामा०, सुन्दरकांड, पृ० २३८–३९)

वाल्मीकि-रामायण में भी सीता ने अग्नि से शीतल हो जाने की प्रार्थना की थी।[1]

मानस में परब्रह्म राम को छोड़ कर भला अन्य कौन ऐसी शक्ति हो सकती है जो हनुमान को जलने से रोकती। राम ने स्वयं अग्नि का निर्माण किया है तब वह उनके दूत को कैसे जला सकता है—

ताकर दूत अनिल जेहि सिरजा।
जरा न सो तेहि कारन गिरिजा ।।५–२५–७

वन्दरों के कृष्णमुख होने का कारण—वाल्मीकि-रामायण एवं मानस में हनुमान समुद्र में कूद कर पूँछ की आग बुझा लेते हैं। कृत्तिवासी-रामायण में भी हनुमान ने अपनी पूँछ समुद्र में फेंकी, नहीं बुझी तो सीता के पास गये। सीता ने मुख के अमृत से बुझाने को कहा। हनुमान ने वैसा ही किया, पूँछ की आग बुझ गयी, किन्तु मुख जल गया। तब सीता के पास कातर होकर पहुँचे। माँ, तुम्हारे कार्य के लिए आने पर मेरा मुख जल गया। जाति-बिरादरी के लोग देख कर हँसेंगे इसका बड़ा दुःख है। सीता बोली, जाति में कोई न बचेगा, सभी के मुँह काले हो जायेंगे।[2]

पशु—पक्षियों की शारीरिक-विशेषताओं के साथ राम-कथा का सम्बन्ध जोड़ने के लिए इस प्रकार की कथाओं की सृष्टि हुई है। लोक के लिए ऐसे कथानक रुचिकर होते हैं।

विभीषण का लंका-त्याग—दोनों रामायणों में विभीषण रावण को समझाता है कि सीता को लौटा दो। कृत्तिवास का विभीषण नित्य कुस्वप्न देखता है, वह राम की शक्ति से भीत एवं रावण के अनिष्ट की संभवना से चिंतित है। मानस का विभीषण केवल राम-भक्त होने के कारण वैदेही को वापस करने की बात कहता है साथ ही 'प्रभु' राम का भजन करने के लिए अनुरोध करता है—

देहु नाथ प्रभु कहुँ बैदेही।
भजहुँ राम बिनु हेतु सनेही ।।५–३८–६।

कृत्तिवास ने भी उसे भक्त माना है, यद्यपि उसकी राम-भक्ति-भ्रातृ-भक्ति से बढ़ कर कहीं नहीं दिखाई देती, रावण के पद-प्रहार से अचेतन हो जाने पर राक्षस कहते हैं—राम अपना तिरस्कार भले सह लें, अपने भक्त का अपमान नहीं सह सकते।[3]

विभीषण को भ्रातृ-दोह के कलंक से बचाने के लिए कृत्तिवास अधिक सक्रिय जान पड़ते हैं। इसीलिए उन्होंने विभीषण के प्रति रावण की ज्यादती दिखाई है। विभीषण

१ वाल्मीकि-रामायण ५, ५३, २७–३३

२ सीता बले जाति वर्ग केह नाहि छांड़ा।
मम वाक्ये सकलेर हवे मुख पोड़ा ।।
(कृत्ति० रामा०, सुन्दर०, पृ० २३९)

३ वरञ्च सहेन राम निज तिरस्कार।
भक्त अपमान ना सह्य हय तांहार ।। सुन्दर०, पृ० २४६

के बार-बार समझाने से क्रुद्ध रावण खड्ग हाथ में लेकर सिंहासन से कूद पड़ता है और विभीषण की छाती पर इतने जोर से पदाघात[1] करता है कि वह अचेतन हो जाता है।

विभीषण अचेतन हइया ताहाय।
हड़ित धरणी तले छिन्न तरु प्राय ।।सुन्दर०, पृ० २४६

चैतन्य-लाभ करने पर जब वह पुनः समझाता है तो रावण कहता है, तुझे ईर्ष्या होती है, मैं लोक-पति हो गया हूँ, सो तुझे अच्छा नहीं लगता। तू इसी समय लंका छोड़ दे। तेरे लंका छोड़ने से ही में सुखी होऊँगा।[2]

इस प्रकार रावण ने ही विभीषण को लंका छोड़ने के लिये वाध्य कर दिया। तुलसी विभीषण के सामने इतनी उग्र-परिस्थिति रखने में समर्थ नहीं हुए। मानस का विभीषण भी नम्रता के साथ रावण को बार-बार मनाता है, रावण उस पर चरण प्रहार करता है—

(१) तात चरन गहि मांगउं राखहु मोर दुलार।
सीता देह राम कहुँ अहित न होइ तुम्हार ।।५-४०

× × ×

(२) अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा।
अनुज गहे पद बारहिं बारा ।।५-४०-६

बस विभीषण के लिए मार्ग खुल गया, वह राम के चरण-जलजात का चिंतन करता हुआ भाव-विह्वल चला जा रहा है—देखहउं जाइ चरन जल जाता—५-४१-६

विभीषण का कैलास-गमन—वाल्मीकि-रामायण के गौड़ीय-संस्करण में विभीषण राम से न मिल कर पहले कुबेर के पास जाता है। कृत्तिवास ने इस प्रसंग से प्रेरणा लेकर इसे और भी बढ़ा कर प्रस्तुत किया है। कृत्तिवास दिखाना चाहते हैं कि वह एकदम जाकर राम से नहीं मिल गया। ऐसा करता तब तो यही सिद्ध होता कि संकट के समय अपनी महत्त्वाकाक्षांओं को चरितार्थ करने के लिए उसने रामाश्रय ग्रहण किया था। वह दुविधा में पड़ा है। अंत में निश्चय करता है कि रावण के विनाश के उपरांत ही राम के पास जायगा। तब तक किसी निर्जन कानन में बैठ कर राम के चरणारविन्द का ध्यान करना चाहता है।[3]

---

१ पदाघात वाल्मीकि-रामायण के गौड़ीय-संस्करण सर्ग ५ में है।
महाविद्य त्गुण कृष्णः सनाद इव तोयदः।
आसनात् तूर्णमुत्पत्य पदा चाभिजघान तम्।
रावणः क्रोध संरागादासनस्थं विभीषणम् ।।५-८६-२
अभवत् पतितो भूमावासनात् स विभीषणः ।। (५-८६। ३ गौ० : ०)

२ हइयाछि आमि जे ईश्वर लोकपति।
भाल ना लागिल तोरे ओरे दुष्टमति ।।
जाह जाह लंका तुमि एइ क्षणे।
तुमि गेले आमरा थाकि व सुखी मने ।।सुन्दर०, पृ० २४७

३ सुन्दर कांड, पृष्ठ २४८

इधर शंकर जी को ध्यान द्वारा पता लगा कि विभीषण अपने अग्रज कुबेर से मिलने आ रहा है, तो वे बैल पर सवारी कर पार्वती-सहित कुबेर के यहाँ जा धमके और कुबेर को पहले ही समझा दिया कि विभीषण को राम के पास भेजना है[1]। यहाँ शंकर-पार्वती का संवाद तथा राम-गुण-गान तुलसी के शैव-वैष्णव-समन्वय की याद दिला देता है।

कुबेर के परामर्श से विभीषण चिंतित हो गया। वह अपयश के भय से राम की शरण में नहीं जाना चाहता। शंकर प्रह्लाद का उदाहरण देकर तथा राम के अवतार का उद्देश्य 'साधिते भक्तेर सुख नाशिते सङ्कट'—(गीता के शब्दों में परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्······४, ८') बता कर उसे राम के पास भेज देते हैं।

सेतु बंध—वाल्मीकि-रामायण के अनुसार दोनों भाषा-रामायणों में राम तीन दिन तक उपवास करते हैं[2], किन्तु सागर को सहायता न करता हुआ देखकर कुपित हो जाते हैं। कृत्तिवासी-रामायण के अनुसार वे अग्निबाण छोड़ कर समुद्र का जल दग्ध करने लगते हैं। मानस में शर-संधान कर समुद्र के हृदय में अन्तर्ज्वाला उत्पन्न करते हैं, तभी व्याकुल होकर वह प्रकट होता है।

पद्मपुराण[3] उत्तर-खंड में राम समुद्र सोख कर उसे फिर वारुणास्त्र से भर देते हैं। कृत्तिवासी-रामायण इसी पुराण से कुछ समानता रखती हुई जान पड़ती है। तुलसी ने वाल्मीकि-रामायण का अनुसरण किया है। उनका अमोघ-बाण खाली नहीं जा सकता। अतएव वाल्मीकि-रामायण एवं मानस में उनके द्वारा उत्तरतट-वासी खलों का नाश कर दिया गया है।

नल का शाप अथवा वरदान—कृत्तिवासी-रामायण में तथा मानस में भी नल के वरदान का उल्लेख है। कृत्तिवासी-रामायण में वह कहता है 'जब मैं जनक के यहाँ था तो ब्रह्मा को मानसरोवर के तट पर पूजा की सामग्री के साथ पूजा करते देख मैं उसे सरोवर में फेंक देता था। उन्होंने वरदान दिया—'तेरा छुआ हुआ पत्थर भी पानी में तैरने लगेगा'—

आमि वर दिव तोरे शुनरे वानर।
तुइ छुंले जले जेन भासये पाथर।। सुन्दर०, पृ० २५५

आनन्द-रामायण में इसी प्रकार का वर्णन है, केवल ब्रह्मा के स्थान पर द्विज एवं पूजा की सामग्री के स्थान पर शालिग्राम की मूर्त्ति है।

---

१ वाल्मीकि-रामायण के गौड़ीय-संस्करण से भी परिवर्त्तन किया है। इसके अनुसार शंकर-पार्वती में परस्पर वार्त्तालाप नहीं होता और न वे कुबेर को पहले से समझा रखते हैं। जब विभीषण को आता देखते हैं, तभी कहते हैं कि इसे राम के पास भेजना है। राम के ब्रह्मत्व का भी चित्रण नहीं है—

(५-६१-११ से १६)

२ कृत्ति० रामा०—तिन उपवास गेल ना देखि सागरे सु०, पृ० २५४
मानस — बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीत। ५-५७

३ पद्मपुराण — उत्तरखंड, अ० २६६-२६५-६६

मानस में पूरी कथा नहीं है। सागर कहता है—

नाथ नील नल कपि द्वौ भाई।
लरिकाईं रिषि आशिष पाई।।
तिन्ह कें परस किएं गिरि भारे।
तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे।। ५-५९-१, २

मानस में नल-नील दोनों भाई सेतु बनाते हैं, कृत्तिवास में केवल नल। वाल्मीकि-रामायण[१] में नल विश्वकर्मा का पुत्र माना गया है, इसीलिए सेतु बनाने में समर्थ है।

नल-हनुमान-विवाद—कृत्तिवासी-रामायण में नल और हनुमान के विवाद का वर्णन है। सेतु-निर्माण के समय कर्मी के स्वभावानुसार नल बाएं हाथ से पत्थर लेता है। हनुमान क्रुद्ध होते हैं, देखें इसमें कितना बल है। वे गंधमादन को तोड़ कर, रोम-रोम में पत्थर बाँध कर तथा दोनों हाथ, सिर और पूँछ से चार-चार पत्थर एक साथ उठाकर आकाश-मार्ग से चल पड़ते हैं। नील घबड़ा कर भागता है और राम के पास पहुँचता है। राम बीच में बाधा दे कर समझा देते हैं।[२]

इस प्रसंग में लोक कथा का प्रभाव है।

गिलहरी को वरदान—कृत्तिवासी-रामायण में एक और प्रसंग है, जिसका वर्णन मानस आदि ग्रंथों में नहीं है। जब सेतु बन रहा था, गिलहरियाँ (काष्ठ-बिड़ाल) समुद्र में कूद-कूद कर तथा बालू में लोट कर उसे पुल पर झाड़ने लगीं। जिससे पुल की संधियाँ भरने लगीं। हनुमान यातायात करते समय उन्हें समुद्र में फेंकने लगे। सबने मिल कर राम से प्रार्थना की, उन्होंने हनुमान को बुलाकर कहा—गिलहरियों का अपमान क्यों करते हो ? जिसकी जितनी सामर्थ्य हो करने दो।[३]

उत्तर-भारत में भी गिलहरी के सम्बन्ध में लोक-कथा का प्रचार है। उसमें इतना और भी बताया जाता है, कि राम ने गिलहरी की पीठ पर हाथ रखा, जिससे तीन धारियाँ बन गयीं। कृत्तिवासी-रामायण में भी लोक कथा की प्रेरणा जान पड़ती है।

रावण के दूत—दूत भेजने में दोनों रामायणों में वाल्मीकि-रामायण से अपने-अपने ढंग में परिवर्त्तन हुआ है। वाल्मीकि-रामायण में दो बार दूत भेजे जाते हैं—

(१) पहली बार शार्दूल और शुक को भेजा है। इस समय राम ने सेतु नहीं बाँध पाया है। शुक सुग्रीव को फाड़ने के लिए आया था।[४] सेतु बनने तक यह बन्दी रहा, इसके पश्चात् राम ने रावण के प्रति संदेश सुना कर उसे छोड़ दिया।[५]

---

१ वाल्मीकि-रामा० -६-२२-४४

२ कृत्ति० रामा० सुन्दर पृ० २५६.

३ काष्ठ विड़ालेर केन कर अपमान ।।
जेमन सामर्थ्य जार वान्धुक सागर। सुन्दर०, पृ० २५७।

४ अहं यत्र हरं भार्यां राजपुत्रस्य धीमतः।
किं तत्र तव सुग्रीव किष्किन्धां प्रति गम्यताम्।। (वाल्मी० रामा० ६-२०-११)

५ वाल्मीकि-रामायण ६-२४-२४

मानस में दूत भेजने का यही अवसर चुना है। शुक राम के पास पहुँचता है तो उनका रूप देख कर आत्म-विस्मृत हो जाता है,[१] और पकड़ा जाता है। राम की दुहाई देने पर छोड़ दिया जाता है। इसी के हाथ लक्ष्मण रावण के पास पत्र भेजते हैं। अध्यात्म-रामायण के अनुसार मानस में भी शुक को शाप-ग्रस्त मुनि माना है।[२]

गौड़ीय संस्करण में शुक की कथा के इन सर्गों का अभाव है, अतएव इनका चित्रण कृत्तिवासी-रामायण में नहीं हुआ है।

(२) वाल्मीकि-रामायण में राम के सुवेल पर्वत पर आ जाने पर रावण फिर दूत भेजता है—इनके नाम हैं शुक और सारण। ये दोनों रावण के मंत्री हैं। कृत्तिवासी-रामायण में भी इसी अवसर पर शुक और सारण भेजे जाते हैं। उन्हें सुग्रीव से युद्ध करना पड़ता है। बन्दी होकर अन्त में राम की कृपा से वे छूट जाते हैं। रावण से राम की प्रशंसा कर भर्त्सित होते हैं।

शिवलिंग-स्थापना—कृत्तिवास ने सुन्दर-कांड तथा तुलसी ने लंका-कांड में शिवलिंग की स्थापना करायी है। दोनों में ही सेतु बन जाने के उपरान्त लिंग की स्थापना होती है। दोनों लेखकों ने इस प्रसंग को पुराणों से ग्रहण किया है। अनेक पुराणों में शिव-प्रतिष्ठा युद्ध के पश्चात् की गयी है। स्कंद-पुराण[३] में दो बार स्थापना का उल्लेख है। कृत्तिवास स्कंद-पुराण से ही प्रभावित जान पड़ते हैं। क्योंकि उन्होंने दो बार स्थापना करायी है। मानस में केवल एक बार उल्लेख हुआ है।

कृत्तिवासी-रामायण में नल राम की आज्ञा से देवल का निर्माण करता है जिसमें श्वेतवर्ण शिव की स्थापना होती है। हनुमान कुबेर के सरोवर से पद्म ला देते हैं। पूजा के समय स्वयं शंकर जी उपस्थित होकर राम के हाथ पकड़ लेते हैं।[४]

मानस में भी शिव-लिंग की स्थापना की जाती है। किन्तु स्वयं शंकर उपस्थित नहीं होते। दोनों ग्रंथों के प्रसंग एवं संवादों से प्रकट होता है कि दोनों का उद्देश्य शैव-वैष्णव समन्वय करना है।

कृत्तिवासी-रामायण में लंका से लौटे हुए राम शंकर की पूजा करते हैं। लक्ष्मण बालू के शंकर बनाते हैं। राम सीता-सहित उन्हें पूजते हैं।[५]

भस्म-लोचन-वध—जब राम-सेना समुद्र पार कर गयी तो रावण ने भस्मलोचन को भेजा। यह राक्षस जिसे देख भर लेता वही जल कर राख हो जाता। आँखों पर चर्माच्छादन लगा कर तथा चर्माच्छादित रथ में सवार होकर राम के पास आया। विभीषण की युक्ति के अनुसार राम ब्रह्मास्त्र पर दर्पण लगा कर असंख्य दर्पण उसके सामने प्रस्तुत

---

१ अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ—मानस ५-५१-१।

२ रिषि अगस्ति की शाप भवानी।
राछस भयउ रहा मुनि ग्यानी॥मानस—५-५६-११

३ स्कंद-पुराण, ब्राह्म-खंड अ० ७ और ४४।

४ कृत्ति० रामा०, पृ० २५८, सुन्दर-कांड।

५ कृत्ति० रामा०, पृ० ४४८, लंका०।

कर देते हैं। राक्षस अपना ही प्रतिबिंब देख कर स्वयं जल कर भस्म हो जाता है।[१] यह कथा केवल कृत्तिवासी-रामायण में वर्णित है और किसी रामायण में नहीं पायी जाती।

कृत्तिवास ने लंका-कांड में इसका दुबारा वर्णन किया है। इसे ब्रह्मा ने वर दिया था। पहले वाले प्रसंग से इतना अंतर है कि इस बार राम दर्पणास्त्र द्वारा सभी वानरों के मुखों में दर्पण लगा देते हैं। वह आकर अपना ही मुख देख कर जल जाता है। एक बार का वर्णन ही पर्याप्त था।[२]

मानस में सेतु-बंध और शिवलिंग-स्थापना की कथा लंका-कांड के अन्तर्गत है।

---

१ कृत्ति० रामा०, पृ० २५८-५९ सुन्दर कांड।
२ कृत्ति० रामा०, पृ० ३५७-५८ सुन्दर कांड।

———

युद्ध-कांड

मायामुंड—कृत्तिवासी-रामायण में रावण ने विद्युज्जिह्व नामक राक्षस से राम का सिर एवं धनुष बनवा कर सीता को विश्वास दिलाना चाहा है कि राम की मृत्यु हो गयी—कृत्ति० लंका—पृ० २६७—६६। वाल्मीकि-रामायण में ऐसा ही वर्णन है। विभीषण की पत्नी सरमा सीता को समझाती है, फिर सत्यता का पता लगाने के लिए पक्षी बन कर जाती है। वाल्मीकि-रामायण के 'लीनया गगने शून्ये"—६—३३—७ से ही कृत्तिवास को पक्षी बनाने की कल्पना मिली होगी। मानस में और अध्यात्म-रामायण में यह प्रसंग नहीं है।

रावण-पराभव—दोनों भाषा रामायणों के इस चित्रण का आधार एक जान पड़ता है। अध्यात्म-रामायण के पाँचवें सर्ग में राम रावण के छत्र-मुकुट काट फेंकते हैं।[1] कृत्तिवास ने भी कुछ-कुछ इससे मिलता-जुलता वर्णन किया है। रावण अपने दुर्ग से राम की सेना का निरीक्षण कर रहा है। विभीषण रावण को पहिचान कर राम को सुझाते हैं कि वे शर-संधान कर रावण को मार डालें। राम जैसे ही बाण चढ़ाते हैं वह डर कर भाग जाता है—

धनुर्ब्बाण लये राम करेन संधान।
ताहा देखि सत्वरे पालाय दशानन।।पृ० २६३, लंका०

मानस में इस प्रसंग का विस्तृत एवं सुन्दर चित्रण है। राम सुवेल पर्वत पर सुग्रीव की गोद में लेटे हुए हैं। चंद्रमा संबंधी उक्तियों द्वारा उपस्थित लोगों के मनोविज्ञान का अच्छा चित्रण है। इसी समय दक्षिण दिशा की ओर बिजली-शोभित बादल की गुरु-गंभीर-ध्वनि सुन कर राम ने विभीषण से जिज्ञासा की। विभीषण ने समझाया, आप रावण के छत्र को बादल, मंदोदरी के ताटंक को बिजली एवं वाद्य-ध्वनि को मेघ-गर्जन समझ रहे हैं। राम ने उसका अभिमान समझ कर बाण-द्वारा छत्र एवं ताटंक काट गिराये।

छत्र मुकुट ताटंक तब हते एक ही बान।
सब के देखत महि परे मरमु न कोउ जान।। (५-१३. क)

वाल्मीकि-रामायण में भी रावण का पराभव दर्शित किया गया है, किन्तु उसका रूप इन सभी प्रसंगों से भिन्न है। सुबेल-पर्वत पर जब राम-सेना पड़ाव डाले है, सुग्रीव रावण को देखता है। नील जीमूत संकाशं हेम संछादिताम्बरम्—६—४०—५ से ही संभवतः तुलसी को बादल आदि की प्रेरणा मिली है। सुग्रीव छलांग लगा कर उसके पास पहुँच जाता है और मल्ल-युद्ध में उसे परास्त कर लौट आता है। साथ में उसके मुकुट भी ले आता है।

---

१ श्वेतच्छत्रसहस्राणि किरीटदशकं तथा।
चिच्छेद निमियार्धेन तदद्भुतमिवाभवत्।।
(अध्यात्म-रामायण ६—५—४४)

हर-पार्वती-कोन्दल—[1] कृत्तिवासी-रामायण में हर-पार्वती का झगड़ा दिखाया गया है। पार्वती कहती हैं, तुम भंगेड़ी हो, सेवक की चिन्ता नहीं करते। शंकर भी अप्रसन्न होकर कहते हैं, तुम वामा जाति की हो। राम विष्णु-अवतार हैं, रावण की रक्षा नहीं हो सकती। ऐसा वर्णन रामायणों में नहीं है। यह बंगाल की शिवायन-धारा का प्रतीक है।

अंगद का दूतत्व—दोनों रामायणों में अंगद का दूतत्व संस्कृत-नाटकों के आधार पर है। अध्यात्म-रामायण में यह प्रसंग आया ही नहीं है, वाल्मीकि-रामायण में जो प्रसंग आया है उससे इन भाषा-कवियों का प्रसंग परिवर्द्धित है। परिवर्द्धन दो बातों—(१) संवाद एवं (२) रावण-पराभव-चित्रण में है।

इन दोनों रामायणों में जाम्बवान् की प्रेरणा से अंगद को दूत बना कर भेजा गया है। वाल्मीकि-रामायण में राम मंत्रियों से परामर्श करने के उपरान्त स्वयं निश्चित कर अंगद को भेजते हैं। मूल के अनुसार अंगद को दूत बना कर भेजने में राम की राजनीतिक-चाल रही होगी। वे जाँच करना चाहते थे कि यह पितृ-वध के कारण द्वेष तो नहीं रखता है। मानस में इस प्रकार के संदेह का आभास नहीं है। अंगद केवल 'बुद्धि, बल गुन धाम'[2] होने के कारण भेजा गया। कृत्तिवासी-रामायण में भी संदेह का भाव नहीं है। राम तो हनुमान को भेज रहे थे किन्तु जाम्बवान् ने परामर्श दिया कि हनुमान दुबारा भेजा गया तो रावण क्रुद्ध होगा तथा सोचेगा कि इनके यहाँ और कोई वीर नहीं है। अंगद स्वयं ही कहता है, 'मैं बालि पुत्र हूँ मेरा क्या विश्वास ?'[3]

कृत्तिवासी-रामायण की अंगद–रावण-भेंट में कुछ नवीनता है—

(१) पूँछ की कुंडली—रावण को सिंहासन पर बैठा देख कर अंगद पूँछ को लम्बा कर उसकी कुंडली बना कर बैठता है। आनन्द रामायण[4] में भी ऐसा वर्णन है।

(२) रावण के माया-रूप—रावण ने माया द्वारा अनेक रावण बना दिये। अंगद को सभी सभा-जन रावण दिखायी पड़े, केवल इन्द्रजीत ने पिता का रूप धारण नहीं किया था। अंगद ने उसे ऐसा धिक्कारा तथा रावण के कृत्यों का ऐसा बखान किया कि रावण झेंप कर अपने प्रकृत-रूप में आ गया।[5]

संवाद—दोनों ग्रंथों में संवाद बहुत सुन्दर हैं। वाल्मीकि-रामायण में अंगद केवल अपना संदेश सुनाकर चला आता है, किन्तु इन दोनों ग्रंथों में वह बड़ी-बड़ी बातें सुनाता है। ऐसा वर्णन स्वाभाविक न होते हुए भी जनता के लिए रोचक है। रावण अपनी सभा में बैठा हुआ ऐसे कड़े वचन नहीं सुनता रहा होगा।

---

१ कोन्दल=झगड़ा–कृत्ति०, लंका०, पृ० २७२।

२ मानस–६–१६–६

३ बालिपुत्र आमि से आमार कि प्रत्यय—कृत्ति० रामा०, लं०, पृ० २७३।

४ रावणं बोधयामास सभायां लांगुलासने। २२१—सार-कांड सर्ग १०; आनन्द-रामायण।

५ कृत्ति० रामा०, लंका०, पृ० २७५

कृत्तिवासी-रामायण में अंगद उसे पापी और गोरू कहता है। क्रुद्ध होकर गाली देता है और रावण उसे सुनता रहता है।[1] अंगद यहाँ तक कह देता है कि एक ही थप्पड़ में प्राण-हरण कर लिया जायगा।[2] रावण ऐसा सुनकर केवल अपमान अनुभव कर माथा झुका लेता है।[3]

मानस में भी अंगद उसे 'सठ', 'मति-मंद', 'वंगा[4]' आदि कहता ही है, साथ ही मुख भंजन करने को भी प्रस्तुत है।[5]

दोनों में रावण की पराजयों एवं शूर्पणखा के अपमान पर अंगद द्वारा व्यंग कराया गया है। संवादों में हनुमन्नाटक की छाया है।

सभा में बल-प्रदर्शन—वाल्मीकि-रामायण में अंगद को पकड़ने के लिए रावण आज्ञा देता है। चार राक्षस उसे पकड़ने के लिए बढ़ते हैं। वह चारों को पछाड़ कर तथा अटारी तोड़ कर राम से जा मिलता है।—सर्ग ४१।

भाषा-रामायणकार केवल इतने वर्णन से तुष्ट नहीं हुए। कृत्तिवासी-रामायण में दिखाया गया है कि जब वह प्राचीर तोड़कर बैठा, तो सोच रहा है कि राम के पास कौन-सी वस्तु ले जाय, अंत में रावण के मणिमय-मुकुट लेने के उद्देश्य से वह वहीं से उछाल लगा कर रावण पर झपटता है तथा उसे मल्ल-युद्ध में पछाड़ कर मुकुट[6] ले कर चला जाता है—

रावणेरे आछाड़िया बालिर नन्दन।
मुकुट लइया वेगे उठिल गगन ।। लंका, पृ० २८१

मानस में भी अंगद मुकुट प्राप्त करता है किन्तु बल-प्रर्शन का रूप अन्य प्रकार का है। अंगद पैर रोप देता है जिसे इन्द्रजीतादि राक्षस तक नहीं उठा पाते। जब रावण स्वयं उठाने चलता है, तो वह उसे लज्जित कर देता है कि पैर ही पकड़ना है, तो राम के पकड़। अंगद राम की निंदा सुनकर क्रुद्ध होकर इतने जोर से हाथ पटकता है कि रावण डर कर गिरते-गिरते बचा उसके मुकुट पृथ्वी पर गिर पड़े, अंगद ने उन्हें उठाकर वहीं से राम के पास भेज दिया।[7]

युद्ध-वर्णन—युद्ध के क्रम तथा घटनाओं में दोनों भाषा-रामायणकारों ने पर्याप्त परिवर्त्तन किया है। इनमें परस्पर ही भिन्नता नहीं है, मूल से भी भिन्नता हैं। तुलसी

---

१ कोपे गालि देय से, रावण ताहा शुने—कृत्ति० रामा०, लं०, पृ० २७८
२ एकइ चापड़े तोर लईब परान— ,, ,, २७९
३ अपमाने रावण करिल हेंट माथा— ,, ,, ,,
४ राम मनुज कस रे सठ वंगा। मानस ६–२५–५
५ नाहिं त करि मुख भंजन तोरा। मानस ६–२६–५।
६ वाल्मीकि-रामायण के गौड़ीय-संस्करण की किसी-किसी प्रति में इस प्रकार का वर्णन है—
वायु वेगं समासाद्य रावणस्य ततोऽङ्गदः।
जग्राह मुकुटं वीरः पादमादाय मस्तके ।।
७ कटकटान कपि कुंजर भारी
दुहु भुज दंड तमकि महि मारी ।। मानस ।। ६-३१-३
गिरत संभारि उठा दस कंधर
भूतल पड़े मुकुट अति सुन्दर ।। मानस ६-३१-५

कहीं अध्यात्म-रामायण का अनुसरण करते हैं, कहीं वाल्मीकि-रामायण का, अधिकांश अपनी कल्पनानुसार वर्णन करते हैं, कृत्तिवास वाल्मीकि-रामायण का ही आश्रय लेकर चले हैं, किन्तु देवी-पूजा, मृत्यु-बाण, राक्षसों की भक्ति आदि वर्णनों में उन्होंने वाल्मीकि से भिन्नता प्रकट की है। वाल्मीकि-रामायण के वर्णनों में पुनरुक्तियाँ हैं कथा विश्रृंखलितसी है, कारण संभवतः प्रक्षेप है। कृत्तिवासी-रामायण में भी कुछ अनावश्यक जैसे वर्णन हैं। तुलसी ने अपने वर्णन संक्षिप्त एवं व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किये हैं।

नाग-पाश-बंधन—मानस में यह वर्णन कुंभकर्ण की मृत्यु के पश्चात् आया है। कृत्तिवासी-रामायण में यह वर्णन प्रारम्भ में ही है। वाल्मीकि-रामायण एवं कृत्तिवासी-रामायण में इसका वर्णन विस्तारपूर्वक है।

कृत्तिवासी-रामायण में मेघनाद अदृश्य रह कर बाणों द्वारा राम-लक्ष्मण को जर्जर कर पाश-बद्ध करता है बानर हिम्मत हार गये। सीता को पुष्पक-विमान पर बिठला कर तथा राम-लक्ष्मण को दिखला कर रावण द्वारा यह विश्वास दिलाने का प्रयास किया जाता है कि दोनों की मृत्यु हो गयी। वाल्मीकि-रामायण में सीता को त्रिजटा समझाती है और कृत्तिवासी-रामायण में आकाशवाणी की जाती है कि राम का विनाश नहीं हो सकता।

मानस—में दोनों भाइयों की दीनता का ऐसा चित्रण नहीं है, न ही विस्तार दिया गया है—

ब्याल पास बस भए खरारी।
स्वबस अनंत एक अविकारी ॥ ६–७२–११

स्ववश, अनंत और अविकारी कह देने से पाश-बंधन के फलस्वरूप संकट-ग्रस्त परिस्थिति की गम्भीरता ही नहीं रह जाती। मानस में सीता युद्ध-स्थल में नहीं लायी जातीं। मानस में मेघनाद को विजयी होकर नहीं जाने दिया जाता। जाम्बवान् द्वारा चरण पकड़ कर लंका के भीतर फिकवा दिया गया है।[1]

गरुड़ द्वारा पाश-मोचन—कृत्तिवासी-रामायण में इन्द्र ने पवन से और पवन ने राम से गरुड़ को बुलाने के लिए कहा। स्मरण करने पर गरुड़ आये। वे कुश-द्वीप में अजगर भक्षण कर रहे थे। राम के स्मरण से उनके माथे पर टंकार पड़ी थी।[2]

मानस में गरुड़ को नारद[3] ने भेजा है और वाल्मीकि-रामायण में वे स्वयं आये हैं।

गरुड़-भक्ति—यहाँ तुलसी चूक गये और कृत्तिवास बाजी मार ले गये। भक्ति-प्रदर्शन के ऐसे सुअवसर पर भी उनके गरुड़ कुछ न बोल कर अपना कार्य समाप्त करते ही उड़ जाते हैं। संभवतः अध्यात्म-रामायण में यह प्रसंग न होने के कारण तुलसी प्रेरणा न ले सके।

१ तब गहि पद लंका पर डारा। मानस-६–७३–६

२ कृत्ति० रामा०-लंकाकांड पृ० २६१

३ इहाँ देव रिषि गरुड़ पठायो। मानस—६–७३–१०

वाल्मीकि-रामायण में राम-गरुड़ का सम्बन्ध विष्णु-वाहन का नहीं है। गरुड़ अपना परिचय प्राणों के समान प्रिय सखा[1] बता कर देता है। कृत्तिवासी-रामायण में राम ही उसे सखा कह कर पुकारते हैं किन्तु वह अपने को राम का भृत्य कहते हुए बोलता है—मैं तो गरुड़ पक्षी तुम्हारा वाहन हूँ।[2]

राम का कृष्ण-रूप-धारण—गरुड़ के अनुरोध पर राम ने कृष्ण-रूप धारण किया। वानर न देख पायँ इसलिये गरुड़ ने पंखों से उन्हें ढक लिया। हनुमान ने देख कर प्रतिज्ञा की, इसका बदला कृष्ण-जन्म में लूंगा।[3]

राम-कृष्ण-भक्तों का विवाद ही इस प्रसंग का कारण जान पड़ता है। चैतन्य-भागवत में भी इसी से मिलती-जुलती घटना का वर्णन है।

रावण का प्रथम युद्ध—वाल्मीकि-रामायण एवं कृत्तिवासी-रामायण में इस घटना के पश्चात् ही रावण प्रथम-बार युद्ध करने आता है; किन्तु मानस में वह मेघनाद एवं कुम्भकर्ण की मृत्यु के पश्चात् आता है। इस प्रसंग में बहुत कुछ समानता है, कहीं-कहीं पंक्ति-पंक्ति की समानता है। हनुमान के चपेटाघात से रावण उनकी प्रशंसा करता है तो हनुमान उसका जो उत्तर देते हैं, उसमें समानता है।

(१) कृत्ति० रामा०—हनुमान बले मोर किसेर बाखान।
मोर चापड़े ते तोर रहिल परान ॥ (लंका०, पृ० ३०१)

(२) मानस—धिग धिग मम पौरुष धिग मोही।
जौं तैं जियत रहेसि सुर द्रोही ॥ (६–८३–४)

(३) वाल्मीकि रामा०—धिगस्तु मम वीर्येण यस्त्वं जीवसि रावण। (६–५९–६६)

रावण की शक्ति से दोनों रामायणों में लक्ष्मण मूर्च्छित हुए, उन्हें वह उठाता रहा, न उठा सका। तब हनुमान उठा ले गये। यहाँ तक दोनों वाल्मीकि के अनुसार चले हैं। लक्ष्मण की मूर्च्छा-भंग का रूप भिन्न-भिन्न है। कृत्तिवासी-रामायण में राम ने पलक मारते ही ध्यान द्वारा जिला दिया[4]। मानस[5] में राम लक्ष्मण से कहते हैं—अपने अपने हृदय में समझो तुम तो काल के भी भक्षक एवं देवताओं के त्राता हो। वाल्मीकि-रामायण में वे अपने को विष्णु का अंशावतार समझ स्वयं सचेत हुए हैं।[6]

रामयुद्ध—मानस में लक्ष्मण ही सचेत होकर रावण को घायल करते हैं। वाल्मीकि-रामायण, अध्यात्म-रामायण और कृत्तिवासी-रामायण में राम उससे युद्ध कर चन्द्राकार बाण से उसके दसों मुकुट काट कर छोड़ देते हैं। कहते हैं, आज तू थक गया है, कल आना। मेरा जन्म रघुवंश में हुआ है, मेरा नाम राम है। मैं एक दिन के युद्ध में वैरी नहीं मारता।[7]

१ अहं सखा ते काकुत्स्थ प्रियःप्राणो बहिश्चरः। वा० रा० ६–५०–५६
२ आमि हे गरुड़ पक्षी तोमार वाहन—कृत्ति० रामा० लं० पृ० २६१।
३ कृत्तिवासी-रामायण, लंका-कांड, पृ० २६१।
४ धेयाने जीयान राम चक्षुर निमेषे—कृत्ति० लंका० पृ० ३०४
५ मानस ६–८३–६
६ वाल्मीकि-रामायण ६–५९–१२२
७ कृत्ति०-लंका० ३०४

नील का मूत्र-त्याग—लक्ष्मण पर ब्रह्मास्त्र फेंकने से पूर्व रावण का नील के साथ युद्ध हुआ था। नील लघु-रूप धारण कर कभी रावण की ध्वजा पर बैठता, कभी धनुष पर, तो कभी रावण के मुकुट पर। इस प्रकार रावण को उसने तंग कर डाला। वाल्मीकि-रामायण के अनुसार इतना वर्णन कर लेने पर कृत्तिवास ने स्वतन्त्र उद्‌भावना की कि नील ने नेवले का रूप धारण कर रावण को छका डाला और फिर उसके मस्तक पर प्रस्राव कर दिया। रावण का मुकुट भींग गया। देवता देख कर टिटकारी देने लगे।[1]

रावणादि के शाप और वर—कृत्तिवासी-रामायण में सभा-मध्य-स्थित रावण चिंतित होकर अपने शाप और वरदान पर विचार कर रहा है। शंकर और पार्वती के दर्शन करने जाते समय बानर-मुखी नंदी ने उसे द्वार पर रोक दिया। रावण के उपहास करने पर उसने शाप दिया कि बानर द्वारा तेरी मृत्यु होगी।[2] ब्रह्मा ने भी नर-वानर को छोड़ सभी से अजेय होने का वर दिया। यह भी उसे वर मिला कि कटा हुआ सिर तेरे स्कंध पर पुनः जुड़ जायगा।[3]

आगे विभीषण भी तीनों भाइयों के वरदान मिलने की कथा कहता है। तीनों भाइयों की तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने वर दिये। रावण के वर की चर्चा हो चुकी है। विभीषण को अमर होने का वर मिला। कुम्भकर्ण के संबंध में देवता बड़े चिंतित थे। जब उसके पास ब्रह्मा पहुँचे तो सरस्वती उसकी जीभ पर बैठ गयीं और उसने चिरकाल की निद्रा माँगी। ब्रह्मा ने छः मास की निद्रा और एक दिन के जागरण का वर दिया, साथ ही यह भी कहा कि जिस दिन कच्ची नींद में जगाये जाओगे, उसी दिन संहार होगा।[4] रावणादि के तप-वरदान का वर्णन कृत्तिवासी-रामायण के उत्तर-कांड में फिर हुआ है। मानस में ये वर्णन बाल-कांड के अन्तर्गत हैं।

कुम्भकर्ण—वाल्मीकि-रामायण एवं कृत्तिवासी-रामायण में कुम्भकर्ण के भयंकर रूप एवं निद्रा का वर्णन है। मानस में केवल 'विविध जतन करि ताहि जगावा'[5] लिखा है। कृत्तिवासी-रामायण में विविध-यत्न दिखाये भी गये हैं। घड़ों चन्दन के लेप एवं घड़ों

१ नीलेर विक्रम जेन सिंहेर प्रताप।
रावणेर मस्तके ते करिल प्रस्राव॥
रावणेर मस्तके ते नील वीर मूते।
मुख बये पड़े मूत्र सर्व्व अंग तिते॥
देखिया ता देवगण दिल टिटकारी।
कुपित्त रावण राजा लङ्काअधिकारी॥ (कृत्ति०, लंका०, पृ० ३०२)

२ वानर मुख देखि तुइ कैलि उपहास।
एइ मुखे हवे तोर सवंशे विनाश॥ कृत्ति०-लं०, पृ० ३०५
× ×
सबारे जिनिव रणे मागिलाम वर।
सबे मात्र बाकि छिल नर ओ बानर॥

३ काटा मुण्ड जोड़ा जावे स्कन्धे ते आसिया॥ वही—

४ छय मासे निद्रा एक दिन जागरण।
कांचा निद्रा भङ्ग हले से दिन संहार॥ कृत्ति०-रामा० लं०-पृ० ३०८

५ मानस ६-६१-६

मदिरा ढाल देने पर भी उस पर प्रभाव नहीं पड़ता। तीन-लाख शंख की ध्वनि सुन कर उसकी नाक और भी जोर से बज उठती है। वह श्वास और प्रश्वास से अनेक राक्षसों को नाक के भीतर खींच कर बाहर फेंक देता है—इत्यादि।[1]

कुम्भकर्ण-विभीषण-भेंट—मानस में अध्यात्म-रामायण के अनुसार यह भेंट दिखायी गई है। युद्ध-क्षेत्र में भेंट होने पर वह विभीषण को राम-भक्त जान कर हृदय से लगा लेता है, कहता है—

धन्य धन्य तैं धन्य विभीषण।
भयउ तात निसिचर कुल भूषण॥ मानस ६–६३–८
बन्धु बंस तैं कीन्ह उजागर।
भजेउ राम सोभा सुख सागर॥ मानस ६–६३–१०

कृत्तिवासी-रामायण में यह भेंट नहीं है। वाल्मीकि-रामायण में आधा-युद्ध समाप्त हो जाने के उपरांत यह भेंट होती है। विभीषण उससे युद्ध करने आया है, किन्तु वह भाई की प्रशंसा कर अपने सामने से हट जाने के लिए कहता है।

मेघनाद-युद्ध—कृत्तिवासी-रामायण में मेघनाद के चार युद्ध दिखाये गये हैं और मानस में केवल तीन। युद्धों के क्रमों में भी अन्तर है।

कृत्तिवासी-रामायण में युद्ध इस प्रकार हैं—

(१) प्रथम-युद्ध में राम-लक्ष्मण को नागपाश द्वारा बाँधना,

(२) कुम्भकर्ण-वध के उपरांत राम-लक्ष्मण-समेत समस्त सेना को मूर्च्छित करना या नष्ट करना; हनुमान का ओषधि लाकर सभी को प्राणदान करना,

(३) युद्ध करते करते लंका भाग जाना, वहाँ से माया-सीता लाकर वध करना।

(४) यज्ञ करते हुए युद्ध और मृत्यु।

मानस के अनुसार—

(१) प्रथम-युद्ध में लक्ष्मण के शक्ति मारना,

(२) कुम्भकर्ण-वध के उपरान्त राम लक्ष्मण का नागपाश-बंधन,

(३) यज्ञ करते हुए युद्ध और मृत्यु।

कृत्तिवासी-रामायण के अनुसार लक्ष्मण को शक्ति द्वारा रावण आहत करता है और मानस में मेघनाद। शक्ति वाले प्रसंग का तुलनात्मक अध्ययन आगे किया जायगा।

मानस में माया-सीता लाने वाला युद्ध नहीं हुआ, साथ ही राम-लक्ष्मण समेत समस्त वानर-सेना को भी मूर्च्छित कर देने वाला युद्ध वर्णित नहीं है।

कृत्तिवासी-रामायण में मेघनाद के सभी युद्धों का वर्णन वाल्मीकि के अनुसार हुआ है। वध के पूर्व के दो-युद्धों में कहीं-कहीं परिवर्त्तन किये गये हैं।

वध—निकुम्भला-यज्ञ करने से ही मेघनाद की शक्ति बढ़ जाती थी, अतएव विभीषण के परामर्श के अनुसार लक्ष्मण सेना-सहित लंका में प्रवेश कर उसका यज्ञ-विध्वंस

१ कृत्तिवासी-रामायण, लंका-कांड, पृ० ३०६

करते हैं। यज्ञ की सामग्री आदि का उल्लेख वाल्मीकि-रामायण के अनुसार कृत्तिवासी-रामायण में विस्तार के साथ है। मानस में चौपाई के एक चरण द्वारा ही चित्र खींच दिया है—आहुति देत रुधिर अरु भैंसा।[१]

यज्ञ-विध्वंस का रूप कृत्तिवासी-रामायण में कुछ कुरुचिपूर्ण हो गया है। वानरों का चापल्य प्रदर्शित करने के लिए जहाँ नील को रावण के सिर पर मूत्र-त्याग करता हुआ दिखाते हैं, वहाँ मेघनाद के हवन-कुंड को हनुमान अपने मूत्र की धार से बहा देते हैं—

यज्ञ कुण्ड उपरे ते हनुमान मुते।
फल फूल यज्ञेर भासिया जाय स्त्रोते ।।लं०, पृ० ३७३।

मानस में मेघनाद को मृत्यु के समय भक्त बना दिया है। अंत में वह सब कपट छोड़ कर कहता है—'लक्ष्मण कहाँ है, राम कहाँ है।' ऐसा कहते हुए वह प्राण-त्याग करता है।[२]

मकराक्ष—वाल्मीकि-रामायण में खर के पुत्र मकराक्ष के युद्ध का वर्णन है। कृत्तिवास ने उसमें अपनी ओर से भी जोड़ दिया है। यह राक्षस अपने रथ के आगे-पीछे गायों का समुदाय लेकर आता है। रथ में बैल जोते गये हैं, रथ चारों ओर से गोचर्म द्वारा ढँका है। मुसलमान हिन्दुओं को परास्त करने की इसी प्रकार की युक्तियाँ निकालते रहते थे। राम पवनास्त्र की सहायता से गाय-बैलों को उड़ा कर मकराक्ष का वध करते हैं।[३]

भक्त-राक्षस—वाल्मीकि-रामायण में कई राक्षसों के युद्धों का विस्तृत वर्णन है। कृत्तिवास ने भी वैसा करने की चेष्टा की है। उनके राक्षस युद्ध-क्षेत्र में जाकर जैसा व्यवहार कर बैठते हैं, वह अद्भुत है। इन राक्षसों की भक्ति-विह्वलता देख कर विद्वान् ऐसा सोचने लग गये हैं कि बंगला-रामायण के ये अंश प्रक्षिप्त हैं।

अतिकाय—रावण-पुत्र है। राम की स्तुति करता है, फिर उन्हीं से युद्ध करते हुए मृत्यु चाहता है। सिर कट जाने पर उसका सिर राम-नाम बोलता रहता है।[४]

तरणीसेन—विभीषण-पुत्र है। गंगा-मृत्तिका से अपने शरीर पर लक्ष-लक्ष राम-नाम अंकित कर तथा वाद्यों-द्वारा राम-नाम की जय-ध्वनि के साथ राम पर आक्रमण करता है। संमुख आने पर लम्बी-चौड़ी स्तुति करता है। राम को विचलित देखता है तो गाली-गलौज करने लगता है। मरने पर इसका भी कटा हुआ सिर राम-नाम बोलता है। विभीषण के परिचय देने पर रामादि सभी विलाप करते हैं।[५]

वीर-बाहु—इसकी भी स्थिति तरणीसेन जैसी है। इसका भी कटा हुआ सिर राम-नाम बोलता है, विभीषण उसे उठा कर राम के पद-तल में डाल देता है।

भूमिते पड़िया मुण्ड राम नाम बले।
विभीषण दिल मुण्ड राम पद तले ।।लंका०, पृ० ३६५।

---

१ मानस—६-७५-१
२ रामानुज कहँ रामु कहँ अस कहि छांड़ेसि प्रान—मानस ६-७६
३ कृत्तिवासी-रामायण, लंका-कांड, पृ० ३४४
४ अतिकाय—कृत्ति०-लंका०, पृ० ३२४
५ तरणी सेन—कृत्ति०-लंका०—पृ० ३४६-३५४

लक्ष्मण को शक्ति—लक्ष्मण-शक्ति का विस्तृत वर्णन दोनों रामायणों में बहुत कुछ मिलता है, केवल युद्ध के स्थल एवं शक्तिहंता में अन्तर है।

(१) स्थल—मानस में युद्ध प्रारम्भ होने के दूसरे दिन ही लक्ष्मण को शक्ति लगती है। कृत्तिवासी-रामायण में कुम्भकर्ण-मेघनाद आदि प्रमुख राक्षसों के संहार के पश्चात्। स्थल की दृष्टि से मानस एवं अध्यात्म-रामायण में समानता है तथा कृत्तिवासी-रामायण की समानता वाल्मीकि-रामायण से है।

(२) शक्ति-हंता—मानस में शक्ति मेघनाद ने फेंकी है, कृत्तिवासी-रामायण में रावण ने। वाल्मीकि-रामायण एवं अध्यात्म-रामायण में भी शक्ति-हंता रावण ही है। विभीषण की रक्षा के लिए लक्ष्मण ने शक्ति अपने ऊपर ले ली है।

मूर्च्छित-लक्ष्मण—मानस में मूर्च्छित-लक्ष्मण को शक्ति-हंता मेघनाद उठाना चाहता है, किन्तु नहीं उठा पाता। कृत्तिवासी-रामायण में यह प्रसंग वाल्मीकि-रामायण के अनुसार रावण के प्रथम-युद्ध के समय दिखाया गया है, जहाँ वह लक्ष्मण को उठाने की चेष्टा करने पर भी उठा नहीं सका। मानसादि सभी रामायणों में हनुमान ही उन्हें उठा ले जाते हैं।

वैद्य-सुषेण—मानस में सुषेण लंका के वैद्य बताये गये हैं जिन्हें हनुमान जाम्बवान् के कहने से भवन समेत उठा लाये हैं।[१] हनुमन्नाटक में भी ऐसा है।[२] कृत्तिवासी-रामायण में सुषेण नामक एक वानर वैद्य है, जो सदैव उपचार करता रहता है। वाल्मीकि-रामायण में सुषेण को सुग्रीव का श्वसुर बताया गया है।[३]

कालनेमि—कालनेमि का वृतांत वाल्मीकि-रामायण के दो संस्करण गौड़ीय एवं पश्चिमोत्तरीय में है जिसका ही प्रभाव हमारे दोनों भाषा-रामायणकारों पर है। हनुमन्नाटक में भी कालनेमि की कथा है। कृत्तिवासी-रामायण में कालनेमि हनुमान से डरा हुआ है, अतएव रावण के आदेश-पालन में आनाकानी करता है।[४] मानस में वह राम को काल के भक्षक एवं समर में अपराजेय मानता है, हनुमान को भी वह साधारण नहीं समझता।[५]

मकरी-वध—कपट-मुनि कालनेमि द्वारा हनुमान का सरोवर-स्नान के लिए भेजना तथा मकरी का उद्धार करना, दोनों रामायणों में समान है। वह अभिशप्त-अप्सरा थी। कृत्तिवासी-रामायण में उसका नाम भी बताया गया है—गंधकाली। अध्यात्म-रामायण में वह धान्यमाली है। कृत्तिवास की गंधकाली तपरत दक्ष-मुनि से टकरा जाने के कारण अभिशप्त हुई थी।[६]

---

१ जामवंत कह बैद सुषेना। लंका रहइ को पठई लेना॥
धरि लघु रूप गयउ हनुमंता। आनेउ भवन समेत तुरन्ता॥ मा०-६-५४-७

२ वैद्यं सुषेणमधुनैव तदानत्वं
लंकापतेरनुचरोऽपि......हनु०. अंक १३, ७

३ सुषेणं श्वसुरं पार्श्वैसुग्रीवस्तुमुवाच ह- वाल्मी० रामा०- ६-५०-२३

४ कृत्तिवासी-रामायण लंका-कांड, पृ० ३८५

५ मानस–६–५५–४

६ कृत्तिवासी-रामायण. लंकाकांड, पृ० ३८७

कालनेमि और हनुमान का मल्ल-युद्ध और कालनेमि की मृत्यु कृत्तिवासी-रामायण में वर्णित है। मानस में हनुमान सरोवर से लौट कर उसे पूँछ में लपेट कर मार डालते हैं, वह मरते समय राम-राम कहता है। वर्णन अध्यात्म-रामायण के अनुसार है।[1]

सूर्य को बन्दी करना और गंधर्वों से युद्ध—कृत्तिवास के इन दो प्रसंगों का उल्लेख-मात्र भी मानस में नहीं है। कृत्तिवासी-रामायण में रावण सभी देवताओं को बुला कर डाँटता है और सूर्य से कहता है कि तुम समय-असमय का ध्यान छोड़कर अभी उदित हो जाओ, जिससे लक्ष्मण की मृत्यु हो जाय। वे उदित होने चले तो हनुमान ने उन्हें पकड़ कर बगल में दबा लिया।

इसी प्रकार गंधर्वों के चढ़ाई करने पर उन्हें हनुमान ने परास्त किया। उनके राजा हाहाहूहू भी हार गये।

सूर्य को बन्दी बनाने का प्रसंग हनुमन्नाटक अंक १३ से लिया गया है। हनुमान राम के कहने से सूर्य को प्रणाम कर मुक्त कर देते हैं।

पर्वत-उत्पाटन—हनुमान ओषधि न खोज पाने से पर्वत ही उखाड़ लाये।[2]

(१) कृत्तिवासी-रामायण—औषध ना पाय हनु भावे मने मन।

(लंका० पृ० ३०)

चौसट्टि योजन सेइ गिरवर खान।
एक टाने उपाड़िल वीर हनुमान॥

(लंका० पृ० ३६१)

(२) मानस—देखा सैल न औषध चीन्हा।
सहसा कपि उखारि गिरि लीन्हा॥

(६–५७–७)

हनुमान-भरत-भेंट—मानस के अनुसार हनुमान का अयोध्या से होकर जाने का कोई विशेष उद्देश्य न था, किन्तु कृत्तिवासी रामायण के अनुसार वे भारत की बल-परीक्षा करना

---

१ कह कपि मुनि गुर दछिना लेहू।
पाछें हमहि. मंत्र तुम देहू॥
सिर लंगूर लपेटि पछारा।
निज तनु प्रगटेसि मरती बारा॥ मानस ६-५७-४-५
गृहाण दक्षिणामेतामित्युक्त्वा निजघान् तम्
विसृज्य मुनिवेषं स कालनेमिर्महासुर :॥ ६-७-३१ अध्या० रामा०

२ (१) ओषधीं नावगच्छामि तामहं हरि पुङ्गव॥
वाल्मीकि० ६-१०२-३२
(२) तदिदं शिखरं कृत्स्नं गिरेस्तस्याहृतं मया।
वाल्मीकि० ६-१०२-३३
अदृष्टा चौषधीस्तत्र गिरिमुत्पाट्य सत्वर ६-७-३४
अध्यात्म-रामायण

चाहते थे।[1] वशिष्ठादि से आवेष्ठित भरत पादुकाओं पर चँवर डुला रहे थे। उन्हें यह बुरा लगा कि कोई विशाल-जन्तु पादुका का उल्लंघन करे। अतएव उन्होंने शत्रुघ्न के बचपन में खेलने की ८० मन की बाँटुल धनुष पर चढ़ा कर मारी जो हनुमान के पैरों में लगी, वे मूर्छित होकर गिर पड़े।[2] मानस में भी भरत ने हनुमान को 'निसिचर' जान कर बिना फल का बाण मारा है।[3] पृथ्वी पर गिरते ही वे राम-राम कहने लगे।

कृत्तिवासी-रामायण—भूमे पड़े करे हनु श्रीरामेर स्मरण—लंका०, पृ० ३६२

मानस— परेउ मुरुछि महि लागत सायक।
सुमिरत राम राम रघुनायक॥ ६-५८-१

मानस में भरत को अति-विह्वल दिखाया है। वे जब शपथ करते हैं तथा दीनता दिखाते हैं तो हनुमान उठ बैठते हैं। कृत्तिवासी-रामायण में वशिष्ठ उन्हें अपने मंत्र-बल से सचेत करते हैं। हनुमान राम की पूरी कहानी सुना जाते हैं जो निरर्थक एवं पुनरुक्ति-दोष-युक्त है। तुलसी बीती हुई कथा नहीं दुहराते।

कृत्तिवासी-रामायण में हनुमान भरत को जली-कटी भी सुनाते हैं। तुमने राज्य छीना, रावण ने नारी छीन ली, और अब तुमने मुझे मार कर अपना वैर-भाव प्रकट कर दिया है।[4]

भरत-द्वारा सहायता—मानस में भरत यह सोचते हैं कि हनुमान को जाने में बिलम्ब न हो जाय, नहीं तो काम बिगड़ जायगा, इसलिये अपने बाण पर बिठाल कर राम के पास पहुँचा देना चाहते हैं। हनुमान के मन में अभिमान हुआ, वाह, मेरे भार से बाण किस प्रकार चल सकता है। अंत में वे भरत को प्रणाम कर तथा उनके प्रताप की प्रशंसा कर चले आये।[5]

---

१ राम भ्राता भरतेर बूझे जाब बल। कृत्ति०, लंका०, पृ० ३६१

२ आशी मन लङ्ग बांटुल धनु गुणे जुड़ि।
जय राम बलिया बांटुल दिल छांड़ि॥
पदेर तालुका भागे बाजिल बांटुल।
मूर्च्छित हइला हनु, बुद्धि हैल भूल॥कृत्ति० रामा०, लं०, पृ०३६२

३ देखा भरत बिसाल अति निसिचर मन अनुमानि।
बिनु फर सायक मारेउ चाप श्रवन लगि तानि॥
(मानस ६-५८)

४ तुमि राज्य निलेहे रावण निल नारी।
× × ×
आमारे मारिये तव एइ हैल लाभ।
प्रकाश हैल राम सङ्गे वैर भाव॥ कृ०, रा०, लं०, पृ० ३६३

५ सुनि कपि मन उपजा अभिमाना।
मोरे भार चलिहि किमि बाना॥
राम प्रभाव बिचारि बहोरी।
बंदि चरन कह कपि करि जोरी॥मानस ६-५६-७-८

कृत्तिवासी-रामायण में स्वयं हनुमान कहते हैं, 'इस स्थिति में मैं पर्वत ले जाने में सर्वथा असमर्थ हूँ। यदि एक योजन ऊपर तक पहाड़ उठा दिया जाय तो संभवतः मैं उठा कर ले जा सकूँ'। हनुमान ने भरत के बल की परीक्षा करनी चाही थी। इसीलिए उन्होंने भरत को कड़े शब्द कहे होंगे। अयोध्या के ऊपर से निकले भी इसीलिए थे कि राम के भाई का बल देख सकें। भरत ने कान तक बाण खींच कर पर्वत को सौ योजन उठा दिया। अब हनुमान भरत की प्रशंसा करने लग गये।[1]

राम-विलाप—दोनों रामायणों में राम का विलाप अत्यधिक मार्मिक है। दोनों की उक्तियों में साम्य है, क्योंकि दोनों पर वाल्मीकि-रामायण की उक्तियों का प्रभाव है।

रावण द्वारा प्रेरित राक्षस—लक्ष्मण के उपचार के पश्चात् मानस के हनुमान को केवल एक कार्य करना रह गया था—सुषेण-वैद्य को लंका में पहुँचाना। कृत्तिवास के हनुमान को पर्वत भी यथास्थान पहुँचाना था। रावण ने वापस जाता जान कर सात राक्षस पीछे लगा दिये जिन्हें हनुमान ने पूँछ से लपेट कर मार डाला।[2]

महीरावण-अहीरावण-बध—कृत्तिवास ने इनकी कथा का जो रूप लिया है वह किसी पुराण अथवा राम-साहित्य से नहीं मिलता। तुलसी के एक प्रक्षेप में अहिरावण की कथा है जिसमें हनुमान अपने पुत्र मकरध्वज से युद्ध करते हैं, फिर परिचय होने के उपरान्त अहिरावण का संहार करते हैं। तुलसी का यह प्रक्षेप आनंद-रामायण से मिलता है।

कृत्तिवास ने महीरावण को मंदोदरी गर्भोत्पन्न रावण-पुत्र माना है, जो पातालपुरी का शासक है। रावण के स्मरण करने पर उसके मस्तक पर टंकार होती है और वह खड़ी से मंत्र लिख कर स्मरण करने वाले का पता लगाता है। फिर सुरंग निर्माण कर पिता के समक्ष उपस्थित होता है। विभीषण पक्षी बन कर पिता-पुत्र की मंत्रणा जान आते हैं और हनुमान पर राम-लक्ष्मण की रक्षा का भार सौंपते हैं। हनुमान ने सारी सेना पूँछ के कोट के भीतर कर ली; सुदर्शन-चक्र ने आकाश में पहरा देना प्रारम्भ किया और नल ने पाताल का। विभीषण इधर-उधर घूम कर चौकसी करने लगे। महीरावण अनेक रूप धारण करने के उपरान्त भी हनुमान को धोखा देने में समर्थ न हुआ। अन्त में विभीषण बन कर राम-लक्ष्मण को चुरा ले गया। हनुमान ने भी लज्जित एवं क्षुब्ध होकर उसका संधान किया। वहाँ महामाया-योगाद्या के सुझाये उपाय से महीरावण को मार कर राम-लक्ष्मण का उद्धार किया। उसकी विधवा रानी ससैन्य युद्ध करने लगी। उसके पेट में लाठी मारने से अहीरावण का जन्म हुआ। यह विकट-शिशु पैदा होते ही लड़ने लगा। हनुमान ने इसे भी मार डाला।[3]

---

१ शतेक योजन उर्द्ध्वे तुलि दिया बाणे।
हनुमान भरतेर विक्रम बाखाने॥
(कृत्तिवासी-रामायण, लंका-कांड, पृ० २१३)

२ आनंद-रामायण सार-कांड-सर्ग ११ में भी यह वर्णन है।

३ महीरावण-अहीरावण कृत्ति० रामा० लं० ३६६-४०६ पृ० तक।

संभवत: महामाया का प्रभाव बढ़ाने के लिए कृत्तिवास ने यह प्रसंग जोड़ा होगा; क्योंकि उन्होंने कहा भी है कि उसमें इतनी शक्ति महामाया के ही कारण थी। इस प्रसंग में शाक्त-वैष्णव संघर्ष भी नहीं आने पाया है। राम को आया जान कर महामाया स्वयं उनके पक्ष में आ जाती हैं। तुलसी के प्रक्षेप में तो हनुमान चरण-प्रहार कर देवी को पाताल भेज देते हैं।

जैमिनभारत, आनन्द-रामायण एवं अन्य ग्रंथों में इन राक्षसों का जो वृत्तांत पाया जाता है, वह कृत्तिवासी-रामायण के वृत्तांत से नहीं मिलता। कृत्तिवासी-रामायण का वर्णन भी विस्तृत है, लगभग १३ पृष्ठ—व्यापी है।

राम-रावण-युद्ध—मानस में रावण पहली बार सबको मृत्यु हो जाने पर आता है और लक्ष्मण को ब्रह्मास्त्र से घायल करता है, वे अपने ही आप सचेत भी हो जाते हैं। इसके पश्चात् बाल्मीकि-रामायण के अनुसार मानस में भी वह यज्ञ करता है। अंगदादि बानर जाकर यज्ञ-विध्वंस करते हैं। रावण का ध्यान भंग न होने पर वे अंत:पुर की स्त्रियों का केश-कर्षण[1] करते हैं और इस प्रकार रावण को क्रोधवंत कर लौट आते हैं।

कृत्तिवासी-रामायण में लेखक की दृष्टि राम की शक्ति-पूजा की ओर हो गयी प्रतीत होती है। रावण-यज्ञ-विध्वंस के स्थान पर शक्ति-पूजा की भूमिका तैयार की गयी है।

मानस में राम-रावण के केवल दो युद्ध हुए हैं, दूसरे युद्ध में उसका वध हुआ है। कृत्तिवासी-रामायण में उसका वध चौथे युद्ध में होता है। इन्द्र मातलि को रथ-सहित सभी रक्षसों की समाप्ति हो जाने पर भेजते हैं, अर्थात् मानस में दोनों के प्रथम-युद्ध के समय एवं कृत्तिवासी-रामायण में द्वितीय-युद्ध के समय।

रावण की भक्ति—कृत्तिवासी-रामायण का तृतीय-युद्ध अपना विशेष-महत्त्व रखता है। राम से युद्ध करते-करते जब रावण पस्त हो जाता है, तो धनुष पृथ्वी पर फेंक कर राम की स्तुति करने लगता है। राम भी उसकी स्तुति से विचलित होकर धनुषबाण फेंक देते हैं।

देवता चिंतित हुए, उन्होंने सरस्वती को रावण के पास भेजा। उनके कंठ पर बैठने से रावण गालियाँ देने लगा, जिससे राम क्रुद्ध होकर पुनः युद्ध करने लगे।[2]

राम की शक्ति-पूजा—राम से युद्ध करते समय रावण व्याकुल होकर दुर्गा का स्तवन करने लगा। हेमवती अम्बा आर्द्र हो गयीं, उन्होंने रावण को गोद में ले लिया। रावण के सामने समस्या उत्पन्न हुई, अब क्या किया जाय।

---

१ नहिं चितव जब करि कोप कपि महि दसन लातन्ह मारहीं।
धरि केस नारि निकारि बाहेर तेऽतिदीन पुकारहीं॥
तब उठेउ क्रुद्ध कृतांत सम गहि चरन बानर डारई।
× × ×
(६—८४—छंद—मानस)

२ कृत्तिवासी-रामायण, लंका कांड, पृ० ४१५—१६।

अकाल-बोधन—देवता चार-मास सोते हैं, देवी की पूजा बसंत में होती है। रावण के वध के लिए राम ने उनका उद्बोधन किया। हनुमान १०८ श्वेत-पद्म लाये, जिनमें देवी ने एक चुरा लिया। राम अधीर हो उठे, उन्होंने अपना एक नेत्र ही पद्म के स्थान पर चढ़ा देना चाहा। देवी ने प्रसन्न होकर रावण को जीतने का वर दिया।[1]

आधार—कालिका-पुराण[2] में ब्रह्मा द्वारा देवी का अकाल-बोधन हुआ है। वृहद्धर्म-पुराण[3] में स्वयं लंका की अधिष्ठातृ-देवी चंडिका अकाल-बोधन के संबंध में हनुमान को बताती है। देवी-भागवत-पुराण[4] में राम नारद के कहने से देवी का पूजन करते हैं। देवी सिंह पर आरूढ़ होकर राम को दर्शन देती हैं, तथा रावण के वध का वर देती हैं।

इन पुराणों में अंबिका द्वारा रावण को गोद में लेने, देवी द्वारा राम को प्रतारित करने तथा राम का अपना एक कमलाक्ष प्रदान करने आदि का मार्मिक चित्रण नहीं हुआ है।

चंडी की अशुद्धि—लंका में रावण के मंगलार्थ वृहस्पति को चंडी-पाठ करना पड़ता था। हनुमान चंडी-अशुद्ध करने गये। उन्होंने मक्खी का रूप धारण कर पोथी के दो अक्षर चाट लिये। वृहस्पति को श्लोक कंठस्थ थे अतएव वे शुद्ध पाठ कर गये, चंडी का पाठ अशुद्ध नहीं हुआ। उन्होंने भयानक रूप-धारण कर वृहस्पति को भयभीत कर प्रथम महात्म्य-स्तोक के तीन श्लोक पोंछ दिये। अब चंडी रावण को निराश कर कैलास चली गयीं।[5]

रावण के नवीन भुज-शीश—मानस में राम, रावण के सिर और भुजाएँ कई बार काटते हैं, किन्तु वे पुनः पुनः नवीन-रूप से उग आते हैं।

प्रभु बहु बार बाहु सिर हए।
कटत झटिति पुनि नूतन भए॥ ६–९१–२२

कृत्तिवासी-रामायण में भी राम ने रावण के सिर १०० बार काटे, वे पुनः नये हो गये।

शत बार काटिलेन रावणेर माथा।
काटिवा मात्रे ते उठे तिल नाहि व्यथा। लंका०, पृ० ४१७

इस रामायण में भुजाओं का काटना नहीं लिखा है। वाल्मीकि—रामायण में भी भुजा नहीं सिर ही काटा जाता है, जो बार-बार उग आता है। कृत्तिवास ने जोश में

१ कृत्तिवासी-रामायण-लंका०-समस्त प्रसंग पृ० ४१७–४२६
२ कालिका-पुराण–६२।२५
३ वृहद्धर्म-पुराण-पूर्व-खंड, अध्याय २०
४ देवी–भागवत-पुराण-३।३०।४१–५८
५ कृत्तिवासी–रामायण, लंका०,पृ० ४२६

आकर यह अवश्य कह दिया कि उसका शरीर बीच से काट डाला गया, फिर भी उसके कटे अंग जुड़ गये।[१]

रावण-वध—रावण के नये सिर निकलने से राम तंग आ गये। राम ने जिस उपाय का आश्रय लेकर रावण का वध किया, उसमें सभी रामायणों में भिन्नता है।

मानसकार मानते हैं कि रावण के नाभिकुण्ड में अमृत है, जिससे कि वह जीवित रहता है, विभीषण ने भेद बताया—

नाभि कुंड पियूष बस याकें।
नाथ जिअत रावनु बल ताकें ॥ ६–१०१–५

राम इकतीस बाण मार कर एक से नाभिकुंड सोख लेते हैं, शेष तीस से दस सिर और बीस भुजाएँ काट गिराते हैं।[२]

(मानस का आधार अध्यात्म-रामायण है, जिसमें आग्नेयास्त्र द्वारा नाभिकुंड सोख कर, एक सिर दो बाहु छोड़ कर सभी सिर और भुजाओं का काटा जाना लिखा है। अंत में मातलि के याद दिलाने पर उन्होंने ब्रह्मास्त्र से हृदय फाड़ कर मार डाला।)[३]

कृत्तिवासी-रामायण में रावण-वध का वर्णन वाल्मीकि-रामायण से भी भिन्न है। कृतिवास ने कुछ मतांतरों का वर्णन किया है—

(१) एक कथा में मतांतर है कि नाभि-देश के भेदन करने पर ही रावण की मृत्यु होगी।

(२) किसी-किसी मतांतर के अनुसार शिव ने रावण को वर दिया था कि रण-स्थल में हस्त, पद, देह और मुंड कट जाने पर शंकर उन्हें पुनः जोड़ देंगे।

(३) कृत्तिवास कहते हैं कि पुराणों में अनेक मत हैं, किस में इतनी शक्ति है कि सभी का वर्णन करे। वाल्मीकि के अनुसार वर्णन करते हुए उन्होंने रावण के

---

१ कृत्तिवासी-रामायण, लंका० पृ० ४१७

२ खैंचि सरासन श्रवन लगि छाड़े सर एकतीस। ६–१०२

× × ×

सायक एक नाभि सर सोषा।

अपर लगे भुज सिर करि रोषा।

३ नाभिदेशेऽमृतं तस्य कुण्डलाकार संस्थितम् ॥ अ०६–११–५३

तच्छोषयानतास्त्रेण तस्य मृत्युस्ततो भवेत् ,, ५४

विसृज्यास्त्रं वधायास्य ब्राह्मं शीघ्रं रघूत्तम ,, ६१

विभेद हृदयं तूर्णं रावणस्य महात्मनः ,, ७१

मृत्यु-बाण का वर्णन किया है। किन्तु सत्यता यह है कि वाल्मीकि-रामायण में इस प्रकार के मृत्यु-बाण का वर्णन नहीं हुआ है।[1]

मृत्यु-बाण—ब्रह्मा ने रावण को ब्रह्मास्त्र देकर कहा था, इसी से तुम्हारी मृत्यु होगी। रावण ने वह बाण मंदोदरी को दिया और मंदोदरी ने उसे स्तंभ में चुनवा दिया। विभीषण से यह वृत्त ज्ञात कर तथा राम से आज्ञा लेकर हनुमान ज्योतिषी का रूप धारण कर मंदोदरी के पास गये और वह बाण ठग लाये।[2] राम ने मंत्र पढ़कर तथा विश्वामित्र का स्मरण कर इसी बाण से रावण का हृदय चीर दिया—

रावणेर बुके विन्धि कैल दुइ चीर। कृत्ति०, लं०, पृ० ४२६।

वाल्मीकि रामायण में मातलि ने राम को ब्रह्मास्त्र की याद दिलायी। यह अस्त्र उन्हें अगस्त्य से प्राप्त हुआ था। इसी से रावण का हृदय वेध दिया।[3]

मृत्यु-बाण का स्वरूप—बाण का मुख हंसाकार था, समस्त बाण स्वर्ण-निर्मित एवं-कृष्ण-वर्ण था। इसके मुख में गुप्त रूप से अग्नि थी। पशुपति मध्य में बैठे थे, पवन इसका संचालन कर रहे थे, यम भी अलक्षितरूप से बाण के ऊपर विराजमान थे। नाना पुष्प-माल्य से यह सज्जित किया गया था। संधान के पूर्व इसके मुख में ब्रह्म-अग्नि जलने लगी और यह महाशब्द करता हुआ गरजने लगा[4]।

मंदोदरी को सुहाग का वर और रावण की प्रज्ज्वलित चिता—रावण-वध के उपरांत प्रणाम करती हुई मंदोदरी को राम ने जन्मायति (सौभाग्यवती) होने का वर दे दिया। जब ज्ञात हुआ तो लज्जित होकर बोले, 'तुम रावण की चिता सदैव प्रज्ज्वलित रखो, इससे तुम्हारा सुहाग चिरकाल तक स्थिर रहेगा।'

सत्य मोर कथा, रावणेर चिता
ज्वालिए राखो आयत। लंका० पृ० ४३५.

---

१ आर एक मत कथा कहे मतान्तरे ॥
सेइ अस्त्रे नाभि देश भेदिवे जखन।
तखनि से रावणेर हइवे पतन ॥
कोन मतान्तरे बले शिव दिला वर।
रावणे राखिवे शिव संग्रामे भितर ॥
हस्त पद देह मुण्ड काटा जावे जवे।
कुड़ाये शङ्कर वये अङ्गे जोड़ा दिवे ॥
पुराण अनेक मत के पारे कहिते।
विस्तारिया कहि शुन वाल्मीकिर मते ॥ कृ०, लं०, पृ० ४२७

२ मृत्युबाण, वर्णन, कृत्ति०, लं०, पृ० ४२७–२८

३ विसृजास्मै वधाय त्वमस्त्रं पैतामहं प्रभो। वाल्मीकि० ६–११?–?
यमस्मै प्रथमं प्रादादगस्त्यो भगवानृषिः। —वही—४
बिभेद हृदयं तस्य रावणस्य दुरात्मनः। —वही—१८।

४ कृत्तिवासी-रामायण, लंका०, पृ० ४२६

इस प्रकार मंदोदरी के सुहाग को चिरस्थायी बनाने के लिए रावण की चिता सदैव जलती रहेगी। आनंद-रामायण [1] में भी चिता जलती रहती है।

कृत्तिवास ने यह भी लिखा है कि वाल्मीकि ने पुराणों के अनुसार जान लिया था कि रावण की मृत्यु होगी, किंतु भय के कारण वे लिख न सके। उन्होंने लिखा कि रावण रण-स्थल में महा-शयन करेगा [2]।

रावण की राजनीति-शिक्षा—यह प्रसंग भी केवल कृत्तिवासी-रामायण में है, मानस में नहीं है। राम-लक्ष्मण को भेज कर राजनीति की शिक्षा लेना चाहते हैं। वह दो शिक्षाएँ देता है—

(१) अच्छे काम में देर नहीं करनी चाहिए और

(२) बुरे काम में देर करनी चाहिए।

वह तीन काम करना चाहता था, जिनके पूर्ण करने में उसने देर लगायी—

(१) नरक-कुंड भरना,

(२) लवण-समुद्र सुखा कर उसे दधि-दुग्ध और घृत से भर देना, और

(३) स्वर्ग के लिए पथ-निर्माण करना।

सीता-हरण जैसे बुरे कार्य में उसने देर नहीं लगायी, इसलिए उसका संहार हुआ।[3]

अग्नि-परीक्षा—रावण-वध के उपरांत जब विभीषण सीता को राम के पास लाये, उस समय राम के प्रचंड-रूप का वर्णन वाल्मीकि-रामायण में किया गया है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से राम का यह रूप स्वाभाविक है, किंतु आदर्श की दृष्टि से भाषा-रामायण-कारों को यह रूप मान्य नहीं हुआ। सीता जैसी साध्वी के प्रति राम ने जो व्यवहार किया वह उचित नहीं ठहरता, वहाँ राम आवश्यकता से अधिक कठोर हैं। वे कर्त्तव्यनिष्ठ अधिक हैं, शील-परायण कम; किंतु भाषा-रामायणकारों को तो राम के शील-रूप की रक्षा करनी है, अतएव उन्होंने कथा में परिवर्त्तन भिन्न-भिन्न रूप से किया है।

(१) मंदोदरी का शाप—कृतिवासी-रामायण में सीता प्रसन्नता के साथ राम से मिलने की तैयारी कर रही हैं, उसी समय मंदोदरी आकर शाप देती हैं—'तुम मुझे अनाथ कर आनन्द के साथ राम-संभाषण के लिये जा रही हो। तुम्हारा यह आनन्द अकस्मात् निरानंद हो जायगा और राम तुम्हें विष-दृष्टि से देखेंगे।[4] अब राम दोष-मुक्त हो गये, उन्होंने जो कठोरता प्रदर्शित की, वह केवल शाप के कारण।

---

१ अध्याय-४ में चिता जलने की प्रेरणा का वर्णन हो चुका है।

२ कृत्तिवासी-रामायण, लंका०-कांड, पृ० ४२६

३ कृत्तिवासी-रामायण, लंका कांड, पृ० ४३०-३२

४ तोमा लागि हइलाम आमि अनाथिनी ।।

....

आनन्दे चलेछ तुमि राम सम्भाषणे ।।
ए आनन्दे निरानन्द हवे अकस्मात् ।
विष दृष्टे तोमारे हेरिवे रघुनाथ ।। कृत्ति०, लंका०, पृ० ४३६।

शाप की कल्पना गौड़ीय-संस्करण (वाल्मीकीय-रामायण) के तारा वाले शाप से मिली है। पाताल-प्रवेश की घटना से राम को दोष-मुक्त करने के लिए तारा-शाप गढ़ा गया और अग्नि-परीक्षा से राम की कलंक-मुक्ति के लिए कृत्तिवास ने मंदोदरी का शाप गढ़ लिया।

(२) मानस में कठोरता प्रदर्शित करते ही नहीं, क्योंकि अग्नि-परीक्षा तो बहाना है। राम असली सीता चाहते हैं। जिस सीता का हरण हुआ और जो उनके सामने खड़ी है, वह तो नकली सीता है। पाठक जब यह समझ लेता है, तो वह भी दुःखी नहीं होता। इसीलिए तुलसी ने यह प्रसंग मार्मिक बनाने की चेष्टा नहीं की। तुलसी पर यहाँ अध्यात्म-रामायण का प्रभाव है–

सीता प्रथम अनल महुँ राखी।
प्रगट कीन्हि चह अंतर साखी॥ ६-१०७-१४
तेहि कारन करुनानिधि कहे कछुक दुर्बाद। ६-१०८.[1]

राम का अप्रिय व्यवहार एवं वचन—वाल्मीकि रामायण में सीता को देखते ही राम के नेत्र लाल हो गये। वे विभीषण से बोले–'सीता को सभी बानरों एवं राक्षसों के बीच से बिना परदे के ले जाओ।'[2] कृत्तिवास एवं तुलसी ने राम की उग्र-मूर्ति को नम्र बनाकर इस प्रसंग को दूसरी दृष्टि से प्रस्तुत किया है। जनकजा राजपत्नी हैं, प्रजा के लिए वे जननी तुल्य हैं, अतएव उन्हें सभी के सामने आने दो।

कृत्तिवासी रामायण—
राजार गृहिणी हय प्रजार जननी।
माता के देखिवे पुत्र इहाते कि हानि॥
॥लंका कांड पृ० ४३६॥

मानस—
कह रघुवीर कहा मम मानहु।
सीतहिं सखा पयादें आनहु॥
देखहु कपि जननी की नाईं।
बिहसि कहा रघुनाथ गोसाईं॥
॥६-१०७-११,१२॥

अध्यात्म-रामायण[3] में ऐसा वर्णन है। दोनों रामायणों पर इसका प्रभाव जान पड़ता है।

---

१ रामोऽपि दृष्ट्वा तां माया सीतां कार्यार्थ निर्मिताम्॥
(अध्यात्म ० ६-१२-७५)
अवाच्यवादान्बहुशः प्राह तां रघुनन्दनः।
(अध्यात्म ० ६।१२।७६)

२ वाल्मीकि-रामायण-युद्धकांड, सर्ग ११७

३ पश्यन्तु वानराः सर्वे मैथिलीं मातरं यथा॥६-१२-७३
पाद चारेण सायातु जानकी मम सन्निधम्।६-१२-७४

अमृत वर्षा—दोनों ग्रन्थों में अमृत-वर्षा से बानरों का जीवित होना वर्णित है। राक्षस राम-नाम लेकर मरने के कारण मुक्त हो गये थे, अतएव जीवित न हो सके।

(१) कृत्तिवासी-रामायण—

(१) सुधा वृष्टि हय मृत वानर उपरे।
(२) वानरेर मृत देह पाइल जीवन। लंका०, पृ० ४४४
(३) (राक्षस) मुक्ति पद पाइयाछे राम नाम गुण।
उद्धार हइया गेछे बाँचिवे केमेन ।।पृ० ४४५।।

(२)मानस—

सुधा वृष्टि भै दुहु दल ऊपर।
जिए भालु कपि नहिं रजनीचर।।
रामाकार भए तिनके मन।
मुक्त भए छूटे भव-बन्धन ।।६-११३, ५, ६

वाल्मीकि-रामायण में केवल बानरों का जीवन-लाभ करना दिखाया गया है, राक्षसों की मुक्ति के बारे में नहीं कहा गया है। इन दोनों भक्त कवियों ने राम-नाम के महत्त्व के लिए इसे भी जोड़ दिया। अध्यात्म-रामायण में केवल इतना कहा है—नोत्थिता राक्षसास्तत्र पीयूष स्पर्शनादपि।[1]

मानस का लंका कांड गुह-मिलन तक समाप्त हो जाता है। कृत्तिवासी-रामायण एवं अध्यात्म-रामायण में राम के राज्याभिषेक तक की घटनाओं का वर्णन लंकाकांड में हुआ है। इस कांड के तुलनात्मक-अध्ययन में भी राम के राज्याभिषेक एवं राम-राज्य वर्णन तक की कथावस्तु का वर्णन है।

राम का प्रत्यावर्तन—दोनों रामायणों के प्रसंग मिलते हैं। कृत्तिवासी-रामायण में कुछ ऐसे प्रसंग हैं, जो मानस में नहीं हैं।

(१) सेतु-भंग—सीता राम से कहती हैं, मेरा उद्धार हो गया, अब इस सेतु का क्या होगा। राक्षस इस सेतु से होकर पृथ्वी पर आयेंगे और यहाँ के प्राणियों को खा जायेंगे। सागर भी प्रकट होकर कहता है, कि आपका बाँधा हुआ सेतु तीनों युगों तक कोई नष्ट नहीं कर सकेगा। राम के कहने से लक्ष्मण धनुष हूल कर पुल तोड़ देते हैं।[2] आनंद-रामायण में भी धनुष से सेतु तोड़ने का उल्लेख है[3]।

(२) शिवस्थापना—सेतु-बंध के समय इस विषय की चर्चा हो चुकी है।

(३) सुमित्रा उक्ति—लक्ष्मण का शक्ति-चिन्ह देख कर सुमित्रा कारण पूछती है; वे राम से कहती हैं, तुमने अपना चरण क्यों नहीं रख दिया, इससे ही ठीक हो जाता।

भक्त-हनुमान—आदर्श-भक्त हनुमान की एक-निष्ठा दिखाने के लिए कृत्तिवास ने कथा-विस्तार कर दिया है। वाल्मीकि-रामायण में सीता हनुमान को हार प्रदान करती है।

---

१ अध्यात्म-रामायण-६-१३-४०
२ कृत्तिवासी-रामायण-लंका-कांड, पृ० ४४८
३ आनंद-रामायण-१, १२, ४७, ४८

कृत्तिवासी-रामायण में इससे भी आगे लिखा है कि हनुमान ने वह हार दाँतों से चबा डाला। लक्ष्मण को क्रोध हो आया, तो बोले, 'राम नाम से रहित धन का प्रयोजन ही क्या है।' तब लक्ष्मण ने कहा, 'फिर शरीर क्यों धारण किये हो ?' हनुमान ने शरीर फाड़ कर अस्थिमय राम-नाम दिखा दिया।[1]

हनुमान-भोजन—कृत्तिवास ने एक और नया प्रसंग जोड़ा है। सीता हनुमान को खिला रही हैं और वे खाते ही चले जाते हैं। सीता चिंतित हुईं; उन्होंने ध्यान से देखा तो पता चला कि ये तो साक्षात् शिव के अवतार हैं, तब सीता ने सावधानी के साथ युक्ति-पूर्वक उनकी क्षुधा शान्त की।[2]

राम-राज्य—कृत्तिवास ने राम-राज्य का बहुत संक्षिप्त वर्णन किया है। केवल दो बातें कहीं हैं[3]—

(१) राम के राज्य में कनिष्ठ की मृत्यु नहीं होती।

(२) राम के राज्य में कोई दु:खी नहीं है।

मानस में राम-राज्य का सुन्दर चित्रण है। कुछ चौपाइयों में वाल्मीकि-रामायण की छाया है फिर भी उनका वर्णन वाल्मीकि-रामायण से भी बढ़ कर है। वाल्मीकि-रामायण में लिखा है—

नित्यपुष्पा नित्य फलास्तरवः स्कन्ध विस्तृताः।

काले वर्षी च पर्जन्यः सुख स्पर्शश्च मारुतः ॥६–१३१–१००

इसे मानस में देखिए—

लता बिटप मागें मधु चवहीं।
मन भावतो धेनु पय स्रवहीं ॥७–२२–५
सरिता सकल बहहिं बर बारी।
सीतल अमल स्वाद सुखकारी ॥......८
सागर निज मरजादां रहहीं।
डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं ॥......६
मागें बारिद देहिं जल, रामचन्द के राज्य। ७–२३

तुलसी ने और भी अनेक बातें राम-राज्य में दिखायी हैं, जो इन रामायणों में नहीं। इष्ट-देव के अनन्य-प्रेम के कारण ही ऐसा उत्कृष्ट वर्णन हो सका है।

१ कृत्तिवासी-रामायण-लंका कांड, पृ० ४६१
२ कृत्तिवासी-रामायण-लंका-कांड, पृ० ४६२
३ कृत्तिवासी-रामायण-लंका-कांड, पृ० ४६३

उत्तर कांड

दोनों ग्रन्थों का उत्तर-कांड आधिकारिक कथा-वस्तु से असम्बद्ध सा है। वाल्मीकि-रामायण में उत्तर-कांड प्रक्षिप्त माना जाता है। राम के राज्याभिषेक के पश्चात् की कथा प्रक्षिप्त है। तुलसी ने यहाँ न वाल्मीकि-रामायण का अनुसरण किया और न अध्यात्म-रामायण का ही। मानस में सीता का चरित्र-दोष, उनका वनवास, पुनः परीक्षा एवं पाताल-प्रवेश तथा अन्य कई पौराणिक घटनाएँ आदि दो कारणों से वर्णित नहीं हुई—

(१) महाकाव्य की कला की रक्षा के लिए।

(२) राम के शील-चरित्र की रक्षा के लिए।

१—वास्तव में महाकाव्य की आधिकारिक कथावस्तु राम-विजय एवं राज्य-प्राप्ति से ही समाप्त हो जाती है। इसके पश्चात् व्यर्थ का विस्तार अनावश्यक एवं ऊपर से जोड़ा प्रतीत होता है। तुलसी ने लंका-कांड की कथा का अन्तिम-अंश उत्तर-कांड में संभवतः इसीलिए रख दिया कि वह असंबद्ध न हो जाय। उन्होंने भरत-विरह भ्रातृ-मिलन एवं राज्याभिषेक की घटनाएँ उत्तरकांड में रखी हैं। वैसे भी लंका में घटित होने वाली घटनाओं तक ही लंका-कांड की सीमा रहनी चाहिए। वहाँ से प्रस्थान एवं राज्य-प्राप्ति आदि के लिए नये-सर्ग की आवश्यकता थी, तुलसी का विभाजन ठीक ही हुआ है।

२—तुलसी ने सीता-वनवास एवं पाताल प्रवेश न दिखाकर राम के चरित्र की रक्षा कर ली। जब एक बार परीक्षा हो गई थी तो दुबारा उनके चरित्र पर आक्षेप कर उन्हें वाल्मीकि आश्रम में उस दशा में निःसहाय छोड़ देना, जबकि उन्हें सहायता की सर्वाधिक आवश्यकता थी, उचित प्रतीत नहीं होता। सीता के पाताल-प्रवेश एवं रामादि के स्वर्गारोहण से महाकाव्य दुःखांत सा हो जाता। एक तो कथानक स्वयं शिथिलता से बढ़ता है, दूसरे सीता तथा राम के इहलोक त्याग से पाठक के मन पर औदासीन्य छा जाता है। तुलसी ने प्रसंगों का बहिष्कार कर अच्छा ही किया।

किन्तु, जिस प्रकार कृत्तिवास ने बहुत कुछ आधिकारिक कथा-वस्तु के बाहर का वर्णन किया है, उसी प्रकार तुलसी भी मुख्य कथा से हट गये हैं। उत्तर-कांड का उत्तरार्द्ध काक-भुशुंडि की आत्मकथा से पूर्ण है। इस आत्म-कथा के द्वारा तुलसी ने भक्ति-विवेचन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया है, यहाँ तुलसी साहित्यकार नहीं अपितु विशुद्ध-भक्त अथवा भक्ति के प्रचारक हो जाते हैं।

घटना-चक्रों की विषमता के कारण दोनों का तुलनात्मक अध्ययन नहीं हो सकता, फिर भी दोनों की प्रमुख-घटनाओं तथा मूल से परिवर्त्तन आदि विषयों को दृष्टि में रख कर विचार करना उचित होगा।

लक्ष्मण का संयम—कृत्तिवास का यह प्रसंग मुख्य-कथावस्तु से बाहर पड़ता है। तुलसी ने केवल काकभुशुंडि की कथा छोड़कर किसी अन्य-प्रसंग का ऐसा अनुपयुक्त-स्थानीय वर्णन नहीं किया। वाल्मीकि-रामायण में अगस्त्य राम से इंद्रजीत के पराक्रम का वर्णन करते हैं, किन्तु लक्ष्मण के उग्र-तप की चर्चा उसमें भी नहीं है। अध्यात्म-रामायण[1] एव आनन्द-रामायण[2] में अवश्य वर्णित है। जिसने बारह-वर्ष तक निद्रा और आहार को छोड़ दिया हो, ब्रह्माजी ने इस दुरात्मा की मृत्यु उसी के हाथ में निश्चित की है। अध्यात्म-रामायण में यह प्रसंग मेघनाद-लक्ष्मण युद्ध के समय का है।

कृत्तिवास ने यहाँ अनोखी कल्पना की है, यद्यपि 'रामकथा' के अनुसार सेरी-राम, बिर्होरकथा, कनारी-रामायण एवं द्विपाद-रामायण में इससे मिलता-जुलता वर्णन है[3], तथापि कृत्तिवास का वर्णन विस्तृत एवं भिन्न है, और इन सभी वर्णनों को किसी न किसी रूप में अपने में समाविष्ट किये हैं।

कृत्तिवासी-रामायण के अनुसार अगस्त्य ने राम को बताया कि १४ वर्ष तक निद्रा आहार, एवं स्त्री का त्याग करने वाला व्यक्ति ही मेघनाद-वध कर सकता था। राम ने शंका की कि क्या लक्ष्मण ने ऐसा त्याग किया था। लक्ष्मण प्रमाण देते हैं।

(१) मैं सीता[4] के नूपुर छोड़ कर अन्य अलंकार न पहचान सका, यह स्त्री के मुख न देखने का प्रमाण है।

(२) मैंने नींद को बाण से बींध कर कह दिया था कि राम के राज्याभिषेक तक न आना। आपके राज्याभिषेक के समय मैं झींम गया था, जिससे पंखा गिर गया था।

(३) आप मुझे फल देते थे किन्तु खाने को न कहते थे, अतएव वे सभी रखता गया, खाये नहीं।[5]

---

१ यस्तु द्वादश वर्षाणि निद्राहारविवर्जितः ॥६४॥
तेनैव मृत्युर्निर्दिष्टो ब्रह्मणास्य दुरात्मनः ॥६५॥ युद्ध-कांड, सर्ग ८

२ आनन्द-रामायण में यही पंक्तियां दुहरायी गयी हैं। (१-११-१७६)

३ राम-कथा-अनु०-५००

४ सीता के मुख को न देखने का उल्लेख हुआ है, क्योंकि राम ने शंका की थी कि निरंतर सीता के साथ रहने पर भी लक्ष्मण ने स्त्री मुख किस प्रकार नहीं देखा।

५ बिना खाये लक्ष्मण जीवित कैसे रहे। इसके लिये आदि-कांड देखना होगा। कृत्तिवास ने वहाँ वर्णित किया है कि विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण को ऐसा मंत्र दिया जिससे हजारों वर्ष तक क्षुधा-तृष्णा का कष्ट नहीं होगा। इन्द्रजीत के वध के लिए लक्ष्मण को अनाहार रहना पड़ेगा। इसीलिए यह व्यवस्था पहले से ही करदी गयी।
बहु काल अनाहारे थाकिबे लक्ष्मण।
एक काले हबे इन्द्रजितेर मरण ॥आदि०, पृ० ७३

हनुमान-गर्व-भंग—राम के कहने पर हनुमान वे सब फल उठाने गये जो लक्ष्मण ने बिना खाकर एकत्र किये थे। हनुमान उन्हें न उठा सके, तब स्वयं लक्ष्मण उठा लाये। राम ने फलों का हिसाब लगाया, उनमें सात-दिन के फल कम निकले। लक्ष्मण ने स्पष्ट किया कि अमुक-अमुक सात-दिनों[1] में हर्ष अथवा शोक के कारण फलों का आनयन ही नहीं हुआ था।

कथा अस्वाभाविक एवं तत्कालीन चमत्कारिक-भक्ति वाली मनोवृत्ति की प्रतीक है।

राक्षसोत्पत्ति—कृत्तिवास ने वाल्मीकि के अनुसार हेति से राक्षसों का वंश विस्तार दिखलाया है। मानस में राक्षसोत्पत्ति का अलग से वर्णन नहीं है। कृत्तिवास ने वाल्मीकि के अनुसार रावण के मातृपक्ष का वर्णन इस प्रकार है।

हेति
|
सुकेश
|
माल्यवान — माली — सुमाली
|
(सुमाली) — निकषा

निकशा अथवा कैकसी के गर्भ से विश्रवा की औरस-संतान रावण, कुम्भकर्ण विभीषण एवं शूर्पणखा का जन्म हुआ। इसके पश्चात् कृत्तिवासी-रामायण में वाल्मीकि-रामायण के अनुसार ही रावण की दिग्विजय का वर्णन है। अनेक राजाओं एवं देवताओं[2] से युद्ध तथा बालि एवं सहस्रार्जुन से परास्त होने की भी कथा है। साथ ही वेदवती[3] एवं नंदी के शापों[4] तथा शिव द्वारा रावण का अहंकार-मोचन[5] आदि प्रसंगों का भी उल्लेख है।

१ वे सात दिन इस प्रकार हैं।
(१) दशरथ की मृत्यु की सूचना (२) सीता-हरण (३) इन्द्रजीत द्वारा नाग-पाश-बन्धन (४) माया-सीता वध (५) महीरावण द्वारा राम-लक्ष्मण का हरण (६) लक्ष्मण-शक्ति और (७) रावण-वध।
पूरे प्रसंग को देखिए—
कृत्तिवासी-रामायण-उत्तरकांड, पृ०-४६६-६८

२ रावण ने कुबेर, अनरण्य, यम, वलि, मांधाता चन्द्र, कुश-द्वीप के महापुरुष आदि के साथ युद्ध किया; इन सबका विस्तृत-वर्णन है।

३ वेदवती नाम की कन्या विष्णु को वर-रूप में प्राप्त करना चाहती थी। रावण ने केश पकड़ कर उसका अपमान किया। वह आग जला कर मर गयी और भविष्यवाणी कर गयी कि सीता बन कर रावण का विनाश करेगी। (कृत्तिवासी-रामायण, उत्तर०, पृ० ४८५-८६)।

४ नंदी शाप का उल्लेख लंका-कांड में हो चुका है। कृत्तिवासी-रामायण के अनुसार उत्तर-कांड में इसका उल्लेख फिर हुआ है। पृ० ४८५।

५ रावण का अहंकार-मोचन—रावण ने अहंकार-वश कैलास पर्वत उठा लिया। शंकर ने बायें पैर के नख से कैलास पर्वत इतने जोर से दबा दिया कि रावण चीत्कार करने लगा।

रावण-वध के उपरांत रावण का यह जीवन-चरित कथा में उत्सुकता की सृष्टि नहीं करता। वाल्मीकि-रामायण में तो यह प्रक्षिप्त है, अतएव ऊपर से जोड़ा गया है। मानस में रावण के जन्मादि का यहाँ वर्णन न कर बाल-कांड में किया गया है। चरित-नायक के साथ ही खल-नायक का जन्म-पराक्रम आदि दिखाना समीचीन हुआ है। मानस में रावण के मातृ-पक्ष का वर्णन तो है ही नहीं, पितृ-पक्ष के विषय में भी संकेत-मात्र है। प्रताप-भानु की कथा के प्रसंग में शाप-वश जन्म लेने का उल्लेख किया गया है—

उपजे जदपि पुलस्त्य कुल पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर श्राप-बस भए सकल अघ रूप ।। १-१७६

तपस्या और वर—मानस में रावणादि की तपस्या आदि के सम्बन्ध में बालकांड के अन्तर्गत ही वर्णन हुआ है। कृत्तिवासी-रामायण में इनका वर्णन लंका-कांड और उत्तर-कांड दोनों में है। दोनों के वर्णन में समानता है। रावण कुम्भकर्ण को एक समान वर दिये जाते हैं। मानस में भी सरस्वती द्वारा कुम्भकर्ण की मति फेर देने का वर्णन है, जिससे वह कुछ का कुछ माँग जाता है। एक अन्तर यह है कि मानस का विभीषण ब्रह्मा से भगवान् के पद-कमलों में अनुराग[1] माँगता है।

लंका—लंका पर रावण के अधिकार का प्रसंग कृत्तिवासी-रामायण में वाल्मीकि-रामायण के अनुसार विस्तार-पूर्वक वर्णित है। मानस के बाल-कांड में उसका संक्षिप्त चित्रण है।

कृत्तिवासी-रामायण में विश्वकर्मा[2] ने लंका का निर्माण किया है। मानस[3] में ब्रह्मा ने निर्माण किया और मय दानव ने उसका पुनर्निर्माण किया। कृत्तिवासी-रामायण का वर्णन वाल्मीकि-रायायण[4] के वर्णन के अनुसार है।

गज-कच्छप-प्रसंग-लंका के निर्माण के सम्बन्ध में कृत्तिवास ने कुछ अन्य कथाएँ गढ़ी हैं। दो भाइयों में धन के लिए झगड़ा हुआ वे दोनों अगले जन्म में गज-कच्छप हुए। जब दोनों लड़ रहे थे तो गरुड़ उन्हें पंजों से पकड़ कर उठा ले गये और एक विशाल बरगद की डाल पर बैठ कर खाने लगे। डाल टूट गयी, उस पर स्थित मुनि तपस्या कर रहे थे। उन्हें बचाने के लिए गरुड़ डाल भी साथ लेकर उड़े। डाल से चंडालों का विनाश कर वे सुमेरु के शिखर पर बैठ कर गज-कच्छप भक्षण करने लगे। पवन ने कहा—यह मेरा स्थान है। इसे छोड़ दो। दोनों में संघर्ष हुआ। पवन की शक्ति से बचाने के लिए गरुड़ ने पंखों से सारा पर्वत ढक लिया। पवन के वेग से प्रलय उपस्थित हो गयी। ब्रह्मा के समझाने पर गरुड़ ने सुमेरु का थोड़ा सा भाग खोल दिया, जिसे उठा कर पवन ने समुद्र-

१—मानस १। १७७
२—लङ्कानामे पुरी ताहे कैला विश्वकर्म्म। कृत्त० उत्तर०, पृ० ४७२।
३—मानस—१, ११७,५-६
४—वाल्मीकि-रामायण, उत्तर-कांड—५।१८।२२।

गर्भ स्थित चित्रकूट नामक पर्वत पर फेंक दिया। सुमेरु के इसी अङ्ग से विश्वकर्मा ने लंकापुरी का निर्माण किया।[१]

वाल्मीकि-रामायण—इसके अरण्य-कांड[२] में गज-कच्छप-वृतांत है, जिसमें बरगद पर रख कर खाने तथा टूटी हुई डाल से निषादों का संहार करने तक का वर्णन है। आनंद-रामायण[३] में इतना और है कि गरुड़ ने इस जन्तुओं का भक्षण लंका नामक भूमि पर किया, इन्हीं जन्तुओं की अस्थियों के कारण तीन-शृंग बन गये, जिन्हें त्रिकूट कहते हैं। इन रामायणों में पवन से युद्ध और सुमेरु गिरि-भंग का वर्णन नहीं है।

कृत्तिवासी-रामायण की निम्न अनेक घटनाएँ मानस से भिन्न हैं। इनका चित्रण मानस में नहीं है।

सीता-वनवास—राम-कथा-सम्बन्धी विभिन्न-आख्यानों में सीता-त्याग के जितने कारण बताये गये हैं, उनमें प्रमुख तीन हैं और कृत्तिवास ने इन तीनों का एक साथ उपयोग किया है—(१) लोकापवाद (२) रजक-वृत्तांत और (३) सीता-द्वारा रावण का चित्रांकन।

(१) लोकापवाद—(क) प्रजा असंतुष्ट है, क्योंकि रावण ने गोद में उठा कर सीता का हरण किया था। भद्र नामक चर ने इसकी सूचना राम को दी। यहाँ तक वाल्मीकि और कृत्तिवास की कथा में समानता है।

(ख) वाल्मीकि-रामायण में चर का नाम भद्र[४] और उत्तररामचरित-नाटक में दुर्मुख[५] है। कृत्तिवास ने चर का नाम तो भद्र ही रखा किन्तु उसका विशेषण दुर्मुख कर दोनों ग्रंथों के नाम स्वीकार कर लिये।

वाल्मीकि का भद्र नम्र और कृत्तिवास का निष्ठुर है।

(२) रजक-वृत्तांत—धोबी की कटूक्तियों का वर्णन जैमिनी-भारत एवं आनन्द रामायण दोनों में है। कृत्तिवास का वर्णन जैमिनी-भारत से इन बातों में मिलता है—

(क) वार्त्तालाप श्वसुर और जामाता में हो रहा है। श्वसुर पुत्री का पक्ष लेकर आया है।

(ख) जामाता का कहना है कि राम ने रावण द्वारा अपहृता सीता को अपने पास रख लिया। वे राजा हैं चाहे जो करें, मैं नहीं सह सकता।[६]

यह प्रसंग आनंद-रामायण से दो बातों में भिन्नता रखता है—(१) इस रामायण में वार्त्तालाप धोबी और धोबिन में हो रहा है। (२) राम ने सीता को पाताल-प्रवेश

१ पूरा प्रसंग—पृ० ४७०–७२ कृत्तिवासी-रामायण, उत्तर कांड।
२ वाल्मीकि-रामायण ३, ३५, २७–३३,—गौड़ीय-संस्करण—(३–२४–२६–३६)
३ आनंद रामायण—सार-कांड, सर्ग ६।
४ वाल्मीकि-रामायण ७।४३।७।
५ उत्तर-रामचरित (अंक १)
६ जैमिनी-भारत, अध्याय २६ (कृत्ति० रामा०, उत्तर० पृ० ५२३)

तक की घटनाएँ पहले ही बता दी हैं। वे भी सस्मित-आनन स्वीकार कर अपनी-छाया बनाती हैं। यही छाया पाताल प्रवेश करेगी। अध्यात्म-रामायण के सीता-हरण एवं अग्नि-परीक्षा जैसा प्रभाव आनन्द-रामायण पर यहाँ भी पड़ा है। आनंद-रामामण की उक्तियों[1] एवं कृत्तिवासी-रामायण एवं जैमिनी-भारत की उक्तियों में साम्य है।

(३) चित्र-वृत्तांत—यह प्रसंग आनंद-रामायण में भी है। दोनों में समानता एवं अंतर है। (१) सीता से आग्रह किया गया कि वे रावण का चित्र बनायें। आनंद-रामायण में आग्रह करने वाली कैकेयी हैं और उसमें कुटिलता है।[2] कृत्तिवासी-रामायण में शृंगार करती हुई सखियाँ कहती हैं। उनके वचनों में कुटिलता नहीं, कुतूहल है। वे विचित्र रावण को चित्र द्वारा देखना चाहती हैं। (२) दोनों में सीता कहती हैं—उन्होंने रावण को देखा ही नहीं, जल में छाया मात्र देखी है। आनंद-रामायण में केवल अँगूठे की छाया देखी और कृत्तिवासी-रामायण में पूरे शरीर की। अतएव दोनों ग्रंथों में देखे हुए अंगों का ही चित्रण किया गया। (३) सीता के अनजान में राम ने चित्र देखा। आनंद-रामायण में सीता की अनुपस्थिति में कैकेयी ने राम के हृदय में सीता के प्रति अविश्वास भरने के लिए चित्र दिखाया है। कृत्तिवासी-रामायण में सीता चित्र बनाते-बनाते गर्भावस्था के कारण थक कर वहीं चित्र के ऊपर सो गयीं। सखियों ने राम को आते देखा तो उठ कर बाहर चली गयीं, राम को किसी ने दिखाया नहीं, उन्होंने स्वयं सीता को चित्र पर सोते हुए देखा। (४) आनंद-रामायण में राम सीता पर कपट-क्रोध करते हैं और एकांत में हँस-हँस कर बातें करते हैं। किन्तु कृत्तिवासी-रामायण में राम को सीता पर सत्य-संदेह होता है। वे चिंतित होकर कहते हैं कि लोग मेरी सत्य-निंदा करते हैं।

आनंद-रामायण के वर्णन से समानता होते हुए भी अंतर है।[3]

वाल्मीकि से अन्तर तथा शाप की कल्पना—वाल्मीकि-रामायण में सीता-वनवास प्रक्षिप्त माना जाता है। उसमें लिखा है—राम सीता के साथ मदिरा-पान एवं माँस भक्षण करते हुए १० हजार वर्षों तक काम-विहार करते रहे—अध्याय ४२। इतने काल तक किसी ने निंदा ही नहीं की। कृत्तिवास केवल इतने वर्णन से संतुष्ट नहीं हुए। उनके काल तक सीता वनवास के कितने कारणों का प्रचार हो चुका था, उन सब का उपयोग उन्होंने अपने ग्रंथ में कर लिया।

---

१ आनन्द-रामायण—
रावणस्य गृहे स्पष्टं, स्थितामंगी चकार यः। २९
यथेच्छं गच्छ रंडे त्वं, नाहं रामवदाचरे। ३०, जन्म०, सर्ग ३

२ आनन्द-रामायण—
पूरा प्रसंग–श्लोक ३७–५६, जन्म-कांड, सर्ग ३।

३ आनन्द-रामायण से अन्तर दो कारणों से है—(१) कृत्तिवासी-रामायण में कैकेयी की कुटिलता नहीं दिखायी गयी। (२) आनन्द-रामायण के राम-सीता जान-बूझ कर खेल रच रहे हैं किन्तु कृत्तिवासी-रामायण के राम सीता पर सत्य-संदेह प्रकट करते हैं।—कृत्तिवासी रामायण—चित्र-वृत्तांत—पृ० ५२४, उत्तर०।

शाप—वाल्मीकि-रामायण के गौड़ीय-संस्करण में सीता-वनवास उचित नहीं समझा गया, तभी तारा के शाप की कल्पना हुई। कृत्तिवासी-रामायण में भी इस प्रकार का वर्णन हुआ है, जिसका अध्ययन सुन्दर-कांड में हो चुका है।

निष्कर्ष—सीता-वनवास और उनकी पुनर्परीक्षा का उद्देश्य नारी-पवित्रता का उच्च-आदर्श प्रस्तुत करना था, साथ ही राम को कलंकित होने से बचाने के लिए समय-समय पर अनेक काल्पनिक-प्रसंग जोड़ दिये गये। यही दोनों मनोवृत्तियाँ कृत्तिवासी-रामायण में भी दिखायी पड़ती हैं। तुलना के संबंध में आरम्भ में ही चर्चा हो चुकी है।

लवकुश-युद्ध—लवकुश-जन्म-वृत्तांत कृत्तिवासी-रामायण में वाल्मीकि-रामायण के अनुसार है, किन्तु राम-सेना के साथ लवकुश का युद्ध वाल्मीकि-रामायण में नहीं है। उन्होंने स्वयं कहा है—

एइ सब गाइल गीत जैमिनी भारते।

सम्प्रति जे किछु गाइ वाल्मीकिर मते।। उत्तर०, पृ० ५६८

वाल्मीकि से हट कर कथा-विस्तार के दो कारण थे—

१—कृत्तिवास के समय तक लव-कुश-युद्ध का वृत्तांत इतना प्रचलित हो गया था कि बिना इसका वर्णन किये सीता का वनवास-प्रसंग अधूरा लगता।

२—राम-सेना की पराजय दिखा कर सीता के सतीत्व का प्रताप दिखाना चाहते थे। शत्रुघ्न की पराजय ज्ञात कर जब राम बहुत दुःखी हुए, तब लक्ष्मण और भरत ने कहा भी है कि पतिव्रता-स्त्री के वर्जन के कारण ही यह विडम्बना हुई है।

पतिव्रता सती तुमि वर्जिले जखन।
जेनेछि तखनि हवे विधि विड़म्बन।। उत्तर०, पृ० ५५२

मानस की केवल एक अर्धाली में लव-कुश के जन्म का उल्लेख है—

दुइ सुत सुन्दर सीता जाए।

लव कुश वेद पुरानन्ह गाए।। ७–२४–६

सीता का पाताल-प्रवेश—सीता के इतने कष्टों के पश्चात् तथा वाल्मीकि-मुनि आदि के बीच में पड़ने के पश्चात् भी सीता के चरित्र की परीक्षा उचित नहीं जँचती। उनका पाताल-प्रवेश और राम का विलाप इतना दुःखदायी है कि अनेक राम-कथा-लेखकों ने इस प्रसंग का बहिष्कार कर दिया अथवा घटना को सुखांत बना दिया। राम-चरित-मानस में इसका उल्लेख ही नहीं है। लव-कुश-युद्ध एवं सीता-प्रवेश का वर्णन मानस के प्रक्षिप्त अंतिम-कांड में है। कृत्तिवास ने इस प्रसंग को कुशलता के साथ वर्णित किया है, किंतु मानस के समान महा-काव्य के सुखांत वाले दृष्टिकोण की रक्षा वे नहीं कर सके।

कृत्तिवास ने शम्बूक-वध,[1] लवण-वध,[2] अश्वमेध,[3] सीता की स्वर्ण-प्रतिमा,[4] गृध्रोलूक-संघर्ष,[5] यतिश्वान-कलह[6] आदि कई प्रसंगों का वर्णन किया है जिनमें अधिकांश वाल्मीकि-रामायण के अनुसार हैं। इन सभी प्रसंगों का मुख्य कथा-वस्तु से विशेष-सम्बन्ध नहीं है।

काक-भुशुंडि-गरुड़-संवाद—मानस के उत्तरकांड की विशेषता यही संवाद है। गरुड़ को नाग-पाश छिन्न करने के पश्चात् भ्रम हुआ। शंकर ने गरुड़ को काक-भुशुंडि के पास भेज दिया। काक-भुशुंडि ने राम-कथा के साथ अपना जीवन-वृत्त भी सुनाया। शंकर भी मराल बन कर पक्षियों के साथ बैठकर राम-कथा सुनते रहे थे।

काक-भुशुंडि पहले विष्णु-द्रोही शिवपूजक थे। गुरु का अपमान करने के कारण इन्हें शाप मिला। इसके पश्चात् सगुण-निर्गुण के विवेचन में ये ऋषि लोमश से उलझ गये, उन्होंने क्रुद्ध होकर काक होने का शाप दिया। तब से अब तक ये परम रामभक्त होकर जीवित हैं।

इन्हें राम का बाल-रूप अधिक पसंद है, अतएव जब-जब राम अवतार लेते हैं, काक उनके बाल-रूप का दर्शन करने जाते हैं। इसी प्रसंग में राम के शैशव का वर्णन है।

---

१ **शंबूक**—शूद्र के तप करने से ब्राह्मण के पुत्र की अकाल-मृत्यु। राम का शंबूक को दंडित करना।

२ **लवणाशुर-वध**—मथुरा के शासक लवण का वध शत्रुघ्न ने किया।

३ **अश्वमेध**—रावण के वध से राम को ब्रह्म-हत्या का पाप लगा, इसीलिए राम ने अश्वमेध-यज्ञ किया। लव-कुश ने यज्ञीय अश्व बाँध लिया था, जिसके फल-स्वरूप युद्ध हुआ और उसमें शत्रुघ्न, लक्ष्मण, भरत और स्वयं राम-सहित समस्त सैन्य की पराजय हुई।

४ **स्वर्ण-प्रतिमा**—यज्ञ में सीता का स्थान पूरा करने तथा राम को सांत्वना देने के लिए सीता की स्वर्ण-प्रतिमा का निर्माण हुआ था।

५ **गृध्रोलूक**—गृध्रिनी एवं उल्लूक में वास-स्थान के कारण झगड़ा हुआ। राम की सभा में न्याय के लिए उपस्थित हुए। दोनों ने प्रमाण दिये। उल्लूक-सृष्टि के प्रारंभ से ही उपस्थित था। उसी का अधिकार सिद्ध हुआ। राम ने गृध्रिनी को दंडित करना चाहा किन्तु पता लगा कि यह तो पहले एक राजा था। ब्राह्मण को खिलाते समय भोजन में एक बाल खिला गया, इसलिए गृध्रिनी होने का शाप मिला—कृत्ति० रामायण, उत्तर०, पृ० ५३६-४१; गौड़ीय-संस्करण (वल्मीकि-रामायण) के सर्ग ६३ के अनुसार है। आनंद-रामायण के राज्यकांड में भी इसका वर्णन है।

६ **यति-श्वान-कलह**—मार्ग में लेटे हुए एक कुत्ते को किसी यति ने मारा। वह राम के पास पहुँचा। राम ने यति को गंगा न नहाने का दंड देना चाहा किंतु कुत्ते ने कहा इसे कालिंजर का राजा बना दो। वहाँ के शिव बड़े निष्ठुर हैं। वहाँ राजा को छोड़ अन्य कोई शिव की पूजा नहीं करने पाता और राजा को शिव का शाप है कि मरने के उपरांत कुत्ता होगा। वाल्मीकि-रामायण के दाक्षिणात्य-संस्करण के एक प्रक्षेप में यह कथा है किंतु उसमें श्वान यति को कालिंजर का महंत बना देने के लिए कहता है। कृत्तिवासी-रामायण, उत्तर०-५२६-३१; गौड़ीय-संस्करण (वाल्मीकि-रामायण) सर्ग ६३। इसमें भी कुलपति बनने के लिए कहता है।

भुशुंडि-रामायण, योग-वाशिष्ठ एवं सत्योपाख्यान के आधार पर मौलिक उद्भावना कर तुलसी ने इस प्रसंग की रचना की है। तुलसी का उत्तरकांड अधिकांशतः राम-भक्ति अथवा राम-नाम का महत्त्व प्रतिपादित करने के लिए है।

रामादि का स्वर्गारोहण—यह प्रसंग भी कथा को दुःखांत बनाता है। कथा में नायक की मृत्यु नहीं दिखानी चाहिए। कृत्तिवासी-रामायण में काल-पुरुष के साथ राम की मंत्रणा, दुर्वासा के क्रोध-वश लक्ष्मण का अपराध, सभी का सरयू में डूब कर मरना आदि वाल्मीकि के अनुसार है।

अंत—दोनों लेखकों ने राम-नाम एवं रामायण-श्रवण-महिमा के वर्णन के साथ ग्रंथ समाप्त किया है।

(१) चारि वेद सहस्र नामे जत फल हय।
रामनामे तार कोटि गुण फलोदय ।।

(कृत्तिवासी-रामायण, उत्तर०, पृ० ५८२)

(२) सप्त-काण्ड शुनिले अश्वमेधेर फल। कृत्ति० उत्तर०, पृ० ५८२।

रघुवंश भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।
कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं ।।

(मानस ७–१२६ छंद २)

अध्याय ६

तुलनात्मक चरित्र-चित्रण

१—चरित्र-चित्रण में दोनों का दृष्टिकोण एवं मूल से अंतर

२—प्रमुख-पात्रों के चरित्र का तुलनात्मक-विवेचन

१. चरित्र-चित्रण में दोनों का दृष्टिकोण तथा मूल से अन्तर

मनुष्य की कल्पना का आधार बहुत कुछ उसका परिवेश होता है। युग के अनुसार उसके आदर्श और उसकी धारणाएँ बनती हैं, अतएव भिन्न-भिन्न युगों में हमें काव्य की विभिन्न विशेषताएँ मिलेंगी। मानव की मूल-वृत्तियाँ एक सी होती हैं, किन्तु युग के अनुसार उनके आवेग और प्रकाशन में भेद मिल सकता है। काव्य में दोनों प्रकार के चरित्र हो सकते हैं—जैसे कि उस काल या परिवेश में हैं, अथवा अपनी दुर्बलताओं से ऊपर उठ कर जैसे उन्हें होने चाहिए। दोनों ही रूपों में अर्थात् आदर्श और यथार्थ चित्रण में लेखक की कल्पना पर उसका परिवेश प्रभाव डालता ही है।

तुलसी और कृत्तिवास के काल से वाल्मीकि का काल बहुत दूर पड़ता है, अतएव उनके चरित्र-चित्रण में मूल से अन्तर होना स्वाभाविक है। आदि-कवि एवं भाषा-कवियों के उद्देश्य में भी अन्तर है, फलतः सभी पात्रों के चरित्र में थोड़ी बहुत भिन्नता आ गयी है। वाल्मीकि-रामायण में आर्यों की गौरव-मयी संस्कृति की झलक है। राम एक आदर्श-गृहस्थ और शासक के रूप में हमारे सामने आते हैं। उनके गुण मानवीय हैं, दुर्बलताएँ भी मानवीय हैं। किन्तु भाषा-रामायण-लेखकों के काल तक राम के ब्रह्मत्व का प्रचार हो चुका था। अतएव राम के सभी गुण दैविक-गुण हो गये, उनकी दुर्बलताएँ दैवी-लीला अथवा माया-मात्र रह गयीं। कृत्तिवास ने राम के ब्रह्मत्व को स्वीकार कर वाल्मीकि कथा का अनुसरण किया, फलतः आध्यात्मिकता और मानवता का गड़बड़-घोटाला उनके काव्य में मिलता है। अध्यात्म-रामायण का भक्ति-परक दृष्टिकोण तुलसी को मिल चुका था अतएव उन्होंने राम को ब्रह्म मान कर उनकी शक्ति के प्रचार में अपनी समस्त शक्ति लगा दी। अन्य पात्रों के सम्बन्ध में भी उन्हें अपना दृष्टिकोण बदलना पड़ा।

वाल्मीकि-रामायण का वर्तमान रूप सम्भवतः शुंगकाल में निर्मित हुआ था। इस काल तक ब्राह्मणत्व पुनः शक्ति-शाली हो गया था। वैदिक-संस्कृति का फिर बोलबाला होने लगा था। अपने काल के अनुरूप विपुलांस, महाबाहु, महोरस्क आर्यों का चरित्र हमें राम-कथा में प्राप्त होता है। इन दुन्दुभि जैसे कंठ वाले रक्ताक्ष-पात्रों का प्रेम, क्रोध, शोक, सभी कुछ महान् था। प्रिया से बिछुड़ने पर विलाप करेंगे तो पूर्णतः विक्षिप्त होकर एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष तक, एक पहाड़ से दूसरे पहाड़ तक, एक नदी से दूसरी नदी तक भागे फिरेंगे।[1] क्रोध करेंगे तो नाग के समान फुफकारते हुए, धनुष बाण लेकर कालाग्नि के

१ वृक्षाद्वृक्षं प्रधावन् स गिरेश्चाद्रिं नदान्नदीम्।
बभूव विलपन् रामः शोकपङ्कार्णवाप्लुतः॥ वाल्मी० रामा० ३-६०-११

समान पर्वत की चोटियाँ काट गिराने, सागर को सोख लेने तथा हरे-भरे वनों को जला कर राख कर देने के लिए प्रस्तुत हो जायेंगे।[1] राम के संबंध में चिन्ता करती हुई कौसल्या सोचती हैं—परिघ के समान भुजाओं का तकिया बना कर वे महाभुज राम कहाँ शयन करते होंगे।[2] ये राम अपने मनोवेगों का कहीं भी दमन नहीं करते। एक उच्चाशय महामानव के अनुरूप ही उनके मनोवेगों का प्रकाशन होता है।

भाषा-रामायणों में आकर वे लौहदंड सी कठोर एवं विशाल भुजाओं वाले राम करोड़ों मनोजों को लजाने वाले, नील-नलिन की कांति वाले कोमल-तन, कोमल-मन भगवान् हो गये। अब राम महामानव नहीं, नव-जलधरकान्ति विष्णु थे। वैष्णवों की मधुर कल्पना के अनुरूप ही उनका चित्रण हुआ। तथापि भक्त-हृदय-हारी मानस के राम कुसुम से कोमल होकर भी वज्र से कठोर भी हो जाते हैं।[3] कृत्तिवासी-रामायण में वे कुसुम से कोमल ही अधिक रह गये। रत्नों के नूपुर रुनु-रुनु बजाते हुए वे राम बड़े होने पर भी फूल-धनु हाथ में लेकर घूमते हैं।[4] उन पर कृष्णभक्ति का प्रभाव रहा होगा। गीतगोविन्द के रचयिता जयदेव कृत्तिवास से बहुत पहले बंगाल में ही हुए थे। रामभक्ति के कारण रामायण के सभी पात्रों का चरित्र मूल से भिन्न हो गया है। यदि कृत्तिवास के राक्षस युद्धक्षेत्र को विष्णु-मन्दिर बना कर राम के समक्ष शस्त्रास्त्र फ़ेंक कर गद्-गद् स्वर में स्तुति करते हैं, तो तुलसी के वैदिक-ऋषि भी राम के सगुण-ध्यान में मग्न उन्हीं का जप करते देखे जाते हैं।

कृत्तिवास एवं तुलसी के समय की परिस्थितियों में समाज के मर्यादित आदर्श की अत्यधिक आवश्यकता थी। मुसलमानों के अत्याचार और हिन्दू-नारी-अपहरण की घटनाओं के कारण स्त्रियों के पतिव्रत एवं नैतिक उच्चता को अधिक महत्त्व देने का प्रयास किया जा रहा था। वाल्मीकि-रामायण में राम लक्ष्मण से वार्तालाप करते हुए सीता के 'विशाल-जघन, क्षीण-कटि, वृत्त-संहत-पीनोन्नत-ताल-फलोपम स्तनों'[5] की चर्चा कर जाते हैं। हनुमानादि पात्र भी उन्हें सुमध्यमा, चारु-हासिनी आदि संबोधनों से अभिहित करते हैं, किन्तु कृत्तिवास एवं तुलसी ने मर्यादा का अत्यधिक पालन किया है। उन्होंने राम-परिवार से सम्बन्धित किसी नारी का ऐसा वर्णन नहीं किया। राम एकान्त में भी सीता के समक्ष कभी श्रृंगारिक चेष्टाएँ नहीं करते। कोई पात्र सीता अथवा अन्य किसी नारी के अंगों का वर्णन नहीं करता।

---

१ विनिमथितशैलाग्रं शुष्यत्सागरवल्लभम्।
ध्वस्तद्रुमलतागुल्मं विप्रणाशितसागरम्॥ वाल्मी० रामा० ३-६४-६२

२ महेन्द्र ध्वजसङ्काशः क्वनु शेते महाभुजः
भुजं परिघसङ्काशमुपधाय महानुजः॥ वाल्मी० रामा० २-६१-७

३ कुलसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि। मानस ७-१९-ग

४ रत्नेर नूपुर पाय रुणु रुणु ध्वनि। कृत्ति० आदि०, पृ० ६१
फूल धनु हाते राम बेड़ान कानने। कृत्ति० आदि०, पृ० ६२

५ वाल्मीकि-रामायण ३-४६-१८, १९, २१

वैदिक ऋषियों के चित्रण में दोनों रामायणों में अन्तर है। वाल्मीकि के ऋषि तपःपूत तेजस्वी हैं। कृत्तिवासी-रामायण में ये तपस्वी तत्कालीन दुर्बल बंगाली-ब्राह्मण मात्र रह गये हैं, जो कभी तो ताम्रपात्र और तुलसी लेकर[1] तपस्या करते दिखलायी पड़ते हैं और कभी क्रोध में चिड़चिड़ाते हुए। भय उपस्थित होने पर ये ऊर्ध्व-शिख पलायन करते हैं।[2] डर के मारे उनकी छाती की धुकधुकी बढ़ जाती है। तुलसीदास के ब्राह्मणों में प्रखर तेजस्विता नहीं है किन्तु ब्राह्मण सुलभ-गांभीर्य और क्षमा-शीलता है। इन्होंने इन ऋषियों को राम का सगुणोपासक दिखाया है—यहीं वाल्मीकि से भिन्नता है।

मानस के पात्रों में संयम बहुत है। परब्रह्म राम तो संयमित हैं ही, उनसे सम्बन्धित सभी पात्र संयमित व्यवहार करते हैं। वाल्मीकि के पात्र जहाँ संयम खो देते हैं, वहाँ उनकी दुर्बलता में भी महानता है। इन दुर्बलताओं के कारण ही वे पात्र सजीव और जीवंत हो उठते हैं, लगता है, 'यदि इनके सुई चुभो दी जाय तो रक्त बाहर निकल पड़ेगा।' कृत्तिवास के पात्र भी अवसर-के अनुकूल दुर्बलता व्यक्त कर देते हैं, चित्रण में यथार्थता आ जाती है, किन्तु उनमें महानता नहीं रहने पाती। जहाँ मानस का एक-एक पात्र संयमित है, यहाँ तक कि वानर-राक्षस पात्र तक विशेष दुर्बल नहीं दिखाये जाते; वहाँ कृत्तिवास के नील और हनुमान रावण के मस्तक और यज्ञ-वेदी पर मूत्र-त्याग कर देते हैं। बालि राम को थप्पड़ मारने की बात करता है।[3] सभी पात्र अवसर आने पर रोया करते हैं।

बंगाली जनता में देवता को एकदम घरेलू बना लेने की प्रवृत्ति देखी जाती है। शंकर-पार्वती संबंधित अनेक ऐसे गानों का प्रचार है जिनमें उनके प्रेम-कलह का चित्रण पाया जाता है। सामान्य हिन्दू पति-पत्नी की भाँति वे आपस में झगड़ते दिखाये जाते हैं। पार्वती शंकर के फक्कड़पन, भंगेड़ीपन एवं निठल्लेपन से असंतुष्ट होकर मायके जाने की धमकियाँ देती रहती हैं। शंकर को दहेज कम मिलने की शिकायत है तो पार्वती को अलंकार प्राप्त न होने की। यही बंगाली-प्रवृत्ति कृत्तिवास में भी दिखायी पड़ती है। विष्णु और लक्ष्मी रामावतार के समय परस्पर-विच्छेद की कल्पना कर खूब रोते हैं।[4] राम स्नेह-शील हैं, करुण-हृदय हैं, जहाँ अपने पर अथवा अन्य किसी पर आपत्ति आती है तो मानव-स्वभाव के अनुसार वे रुदन करते हैं। सीता-वियोग में तो वे ऐसे बेसुध होकर रोते हैं कि ब्रह्मा-आदि उन्हें बार-बार प्रबोध देते हैं कि वे ब्रह्म हैं, अपने को भूले हैं। किन्तु उन्हें अपने ब्रह्मत्व का सच ही स्मरण नहीं होता।[5] तुलसी ने हिन्दू पारिवारिक-जीवन का मधुर चित्रण करते हुए भी राम को सामान्य मनुष्य नहीं बनने दिया। गंभीर शोक-प्रसंग में भी

---

१ ताम्रवाटि हाते निल, तूलिल तुलसी।
तपस्या करिते गेल, विभाण्डक ऋषि ॥ कृत्ति० आदि०, पृ० ४६

२ कृत्ति० आदि०, पृ० ७४—विश्वामित्र-प्रसंग

३ कृत्ति० किष्क०, पृ० १७५

४ कृत्ति० आदि०, पृ० ५४

५ कृत्ति० लंका०, पृ० ४४२

उनके ब्रह्मत्व की बार-बार दुहाई देकर अन्य पात्रों की भी दुर्बलता को ढक कर उन्हें शील-सम्पन्न कर दिया है।

नारी-पात्र—पुरुष-पात्रों के चित्रण में दोनों का जो दृष्टिकोण है, वही नारी-पात्रों के चित्रण में भी है। यहाँ भी मानस की नारी अत्यधिक संयमित है। कृत्तिवास की कौशल्या अपने पति और कैकेयी को कोसती हैं, मानस की कौशल्या कहीं किसी को भी नहीं कोसती। कौशल्या जैसे पात्रों के चित्रण में तुलसी ने अद्भुत दक्षता दिखायी है। उनका वात्सल्य वाल्मीकि अथवा कृत्तिवास की कौशल्या से किसी भी प्रकार कम नहीं है, फिर भी संयम और शील की दृष्टि से वे इन दोनों ग्रन्थों की कौशल्या से ऊपर उठ जाती हैं। वाल्मीकि की कौशल्या गौरवमयी राज-महिषी मात्र हैं। कृत्तिवास की कौशल्या राम पर प्राण देने वाली वत्सला-माता हैं, तुलसी की कौशल्या सभी कुछ हैं, वे ब्रह्म-राम की माँ होने के सर्वथा योग्य हैं। मानस की सुमित्रा ने राम के हित के आगे अपने हृदय का वात्सल्य निर्ममता-पूर्वक कुचल दिया, वहाँ कृत्तिवास की सुमित्रा चित्रकूट में राम-भरत की विदा के करुण-प्रसंग के समय लक्ष्मण को गोद में लेकर अलग बैठी रो रही है। कृत्तिवास की कैकेयी, कौशल्या तथा सीता सभी सौतिया डाह से पीड़ित हैं। कैकेयी और कौशल्या सुमित्रा के अहित के लिए देव-पूजन करती हैं। स्त्रियों में ये वृत्तियाँ स्वाभाविक होती हैं, अतएव यथार्थता की दृष्टि से कृत्तिवास के ये चरित्र सत्य हैं। तुलसी ने राम के नाते स्त्री पात्रों को भी आदर्श चित्रित किया है।

तुलसी ने वानर और राक्षस-पत्नियों को भी राम-भक्त दिखाकर उनकी सामान्य दुर्बलताएँ प्रकट नहीं होने दी हैं। कृत्तिवास ने ऐसी चेष्टा नहीं की। अतएव कृत्तिवास की तारा और मन्दोदरी राम के कार्यों से असंतुष्ट होकर उन्हें भला बुरा कहती हैं तथा ईर्ष्या-वश सीता को भी दुःखी होने का शाप देती हैं। मानस की ये दोनों नारियाँ अपने पतियों के कुकर्म एवं राम के सत्य-पक्ष से अवगत हैं, वे राम के पक्ष का ही एक प्रकार से समर्थन करती हैं।

यथार्थ के आग्रह के कारण कहीं-कहीं कृत्तिवास औचित्य की सीमा लाँघ जाते हैं। राक्षसियाँ सीता को धमकाने के लिए अनेक यातनाएँ देती हैं किन्तु चोटी पकड़ कर चाक जैसा किसी रामायण में नहीं घुमातीं,[1] जैसा कि कृत्तिवासी-रामायण में चित्रित किया गया है।

संक्षेप में, वाल्मीकि के पात्रों में महाप्राणता है और कृत्तिवास के पात्रों में सहृदयता। तुलसी के पात्रों की सबसे बड़ी विशेषता है, उनका अद्भुत-संयम, वैसे मानवता एवं सहृदयता की दृष्टि से भी उनके पात्र इन दो लेखकों के चरित्रों से पीछे नहीं हैं अपितु अनेक स्थलों पर बढ़ कर ही हैं।

अब कृत्तिवास और तुलसी के प्रमुख पुरुष और नारी पात्रों के चरित्रों का तुलनात्मक-विवेचन करते हुए आवश्यकतानुसार वाल्मीकि के चरित्रों से भी तुलना करने का प्रयास किया जायगा।

---

१ चुले धरि सीतारे दिल चाकभाउरी। सुन्दर, पृ० २२८

२. प्रमुख-पात्रों के चरित्र का तुलनात्मक-विवेचन

राम—कृत्तिवास एवं तुलसी के समय तक राम के ब्रह्मत्व का प्रचार हो चुका था। देश की संकटग्रस्त परिस्थितियों में दीन-पुकार सुनकर दौड़ने वाले भक्त-वत्सल भगवान् के चरित्र की अधिक आवश्यकता प्रतीत हुई। भक्ति के आवेश में दोनों रामायण-लेखकों ने वाल्मीकि के दुर्द्धर्ष-वीर राम को फूल जैसा सुकुमार बना दिया। कृत्तिवास के 'दूर्व्वादल-श्याम राम' धूप में तनिक चलने पर ही म्लान-मुख हो जाते हैं और उनके मुख पर स्वेद बिन्दु दिखायी पड़ने लगते हैं।[1] मानस के राम भी पुष्प-वाटिका में पुष्प चयन करने में ही श्रम-विन्दुओं से सुशोभित हो जाते हैं।[2]

किन्तु इन दोनों ग्रन्थों में राम के चरित्र-चित्रण में भिन्नता का कारण है—राम का ब्रह्मत्व। कृत्तिवास के राम अपना ब्रह्मत्व भूल कर वाल्मीकि के राम की भाँति केवल मानव-रूप में उपस्थित होते हैं। कहीं-कहीं वे वाल्मीकि के राम की अपेक्षा दुर्बल-चरित्र हैं। समय आने पर वे कभी-कभी अत्यधिक कातरता का परिचय दे बैठते हैं, वे साधारण पुरुषों की भाँति क्रंदन तो कई अवसरों पर करते हैं। राम की इस गलदश्रु-भावुकता पर बंगाली सहृदयता का प्रभाव स्पष्ट है।

तुलसी के राम अपनी सर्वज्ञता से सदैव परिचित रहते हैं, तभी वे कभी तुच्छ पुरुषों जैसी कातरता नहीं दिखाते। जहाँ कहीं वे भाव-विह्वल होते हैं, वहाँ उनके चरित्र की दुर्बलता नहीं होती, अपितु होता है शील एवं स्नेह का चरम-उत्कर्ष। राम के रूप में तुलसी ने ऐसे जीवंत-आदर्श की मूर्ति गढ़ी है, जैसा कि वाल्मीकि भी न गढ़ सके। राम के शील का 'परस पाथर, छूकर ही रामायण के सभी पात्र अत्यधिक संयमित व्यवहार करते हैं। मानस के राम का संयम कृत्तिवास के राम में न मिलेगा। किन्तु तुलसी के राम के साथ हम खुल कर शोक-कातर भी नहीं हो पाते। कृत्तिवास के राम जहाँ विकल होकर धूल में लोटने जैसी स्थिति में आ जाते हैं, वहाँ मानस के राम की वह स्थिति नहीं आ पाती और कहीं आ भी जाती है, तो तुलसी का अंकुश 'नरपति भगत कृपाल दिखाई,[3] तुरंत स्मरण दिला देता है कि राम तो सर्वज्ञ हैं। वे ऐसा केवल नर-लीला दिखाने के लिए कर रहे हैं। ऐसे वर्णन से मानस के कई प्रसंगों की गंभीरता नष्ट हो जाती है। कृत्तिवास ने प्रसंगों के गांभीर्य को इस प्रकार हल्का नहीं किया। उनके राम तो ब्रह्मत्व की सुधि आ जाने पर भी साधारण बने रहते हैं।

कृत्तिवास के राम को प्रसंग उपस्थित होने पर तदनुकूल हर्ष-विमर्ष का अनुभव होता है। अभिषेक का समाचार सुनकर वे कौशल्या के पास जाकर उत्फुल्ल वदन कहते हैं, 'सभी मुझे राजा बनाना चाह रहे हैं, यह शुभ वार्ता आपसे कहने आया हूँ। नाना

---

१ (१) आतपे हइल म्लान दोंहार आनन—कृत्ति० आदि०, पृ० ७२
(२) रविर आतपे ते हइल मुखे घाम—कृत्ति० आदि०, पृ० ७२

२ भाल तिलक श्रम-बिंदु सुहाये। मानस १-२३२-३

३ मानस, ६-६०-१८

उपहार द्वारा इष्ट पूजा करो, जिससे कि दशभुजा मुझसे संतुष्ट हो जायँ।[1] किन्तु जब कैकेयी के षड्यंत्र से सारी योजना बदल जाती है तो विषण्ण-वदन होकर पुकारता कौशल्या पर अपना क्षोभ प्रकट करते हैं 'माता यदि तुम भी पिता की सेवा करतीं तो क्यों तुम्हें इतना कष्ट होता।[2]

मानस के राम न अभिषेक-समाचार से प्रसन्न हुए और न वनवास की आज्ञा से असन्तुष्ट—'प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्लौ वनवास दुःखतः',[3] राम तो यही चाहते हैं 'भरतु प्रान प्रिय पावहिं राजू'।[4] इसीलिए कौशल्या से भेंट होने पर वे बड़ी नम्रता से कहते हैं—पिता दीन्ह मोहि कानन राजू।[5]

दोनों ग्रंथों में राम कैकेयी का आदर करते हैं। कैकेयी को दोष न देकर भाग्य-लिपि का उल्लेख करते हैं, किन्तु अपने ऊपर आपत्ति पड़ने पर कृत्तिवास के राम कैकेयी को कोसने लगते हैं। सीता-हरण, नागपाश-बंधन एवं माया-सीता के वध के समय वे संयम खोकर बारबार कह उठते हैं–अब कैकेयी के मन का हो गया।[6]

सीता की अग्नि-परीक्षा के समय लोक-निंदा-भय से वाल्मीकि के राम इतने चिंतित हो गये हैं कि सीता को अत्यधिक कटु-वाणी बोलते हैं। तुलसी ने राम के शील की रक्षा के लिए माया-सीता की कल्पना कर प्रसंग को हल्का कर दिया। कृत्तिवास के राम पहले तिरस्कार तो करते हैं किन्तु जब सीता अग्नि-प्रवेश कर जाती हैं तो ऐसा विलाप करते हैं कि ब्रह्मा आकर स्वयं प्रबोध देते हैं, उनके ब्रह्मत्व का स्मरण दिलाते हैं, किन्तु वे एक नहीं सुनते और तभी शांत होते हैं जब अग्नि स्वयं अवतीर्ण होकर उन्हें उनकी प्राणों की जानकी (प्राणेर जानकी) वापस कर देते हैं। कृत्तिवासी-रामायण में और भी दो प्रसंग आये हैं जहाँ राम सीता के प्रति अत्यधिक कातर हो जाते हैं—एक तो सीता के निर्वासन के समय और दूसरे उनके पाताल-प्रवेश के समय। यहाँ पाठक सच ही राम के शोक से अभिभूत हो जाता है।

कृत्तिवास के मानवरत्न राम जब कभी कोई गलती कर देते हैं तो उन्हें बड़ा परिताप होता है। मानस के सर्वज्ञ राम भला भूल कैसे कर सकते हैं, यदि वे ऐसा करने लग जायँ तो सर्वज्ञ कैसे! बालि-वध से कृत्तिवास संतुष्ट नहीं थे, इसीलिए कई पात्रों द्वारा उन्होंने राम पर कटूक्ति करायी है। स्वयं राम बालि को मार कर ग्लानि का अनुभव करते हैं।[7] वे तो रावण के वध पर भी रोते हैं और धनुबाण धारण करना अंगीकार नहीं

---

१ कृत्ति०-अयो०, पृ० ९३

२ कृत्ति०-अयो०, पृ० १०३

३ मानस, अयो०, मंगलाचरण

४ मानस, २-४१-१

५ मानस, २-५२-६

६ कैकेयीर मनोभीष्ट सिद्ध एतदिने। कृत्ति०-आरण्य०, पृ० १५८

७ तोमार सहित युद्ध मोर नाहि साजे।
क्षमा कर कपिराज केन पाड़ लाजे॥ कृत्ति०-किष्क० पृ० १७६

करते ।[१] राम के प्रति भक्ति-प्रकाश करने वाले मित्र और शत्रु दोनों पक्षों के हैं। मित्र-पक्ष के भक्तों के सुख-दु:ख के साथ कृत्तिवास के राम सहानुभूति रखते हैं, उनके दु:ख में वे स्वयं रो पड़ते हैं। मानस में वे भक्त के दु:ख सुन कर रोते नहीं, अपितु उनकी भुजाएँ फड़क उठती हैं। वे अभयदान करते हुए भक्त की रक्षा की प्रतिज्ञा कर देते हैं—

सुनि सेवक दुख दीन दयाला।
फरकि उठीं द्वै भुजा विशाला।। मानस ४-५-१४

सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गएँ न उबरिहि प्रान।। मानस ४-६

युद्ध-क्षेत्र में तरणीसेन, वीरबाहु एवं रावण आदि की भक्ति देख कर भी कृत्तिवास के राम स्नेह-कातर होने लगते हैं। राक्षसों की भक्ति से विह्वल होकर वे धनुष फेंक कर कह उठते हैं—'अब मैं वन में चला जाऊँगा, सीता की आवश्यकता नहीं। मैं भक्त के ऊपर बाण कैसे फेकूंगा।[२] मानस में युद्ध-क्षेत्र को वैष्णवी अखाड़ा नहीं बनाया गया। किन्तु फिर भी राक्षस मरते समय राम-नाम लेते हैं, जिन्हें तुलसी के राम अपना धाम प्रदान करते हैं। शत्रु-पक्ष का बालि मरते समय दीनता प्रकट करता है। उसके दु:ख से राम रोते नहीं हैं, न धनु-बाण फेंकने को उद्यत होते हैं। उस पर दया कर तन-धारण करने को कहते हैं।[३]

दोनों ग्रन्थों में राम का पारिवारिक-आदर्श भव्यता के साथ अंकित किया गया है। कृत्तिवास में राम अपने पिता की निंदा नहीं सुनते, जहाँ निन्दा होती है वहाँ से उठ कर वे चल देते हैं।[४] भाई भरत के प्रति वे सदा स्नेहशील रहे, जितने भी पारिवारिक संबंध हो सकते हैं, उन सभी के प्रति वे स्नेह-शील रहे। मानस में राम के स्नेहमय रूप का और भी अधिक विकास हुआ। वे वृद्ध नौकरों तक को आदर की दृष्टि से देखते हैं। भरत के प्रति उनके प्रेम की तुलना नहीं हो सकती। अंग फड़कने पर उन्हें भरत की याद आती है।[५]। अभिषेक की बात सुन कर उन्हें मन ही मन ग्लानि होती है कि जब

---

१ रावण वधिया दु:ख हइल अपार।
ना धरिवे धनु राम कैला अङ्गीकार ।।कृत्ति० लंका०, पृ० ४३५

२ केमने मारिव अस्त्र इंहार पर।
एत बलि त्यजिला हातेर धनु: शर ।।
अकारण करिलाम सागर बन्धन।
त्यजिया लङ्कार युद्ध पुन: जाइ वन ।।कृत्ति० लंका०, पृ० ३५३
कार्य्य नाइ सीता ना जाव राज्ये ते।
केमने मारिव वाण भक्तेर अङ्गे ते ।।कृत्ति० लंका०, पृ० ३५२

३ मानस ४-९-१-२

४ जेखाने शुनेन राम पितार निन्दन।
करेन से स्थान हइते तुरत गमन ।। कृत्ति० अयो०, पृ० ११२

५ मानस २-६-४-५

सभी भाई एक साथ पैदा हुए तो केवल बड़े को अभिषेक क्यों ?[१] विदा के समय एक-एक बंदर से कुशलवार्ता पूछते हैं।[२] बंदर भी ऐसा स्वामी पाकर धन्य हैं। चित्रकूट में भरत का आना सुन कर राम की क्या दशा होती है—

उठे राम सुनि प्रेम अधीरा।
कहुँ पट कहुँ निषंग धनुतीरा॥ मानस २-२३०-८

कृत्तिवास में राम की एक पत्नी-निष्ठा सहज स्वाभाविक रूप में प्रदर्शित है। तुलसी के राम इतने शील-संकोच-मय तथा चरित्रवान हैं कि वे कभी स्वप्न में भी परनारी-दर्शन नहीं करते।[३] कृत्तिवास के राम भी जितेन्द्रिय और धार्मिक हैं।[४]। किन्तु विवाह के समय सीता की सखियों के साथ हास-परिहास कर लेते हैं। सखियाँ कहती हैं, 'सीता सुन्दरी हैं, तुम काले हो।' राम भी उत्तर देते हैं, 'सुन्दरी के सहवास से मैं भी सुन्दर हो जाऊँगा'।[५] ससुराल में परिहास चलता ही है। कृत्तिवास के राम प्रति-क्षण ब्रह्म नहीं हैं। जहाँ तक पत्नी-निष्ठा का प्रश्न है, वे मानस के राम से किसी प्रकार कम नहीं हैं। कृत्तिवास के राम को एक और कड़ी परीक्षा देनी पड़ी है। गर्भिणी-सीता को उन्होंने असहाय रूप से घोर वन में छोड़ दिया। उनके विरह में कितने दुःखी हैं, सोने की सीता बनाकर देखते रहते हैं, किन्तु सबके जोर देने पर भी द्वितीय विवाह नहीं करते।

सीता के चरित्र पर राम का संदेह, सीता का वनवास, उनकी पुनः परीक्षा तथा शंबूक-वध राम के ये कार्य उनके चरित्र को केवल मानवीय बना देते हैं। वाल्मीकि-रामायण का अनुसरण करने के कारण कृत्तिवास ने भी इनका वर्णन किया है। बंगाल में देवता को अपने जैसे मानवीय रूप में चित्रित करने की प्रवृत्ति भी अधिक देखी जाती है। तुलसी को अपने प्रभु राम के साथ ये प्रसंग शोभा देते नहीं जान पड़े, अतएव उन्होंने इन्हें बहिष्कृत कर दिया है। सच पूछा जाय तो वाल्मीकि रामायण में भी ये प्रसंग प्रक्षिप्त हैं।

दोनों रामायणों के राम के चरित्र में वाल्मीकि-रामायण के राम से भिन्नता का कारण है, उनका ब्रह्मत्व तथा दोनों रामायणों में परस्पर भिन्नता का कारण भी यही है। जयदेव के देश के कृत्तिवास राम को तन-मन से सुकुमार एवं सहृदय दिखाकर भक्तों को उनके द्रवित होने वाले रूप की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं। फलतः उनके राम संवेदनशील अधिक हैं। तुलसी राम के इस गुण के साथ उनके सामर्थ्य, प्रखर-तेजस्विता

---

१ मानस २, ६, ५-७

२ अस कपि एक न सेना माहीं।
राम कुशल जेहि पूछी नाहीं॥ मानस ४-२१-३

३ मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी।
जेहिं सपनेहुँ पर नारि न हेरी॥ मानस १-२३०-६

४ जितेन्द्रिय रामचन्द्र धार्मिक शिरोमणि-कृत्ति० अरण्य०, पृ० १४०

५ सीता बड़ सुन्दरी तुमि हे बड़ कालो। कृत्ति० आदि०, पृ० ८७
सुन्दरीर सहवासे हइब सुन्दर। कृत्ति० आदि०, ८७

एवं सर्वज्ञता आदि गुणों को भी दिखाना चाहते हैं। अतएव उनके राम कभी अप्रतिम नहीं होते, कहीं साधारण जनों जैसी कातरता नहीं दिखाते ।

भरत—वाल्मीकि-रामायण में सबसे अधिक दोषमुक्त-चरित्र भरत का है । इस साधु-पुरुष पर राम एवं उनके परिवार के अनेक व्यक्ति संदेह करते हैं, किंतु भरत अपने त्याग-भाव से सभी पर विजय प्राप्त कर लेते हैं । राम भी परिस्थिति आने पर प्रकृत-पुरुषों जैसी दुर्बलता दिखा जाते हैं, किंतु भरत का चरित्र सर्वथा निष्कलंक एवं अविचल है ।

कृत्तिवास ने वाल्मीकि का अनुसरण किया है । दशरथ, कौशल्या एवं सीता आदि पात्र कभी-कभी उनके प्रति दुर्भाव प्रकट कर जाते हैं किन्तु कृत्तिवास के राम सच्चे हृदय से कहते हैं, 'भाई भरत के शरीर में कोई दोष नहीं है, मैं उसके व्यवहार से परम संतुष्ट हूँ ।[1]

मानस में राम ही नहीं अन्य पात्र भी भरत के चरित्र पर किसी प्रकार का आक्षेप नहीं करते । पुरवासियों में कोई भरत के चरित्र पर आक्षेप करता भी है तो दूसरा चट कान पर हाथ रख और जीभ दाँतों से दबा कर कहता है, ऐसा मत कहो तुम्हारे सुकृत नष्ट हो जायेंगे ।[2]

तुलसी ने राम के नाते लगभग सभी पात्रों के शील एवं मर्यादा की रक्षा कर उन्हें असंमयी होने से बचाया है, किन्तु भरत के प्रति इतनी सतर्कता का कारण कुछ और है । मानस में भरत आदर्श-भक्त के रूप में उपस्थित हैं । भक्त का महत्त्व भगवान् से भी बढ़कर है । वन जाते समय प्रकृति भरत के साथ जितनी सहानुभूति प्रकट करती है, इतनी सर्वशक्तिमान राम के प्रति भी नहीं ।

किए जाहिं छाया जलद सुखद बहइ बर बात ।
तस मगु भयउ न राम कहं जस भा भरतहि जात ।। मानस २-२१६

साधु-पुरुष भरत सौम्यता की मूर्ति हैं । कुटिल मंथरा को वे क्षमा कर देते हैं। क्षमा नहीं कर पाते हैं अपनी जननी को । उसके साथ व्यवहार करते समय वे संयम खो देते हैं । कैकेयी के कारण ही इतना बड़ा अनिष्ट हुआ, इसी के कारण भरत को इतनी बड़ी लांछना सहनी पड़ी । भरत जब सोचते हैं कि उनके ही कारण पिता की मृत्यु हुई तथा फूल से सुकुमार राजकुमार और राजकुमारी १४ वर्ष के लिए वनवासी हुए, तो वे हृदय का समस्त क्षोभ कैकेयी पर निकालते हैं । कृत्तिवासी-रामायण में वे कैकेयी को राक्षसी कहते हैं और उसे मार डालने को प्रस्तुत हो जाते हैं ।[3] मानस में भी भरत कैकेयी को खरी-खरी सुनाते हैं—वर माँगते समय तेरे मन में पीड़ा नहीं हुई । तेरी जीभ गल क्यों न गयी और मुंह में कीड़े क्यों न पड़ गये ।[4] मानस के भरत ग्लानि का अनुभव करने के कारण अपने को वेणुवन-

१ कौन दोष नाइ भाइ भरत शरीरे ।
बड़इ तुष्ट आछि आमि तार व्यवहारे ।।कृत्ति० अयो०, पृ० १०७

२ मानस, २-४७-७,८

३ कृत्ति० अयो०, पृ० १२१

४ मानस, २-१६१-२

की आग समझते हैं । हनुमान को शराघात से मूर्छित कर लक्ष्मण के उपचार में विघ्न डालने के कारण भी उन्हें बहुत क्षोभ होता ।

अहह दैव मैं कत जग जायउँ ।
प्रभु के एकहु काज न आयउँ ।। मानस ६-५९-३

कृत्तिवास के भरत के चरित्र में विरोधाभास है । एक ओर भरत ताड़का से डर कर विश्वामित्र के साथ जाने को तैयार नहीं होते, तो दूसरी ओर हनुमान के समक्ष बल-परीक्षा देते समय पारस्य-कथाओं जैसा चमत्कार दिखाते हैं । मानस में भरत के शौर्य की परीक्षा का स्थल नहीं आया है, किन्तु मानसकार भीरु-भरत की कल्पना भी नहीं कर सकता ।

निःस्वार्थ-भाव, कर्त्तव्य-परायणता, विशुद्ध-भ्रातृभक्ति, [illegible] आदि गुण दोनों लेखकों के भरत में मिलेंगे, तुलसी के भरत में इन उपर्युक्त, गुणों का कुछ आधिक्य है ।

लक्ष्मण—लक्ष्मण ने अपने अस्तित्व को राम के अस्तित्व में इस प्रकार लीन कर दिया कि वे केवल राम की छाया मात्र रह गये । राम, सीता एवं कौशल्या के त्याग से लक्ष्मण, उर्मिला और सुमित्रा का त्याग किसी भी रूप में कम न था किन्तु रामायण के समस्त पात्र एवं घटना-व्यापार राम के आस-पास इस प्रकार घूमते हैं कि पाठक रामादि के अतिरिक्त अन्य पात्रों के कष्ट एवं त्याग की बात सोच भी नहीं पाता ।

यह वीर प्रारम्भ से ही सच्चे क्षत्रिय के रूप में दिखायी पड़ता है । राम कई बार विचलित हुए होंगे, किन्तु इस दुर्द्धर्ष-वीर को हम इस्पात की तरह मजबूत देखते हैं । लक्ष्मण ने कभी अन्याय नहीं सहा । वे सदैव अन्याय का प्रतीकार करते रहे । दशरथ के वर-प्रदान से उन्हें संतोष नहीं हुआ । वाल्मीकि-रामायण[1] में वे नाग के समान फुंकारते हुए 'कैकेय्यासक्त वृद्ध' दशरथ का वध करने के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं । कृत्तिवासी-रामायण में भी उनकी ऐसी ही स्थिति है—

प्रबोध न माने वीर काल सर्प जेन भज्जे ।
सुमित्राकुमार शिशु घन घन तर्ज्जे ।। कृत्ति०, अयो०, पृ० १०५
काल-सर्प के समान गरजता हुआ लक्ष्मण का यह रूप ही क्षत्रिय का रूप है ।

लक्ष्मण केवल गरज कर ही नहीं रह जाते । वे तर्क देकर राम को उत्तेजित करने की चेष्टा करते हैं—'सन्यास तपस्या आदि तो ब्राह्मणों के कार्य हैं । क्षत्रिय का धर्म सदा युद्ध करना है । क्षत्रिय ने कब कहाँ वनवास किया है । शत्रु के कहने से राज्य की आशा क्यों छोड़ दें' ।[2] राजा के विषय में वे कहते हैं—बुढ़ापे में राजा दुर्बुद्धि और पागल हो गये हैं ।[3]

१ वाल्मीकि-रामायण २-२१-१६
२ कृत्ति० अयो०, पृ० १०५
३ वार्द्धक्ये दुर्व्बुद्धि राजा नितान्त पागल । कृत्ति० अयो०, पृ० १०४

मानस में भी लक्ष्मण के क्षत्रिय-रूप का चित्रण है। वे जनक की निराशा-जनक वाणी सुनकर तमक उठते हैं। परशुराम के वीर-वेश को देख कर कुछ कहने के लिए उनकी जीभ खुजला जाती है। लक्ष्मण के सहज क्रोधी होने का ज्ञान कैकेयी एवं केवट के शब्दों से ही हो जाता है। मंथरा के क्षोभ का अनुमान कर कैकेयी कहती है, क्या लक्ष्मण ने तेरी मरम्मत कर दी है।[1] केवट लक्ष्मण की रोष-मुद्रा से परिचित होकर ही कहता है—भले ही बाण मार दीजिए किन्तु बिना पैर धोये नाव पर न चढ़ने दूंगा।[2] इतना होते हुए भी वनवास की आज्ञा के समय लक्ष्मण शांत रहते हैं। तुलसी ने इस सहज-क्रोधी पात्र को भी शीलमय बनाने की चेष्टा की है। लक्ष्मण के मुख से दशरथ के प्रति कटूक्ति करना तुलसी को उचित नहीं लगा, अतएव इस प्रसंग में उन्होंने लक्ष्मण को मौन रखा, फिर भी सुमंत्र द्वारा संदेशा देते समय कटु-वाणी कहने का संकेत कर दिया है।[3]

भरत के प्रति दोनों के लक्ष्मण क्रोध प्रकट करते हैं। वाल्मीकि रामायण में दो स्थलों पर लक्ष्मण क्रुद्ध होते हैं—वनवास की आज्ञा के समय और भरत के चित्रकूट आने के समय। कृत्तिवास और तुलसी ने क्रमशः पहला और दूसरा स्थल चुना। कृत्तिवासी-रामायण में वे धनुष हाथ में लेकर तड़प कर कहते हैं, 'यदि आपकी आज्ञा पा जाऊँ तो भरत को खंड-खंड कर तुम्हें राज्य दिला सकता हूँ'।[4] मानस के लक्ष्मण वनवास की आज्ञा के समय तो चुप रह गये किन्तु जब उन्होंने देखा कि भरत जंगल में भी उनका पीछा छोड़ने वाले नहीं हैं तो लक्ष्मण ने शील का मुखावरण उतार फेंका। जटा बाँध कर तथा कमर कस कर धनुष उठा लिया और कहा—भरत को राजमद हो गया है। आज दोनों भाइयों को समर में सुला दूँगा।[5]

वाल्मीकि-रामायण में लक्ष्मण कभी कातर नहीं होते। कहीं भी उन्हें सुमित्रा अथवा उर्मिला की याद नहीं आती। उन्हें दुःख होता है तो केवल अपने पूज्य भ्राता एवं भाभी के कष्टों के स्मरण से। वे राम के सदैव अनुचर हैं, केवल आज्ञाओं की प्रतीक्षा उनकी पीठ के पीछे खड़े होकर करना जानते हैं। राम अग्नि-परीक्षा के लिए चिता सजाने की मौन-स्वीकृति देते हैं, लक्ष्मण एक शब्द नहीं कहते, किन्तु क्रोध के मारे उनका मुख तमतमा जाता है। कृत्तिवासी-रामायण में भी वे बोलते नहीं, मानस में भी नहीं, परन्तु मानस में वे इस अवसर (अग्नि-परीक्षा) पर कातर हो उठे हैं। राम से वे कुछ कह नहीं सकते, केवल आँसू बहाते हुए हाथ जोड़े खड़े हैं। वाल्मीकि के लक्ष्मण एक स्थान पर बहुत विह्वल हैं—राम के वन-गमन के अवसर पर। वे भी साथ चलना चाहते हैं। इससे

---

१ हंसि कह रानि गालु बड़ तोरे।
दीन्ह लखन सिख अस मन मोरें॥ २–१२–७

२ बरु तीर मारहुँ लखन पै जब लगि न पाय पखारिहौं—मानस २–६६–८ के पश्चात् छंद

३ लखन कहे कछु बचन कठोरा, मानस २–१५१–७

४ यदि रघुनाथ आमि तव आज्ञा पाइ।
भरते खण्डिया राज्य तोमारे देवाइ॥ कृत्ति० अयो०, पृ० १०४

५ मानस २-२२७-१, २२६-२, ३

भी विकल हैं मानस में : न वे तर्क करते हैं और न किसी पर दोषारोपण। बस अकुला कर राम के चरण पकड़ लेते हैं, कहते हैं कि वे गुरु, पिता किसी को नहीं जानते, वे तो केवल राम के प्रेम में पले हैं।[1]

कृत्तिवास के लक्ष्मण केवल एक स्थान पर उच्च स्वर से क्रन्दन कर उठते हैं। गर्भवती निरपराध सीता को भयानक जंगल में अकेला छोड़ने में उन्हें इतना कष्ट हुआ कि सदैव सर्प के समान गरजने वाले वीर का क्षत्रियत्व अबलाओं के आँसुओं के समान पिघल गया।[2]

मानस के लक्ष्मण बाल्य-काल में बड़े चपल रहे हैं। परशुराम को वे जो उत्तर देते हैं, उसमें निहित-व्यंगों पर हम मुग्ध हो सकते हैं, किन्तु लक्ष्मण का यह चरित्र उनके समग्र चरित्र से मेल नहीं खाता। वे यहाँ अस्वाभाविक से हो जाते हैं। एक स्थान पर तो यह क्षात्र-धर्मी-वीर तत्व-चिंतक भी बन गया है और निषाद के आगे गूढ़-रहस्यों का उद्घाटन करता है।

वाल्मीकि-रामायण में लक्ष्मण केवल एक परम आज्ञाकारी भ्राता एवं परिश्रमी सेवक के रूप में हमारे सामने आते हैं। कृत्तिवासी-रामायण में भी उनके इस रूप को ही अक्षुण्ण रखने का प्रयास है, किन्तु मानस में उनका भ्रातृ-रूप कहीं-कहीं कुछ फीका पड़ जाता है। लक्ष्मण राम को केवल भाई ही नहीं, ब्रह्म भी मानते हैं, परिणामतः भ्रातृत्व के स्थान पर उनका भक्त-रूप आ जाता है। मारीच की कपट पुकार पर जब सीता घबड़ा उठती है, लक्ष्मण कहते हैं—

भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई।
सपनेहुँ संकट परइ कि सोई॥ मानस ३-२७-४

कृत्तिवास के लक्ष्मण को भी राम की शक्ति पर अगाध विश्वास है, किन्तु ब्रह्म मानकर नहीं। अतः ऐसे अवसर पर वे जो कुछ कहते हैं उसमें राम के चरित्र की गरिमा एवं लक्ष्मण का अचल-विश्वास है।

श्री रामेर मुखे नाइ कातर वचन-कृत्ति० अरण्य०, पृ० १५०

मानस के लक्ष्मण और सीता में देवर-भाभी संबंध बहुत मधुर है। सीता को अपने धनुर्धारी वीर-धुरीन प्रिय देवर पर अभिमान रहता है।[3] गंगा की पूजा के समय वे राम की कुशल के साथ देवर की भी कुशल मनाती हैं। लक्ष्मण भी भाई और भाभी का कितना आदर करते हैं-पूज्य-भाव सीमा को पहुँच गया है, वे सीता-राम के चरण-चिन्हों तक पर पैर नहीं रखते।[4] राम अपने इस मौन- भ्राता की भक्ति और प्रीति समझते थे। वे लक्ष्मण को कितना प्यार करते थे यह शक्ति लगने पर प्रकट हुआ है। मानस में उन्होंने सच्चे

---

१ मानस २-७१ एवं २-७२-४

२ अधोमुखे कान्दे से चक्षे पड़े पानी॥ कृत्ति० उत्तर०, पृ० ५२६

३ प्राननाथ प्रिय देवर साथा। बीर धुरीन धरें धनु भाथा॥ मानस २-९८-१

४ सीय राम पद अंक बराएं। लखन चलहिं मगु दाहिन लाएं॥ मानस २-१२२-६

हृदय से कहा है कि पुत्र, धन और स्त्री तो मिलते और जाते रहते हैं परन्तु संसार में सहोदर भ्राता बार-बार नहीं मिलता[1]। इसी प्रकार कृत्तिवासी-रामायण में भी राम कहते हैं, मैं राज्य और सीता कुछ नहीं चाहता। मैं तुम्हारे शोक के सागर में डूब कर प्राण दे दूंगा।[2]

लक्ष्मण के चरित्र-चित्रण में कृत्तिवास तुलसी से पीछे नहीं रहे, अपितु कहीं-कहीं उन्होंने तुलसी की अपेक्षा इस पात्र के चरित्र का अधिक मार्मिकता के साथ वर्णनकिया है।

दशरथ—कैकेयी को वर देने के कारण एक बहुत बड़ा अनर्थ हो गया और कामासक्ति के कारण दशरथ का दुर्नाम हुआ, यहाँ तक कि उनके सद्गुणों की ओर ध्यान कम जाने लगा। वाल्मीकि के दशरथ दीर्घदर्शी, महातेजस्वी, प्रजाप्रिय, धर्म-रत, जितेन्द्रिय एवं सत्यसंध हैं।[3] कृत्तिवास और तुलसी के राजाओं में भी ये गुण हैं। कैकेयी बहुत सुन्दर थी, उसकी ओर वे आकृष्ट भी थे, किन्तु विषयासक्ति के आगे उन्होंने कर्त्तव्य का विस्मरण कभी नहीं किया, अन्यथा बड़ी रानी के बड़े लड़के को अभिषिक्त करने की इच्छा न करते। राम के प्रेम के कारण वे पहले गिड़गिड़ा कर कैकेयी के पैर पकड़ लेते हैं, किन्तु उसे ठीक मार्ग पर आता न देख कर घृणा के साथ फटकार देते हैं।[4]

कृत्तिवास के दशरथ में गंभीरता कम है। विश्वामित्र को राम-लक्ष्मण के स्थान पर भरत-शत्रुघ्न को देना, भरत पर संदेह करना, तथा रामाभिषेक के समय कपट-क्रोध का अभिनय कर फिर तुरन्त प्रसन्नता प्रकट करना आदि उनके कार्य मानस के दशरथ से उन्हें छोटा बना देते हैं। अपराध कैकेयी ने किया था और आप भरत पर असंतुष्ट होकर उनके द्वारा श्राद्ध-तर्पण लेना अस्वीकार कर देते हैं।[5] मानस में उनका हृदय कुटिल और स्वार्थ-पारक नहीं जान पड़ता। वे राम और भरत को अपनी दो आँखें बतलाते हैं। राम से अतिशय प्रेम करने पर भी कहीं भरत के प्रति दुर्भाव नहीं रखते।[6]

दशरथ का वात्सल्य विश्व के समक्ष एक अमर आदर्श छोड़ गया है। वे कैकेयी के कपट जाल में फँस कर प्रतिज्ञा कर बैठे और जब वर माँग लिये गये तो निश्चेष्ट रह गये। एक ओर सत्यवादिता दूसरी ओर पुत्र-प्रेम, कौन सा कर्त्तव्य पूरा हो। दोनों कर्त्तव्यों की पूर्त्ति में उन्हें अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी।

---

१ सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥
अस बिचारि जियं जागहु ताता। मिलहि न जगत सहोदर भ्राता॥ मानस ६-६०-७,८.

२ राज्य धने कार्य्य नाइ, नाहि चाहि सीते।
सागरे त्यजिब प्राण तोमार शोके ते॥ कृत्ति० लंका०, पृ० ३८४

३ वाल्मीकि रामायण, १,६,१-५

४ कृत्ति० रामा०, अयो० पृ० ६६-१००
मानस-लोचन ओट बैठ मुहु गोई। २-३५-६

५ भरतेर ना लइब श्राद्ध वा तर्पण-कृत्ति० अयो०, पृ० १०६

६ मोरें भरतु रामु दुइ आंखी-मानस २-३०-६

वाल्मीकि एवं कृत्तिवास के दशरथ राम के विरह में इतने व्याकुल हो जाते हैं कि संयम खो देते हैं। न अपने कर्तव्य का ध्यान रखते हैं और न राम के कर्तव्य का। कई बार उन्हें वन न जाने अथवा दो एक दिन के लिए रुक जाने के लिए फुसलाते हैं। यहाँ दशरथ का पितृ-रूप महान् है। तुलसी के दशरथ ने भी राम को रोकने के लिए 'बहुत उपाय किए छल त्यागी' किन्तु यहाँ दशरथ पितृ-रूप की रक्षा करते हुए भी कर्तव्यच्युत नहीं होते। वे राम से न कह कर मन ही मन मनाते हैं कि राम की ऐसी मति हो जाय कि वे वन को न जायँ। कुछ हो जाय किन्तु राम नयनों की ओट न हों।[1]

वाल्मीकि और कृत्तिवासी-रामायणों मे राजा राम के रथ के पीछे व्याकुल होकर दौड़ पड़ते हैं।[2]

तुलसी के दशरथ प्रारंभ से अन्त तक पुत्रवत्सल एवं गंभीर-प्रकृति के राजा दिखायी पड़ते हैं। कृत्तिवास के दशरथ में वाल्मीकि के दशरथ की मानव-सुलभ सहज दुर्बलताओं का अनुसरण हुआ किंतु उनके महान् व्यक्तित्व का नहीं। उन्होंने तुलसी की अपेक्षा दशरथ के चरित का विस्तृत वर्णन किया है, परन्तु तुलसी का स्वल्प- चित्रण ही बहुत सुन्दर है।

विश्वामित्र—विश्वामि का चरित्र प्रस्तुत करने में तुलसीदास को कृत्तिवास से अधिक सफलता मिली है। विश्वामित्र सहज-क्रोधी थे, किन्तु कृत्तिवासी-रामायण के विश्वामित्र के समान चिड़चिड़े और भीरु नहीं थे। तुलसीदास के विश्वामित्र सभी प्रकार की दुर्बलताओं से ऊपर उठे हुए वास्तव में गंभीर-प्रकृति ऋषि हैं। तभी पुत्र-प्रेम के कारण जब दशरथ राम-लक्ष्मण के देने में आना-कानी करते हैं तो कृत्तिवास के ऋषि चिड़चिड़ा उठते हैं, और तुलसी के ज्ञानी-मुनि मन ही मन प्रमुदित होते हैं।[3]

मानस में विश्वामित्र का क्रोधी रूप है ही नहीं। वे अत्यधिक स्नेह-संपन्न जान पड़ते हैं। राम तो उनका इतना आदर और विश्वास करते हैं कि सीता के प्रति अपना रति-भाव भी उनके सामने व्यक्त कर देते हैं।

वास्तव में विश्वामित्र आदि ऋषि राक्षसों से भीत नहीं थे। वे शाप द्वारा राक्षस-विनाश का सामर्थ्य रखते थे, किन्तु ब्राह्मण का गुण क्रोध न होने के कारण वे ऐसा न करने के लिए विवश थे, अतएव उन्हें क्षत्रिय के साहाय्य की आवश्यकता हुई। संभवतः ताड़कादि राक्षसी-राक्षसों की भयंकरता चित्रित करने के लिए कृत्तिवास ने विश्वामित्र का डरपोक रूप प्रस्तुत किया है। मानस में वे कहीं भयभीत नहीं होते। वे पथ पर चलते-चलते ताड़का को दिखा देते हैं और राम उसे मार डालते हैं। कृत्तिवासी- रामायण में वे ताड़का को दूर से दिखा कर सिर पर पैर रख कर भाग जाते हैं, युद्ध के शब्द से अज्ञान हो जाते हैं। राम उन्हें मृत ताड़का दिखाने ले जाते हैं। तब भी वे धीरे-धीरे पैर बढ़ा कर आगे बढ़ रहे हैं। ताड़का मर गयी, फिर भी उनकी कँप-कँपी नहीं गयी।[4]

१ मानस, २–४३.५ एवं २–४४

२ वाल्मीकि–रामा०, २–४०–२८ एवं कृत्ति० अयो०, पृ० १११

३ मानस, १–२०७–७

४ कृत्ति० आदि०, पृ० ७२–७४

दूसरी ओर वाल्मीकि के ऋषि हैं जो ताड़का को आया देख हुँकारते हैं। वे लगातार राम के साथ रह कर उन्हें परामर्श देते हैं, उत्साहित करते हैं।[१]

हनुमान—वाल्मीकि-रामायण में राम ने प्रथम-भेंट के समय हनुमान के संस्कृत-ज्ञान की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। सीता से भेंट करते समय हनुमान चिंता कर रहे हैं कि संस्कृत बोलें या अन्य भाषा। वे पंडित थे, संयमी थे। एक ओर जहाँ वे सुग्रीव के योग्य सचिव रहे वहाँ दूसरी ओर राम के प्रति उन्होंने प्रभु-भक्ति का उत्कट आदर्श रखा। इन गुणों के अतिरिक्त वे वीर-पुंगव भी थे। राम ने इन्हीं की वीरता और बुद्धि पर विश्वास कर इन्हें सीता के लिए अंगूठी का अभिज्ञान दिया था।

कृत्तिवास ने हनुमान के इन गुणों को ग्रहण करते हुए भी उन्हें कहीं वानर-वृत्ति-युक्त और कहीं रुदन-शील बना कर परिवर्त्तन किया है। मानस में पंडित अथवा वानर रूप की अपेक्षा उनका भक्त-रूप अधिक उभरा है।

कृत्तिवास के हनुमान की राम-भक्ति में अनन्यता है परन्तु साथ में अज्ञता भी। गरुड़ को राम ने कृष्ण-रूप दिखाया, इसलिए वे गरुड़ के प्रति ईर्ष्यालु होकर इस घटना का प्रतिशोध लेना चाहते हैं। वे सीता द्वारा दी गयी बहुमूल्य माला के दाने इसलिए फोड़ डालते हैं कि उसमें राम-सीता का रूप नहीं है। लक्ष्मण के व्यंग करने पर वे अपने हृदय को फाड़कर अस्थि-अस्थि पर राम-नाम अंकित दिखा देते हैं।[२]

मानस के हनुमान राम के विह्वल-भक्त हैं, प्रथम भेंट में ही वे प्रेमाकुल होकर उनके चरणों पर ऐसे गिरे कि उठाने से भी नहीं उठते।[३] उन्हें सृष्टि के कण-कण में राम-रूप के दर्शन होते हैं, तभी चंद्रमा में उन्हें अपने प्रभु की श्याम-छाया दिखायी पड़ती है।[४]

यदि हनुमान की सहायता प्राप्त न होती, तो कहा नहीं जा सकता कि राम की स्थिति क्या होती। रामायणों के सुन्दर कांड के नायक वे ही हैं। वैसे भी किष्किंधा से लेकर उत्तरकांड तक आपकी उपस्थिति अल्पाधिक रूप से महत्त्वपूर्ण रहती है। ऐसे हनुमान कृत्तिवासी-रामायण में कभी-कभी धैर्यच्युत हो जाते हैं। वे सीता की खोज न कर पाने पर रोने लगते हैं, निद्रित रावण को देख कर डर जाते हैं, रावण की सभा में उसका प्रभुत्व देखा तो त्रस्त होकर राम के चरणों का स्मरण करने लगते हैं।[५] डरना स्वाभाविक भी था। त्रिलोक-विजयी रावण के दरबार में बड़े-बड़े देवता सिर झुकाये बैठे रहते थे। फिर अकेले हनुमान इतने भयंकर राक्षस-योद्धाओं के बीच थोड़े बहुत त्रस्त हो गये तो क्या हुआ। रावण का प्रभाव मानस के हनुमान ने भी देखा, किंतु उनके मन में शंका नहीं आई वे

१ वाल्मीकि, बालकांड, अध्याय, २६

२ कृत्ति०रामा०, लंका० पृ० ४६२

३ बार बार प्रभु चहई उठावा।
प्रेम मगन तेहि उठव न पावा। मानस ५-३२-१

४ मानस ६-१२ (क)

५ कृत्ति० रामा०, सुन्दर०, पृ० २२४, २२६

सर्पों के बीच गरुड़ के समान निश्शंक रहे।[१] राज-दरबार में रावण को खरी-खरी सुनाने में दोनों ग्रंथों के हनुमान नहीं चूकते।

कृत्तिवासी-रामायण में जहाँ हनुमान को पंडित रूप में चित्रित किया गया, वहीं स्थान-स्थान पर उनकी वानर-सुलभ चपलता का भी चित्रण है। संपाति को सात-कांड रामायण सुनाने वाले और अंगद-षड़यंत्र कुशलतापूर्वक फोड़ने वाले हनुमान राक्षसों की यज्ञवेदी पर मूत्र-त्याग कर आते हैं, छोटी सी बात पर असंतुष्ट होकर नल को खदेड़ लेते हैं।[२]

मानस के हनुमान के चरित्र में यह विरोधाभास नहीं है। वहाँ हनुमान न पंडित हैं और न वानर। वे तो राम के अनन्य-भक्त हैं, भक्तों के आदर्श हैं अथवा स्वयं मूर्तिमान तुलसीदास हैं। उत्तर-भारत के गाँव-गाँव में बजरंगबली की जो पूजा होती है, वह मानस का ही प्रभाव है। उत्तर-भारत में तुलसी ने उन्हें भक्त और वीर के रूप में अमर कर दिया है। आज भी मानस का पाठ करते समय विश्वास किया जाता है कि हनुमान अदृश्य-रूप से कथा सुनने आते हैं, अतएव पाठ के पूर्व ही उनके आसन की व्यवस्था कर दी जाती है।[३]

कृत्तिवासी-रामायण एवं बंगाल में हनुमान का चरित्र कर्त्तव्य-परायण सरल-बुद्धि प्रिय-भृत्य जैसा है, उनके चरित्र में भृत्य-सुलभ अज्ञता भी है।

अंगद—वाल्मीकि-रामायण का अंगद राजनीति-कुशल है। वह जानता है कि सुग्रीव का मन उसके प्रति स्वच्छ नहीं है, राम स्वार्थ-वश सुग्रीव का ही साथ देंगे। इसीलिए जब वह सीता की खोज नहीं कर पाता तो तारक बंदर के साथ सुग्रीव के विरुद्ध षड़यंत्र करता है। राम ने भी उसकी परीक्षा लेने के लिए राजदूत बनाकर भेजा था।

कृत्तिवास का अंगद वाल्मीकि के अंगद की अपेक्षा कुछ कम उग्र है। उनके राम भी उस पर अविश्वास नहीं करते। मानस में अंगद का चरित्र हनुमान के समान है, वह भी राम का परम भक्त है, ऐसी स्थिति में परस्पर अविश्वास के लिए स्थान ही नहीं रह जाता। मानस में अयोध्या से विदा होते समय भक्त-अंगद का बहुत सुन्दर चित्रण हुआ है।[४]

---

१ मानस ५-१९-८

२ कृत्ति० रामा०, सुन्दर०, पृ० २५६

३ कृत्तिवासी-रामायण में भी कहा गया है—राम-नाम के प्रसंग पर तुम कहीं भी क्यों न हो वहाँ पहुँच जाओगे। 'राम नाम प्रसङ्ग हइबे जेइ स्थाने। यथा तथा थाक तुमि आसिवे सेखाने॥ लंका—४६२

४ अंगद हृदय प्रेम नहिं थोरा। फिरि फिरि चितव राम कीं ओरा। ७-१८-२
वार वार कर दंड प्रनामा। मन अस रहन कहहिं मोहि रामा ॥७-१८-३ मा०

वाल्मीकि-रामायण में अङ्गद-रावण संवाद नहीं है। कृत्तिवास एवं तुलसी दोनों ने संवाद का विस्तृत वर्णन कर अङ्गद की वाक्पटुता का अच्छा परिचय दिया।

बालि—बालि ने सुग्रीव के साथ अत्याचार किया था। सुग्रीव ने द्वार रोध कर अवश्य ही बालि के प्राण संकट में डाल दिये थे, यह उसकी बुद्धि-हीनता हो सकती है, किन्तु बालि के प्रति उसके मन में कोई दुर्भाव न था। बालि को मृत मान कर मंत्रियों के आग्रह करने पर ही उसने राज्य-भार स्वीकार किया था। बालि ने उससे बदला लेने के लिए उसे समस्त विश्व में खदेड़ मारा; उसकी प्रिय-स्त्री का हरण कर लिया। सुग्रीव के मुख से उसकी विपत्ति सुन कर राम ने बालि को दंड देना स्वीकार कर लिया। युद्ध में उन्होंने इसीलिए छिप कर मारा था; उस समय राम ने युद्ध नहीं किया, दंड दिया था। वाल्मीकि के राम उसे स्पष्ट-रूप से समझाते हैं कि वह अपराधी है और राजा भरत के प्रतिनिधि-रूप में वे उसे दंड दे रहे हैं। फिर भी राम जैसे शूर-वीर के लिए बालि-वध कलंक-स्वरूप रह ही गया। कृत्तिवासी-रामायण में लेखक बालि का पक्ष लेता है और इसीलिए उसने राम को बालि-वध के उपरान्त अत्यधिक ग्लानियुक्त दिखाया है। मानस में इस प्रसंग को एक अन्य रूप दे दिया गया है। यहाँ बालि और राम भक्त तथा उपास्य के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं।

वाल्मीकि-रामायण एवं कृत्तिवासी-रामायण में बालि को विश्वास है कि राम उसके साथ अनीति नहीं करेंगे, इसीलिए वह निश्चित है।[1] मानस का बालि राम को समदर्शी मानता है और यह भी कहता है कि 'यदि वे मारेंगे भी तो मैं अनाथ हो जाऊँगा।[2] मानस का बालि वाल्मीकि के महामानव राम से नहीं, ब्रह्म-राम से प्रभावित है।

राम को महान् पुरुषों के अनुकूल कार्य न करता हुआ देख कर वाल्मीकि का बालि कठोर वचन कहता है। कृत्तिवास स्वयं राम के इस कार्य से संतुष्ट नहीं थे, इसलिए उनका बालि अत्यधिक कठोर होकर उन पर चपेटाघात करने की बात करता है। मानस का भक्त बालि तो मन ही मन अपना जन्म सुफल मानकर झूठ-मूठ कठोर वचन कहता है।[3]

कृत्तिवास के राम के तर्कों में जोर नहीं है, अंततः कह देते हैं कि सुग्रीव से मैत्री होने और सहायता की प्रतिज्ञा करने के कारण मारा।[4] साफ बात मुँह से निकल गयी। सुग्रीव की सहायता अपने स्वार्थ के कारण की थी।

मानस के तर्कों में भी जोर नहीं है, क्योंकि यदि बालि ने अनुज-वधू के साथ पाप-व्यवहार किया तो सुग्रीव ने भी मातृतुल्या अग्रजवधू के साथ वही किया। किन्तु मानस में राम अप्रतिभ न होकर कहते हैं—'मेरे भुज-बल पर आश्रित होने पर भी तू सुग्रीव को

---

१ वाल्मी० रामा० ४—१६—५, कृत्ति०, किष्क०, पृ० १७४
२ मानस ४-७
३ मानस ४—८—३, ४
४ कृत्ति०, किष्क०, पृ० १७६

मारना चाहता था ?' यहाँ वालि निरुत्तर होकर पूर्णतः शरणागत हो जाता है।[1] अंत में कृत्तिवास का वालि भी क्षमा माँग लेता है।[2]

रावण—प्रतिनायक के रूप में रावण के चरित्र का सभी ने उत्कर्ष किया है। वह अमित पराक्रमी था। वाल्मीकि-रामायण में वह आदित्य के समान दुष्प्रेक्ष्य[3] बताया गया है। दोनों भाषा-रामायणों में उसके प्रवल प्रताप एवं आतंक का वर्णन है। कृत्तिवासी-रामायण में सभी देवता उसकी परिचर्या करते हैं। यम उसके घोड़े के लिए घास लाते हैं, शनि कपड़ा धोते हैं, ब्रह्मा बच्चे पढ़ाते हैं।[4] मानस में भी देवताओं की क्या स्थिति है —

कर जोरें सुर दिसिप बिनीता।
भृकुटि बिलोकत सकल सभीता ।। मानस ५–१६–७

इन दोनों रामायण-कारों ने उसके चरित्र का पतन भी किया है। कृत्तिवासी-रामायण के अनुसार वह धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने जनकपुर जाता है और असफल होकर भागता है। बच्चे पीछे से टिटकारी देते हैं।[5] युद्धस्थल में नील उसके मस्तक पर मूत्र-त्याग कर देते हैं।[6] दोनों रामायणों में अंगद और हनुमान उसके मुख पर ही उसे खरी खोटी सुनाते हैं। तुलसी भक्ति के आवेश में रावण के प्रति उसके ही दूत से ऐसे शब्दों का प्रयोग कराते हैं—

(१) सुन खल वचन दूत रिस बाढ़ी। (२) नाथ बचाइ जुड़ावहु छाती।[7] दूत को 'रिस' करने अथवा छाती जुड़ाने के लिए कहने का क्या अधिकार था ? और तो और मंदोदरी तक कहती है, तुम में और राम में जुगनू और सूरज का अन्तर है। अतएव तुम राम के चरण-कमलों में माथा झुका कर राज्य पुत्र को सौंप कर वन में जाकर रघुनाथ को भजो।[8] पत्नी के मुख से ऐसे शब्दों का प्रयोग करना कहाँ तक उचित है।

चरित्र के अपकर्ष में जहाँ कृत्तिवास का रावण स्वयं छोटा बन जाता है, वहाँ तुलसी का रावण नहीं। अन्य लोग–वे उसके भाई अथवा पत्नी ही क्यों न हों—चाहे जो

१ मानस ४–८–१०, ४–६

२ कृत्ति०, सुन्दर०, पृ० १७६

३ वाल्मीकि रामा०६–५६–२७

४ कृत्ति० आदि०, पृ० ५४

५ पलाइया चलिल लङ्कार अधिकारी।
सकल बालक देय तारे टिटकारी ॥ कृत्ति० आदि०, पृ० ६७

६ कृत्ति० लंका०, पृ०, ३०२

७ मानस, ५–५५–८,–६

८ मानस, ६–५–६ एवं ६–६

कहते रहें, उसे कितना भी नीचा क्यों न समझते रहें, किन्तु 'सहज असंक लंकपति'[1] पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

वाल्मीकि का 'प्रकृति कोपी' रावण अपने बन्धु-बांधवों की मृत्यु पर विलाप तो करता है किन्तु साथ ही क्रोध भी करता है।[2] कृत्तिवास का रावण पृथ्वी पर लोट-पोट होकर रोता है।[3] सभी श्रेष्ठ वीरों के नष्ट होने पर जब मंदोदरी समझाती है कि राम को सीता वापस कर दो, तो लगता है वह मन ही मन तैयार है, किन्तु उसे दुर्नाम होने का डर है, कि विभीषण और इन्द्र हँसेंगे।[4] मानस का रावण सबके मारे जाने पर भी हतप्रभ नहीं होता वह वीरता पूर्वक राम से युद्ध करने चल पड़ता है। उसकी दर्पोक्ति तो देखिए—

निज भुज बल मैं बयरु बढ़ावा।
देहउं उतरु जो रिपु चढ़ि आवा ।। मानस ६–७७–६

कृत्तिवास का रावण युद्धक्षेत्र में जाकर गले में वस्त्र डाल कर प्रणाम करता है, रोता है, विनय करता है। मानस का रावण भले ही मन ही मन राम की स्तुति कर ले किन्तु प्रत्यक्षतः उसने कहीं दुर्बलता अथवा दीनता प्रकट नहीं की।

दोनों ने ही रावण को भक्त दिखाया है। वह राम के ब्रह्मत्व से परिचित हैं। मानस में वह प्रारम्भ से ही राम को पहचान गया है। खरदूषण का वध सुन कर उसे रात भर नींद नहीं आती। वह जान लेता है कि भगवान् ने पृथ्वी का भार दूर करने के लिए अवतार लिया है। भगवान् का भजन वह तामस देह लेकर कर नहीं सकता, अतएव सबसे अच्छा उपाय यही है कि उनके बाण से मुक्ति प्राप्त की जाय।[5] मानस का रावण प्रारंभ से अन्त तक राम के ब्रह्मत्व का ज्ञान रखता है। सीता-हरण के समय सीता के कटु वचनों पर क्रोध प्रकट करते हुए भी वह मन ही मन उनके चरणों की वंदना करता है।

किन्तु मानस का रावण कहीं कातर नहीं होता, और न राम के सामने कभी दीनता प्रदर्शित करता है। वह सदैव अकड़ कर ही बोलता है, शान के साथ लड़ता और वीरता-पूर्वक मारा जाता है। राम की बड़ाई करने वाले स्वजनों को वह तुरंत डाँट देता है—

रिपु उतकरष कहत सठ दोऊ।
दूरि न करहु इहाँ हइ कोऊ ।। मानस ५-३९-३

कृत्तिवासी-रामायण का रावण प्रारंभ में दृढ़ रहा किन्तु अन्त में आकर वह कातर होता है। उसे राम के ब्रह्मत्व का ज्ञान रहा होगा। बालकांड में जन्म के समय उसने आकाश-

---

१ मानस ६–१६ क
२ नैऋतः क्रोधशोकाभ्यां द्वाभ्यां तु परिमूर्च्छितः ६–७८–२
३ विलाप करे शोके कातर हइया। लंका०, पृ० ३१७
४ कृत्ति० लंका०, पृ० ४१०
५ मानस, ३–२२–१–६

वाणी सुनी थी कि दशरथ के घरमें उसके शत्रु चक्रपाणि का जन्म हो गया है ।[1] कृत्तिवासी-रामायण का रावण भी कैसा स्वाभिमानी है—उसे इस बात का गर्व है कि जिस ब्रह्म को जप, यज्ञ, पूजा, अनाहार आदि व्रतों द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता वह ब्रह्म स्वयं मेरे द्वार पर पड़ा हुआ है और निराहार रह कर मेरे विषय में चिन्ता कर रहा है कि इसका वध कैसे हो ।[2] यदि भाग्य से राम के बाण द्वारा मारा भी गया तो विष्णु के दूत मुझे विमान में ले जायँगे । अन्त में वह भक्ति-कातर हो जाता है । यदि देवताओं की प्रेरणा से सरस्वती उसकी बुद्धि न फेर देतीं तो सम्भवतः वह युद्ध ही नहीं करता । मृत्यु के समय भी कातर होकर वह राम के चरण का स्पर्श चाह रहा है ।

दया करे मस्तके से देह श्री चरण । कृत्ति० लंका०, पृ० ४७१

रावण को वेदज्ञ पंडित कहा गया है । कृत्तिवास का रावण राजनीति का पंडित था । राम लक्ष्मण को भेजकर उससे शिक्षा-ग्रहण कराना चाहते हैं । मृत्युकाल के पूर्व यह निष्कपट होकर जो कुछ शिक्षा देता है इससे उसके ज्ञान के साथ-साथ सद्भाव की भी अभिव्यक्ति होती है । मानस में उसके इस पक्ष का चित्रण नहीं है, किन्तु उसकी बातों से जान पड़ता है कि वह विद्वान् था ।

प्रतिनायक के चरित्र-उत्कर्ष में तुलसी को अधिक सफलता मिली है । कृत्तिवास का रावण त्रैलोक्य-विजयी होने पर भी विपत्ति पड़ने पर साधारण मनुष्य के समान कातर हो उठता है ।

सीता—सीता का चरित्र पति-निष्ठा का साकार आदर्श है । भारतीय-पत्नी की चरित्रगत समस्त विशेषताएँ सीता के चरित्र मे प्राप्य हैं । विश्व में जब तक विवाह-संस्था जीवित रहेगी, सीता की दृप्त-पतिभक्ति सदैव प्रकाश-स्तम्भ के विपुल-प्रकाश की भाँति समाज का पथ-दर्शन करती रहेगी ।

वाल्मीकि-रामायण में सीता के आंतरिक-सौंदर्य के साथ-साथ वाह्य-सौंदर्य का निस्संकोच सजीव चित्रण है । जानकी वहाँ विश्व/जननी के रूप में आकर अपना प्रेयसीत्व धूमिल नहीं करतीं । राम तो लक्ष्मण के समक्ष सीता के चन्दन-चर्चित वृत्त-स्तनों की चर्चा कर जाते हैं ।[3] कृत्तिवास एवं तुलसी ने एक-समान मर्यादा का पालन कर सीता को सुशीला मर्यादित-कुलवधू के रूप में चित्रित किया है । तुलसी इतनी भक्ति के साथ वर्णन करते हैं कि पाठकों को भी याद दिलाते जाते हैं कि जानकी जग-जननी है । सीता की अग्नि-परीक्षा के समय वाल्मीकि के राम जहाँ रक्त नेत्रों से विभीषण को आज्ञा देते हैं कि सीता को सारी सेना के बीच से पैदल ले आओ, वहाँ तुलसी के राम हँस कर इसलिए सीता को सबके

१ कृत्ति० आदि० पृ० ५६,
२ कृत्ति० लंका० पृ० ४१०,
३ तौ लोहितस्य प्रियदर्शनस्य सदोचितावुत्तमचन्दनस्य ।
वृत्तौ स्तनो शोणितपङ्कदिग्धौ नूनं प्रियाया मम नाभिभातः ३-६३-८

बीच से लाने की आज्ञा देते हैं कि वे जननी हैं, कपि उन्हें देखलें ।[1] कृत्तिवास के राम भी इस अवसर पर जानकी को कपियों के लिए मातृतुल्य बतलाते हैं क्योंकि राजा की गृहिणी प्रजा की जननी होती है ।[2]

दोनों ग्रंथों में सीता को लक्ष्मी का अवतार माना गया है । मानस में इनकी स्थिति लक्ष्मी के पद से भी उच्च है । जिस प्रकार कृत्तिवास के राम अपने ब्रह्मत्व को सदैव भूले रहते हैं, याद दिलाने पर भी उन्हें चेतना नहीं होती । उसी प्रकार सीता भी अपने को कहीं लक्ष्मी का अवतार नहीं समझतीं । फलतः कृत्तिवास की सीता मानवी-रूप में चित्रित हुई हैं । मानस में राम के ब्रह्मत्व का जितना प्रचार किया गया है उतना सीता के लक्ष्मीत्व का नहीं । फिर भी एकाध स्थल पर सीता को अपनी शक्ति का बोध दिला कर उनके माननीय एवं स्वाभाविक-पक्ष को दुर्बल किया गया है । माया-सीता-प्रसंग, सीता-हरण की समस्त करुणा को फीका कर देता है । चित्रकूट में सासों की सेवा करने के लिए सीता अनेक रूप धारण कर लेती हैं ।[3] इतना सब होते हुए भी सीता के सहज-शील-युक्त भारतीय-वधु का ऐसा रूप भी प्रस्तुत किया है कि यह रूप-मात्र ही पाठकों को अपने में अटका लेता है ।

सीता की पति-भक्ति का ऐसा अनूठा चित्रण है कि उसमें जहाँ एक ओर भारतीय-वधु की अन्तरात्मा को मूर्त्त-रूप दिया गया, वहाँ वह भारतीय कुल-ललनाओं के लिए युग-युग के लिए प्रेरणाबिन्दु भी बन गया । कृत्तिवास एवं तुलसी की सीताएँ उत्तर-भारत के घर-घर में, झोंपड़ी-झोंपड़ी में, शिशु, गृहस्थी एवं पति से-घिरी, स्नेह-वर्षण करती दिखायी पड़ सकती हैं । रावण ने कितने बड़े प्रलोभन रखे, किन्तु सीता यही कहती रहीं–'राम ध्यान राम प्राण श्रीराम देवता । राम बिना अन्य जने नाहि जाने सीता ।[4] मानस की सीता ने भी अपनी प्रतिज्ञा सुना दी–मेरे कंठ पर या तो प्रभु की श्याम भुजा होगी अथवा तेरी यह घोर तलवार ।[5] सीता वैसे कोमलांगी थी किन्तु पति के साथ वनगमन में उसने रंचमात्र दुविधा न की । राम के सान्निध्य में उनकी परिचर्या करने में उन्होंने जिस सुख की कल्पना की, मार्ग के काँटे एवं ऋतुओं के प्रकोप उसे कुंठित न कर सके । मृगी के समान सहज-भीत सुकुमारी सीता अपने सतीत्व पर आँच आती देख डरती नहीं, अपितु दृढ़-स्वर में अनाचारी रावण को कुत्ता और शृगाल बताकर उसे याद दिला देती हैं कि उनका स्वामी केशरी है ।[6] मानस की छुई मुई सीता भी ऐसे अवसर पर छुई मुई नहीं रहतीं, वह सशक्त-स्वर में ललकार उठती हैं–आय गयउ प्रभु रह खल ठाढ़ा । मानस ३-२७-१४

भारतीय पत्नी पहले अपने स्वामी को खिलाकर तब स्वयं अन्न ग्रहण करती है । वंदिनी सीता को क्षुधा-मुक्त करने के लिए इन्द्र ने परमान्न दिया । कृत्तिवास की सीता पहले राम का भोग लगा कर तब स्वयं ग्रहण करती हैं—

१ देखहुं कपि जननी की नाईं ॥ मानस ६-१०७-१२
२ राजार गृहिणी हय प्रजार जननी । कृत्ति० लंका, पृ० ४३६
३ सीय सासु प्रति वेष बनाई । सादर करइ सरिस सेवकाई मा० २-२५१-१
४ कृत्ति० रामा० अरण्य०, पृ० १५६
५ मानस ५-६-३,४
६ श्रीराम केशरी, तुइ शृगाल जेमन । कृत्ति०, अरण्य० पृ० १५२

आगे परमान्न देन राम उद्देशे ।
आपनि भक्षण सीता करिलेन शेषे ।।कृत्ति० १५६ अरण्य०

इसी प्रकार पत्नी सदैव पति को पूज्य समझती है। मानस की सीता राम को कितना पूज्य समझती हैं कि उनके चरण चिह्नों पर अपने चरण रखना पाप समझकर सभीत चल रही हैं।

प्रभु पद रेख बीच बिच सीता ।
धरति चरन मग चलति सभीता ।। मानस २-१२२-५

कहीं-कहीं पर कृत्तिवास की सीता में शील की कमी तथा असंयम अधिक मात्रा में दीख पड़ता है, किन्तु ऐसे स्थलों पर उनकी पति-भक्ति की व्यंजना और भी गंभीर हो उठती है। कृत्तिवासी-रामायण में कौशल्या सीता को पतिव्रत का उपदेश देती हैं, सीता बीच में ही बोल उठती हैं—मैं स्वामी की सेवा करना भली-भाँति जानती हूँ।[1] वाल्मीकि-रामायण में भी वे इसी प्रकार बोल उठती हैं। किन्तु फिर भी उनके बोलने में नम्रता है। मानस में प्रथम बार हम सीता को उस समय कौशल्या के पास पाते हैं, जबकि राम का वनवास सुनकर वह अकुला कर दौड़ी आती हैं। इस शीलवती वधु को देखिए—

(१) जाइ सासु पद कमल जुग बंदि बैठि सिरु नाइ–२–५७
(२) बैठि नमित मुख सोचति सीता। २–५७–२
(३) चारु चरन नख लेखति धरनी। २–५७–५

गुरुजनों के समक्ष सीता सकुचा कर कभी उत्तर नहीं देतीं—
सीय सकुच बस उत्तर न देई–२–७८–१

कृत्तिवास में राम सीता को साथ ले चलने में आनाकानी कर रहे हैं तो वह तमक कर बोलती हैं—मेरे पिता ने ऐसे के साथ क्यों मेरा विवाह कर दिया, जो अपनी स्त्री की रक्षा नहीं कर सकता, उसे कौन वीर कहेगा ?[2]

विपत्ति आने पर कृत्तिवास की सीता भरत और लक्ष्मण को भी लांछित कर उठती है। मारीच के कपट से घबड़ायी हुई सीता यहाँ तक कह डालती हैं—सौतेला भाई कभी अपना नहीं होता, जान पड़ता है तुम्हारा मन मुझ में है।.......लगता है भरत से तुम्हारी सांठ-गांठ है।'[3] मानस की सीता तो इस समय माया सीता हैं, प्रसंग पहले से ही गंभीर नहीं, फिर गोस्वामी जी की मर्यादा, सो उनकी सीता केवल 'मरम बचन

---

१ जानकी बलेन, गो कौशल्या ठाकुरानी।
स्वामिसेवा करिते जे आमि भाल जानि।।कृत्ति० अयो०, पृ० ११०

२ केन हेन जने पिता दिलेन आमाय ।।
निज नारी राखिते जे करे भय मने।
देख तारे वीर बले कौन धीर जने ।। कृत्ति०, अयो० पृ० १०६

३ कृत्ति० अरण्य०, पृ० १५०

बोलती हैं।[1] कृत्तिवास की सीता में आदर्श की दृष्टि से अथवा लक्ष्मीत्व के ज्ञान की दृष्टि से कुछ कमी भले ही दीख पड़े, किन्तु यहाँ पति-प्राणा-सीता का चित्र सजीवता के साथ निखर उठता है।

कहाँ वाल्मीकि की सीता का अगाध-विश्वास कि मेरा स्वामी परनारी की ओर आँख उठा कर नहीं देखता और कहाँ कृत्तिवास की सीता, जोकि परशुराम का गर्व-दमन करने के लिए राम के धनुर्धारण करते समय सोचती हैं कि एक धनुभंग के फल-स्वरूप मुझसे विवाह हुआ, अब क्या और भी सौतें मुझे मिलेंगीं।[2] मानस की सीता ऐसा सौतिया-डाह स्वप्न में भी नहीं ला सकतीं। सीता का दौर्बल्य कृत्तिवास ने एक और स्थान पर दिखलाया है। जब रावण सीता को मारने दौड़ता है, सीता डरकर धूल में लोटने लगती है। मंदोदरी के वारण करने पर जब रावण जाने लगता है तब सीता भीत नेत्रों से उसकी ओर देखती हैं। रावण समझता है सीता प्रेम-कटाक्ष कर रही हैं।[3] ऐसे अवसर पर सीता मानस में भीत नहीं होतीं, वे लगातार उसे 'सठ' 'निलज्ज', 'खत' आदि सम्बोधित करती है। मानस की सीता कभी रावण की ओर देख नहीं सकतीं। वे उससे बात करते समय तिनके की ओट कर लेती हैं।[4]

कृत्तिवासी-रामायण में अभी सीता का दुर्भाग्य शेष नहीं हुआ। गर्भिणी-काल में वे राम-द्वारा निर्वासित की जाती हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि रावण के पास उन्हें शयन करता देख राम उनके चरित्र पर संदेह करते हैं।[5] आगे जब सीता को ज्ञात होता है कि लवकुश ने रामादि भाइयों को युद्ध में आहत किया है तो वे मणिहारा-सर्पिणी के समान अग्नि में कूदने को प्रस्तुत हो जाती हैं। इतना सब-कुछ होते हुए भी सीता की दुर्दशा का अंत नहीं आया। राम फिर उनकी परीक्षा चाहते हैं। बेचारी असहाया, लांछिता, अवमानिता नारी कितनी करुणा के साथ कहती है, जान बूझ कर क्यों मेरी दुर्गति करते हो, मैंने बचपन में भी पुरुष-शिशुओं तक को स्पर्श नहीं किया।[6] राम कठोर बने रहते हैं, सीता पाताल-प्रवेश की आकांक्षा लेकर कहती हैं—जन्म-जन्म में तुम्हीं मेरे पति होओ किन्तु

---

१ मरम बचन जब सीता बोला।
हरि प्रेरित लछिमन मन डोला॥ मानस ३–२७–५

२ न जानि हइबे मोर कतेक सतिनी—कृत्ति० आदि०, पृ० ८९

३ भये सीता चाहिलेन रावणेर पाने॥
रावण देखिल सीता फिराइल आँखि।
रावण भावये, सीता दिलेक कटाक्षि॥ कृत्ति० लंका०, पृ० ३८०

४ तृन धरि ओट कहति बैदेही। मानस ५-८-६
कृत्ति० उत्तर०, पृ० ५२४

६ जानिया शुनिया केन करो दुर्गति॥
बाल्यकाले खेलिताम बालक मिशाले।
स्पश नाहि करिताम पुरुष छावाले॥ कृत्ति० लंका०, पृ० ४४०

और किसी जन्म में मेरी ऐसी दुर्गति न करना।[१] पाताल-प्रवेश के समय भी सीता को राम पर रोष नहीं है। उनकी अविचल पति-निष्ठा देखिए कि प्रवेश के समय वे अपने रोते हुए नन्हें शिशुओं को नहीं देखतीं, राम की ओर देखती हुई वे पाताल में समा जाती हैं।[२]

राम के चरित्र का महत्त्व कम न करने के लिए तुलसी ने सीता से संबंधित इन घटनाओं को अपने ग्रन्थ में स्थान नहीं दिया। राम-सीता के सम्मिलन से उनकी राम-कथा एक प्रकार से समाप्त हो जाती है।

वाल्मीकि की सीता 'नारीणाम् उत्तमावधु' है, कृत्तिवास एवं तुलसी की भी, किंतु साथ में लक्ष्मी भी। तुलसी की आदि-शक्ति सीता स्त्रियों के सहज-दौर्बल्य से रहित हैं। कृत्तिवास की सीता साधारण-हिन्दू पतिव्रता नारियों के समान स्नेह, भीरुता, द्वेष आदि अनेक गुण-दोषों से युक्त हैं।

कौशल्या—कृत्तिवास ने कौशल्या का राजमहिषी एवं पुत्र-वत्सला माता के रूप में चित्रण किया है जबकि तुलसी ने इन गुणों के साथ ही कौशल्या के चरित्र की ऐसी गुरुता का प्रदर्शन किया है, जिससे कि हम उन्हें राम की माता होने का श्रेय प्रसन्नता के साथ दे सकते हैं।

कृत्तिवासी-रामायण एवं वाल्मीकि-रामायण की कौशल्या स्त्री सुलभ गुण-दोष रखती हैं, किन्तु कृत्तिवास की कौशल्या में दौर्बल्य अधिक है। पुत्र माँ से अधिक संबद्ध होता है, अतएव तुलसी ने जहाँ अन्य पात्रों को संयमित किया वहाँ राम-माता होने के नाते कौशल्या को और भी अधिक मर्यादित दिखाने की आवश्यकता थी।

कृत्तिवासी-रामायण में कौशल्या सौतिया डाह से जलती जान पड़ती हैं। सुमित्रा से विवाह होने पर वे तथा कैकेयी शंकर से मनाती हैं कि सुमित्रा दुर्भगा[३] हो जाय। चरु-वितरण के समय भी कौशल्या सुमित्रा को अपना आधा-भाग इसी शर्त पर देती हैं कि उसका पुत्र कौशल्या के पुत्र की सेवा करेगा।[४]

मानस में रानियाँ ईर्ष्या-भाव प्रकट नहीं करतीं। कौशल्या तो कभी भी सौतिया डाह नहीं करतीं।[५] कैकेयी के षड़यंत्र के पश्चात् भी वे उसे नहीं कोसतीं, जैसा कि कृत्तिवास की कौशल्या करती हैं। मानस में वे कहती हैं—

---

१ जन्मे जन्मे प्रभु मोर तुमि हओ पति।
आर कोन जन्मे मोर करो ना दुर्गति॥ कृत्ति० उत्तर०, पृ० ५७३

२ नाहि चाहिलेन सीता उभय छावाले।
श्रीरामेरे निरखिया प्रवेशे पाताले॥ कृत्ति० उत्तर०, पृ० ५७३

३ कृत्ति० आदि० पृ० ३५

४ कृत्ति० आदि०, पृ० ५६

५ कबहुँ न कियहु सवति आरेसू—२-४८-७

जौं पितु मातु कहेउ बन जाना ।
तौ कानन सत अवध समाना ।। मानस २–५५–२

अपने प्राणप्रिय राम के अभिषेक का समाचार सुन कौशल्या मंगल-विधान में लग गयीं । उस बेचारी को क्या ज्ञात कि यहाँ कुछ और ही चक्र चल रहा है । मानस की पुत्र-वत्सला माँ को देखिए—

बार बार मुख चुँबति माता ।
नयन नेह् जलु पुलकित गाता ।।
गोदि राखि पुनि हृदय लगाए ।
स्रवत प्रेमरस पयद सुहाए ।। मानस २–५१–३,४

मानस की कौशल्या बड़ी भोली हैं । रावण-हंता राम को अपनी गोद का ही शिशु समझती रहीं । जब राम लंका-विजय के उपरांत अयोध्या लौटे तो राम को देख उनके मन में यही विचार उठ रहा है कि मेरे अति सुकुमार बारे से राम ने सुभट राक्षसों का कैसे वध किया होगा ।[1] तो ऐसी वत्सला-माता कौशल्या जब राम के वन-गमन का समाचार सुनती हैं तो उनकी क्या दशा हुई होगी । कृत्तिवासी-रामायण में तो वे पूरी बात भी नहीं सुन सकीं, तुरन्त मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं ।[2] स्तनों से दूध बहाती मानस की कौशल्या अचानक राम के मुख से 'पिता दीन्ह मोहि कानन राजू'[3] सुन, सहम कर सूख गयीं, जैसे बरसात का पानी पड़ने से जवासा सूख जाता है ।[4]

यहाँ फिर दोनों ग्रंथों की कौशल्या में अंतर आ जाता है । कृत्तिवास की कौशल्या एकदम ताव खाकर कैकेयी को पापीयसी एवं चंडालिनी कह उठती हैं, लक्ष्मण को अपने पक्ष में शक्ति-प्रदर्शन के लिए प्रस्तुत देख, राम को उकसाती हैं—"तुम विमाता के कहने से क्यों वन जाते हो । माँ के वचनों का उल्लंघन कर पिता की आज्ञा मान रहे हो । पिता की अपेक्षा माँ का महत्त्व अधिक है । माँ पुत्र को गर्भ में धारण कर, कष्ट सहन करती हुई अपने स्तनों से पुत्र का पोषण करती है । ऐसी माँ की आज्ञा का उल्लंघन तुम कैसे करते हो ?"

गर्भे धरि दुःख पाय स्तन दिया पोषे ।
हेन मातृ-आज्ञा राम लङ्घ तुमि किसे ।। कृत्ति०अयो०, पृ० १०४

मानस की कौशल्या को विचित्र अंतःसंघर्ष का सामना करना पड़ रहा है । कृत्तिवासी-रामायण में उन्हें मार्ग मिल गया, विकल होकर कह दिया 'मेरी आज्ञा है मत जाओ' । मानस की संयम-शीला, कर्त्तव्य-परायणा कौशल्या राम को कैसे रोके, और किस मुँह से अपने नयनों के तारे को जाने के लिए कहे ।

---

१ हृदयं बिचारति बारहिं बारा । कवन भाँति लंकापति मारा ।।
अति सुकुमार जुगल मेरे बारे । निसिचर सुभट महाबलभारे ।। मानस ७–६–७,८

२ शुनिया पड़िल रानी मूर्च्छित हइया । कृत्ति० अयो०, पृ० १०३

३ मानस, २–५२–६

४ सहमि सूखि सुनि सीतल बानी । जिमि जवास परें पावस पानी ।। २–५३–२

राखि न सकइ न कहि सक जाहूँ ।
दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू ॥ २–५४–२

जहाँ मानस में कौशल्या कहती है कि 'केवल पिता की आज्ञा हो तो मुझ बड़ी माता की आज्ञा मान कर मत जाओ।'[१] वहाँ यह अर्थ नहीं लेना चाहिए कि तुलसी की कौशल्या राम को कर्त्तव्य से विरत करना चाह रही थीं; वे कैकेयी के महत्त्व को बढ़ाना चाहती थीं। कहने का तात्पर्य था कि पिता और माता (कैकेयी) वन जाने के लिए कह रहे हैं तो अवश्य जाओ।[२] इतना ही नहीं, वे राम के साथ जाने का अविवेक दिखा कर राम को धर्म-संकट में नहीं डालना चाहतीं, इसीलिए वे साथ जाने का हठ नहीं करतीं। केवल बलैयाँ लेकर कहती हैं, अपनी माँ को भूल न जाना।[३]

भरत के प्रति कौशल्या ने दोनों ग्रंथों में प्रेम ही प्रकट किया है। दोनों लेखकों की कौशल्या भरत को देखते ही उन्हें हृदय से लगा कर अश्रु-वर्षा करती हैं,[४] किन्तु जहाँ मानस की कौशल्या भरत को गोद में बिठाकर तथा आँसू पोंछ कर मृदु-वचन उच्चारण करती हैं, वहाँ कृत्तिवासी रामायण में वे भरत को देखते ही अपने हृदय के सभी उद्गार निकाल देती हैं–वे पूछती हैं–राम ने किसका धन अथवा किसकी नारी का अपहरण किया है। किस दोष के कारण मेरे पुत्र को निर्वासित किया गया। अब मुझे भी दूर कर मार्ग का कंटक दूर करो और माँ-बेटे मिल कर राज्य करो।[५]

यद्यपि मानसकार कौशल्या के मुख से इस प्रकार की उक्तियाँ नहीं कह सकता है, किन्तु कृत्तिवास ने भी कौशल्या के चरित्र को छोटा नहीं कर दिया। जिसके एक-मात्र पुत्र के अभिषेक के अधिवास की तैयारियाँ चल रही हों उसे कल १४ वर्ष के वनवास का

---

१ जौं केवल पितु आयसु ताता ।
तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता ॥ मानस २–५५–१

२ जौं पितु मातु कहेउ बन जाना ।
तौ कानन सत अवध समाना ॥ मानस २–५५–२

३ यह बिचारि नहिं करउँ हठ झूठ सनेहु बढ़ाइ ।
मानि मातुकर नात बलि सुरति बिसरि जनि जाइ ॥ मानस २–५६

४ पुत्र बलि कौशल्या भरते निल कोले ।
उभयेर सर्व्वाङ्ग तितिल नेत्र जले ॥ कृत्ति० अयो०, पृ० १२२
माता भरतु गोद बैठारे ।
आंसु पोंछि मृदु बचन उचारे ॥ मानस, २–१६४–४

५ हरिल काहार धन राम, काहार नारी ।
कौन दोषे पुत्र मोर करे देशान्तरी ॥
× × ×
आमारे करिया दूर घुचाओ ए कांटा
× × ×
माये पोये राज्य करो भरत एखन-कृत्ति० अयो०, पृ० १२२

कठोर दंड मिले, वह एकदम स्थिर चित्त बैठी रहे, यह कैसे संभव है। कौशल्या की इन पंक्तियों में राम के प्रति प्रेम की उत्कटता है। कैकेयी के पुत्र होने के कारण ही उन्होंने भरत को दो-चार शब्द कह दिये हैं; नहीं तो संज्ञा फिरने पर वही कौशल्या कहती हैं, 'भरत मैं तुम्हारा मन जानती हूँ। तुम्हारा और राम का हृदय एक समान है।[1]

और मानस में भरत के प्रति कटु-शब्दों के प्रयोग की गुंजायश ही कहाँ है। कौशल्या उन्हें देखते ही दौड़ पड़ती है और छाती से लगा लेती हैं। उन्हें ऐसा लगता है मानों उनके राम लौट आये हैं। उनके स्तन बह रहे हैं।[2] स्पष्ट है भरत के प्रति सच्चा प्रेम स्वाभाविक और सत्य था। चित्रकूट की सभा में उन्होंने यह भी कह दिया कि राम-लक्ष्मण और सीता के वन जाने का मुझे सोच नहीं है, मुझे तो भरत की चिंता है।[3]

कैकेयी—यद्यपि कैकेयी वाल्मीकि के शब्दों में 'आत्म कामा सदा चण्डी क्रोधना प्राज्ञमानिनी'[4] थी, किन्तु उसके कारण जो प्रमाद घटित हुआ उसके लिए दशरथ भी उत्तरदायी थे। उन्होंने भरत को ननिहाल भेज कर तथा भरत के मातुल एवं राजा जनक को निमंत्रित न कर स्वयं संदेह का विष-वृक्ष वपन किया था। मंथरा ने इस छिद्र का लाभ उठा कर कैकेयी को भड़का दिया। वाल्मीकि की कैकेयी बड़ी क्रूर और क्षुद्र-मति है, अतएव कृत्तिवास ने भी कैकेयी के उसी रूप को ग्रहण किया। वाल्मीकि के पश्चात् रामकथा-लेखकों को कैकेयी की क्रूरता की बात सहन नहीं हुई। उन्होंने कैकेयी के चरित्र को ढँकने की चेष्टा की। यहाँ कृत्तिवास और तुलसी में समानता मिलती है। कृत्तिवास ने बताया कि कैकेयी को बचपन में शाप मिला था इसलिए उसने ऐसा प्रमाद किया।[5] मानस में राक्षसों के वध के लिए कुचाली देवताओं ने सरस्वती-द्वारा मंथरा की बुद्धि फेर दी।[6]

कृत्तिवास ने आरंभ से ही कैकेयी के चरित्र में अस्वाभाविकता नहीं आने दी। वाल्मीकि-रामायण के अनुसार कौशल्या कैकेयी से संतप्त होकर दिन-रात पूजा-पाठ में लगी रहती थीं। कृत्तिवास ने भी कैकेयी के ईर्ष्यालु-रूप का चित्रण किया है। यह ईर्ष्या प्रकट होती है चरु-वितरण और राम-जन्म के अवसर पर। वह कौशल्या से ईर्ष्या करने के कारण ही सुमित्रा को अपने चरु का अंश देती है। राम-जन्म के अवसर पर वह दुःखी होकर सोचती है, 'आज से कौशल्या का सुहाग बढ़ गया। ज्येष्ठ-पुत्र राजा होता है,

१ रामेर हृदय धर्म्मे जेमन तत्पर।
तोमार हृदय पुत्र एकइ सोसर॥ कृत्ति० अयो०, पृ० १२२

२ थन पय स्रवहिं नयन जल छाए। मानस २-१६८-५

३ लखुन राम सिय जाहुँ बन मत परिनाम न पोचु।
गइबरि हियं कह कौसिला मोहि भरत कर सोचु॥ मानस २-२८२

४ वाल्मीकि-रामायण, २-७०-१०

५ कृत्ति० अयो०, पृ० ६७

६ मानस, २-१२

सभी शास्त्र कहते हैं। विधि ने मुझे पहले पुत्र क्यों नहीं दिया।[1] नव-वधु सुमित्रा के अहित के लिए वह शंकर की पूजा करती है।[2]

मानस में कैकेयी की क्रूरता आकस्मिक थी। यद्यपि वर-याचना तथा राम के वनवास के समय वह प्रचंड-रूप में दिखायी पड़ती है, किन्तु इस प्रसंग के आगे-पीछे उसे कहीं क्षुद्र नहीं देखा जाता। कृत्तिवास ने प्रारंभ में ही उसे कुछ ईर्ष्यायुक्त चित्रित किया है, अन्यथा इस प्रसंग के पश्चात् उसे पश्चाताप हुआ है। कृत्तिवासी-रामायण में कैकेयी के पतिव्रत का भी वर्णन है। उसने केवल तरुणी एवं सुन्दरी होने के कारण ही राजा को अपने रूप-जाल में आबद्ध नहीं कर लिया था, अपितु वे उसकी सेवाओं से भी संतुष्ट थे। शंबर-युद्ध में घायल होने पर वे कैकेयी के ही पास गये थे। कैकेयी ने ही अपने अथक परिश्रम से उन्हें प्रसन्न कर प्रथम-वर प्राप्त किया था। द्वितीय-बार दशरथ अत्यन्त दुःखदायी व्रण की पीड़ा से छटपटा रहे थे तो कैकेयी से पति की व्यथा न देखी गयी। उसने अपने लाल ओठों से घृणित व्रण का विष चूस कर उन्हें पीड़ा-मुक्त कर दिया। इस सेवा के फल-स्वरूप उसने द्वितीय-वर प्राप्त किया।[3]

दोनों ग्रंथों की दोष-मोचन वाली घटनाओं को यदि एक ओर रख दिया जाय, तो भी कैकेयी के चरित्र की स्वाभाविकता हमें दोनों ग्रंथों में मिल जायगी। मंथरा की वचन-चातुरी, राजा के छल तथा अपने हृदय में छिपे ईर्ष्याभाव के कारण कैकेयी ने यह सब किया। अन्यथा दोनों ग्रंथों में कैकेयी मंथरा द्वारा राम का अभिषेक सुन कर प्रसन्नता प्रकट करती है। तथा पुरस्कार--स्वरूप अलंकार देने को प्रस्तुत होती है। कृत्तिवास की कैकेयी को विश्वास है राम के राजा हो जाने पर उसका सम्मान बढ़ेगा।[4] मानस में भी वह कहती है, 'राम मुझे कौशल्या से अधिक प्यार करते हैं'।[5]

मंथरा ने अपनी वाकपटुता द्वारा कैकेयी को प्रभावित कर ही लिया। भरत का न बुलाया जाना, राजा का उससे परामर्श न लेना, कौशल्या के दासत्व की सम्भावना आदि विषय लेकर मंथरा ने कैकेयी के सुप्त-संदेह एवं ईर्ष्या-भाव को जाग्रत कर दिया। फिर भी कृत्तिवासी-रामायण में कैकेयी एकदम कठोर नहीं हो गयी। उसे अभी भी राम पर कुछ ममता है, तभी मंथरा से कहती है, राम को राज्य न देकर घर रख लूंगी। किस दोष के कारण उसे वन भे ।[6]

---

१ कृत्ति० आदि०, पृ० ५७

२ कृत्ति० आदि०, पृ० ३५

३ कृत्ति० आदि०, पृ० ४५–४६

४ राजा राम हइले आमार बहु मान। कृत्ति० अयो०, पृ० ९६

५ मानस, २–१४–५,६

६ घरेते राखिब वरं राज्य नाहि दिव।
कौन दोषे श्रीरामे बने पाठाइब ॥ कृत्ति० अयो०, पृ० ९७

कृत्तिवासी-रामायण में एक बार कठोर हो जाने पर फिर कैकेयी झुकती नहीं है। राम सहज-भाव से कहते हैं, भाई भरत को राज्य सौंप कर मैं चला जाऊँगा,' वह तुरन्त बोल पड़ती है, पहले तुम यहाँ से निकल जाओ, तभी भरत आ सकते हैं।' राजा दशरथ को ढुलमुल देखकर बड़े-बड़े दानियों की कहानियाँ सुना कर उत्तेजित करती है। राजा दशरथ राम के साथ धनादि भेजना चाहते हैं तो अत्यधिक कुपित होती है। राम कहीं किसी कारण-वश रुक न जायँ इसलिए स्वयं वल्कल लाकर देती हैं।

मानस की कैकेयी दशरथ के प्रति बड़ी अनुदार है। ऐसी-ऐसी खरी सुनाती है कि दशरथ सारी कामुकता भूल जाते हैं। वह कहती हैं, 'क्या मैं रखेल हूँ, क्या भरत तुम्हारा पुत्र नहीं। अबलाओं की तरह विलाप क्यों करते हो। बड़े दानी बनते थे, क्या समझ रखा था, चबेना माँग लेगी।[१] यही कुटिल कैकेयी राम के आगे नम्रता से ही पेश आती है। वह क्रोध से तमक कर भी वल्कल आदि वस्त्र राम के सामने रखते समय मृदु वाणी ही बोलती है, यद्यपि यह मृदु-वाणी जहर से बुझी है। मानस में कैकेयी को' उघारि तलवारि' सच ही कहा है।

पुत्र के हित-रक्षण में कैकेयी कितनी स्वार्थांध होकर कठोर हो गयी कि भोली सुकुमारी सीता की ओर भी उसने रंचमात्र कारुण्य नहीं दिखाया। उसने यह भी न सोचता 'हिंगुल मंडित ननीर पुतली'[२] जैसी उगलियों वाली अथवा पलंग एवं हिंडोरे के नीचे पैर न रखने वाली [३] कंचन-कौशेय- शोभित जानकी घोर जंगल में कैसे रह सकेगी। विदा के समय भी दोनों ग्रंथों में कैकेयी को कहीं सचिंत नहीं देखा जाता।

कैकेयी के स्वप्न तो तब चूर-चूर हो कर बिखरते हैं, जबकि उसी का पुत्र, जिसके लिए उसने समस्त परिवार एवं समाज से विरोध लिया—उसे आकर ठुकराता है। भरत कहते हैं, 'मैंने पिछले जन्म में कोई पाप किया था उसी के फल-स्वरूप तेरे पेट से जन्म लिया है।'[४] मानस में भरत कहते हैं, वर माँगते समय तेरी जीभ भी न गल गयी, मुँह में कीड़ा भी न पड़ गये।[५] यहीं से कैकेयी का पाँसा पलट गया। कृत्तिवासी-रामयण में उसका चंडी-रूप नहीं रह गया। शत्रुघ्न द्वारा ताड़ित मंथरा को देख कर वह भी

---

१ मानस, अयो०, २६–२,६ एवं ३४–७

२ (हिंगुल-शोभित मक्खन सी कोमल सीता की उगलियाँ) हिंगुल=एक प्रकार का अलक्तक। कृत्ति० अयो०, पृ० ११५

३ पलंग-पीठ तजि गोद हिंडोरा। सीय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा। मानस पृ० २–५८–५

४ कृत्ति० अयो० पृ० १२०

५ मानस, २–१६१–२

ऊद्‌र्ध्व-श्वास पलायन करती हैं, कि कहीं शत्रुघ्न उसे भी न मारे ।[१] उसका समस्त साहस समाप्त हो गया । कृत्तिवासी-रामायण में वह भरत के डर के कारण सबके साथ चित्रकूट भी नहीं जाती ।

मानस की कैकेयी चित्रकूट गयी और यहीं से उसका प्रायश्चित्त प्रारम्भ हो गया । कुटिल रानी पछताकर पृथ्वी में समा जाना चाहती है ।[२] राम के लौट आने पर भी वह बहुत सकुचा रही है । कृत्तिवास की कैकेयी निश्चय कर लेती है, यदि राम मुझे माँ कह कर[3] बुलायेंगे, पूर्ववत आदर देंगे तो ही जीवन-धारण करूँगी, अन्यथा विष-पान कर प्राण दे दूंगी । दोनों रामायणों के राम उसका मान रख लेते हैं ।

---

१ चेड़ी रे मारिया पाछे प्रहारे आमाय ।
एइ त्रासे मने करि कैकेयी पलाय ।। कृत्ति० अयो०, पृ० १२१

२ मानस, २–२५१–१–५, ६

३ यदि राम मा बलिया ना डाके आमारे ।
त्यजिब ए पाप प्राण विषपान करे ।। लंका०, पृ० ४५६

अध्याय ७

दोनों लेखकों के दार्शनिक-सिद्धांत और भक्ति-भावना

कृत्तिवास की दृष्टि कथा-वर्णन एवं काव्यत्व की ओर अधिक रही है, अतएव उनके ग्रंथ में पौराणिक शैली नहीं आ सकी। तुलसी अपने समय की उपासना-पद्धतियों एवं दार्शनिक-विचारों में समन्वय करना चाहते थे, अतएव उन्होंने अपने मानस को पुराण जैसा रूप दिया है। उन्होंने प्रारम्भ में ही रामकथा-महात्म, राम के ब्रह्मत्व आदि विषयों पर तर्क उपस्थित किये हैं और अंत में भी ऐसा ही किया है। कृत्तिवास पौराणत्व से एकदम अलग हों ऐसी बात भी नहीं है। इसलिए जहाँ एक ओर उनके काव्य का दार्शनिक-पक्ष उतना पुष्ट नहीं है जितना कि तुलसी का, तो दूसरी ओर उसका नितांत अभाव भी नहीं है। वाल्मीकि-रामायण की अपेक्षा कृत्तिवासी-रामायण में राम के ब्रह्मत्व का अधिक चित्रण है। कृत्तिवास के इस स्वल्प-चित्रण में भी तुलसी से समानता है।

१—सगुण-निर्गुण—इन लेखकों के पूर्व शंकराचार्य एवं रामानुजाचार्य के सिद्धांतों का प्रचार हो चुका था। बौद्धों से टक्कर लेने के लिए शंकर ने निर्गुण ब्रह्म का प्रचार किया। ब्रह्म तथा जीव और जगत का संबंध समझाने के लिए उन्हें माया-वाद का आश्रय लेना पड़ा। कबीर आदि साधकों ने इसी पथ को ग्रहण किया। जनता के सामने इस निर्गुण-ब्रह्म के ग्रहण की कठिनाई थी, जैसा कि सूर ने स्वयं कहा है—'निरालम्ब मन चक्रित धावै'। सामान्य जनता के लिए ऐसे ब्रह्म की आवश्यकता थी जो उनकी कल्पना का आधार बन सकता; जो उनकी दीन पुकार सुनता तथा उन्हें संकटों से त्राण देता। अतएव शंकर के उपरांत रामानुज प्रभृति आचार्यों ने सगुण के उपासन पर जोर दिया। इन दोनों लेखकों ने भी स्वीकार किया कि ईश्वर यद्यपि निर्गुण है किन्तु वह सज्जनों की रक्षा के लिए तथा भक्तों को सुख देने के लिए नर-रूप धारण कर लेता है।

इन दोनों लेखकों की सबसे बड़ी विशेषता है शंकर के मायावाद एवं रामानुज के भक्ति-वाद के समन्वय की। तुलसी के पहले रामानंद इस प्रकार का समन्वय कर चुके थे। अध्यात्म-रामायण में भी इस प्रकार का प्रयास दिखायी पड़ता है। तुलसी के पहले मार्ग बन चुका था, अतएव वे बड़ी विद्वत्ता एवं गम्भीरता के साथ ब्रह्म-जीव-जगत के साथ ही सगुण-निर्गुण का विवेचन कर सके।

कृत्तिवास के सामने ऐसा खुला राजपथ न था। संभवत: रामानंद उनके समसामयिक थे। हो सकता है रामानंद का उन पर प्रभाव पड़ा हो; यह भी हो सकता है कि युग की समान परिस्थितियों का एकसा प्रभाव पड़ने के कारण दोनों ने ही शंकर एवं रामानुज के सिद्धांतों में समन्वय किया हो। वैसे भारत के एक बड़े भूभाग पर भागवत-पुराण का प्रचार हो गया था। कृत्तिवास की रामभक्ति पर प्रक्षेप-युक्त वाल्मीकि रामायण एवं भागवत-पुराण का प्रभाव है। उनके द्वारा बार-बार प्रयुक्त 'गोलोक' और 'नारायण' शब्द भी भागवत का प्रभाव सिद्ध करते हैं।

आचार्य शंकर के अनुसार ब्रह्म निरुपाधि-निर्गुण है। कृत्तिवास भी राम को

ब्रह्म, सनातन, अच्युत, अव्यय, अविचिन्त्य, अनाद्य-आद्य कह कह कर पुकारते हैं।[1]

तुलसी भी राम को निरुपाधि, अविगत, अकथ, वचन-अगोचर बुद्धिपर, अगुण, अरूप, अलख, अज आदि कहते हैं।[2]

शंकर के मतानुसार निर्गुण माया से आवृत्त होकर सगुण-रूप धारण करता है, अतएव शंकर सगुण को मिथ्या मानते हैं। वे जीव और जगत को भी मिथ्या एवं माया-वश मानते हैं। तुलसी ने केवल जीव और जगत को मिथ्या एवं माया-वश माना है, किंतु सगुण को नहीं। सगुण माया के अधीन नहीं है अपितु माया ही सगुण के अधीन है। यह माया स्वयं सीता है जो राम की इच्छा से सृष्टि-पालन-संहार करती है।

ग्यान अखंड एक सीता बर।
माया बस्य जीव सचराचर।। मानस ७-७७-४
माया बस्य जीव अभिमानी।
ईस बस्य माया गुन खानी।। मानस ७-७७-६

कृत्तिवास ने जीव-जगत के सम्बन्ध में अपना मत नहीं दिया है किन्तु ब्रह्म को सगुण रूप-धारण करने की माया करते हुए दिखाया है--

मायार मनुष्य तुमि--कृत्ति० लंका०, पृ० ४२५
मायाते मनुष्य लीला गोलोकेर पति--कृत्ति० लंका०, पृ० ३५१

यह 'माया' शब्द एक प्रकार से लीला का अर्थ-द्योतक है। अतएव इस माया शब्द से यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि निर्गुण-ब्रह्म माया के वशीभूत होकर सगुण रूप में उपस्थित है। एक बात अवश्य है कृत्तिवास ने प्रारंभ से अंत तक राम के ब्रह्मत्व को माया से आवृत कर दिया है। तुलसी के राम जहाँ जानबूझ कर अपना ब्रह्मत्व भूले रहते हैं, वहाँ कृत्तिवास के राम सच ही माया-वश मनुष्य-वत आचरण करते हुए देखे जाते हैं।

रामानुज भी अद्वैतवादी हैं, किन्तु शंकर से उनका मतभेद जीव और जगत से संबंधित धारणा के कारण है। वे चिदचित्-विशिष्ट ईश्वर को स्वीकार करते हैं। चित् (जीव) और अचित् (जगत) ईश्वर के अंग हैं। अतएव वे मिथ्या नहीं हो सकते।[3] वे शंकर के समान सगुण को माया-निर्मित एवं असत्य न मान कर उसे 'निज इच्छा निर्मित

१ (अ) तुमि ब्रह्म सनातन, कृत्ति० लंका०, पृ० ४२५
(आ) तुमि चराचर गति, अच्युत अति। कृत्ति० लंका०, पृ० ४२५
(इ) जीवेर नियन्ता अविचिन्त्य शक्ति धर।
सृष्टि स्थिति लय कर्त्ता जगत ईश्वर ।। सुन्दर कांड, पृ० २५१
(ई) तुमि हे अनाद्य अद्य असाध्य साधन--कृत्ति० लंका०, ४१५
२ (अ) निजानंद निरुपाधि अनूपा (मा० १-१४३-५)
(आ) राम स्वरूप तुम्हार वचन अगोचर बुद्धि पर।
अबिगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह ।। मानस २-१२६
(इ) अगुन अरूप अलख अज जोई। मानस १-११५-२
३ भारतीय दर्शन--बलदेव उपाध्याय, पृ० ४९०

वपु' कह कर सत्य मानते हैं। उनका कहना है कि निर्गुण-ब्रह्म ही भक्ति-वश होकर सगुण-रूप धारण करता है।[१]

कृत्तिवास के राम भले ही लीला-वश (माया-वश) मनुष्य का आचरण करते रहें किन्तु हैं वे देवताओं के स्वामी एवं जगत के सार ही।[२] उनके राम स्वयं चाहे जैसा आचरण करते रहे हैं किन्तु भक्त लोग (राक्षस-वानरादि) उन्हें सदैव परात्पर एवं त्रिदेवों का स्वामी मानकर उन्हें सत्य रूप ही प्रदान करते हैं।

तुलसी भी निर्गुण-सगुण में भेद न मानकर सगुण को सत्य ठहराते हैं। भक्ति-वश ही निर्गुण सगुण हो जाता है। तुलसी ने शंकर के अनुसार निर्गुण को माया-वश सगुण-रूप धारण करते हुए नहीं माना अपितु रामानुज के अनुसार अपनी इच्छा से अवतार लेते हुए दिखाया है—'निज इच्छा प्रभु अवतरई' ४—२६

निर्गुण-सगुण-समन्वय—यह बात सत्य है कि निगुण-संप्रदाय के अल्पज्ञ शिष्यों ने पाखंड फैला रखा था, जिसका खण्डन सूर ने भ्रमरगीत के रूप में किया। यह भी सत्य है कि निर्गुण की उपासना सामान्य जनता नहीं कर सकती। बिरले लोग ही ज्ञान मार्ग का अनुसरण कर सकते हैं। किन्तु फिर भी जनता में ऐसे लोगों का अभाव न था जो ईश्वर के निर्गुण-रूप का समर्थन करते थे। तुलसी आदि के पूर्व भी राम-नाम का जप होता था, किन्तु कबीर आदि निर्गुण-पंथी राम को केवल निर्गुण मानकर ही भक्ति-निवेदन करते थे। युग की परिस्थितियों में दोनों में से केवल एक को लेकर चलने से समस्त समाज को आकृष्ट नहीं किया जा सकता था। अतएव दोनों लेखकों ने समन्वय की चेष्टा की है। कृत्तिवास इस प्रकार की चेष्टा में अधिक सजग नहीं हैं। उनके सामने तुलसी जैसी परिस्थितियाँ नहीं थीं। बंगाल में सगुण निर्गुण का भेद न होकर शक्ति और वैष्णवों का भेद अधिक था, उन्होंने इन्हीं दोनों के समन्वय में अधिक रुचि दिखायी है। फिर भी उन्होंने भी निर्गुण सगुण को एक ही माना है—

> निराकार साकार सकल रूप तुमि। कृत्ति० लंका०, पृ० ४१५
>
> केह तारे ब्रह्म बलि करे उपासन।
> केह नारायण बलि करये भजन ॥[३] कृत्ति०, सुन्दर०, पृ० २५१

तुलसी ने बड़ी विद्वत्ता के साथ तर्क देकर दोनों का समन्वय किया है। उन्होंने प्रारंभ में ही पार्वती-शंकर के प्रश्नोत्तर द्वारा शंका-समाधान की चेष्टा की है। उनका कहना है—

---

१ गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय-साधना, पृष्ठ ७६-७७

२ देवेर ठाकुर तुमि संसारेर सार।
सामान्य मनुष्य हेन कर व्यवहार ॥कृत्ति० लंका०, पृ० ४४२

३ (तुम निराकार साकार सभी कुछ हो। कोई उन्हें (राम को) ब्रह्म कह कर पूजता है और कोई नारायण कह कर उनका भजन करता है।)
शंकर ने निर्गुण को ब्रह्म और सगुण को ईश्वर कहा है। रामानुज ईश्वर को ही नारायण कहते हैं।

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा।
गावहिं मुनि पुराण बुध वेदा ॥
अगुन अरूप अलख अज जोई।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई ॥
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे।
जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसे ॥ मानस १-११५-१-२-३

सगुण—जीव और जगत की विशेषताओं से युक्त होने पर ब्रह्म निर्गुण से सगुण हो जाता है। सगुण साकार से भिन्न है, वह निराकार रह सकता है। जब वही सगुण मन से चक्षु का विषय हो जाता है तो वह साकार कहलाता है। भक्त कवियों ने सगुण और साकार को एक ही माना है, अतएव उनके ही अनुसार यहाँ भी उन्हें एक मान कर तुलनात्मक-अध्ययन किया गया है।

निर्गुण के सगुण होने अथवा अवतार धारण करने के कारण पर दोनों रामायण-कारों ने गीता के इन दो श्लोकों से प्रेरणा ली है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ ४-७
परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥ ४-८

मुख्य उद्देश्य हुआ भक्तों अथवा साधुओं की रक्षा करना तथा दुष्टों अथवा राक्षसों का संहार करना। कृत्तिवासी-रामायण में भी अवतार का यही कारण है—

१—हयेछेन तिनि लोके सम्प्रति प्रकट।
साधिते भक्तेर सुख नाशिते सङ्कट ॥[1]
२—मायार मनुष्य तुमि, चतुर्व्वाहु आसि भूमि,
नाशिते राक्षस दुराचार।[2]

तुलसी ने भी गीता के इसी सिद्धान्त को ग्रहण किया है, तथा इसे और भी बढ़ाकर प्रस्तुत किया है—

जब जब होइ धरम की हानी।
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी।
सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी ॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ॥ मानस १-१२०-६-८

---

१ वे इस समय लोक में भक्तों का सुखसाधन करने प्रकट हुए हैं—कृत्ति० सुन्दर, पृ० २५१
२ चतुर्व्वाहु, दुराचारी राक्षसों का विनाश करने के लिए तुम पृथ्वी पर आकर माया से मनुष्य बन गये हो—कृत्ति० लंका०, पृ० ४२५

असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति-सेतु ।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु ।। (१-१२१)

तुलसी ने ब्राह्मण, गाय, देवता, पृथ्वी और संत सभी की रक्षा के लिए अवतार दिखाया है । इसे ही ये बार-बार दुहराते हैं । साथ ही यह भी कहते जाते हैं कि भगवान् ने अपनी इच्छा से ही अवतार धारण किया है ।

निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि ।
सगुन उपासक संग तहं रहहिं मोच्छ सब त्यागि ।। ४–२६
बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार ।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार—।। १–९२

दशावतार—नारायणीय में प्रथम बार विष्णु के छः अवतारों-वाराह, नृसिंह, वामन, भार्गवराम, दाशरथि-राम एवं वासुदेव-कृष्ण का वर्णन हुआ ।[1] पुराणों में अवतारों की संख्या भिन्न-भिन्न स्वीकार की गयी है । वराह-पुराण में प्रथम बार अधुना-प्रचलित दशावतार का वर्णन हुआ ।[2] अग्नि-पुराण में भी इनकी चर्चा है । वराह-पुराण के अनुसार दशावतार का यह क्रम है—मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कलि । हमारे दोनों लेखकों ने यही क्रम स्वीकार किया है ।

प्रथम सात अवतारों का क्रम दोनों को स्वीकार है, किन्तु इस युग में भक्ति का विशेषतः कृष्ण-भक्ति का प्रचार होने के कारण उनके बड़े भाई बलराम का वर्णन बुद्धावतार के स्थान पर होने लगा । कृत्तिवास ने सात अवतारों के मध्य हलधर-बलराम की भी वर्णन किया है । उन्हें क्रम-संख्या प्रदान नहीं की गयी किन्तु लेखक उन्हें स्वीकार करता प्रतीत होता है, जैसा कि पर-टिप्पणी के उद्धारण से स्पष्ट होता है ।

कृत्तिवास ने अवतारों का क्रम इस प्रकार माना है—

१–मत्स्य, २—कूर्म, ३--वराह, ४—नृसिंह, ५—वामन, ६–परशुराम, ७–राम ।[3]

---

१ कलेक्टिड वर्क्स ऑफ़ सर० आर० जी० भांडारकर-जिल्द ४, पृ० ५८

२ ————————————वही——————पृ० ५९

३ मत्स्य १ अवतारे कैले वेदेर उद्धार ।
कूर्म्म २ अवतारे तुमि स्थापिला संसार ।।
तृतीय अवतारे वराह ३ रूप धरि ।
वसुन्धरा धरिले जे दशन उपरि ।।
हिरण्यकशिपु रिपु दैत्य महाबल ।
× × × ×
तारे संहारिला तुमि नरसिंह ४ रूपे ।।
हइला वामन ५ वेष पञ्चमावतारे ।
बलि के छलिया द्वारी हैला तार द्वारे ।।
हलधर रूपे राम हल धरि हाते ।
वधिला असुर गणे ताहार आघाते ।।
षष्ठे ते परशुराम ६ हैला भृगुपति ।
भृगुपति निःक्षत्र करिला वसुमति ।।
सप्तमे ते राम-रूप, हये नारायण । कृत्ति० लंका०, पृ० ४४२

तुलसी ने भी यही क्रम माना है।

१   २   ३   ४
मीन कमठ सूकर नरहरी
५   ६
बामन परशुराम बपुधारी ।।   मानस, ६-१०६-७

दोनों ने शेष तीन अवतारों का उल्लेख इसलिए नहीं किया कि वे राम के पश्चात् हुए थे।

दोनों ने कृष्णावतार का उल्लेख अन्य स्थलों पर किया है। कृत्तिवास ने लंका कांड में गरुड़ की भक्ति के समय और तुलसी ने बालकांड में कामदहन के पश्चात् रति को वरदान दिलाते समय कृष्णावतार का उल्लेख किया है।

२—राम-सीता के सम्बन्ध में धारणाएँ—क्या वे विष्णु-लक्ष्मी मात्र !

राम—पुराणों में राम विष्णु के अवतार माने गये हैं। त्रिदेवों में विष्णु और शंकर को ही प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है। कोई पुराण शंकर को परब्रह्म मानकर उनका महत्त्व बढ़ा देता है और कोई विष्णु को ब्रह्मा एवं शंकर से बड़ा सिद्ध करता है। अतएव वैष्णव एवं शैव लोग सदैव अपने-अपने उपास्य-देवों को सर्व-शक्तिशाली बनाने की चेष्टा करते रहे हैं। कृत्तिवास एवं तुलसी ने कहीं राम को विष्णु का अवतार माना है, कहीं उन्हें त्रिदेवों से ऊपर मानकर विष्णु से भिन्न वर्णित किया है। इसका कारण यही है कि परंपरा से प्रचलित राम के विष्णु-अवतार होने की धारणा का वे खंडन नहीं कर सके तथा अपने उपास्य-देव को परब्रह्म चित्रित करने के लिए उनका उन्नयन भी कर गये।

विष्णु—कृत्तिवास उन्हें स्पष्टतः विष्णु कहते हैं—

१—तुमि विष्णु अवतार जगतेर पति—पृ० २८१
२—सेइ राम रमानाथ उपस्थित द्वारे—
३—राम विष्णु अवतार लवेन सबार भार। पृ० ९५

तुलसी ने भी कई स्थानों पर राम को विष्णु माना है। कई ऐसे स्थल आये हैं जहाँ राम की स्तुति करते समय देवताओं के समाज सहित शंकर और ब्रह्मा तो हैं किन्तु विष्णु नहीं हैं; जैसे कि गो-रूप धारिणी पृथ्वी के साथ जन्म के लिए भगवान् से प्रार्थना करते समय अथवा रावण-विजय के उपरान्त सभी देवताओं द्वारा वंदना के समय। इसके अतिरिक्त उन्हें कई स्थानों पर विष्णु,[१] हरि,[२] रमापति[३] आदि नामों से भी पुकारा है।

---

१ विष्णु जो सुरहित नर तनु धारी—१-५०-१
२ कहि हरि नाम दीन्ह पट डारी—३-२८-२५
३ राम रमापति कर धन लेहू—१-२८३-७

विष्णु से भिन्नत्व—दोनों रामायणकारों ने राम को कई स्थलों पर त्रिदेवों से ऊपर माना है। कृत्तिवासी-रामायण में विनय करते समय भक्त कई बार उन्हें कहते हैं—

१—तुमि ब्रह्मा तुमि शिव तुमि नारायण।
सृष्टि स्थिति प्रलयेर तुमि से कारण।। पृ० ४४२
२—तुमि ब्रह्मा तुमि विष्णु तुमि महेश्वर। पृ० ३५२

कृत्तिवास ने राम द्वारा शक्ति-पूजा करायी है। इससे भ्रम हो सकता था कि राम विष्णु-मात्र हैं तथा वे शंकर एवं शक्ति से छोटे हैं; किन्तु देवी स्वयं प्रकट होकर राम को ब्रह्म-सनातन, आदि-भगवान्, अव्यय, अच्युत आदि विशेषण प्रदान कर सीता को भी परमा-प्रकृति कहती हैं।[1]

कृत्तिवास ने केवल एक स्थान पर राम को त्रिदेवों से ऊपर माना है,[2] अन्यथा वे राम को त्रिदेव-स्वरूप बताते हैं और तुलसी त्रिदेवों को राम के अंश से उत्पन्न चित्रित करते हैं। राम त्रिदेवों से अलग सर्वोपरि हैं तथा उनके शासन-कर्ता हैं।

१—सम्भु बिरंचि बिष्नु भगवाना।
उपजहिं जासु अंस तें नाना।। १-१४३-६
२—बिधि हरि संभु नचावन हारे। २-१२६-१
३—संकर सहस बिष्नु अज तोही।
सकहिं न राखि राम कर द्रोही।। ५-२२-८

सीता—सीता लक्ष्मी की अवतार हैं। कृत्तिवासी-रामायण के बालकांड में सीता को लक्ष्मी बतलाया गया है। ये लक्ष्मी विष्णु के अवतार लेने का निश्चय जान कर रो पड़ती हैं। बूढ़े ब्रह्मा इन्हें भी अवतार लेने के लिए कहते हैं। कृत्तिवासी-रामायण में प्रारम्भ से अंत तक सर्वत्र सीता लक्ष्मी ही रहती हैं।

मानस में सीता का उन्नयन हुआ है। कहीं-कहीं उन्हें लक्ष्मी कहने पर भी तुलसी उन्हें जगत-जननी अथवा राम की शक्ति के रूप में ही अधिक देखते हैं। सीता माया हैं जोकि राम का रुख पाकर जगत का सृजन, पालन और संहार करती हैं।

श्रुतिसेतु पालक राम तुम्ह जगदीश माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाय कृपानिधान की।।
२-१२५-८ के पश्चात् छन्द

वे आदि-शक्ति हैं। इन्हीं के एक अंश से अगणित लक्ष्मी, उमा और ब्रह्माणी जन्म लेती हैं—

---

१ पृष्ठ ४२५

२ तोमार एकांश ब्रह्मा विष्णु महेश्वर।
साम ऋक् यजु अथर्व्व तोमा हइते।। पृ० ३६०
(तुम्हारे एकांश से ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर का निर्माण हुआ है। साम, ऋक, यजु एवं अथर्व्व चारों वेद तुम्हीं से निकले हैं।)

जासु अंस उपजहिं गुनखानी।
अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी ।। १-१४७-३
आदि सक्ति जेहिं जग उपजाया।
सोउ अवतरहि मोरि यह माया ।। १-१५१-४

सीता ब्रह्म से अभिन्न है। सदैव उनके वाम-भाग में शोभित रहती हैं। मनु-शतरूपा को दर्शन देते समय भी वे उनके साथ थीं—

बाम भाग सोभति अनुकूला।
आदि सक्ति छबि निधि जगमूला ।। १-१४७-२
भृकुटि बिलास जासु जग होई।
राम बाम दिसि सीता सोई ।। १-१४७-४

वेद भी स्तुति के समय राम को 'संयुक्त सक्ति'[१] कहते हैं।

तुलसी ने शंकर के मायावाद का रूप बदल दिया। शंकर के मायावाद में सगुण ब्रह्म मायावशवर्ती हैं और तुलसी के मत में माया राम की शक्ति है तथा उनके अधीन है। यह माया 'उद्भव स्थिति संहारकारिणी' है और साथ ही 'क्लेश हारिणी' तथा 'सर्व श्रेयस्करी राम वल्लभा' है।[२]

कृत्तिवास ने सीता को एक स्थान पर 'परमाप्रकृति' कहा है। किन्तु वे तुलसी के समान सीता के लिए उच्च दार्शनिक-धरातल नहीं दे सके। उनकी सीता लक्ष्मी की अवतार मात्र हैं, अथवा बंगाली जमींदार की हिन्दू कन्या हैं, जिनमें नारी-सुलभ सौकुमार्य, माधुर्य एवं कादर्य है।

३—राम के ब्रह्मत्व का मानस में उन्नयन

वाल्मीकि-रामायण में ही राम को विष्णु का अवतार मान लिया गया था, पुराणों में भी वे विष्णु के अवतार स्वीकृत हो चुके थे। विभिन्न वैष्णवाचार्यों ने भी यही प्रचलित किया। कृत्तिवास की रामायण अधिकांशतः वाल्मीकि पर आधारित है अतएव राम के विष्णुत्त्व वाली कल्पना को ही वे ग्रहण कर सके। उनके राम का परब्रह्म-रूप बहुत कम आता है। यदि राम की शक्ति-पूजा वाला अंश प्रक्षिप्त मान लिया जाय तो ऐसे स्थल बहुत कम रह जायँगे जो उनके परब्रह्म-रूप को स्पष्ट करें। इस तथाकथित प्रक्षिप्त-अंश में ही देवी उनको अच्युत, अव्यय प्रभृति संबोधन प्रदान करती हैं, किन्तु साथ ही 'चतुर्व्वाहु' भी कह देती हैं।[३] वास्तव में उनके राम विष्णु-मात्र हैं।

१ जय प्रनत पाल दयाल प्रभु संजुक्त सक्ति नमामहे। ७-१२ ग-छंद।
२ उद्भव स्थिति संहार कारिणीं क्लेश हारिणीम्।
सर्व श्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं राम वल्लभाम्। बाल० मंगलाचरण—५
३ पृ० ४२५
बं० रा० ३५

वे गोलोक में रहने वाले गदाधर-नारायण हैं और लक्ष्मी के साथ वास करते हैं।[1] कृत्तिवासी-रामायण के प्रथम-कांड के प्रारम्भ में इन्हीं नारायण ने अपनी इच्छा से चार-अंशों में जन्म लेने का निश्चय किया।[2]

जिस प्रकार मानस में राम को त्रिदेवों से भिन्न एवं उच्च मान कर तुलसी ने उनके ब्रह्मत्व का उन्नयन किया, वैसा कृत्तिवास ने नहीं। कृत्तिवास उनके विष्णुत्व का ही उन्नयन करते रहे हैं। राम विष्णु हैं और विष्णु त्रिदेवों में श्रेष्ठ हैं। एक ही विष्णु समस्त विश्व में भिन्न-भिन्न वपु धारण किये हुए हैं।[3] विष्णु का महत्व बढ़ाने तथा उनके विराट्-रूप के दर्शन कराने के लिए लेखक ने गीता अथवा भागवत जैसा प्रयास भी किया है। राक्षस राम के एक-एक रोम-कूप में ब्रह्माण्ड के दर्शन करते हैं। अनेक पर्वत, कंदर, नद-नदी, जनलोक, तपलोक, ब्रह्मलोक आदि उनके रोम-रोम में दिखलायी पड़ते हैं। त्रिदेव, समस्त-देव, चंद्र-सूर्य तथा त्रिगुणात्मक सृष्टि में वे समाये हुए हैं।

विश्व रूप रामेर देखिल निशाचर।
ब्रह्माण्ड एकैक लोभ कूपेर भितर।।
पर्व्वत कन्दर देख कत नद नदी।
जन लोक तपलोक ब्रह्मलोक आदि।। पृ० ३५१
तुमि ब्रह्मा तुमि विष्णु तुमि महेश्वर।
कुबेर वरुण तुमि यम पुरन्दर।।
तुमि चन्द्र तुमि सूर्य तुमि दिवारात्रि।
अनाथेर नाथ तुमि अगतिर गति।।
तुमि सृष्टि तुमि स्थिति तोमाते प्रलय।
तुमि रजस्तमो गुणे तुमि विश्व मय।। लंका०, पृ० ३५२,

इन्हीं विष्णु में मानवत्व अधिक दिखला कर कृत्तिवास ने बंगाली स्वभावानुकूल भाव-प्रवणता दिखायी, किन्तु विष्णु की सर्व-शक्ति-मत्ता कम कर दी। जिस समय ब्रह्मा देवताओं सहित क्षीरशायी- विष्णु के पास पहुँचे और उन्होंने रावण के अत्याचारों का वर्णन किया तो विष्णु-भगवान् बिना सोचे समझे चक्र और गरुड़ सहित उसके संहार के लिए चटपट तैयार हो गये, किंतु जब ब्रह्मा ने बताया कि उसे उनके द्वारा वर प्राप्त हो चुका है और वह इस प्रकार नहीं मरेगा, विष्णु को मनुष्य-रूप धारण करना पड़ेगा, तो विष्णु को बहुत दुःख हुआ। वे सिर झुका कर क्षुब्ध होकर बोले, 'ब्रह्मा, वर देते समय तो तुम आगे बढ़ जाते हो और विपद् पड़ने पर कहते हो रक्षा करो।' मेरी भाग्य-लिपि में पता नहीं कितनी बार दुःख पाना लिखा है। मुझे स्वर्ग छोड़ कर पृथ्वी पर

---

१ गोलोक वैकुण्ठ पुरी सबार उपर। लक्ष्मी सह तथाय आछेन गदाधर।। प्रारम्भ १

२ मने मने प्रभुर हइल अभिलाष। एक अंश चारि अंशे हइले प्रकाश।। प्रारम्भ २

३ एक विष्णु विश्वमय भिन्न-भिन्न वपु–लंका०. पृ० ३४७

जाना पड़ेगा।'[1] भगवान् को स्वर्ग का सुख छोड़ कर पृथ्वी पर उतरते नहीं बनता। और आगे जब लक्ष्मी उनके विरह की कल्पना कर रो पड़ती हैं तो स्त्री से बिछुड़ने से कम्बुग्रीव विष्णु भी रोने लगते हैं—

लक्ष्मीर रोदने ते कान्देन कम्बुग्रीव—कृत्ति० आदि०, पृ० ५४।

मानस के उत्तरकांड में काकभुशुंडि ने राम का विराट् रूप देखा है। उसमें ही राम का पर-ब्रह्मत्व प्रकट हो जाता है। शिशु-राम से क्रीड़ा कर उनकी शक्ति की परीक्षा लेते समय काकभुशुंडि खूब छकाये गये। वे राम के मुख में प्रविष्ट हो गये। वहाँ उन्होंने अगणित, ब्रह्मांड देखे। प्रत्येक लोक में ब्रह्मा-विष्णु-महेश सहित समस्त सृष्टि अलग-अलग थी। प्रत्येक लोक में अवधपुरी, दशरथ और कौशल्या विद्यमान थे। इन अगणित ब्रह्माण्डों में सभी कुछ भिन्न-भिन्न था, किंतु राम का रूप भिन्न न था।

भिन्न-भिन्न मैं दीख सबु अति विचित्र हरि जान।
अगनित भुवन फिरउं प्रभु राम न देखेउं आन।। ७—८१ (क)

तुलसी के इस वर्णन से निष्कर्ष निकलता है कि सृष्टि में कई ब्रह्मांड हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में अलग-अलग त्रिदेव मुनि देवतादि हैं। एक ब्रह्माण्ड के देवादि दूसरे ब्रह्मांड के देवादि से भिन्न हैं। ये सभी ब्रह्मांड राम के उदर में समाये हुए हैं। अर्थात् राम के ही अंशों से इन सबका निर्माण हुआ है। राम एक हैं उनके रूपों में भिन्नता नहीं है। तुलसी के इस वर्णन में विष्णु का महत्त्व बहुत कम हो जाता हैं। तुलसी के ऐसे सर्वेश्वर राम फिर भला कृत्तिवास के राम की भाँति मानवीय दुर्बलता कैसे दिखा सकते थे।

४—ज्ञान और भक्ति

कृत्तिवास का उद्देश्य काव्य-सृजन अधिक है। उनके समय तक रामभक्ति का प्रचार हो चुका था अतएव उन्होंने काव्य में भक्ति का भी समावेश कर दिया। तुलसी का उद्देश्य केवल काव्य-सृजन न था। वे विभिन्न उपासना-पद्धतियों में समन्वय स्थापित कर तथा मर्यादा पुरुषोत्तम राम का आदर्श उपस्थित कर समस्त विघटित-हिंदू समाज को संगठित करना चाहते थे। वे केवल भक्ति-निरूपण से संतुष्ट न रहे। उन्हें कवि की अपेक्षा धर्माचार्य का कार्य अधिक करना पड़ा। अतएव जिस प्रकार उन्होंने निर्गुण सगुण में समन्वय कर सगुण को प्रधानता दी, उसी प्रकार ज्ञान एवं भक्ति में भी समन्वय कर भक्ति को ही उच्च स्थान दिया, तथा भक्ति-संबन्धित शंकाओं का समाधान कर और उसे तर्क-पुष्ट कर उसके पथ को निष्कंटक एवं प्रशस्त किया।

---

१ जन्मेर नाभे ते प्रभु हेंट करे माथा।।
वरेर समय ब्रह्मा हन आगुआन।
विपदे पड़िले वले, रक्ष भगवान।।
कतवार दुःख पाव ललाटे लिखन।
पृथिवी ते जाव स्वर्ग करिया त्यजन।। कृत्ति० आदि०, पृ० ५४

तुलसी ज्ञान का समर्थन करते हैं, किंतु परिस्थितियों को देखते हुए ज्ञान की अपेक्षा भक्ति की अधिक आवश्यकता थी। ज्ञान-मार्ग केवल कुछ प्रबुद्ध जनों के लिए था। भक्ति-आन्दोलन जन-आन्दोलन था। हिंदू समाज को बाह्य एवं आंतरिक संघर्षों से त्राण देकर समस्त समाज के संगठन के लिए उसे भक्ति के स्त्रोत में बहा देना अधिक प्रयोजनीय था। तुलसी के पूर्व पुराणों एवं अध्यात्म-रामायण में भी इस प्रकार के प्रयत्न हो चुके थे। पद्मपुराण [1] में भक्ति को ज्ञान एवं वैराग्य की मा दिखाया है। ये दोनों पुत्र वृद्ध एवं मरणासन्न हैं, किन्तु मा तरुणी है और इनकी अकाल-मृत्यु से दुःखित है। इस प्रकार पुराण मानों कह रहा है कि ज्ञान एवं वैराग्य का युग नहीं रह गया, अब आवश्यकता है उभयकूलों तक आप्लावित भक्तिसरिता के अबाध प्रवाह की। पुराण ने यहाँ भक्ति को मा बता कर उसे ज्ञान और वैराग्य से बढ़ कर भी दिखाया है।

ज्ञान और भक्ति—तुलसी मानते हैं कि ज्ञान मोक्ष-प्रद है, [2] किन्तु वह कृपाण की धार के समान है।[3] ज्ञान का बोध एवं साधन बड़ी कठिनाई से होता है, और यदि किसी प्रकार उसका साधन हो भी जाय तो आगे अनेक विघ्नों का सामना करना पड़ता है।[4] यदि कोई ज्ञान मार्ग का साधन कर भी ले तो भी राम उससे संतुष्ट नहीं होते क्योंकि भक्ति-हीन ज्ञान उन्हें प्रिय नहीं—

ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका।
साधन कठिन न मन कहुँ टेका॥
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ।
भक्तिहीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ॥ मानस ७–४४–३,४

भगवान् स्वयं भक्त का पक्षपात करते हैं। इस पक्षपात के लिए तुलसी ने माता-पुत्र का उदाहरण दिया है। ज्ञानी भगवान् के लिए प्रौढ़ पुत्र के समान है और भक्त शिशु के समान। मा पुत्र के बड़े होने पर प्रीति कुछ कम कर देती है किन्तु छोटे की रखवाली करती है।[5]

महात्माजी कुशलता के साथ ज्ञान की अपेक्षा भक्ति का महत्त्व दिखलाते हैं। उनका तर्क है कि यद्यपि ज्ञानी और भक्त में भेद नहीं है, किन्तु कठिनाई यह है कि ज्ञान, वैराग्य आदि पुरुष है और माया स्त्री है। कठिन साधना के पश्चात् भी पुरुष नारी के सामने

१ श्री पद्मपुराण-उत्तरकांड
२ ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना। ३–१५–१
३ ग्यान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा॥ ७–११८–१
४ कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जो पुनि प्रत्यूह अनेक॥ ७–११८–ख
५ मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी॥ ३–४२–८
सुनु मुनि तोहि कहउं सह रोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥
करउं सदा तिन्हकै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी॥ ५
प्रौढ़ भएं तेहि सुत पर माता। प्रीति करइ नहिं पाछिल बाता॥
मानस ७।३–४२–४,५

स्खलित हो जाता है। अतएव ज्ञानी किसी समय भी मायावशवर्ती हो सकता है। किंतु सृष्टि का नियम है कि स्त्री अन्य स्त्री पर मुग्ध नहीं होती। भक्ति स्वयं स्त्री है; अतएव भक्ति के क्षेत्र में माया के वश में होने की आशंका नहीं है। भक्ति और माया में भी भगवान् को भक्ति अधिक प्यारी है, क्योंकि माया तो साधारण नर्त्तकी मात्र है।[1]

अन्त में गोस्वामी जी ने ज्ञान और भक्ति का समन्वय कर एक प्रकार से झगड़ा ही समाप्त कर दिया। भक्ति श्रेष्ठ है वह मणि है। किन्तु उसकी प्राप्ति तभी हो सकती है जब कि ज्ञान और वैराग्यकी प्राप्ति हो।

कृत्तिवास ने सीधा-सादा भक्ति का रूप दर्शित किया। वे दार्शनिक पचड़ों में नहीं पड़े हैं। तुलसी से उनकी भिन्नता एक स्थल पर है, जहाँ वे राम के प्रति सूर अथवा बिहारी जैसा सख्य भाव रखते हैं। वे कहते हैं—राम, मैं तुम्हें तब जानूँ, जब आप ऐसे को पार करदें जो ध्यान, पूजा, तंत्र-मंत्र नहीं जानता। सज्जनों को सभी देव तार सकते हैं, असज्जनों को तारो तो मैं तुम्हें ठाकुर समझूं।[2]

कृत्तिवास की भक्ति में विह्वलता—कृत्तिवास ने भक्तों का विह्वल-रूप में चित्रण किया है। ज्ञान भक्ति के समन्वय अथवा भक्ति की तर्क-पुष्ट व्याख्या करने की चेष्टा उन्होंने बिल्कुल नहीं की, अर्थात् दार्शनिकता से हट कर वे काव्य-पक्ष ही ग्रहण किये रहे।

कृत्तिवासी-रामायण में राम के मित्र-पक्ष के भक्त राम को विष्णु का अवतार मानते हैं तथा जानते हैं कि वे पृथ्वी का भार दूर करने के लिए अवतीर्ण हुए हैं, किन्तु वे सभी मानस के सुतीक्ष्ण की तरह न तो विह्वल होते हैं और न अहल्यादि की भाँति स्तुति-विनय करते हैं। कृत्तिवास के राक्षसपात्र अवश्य ही विह्वल भक्त हैं। राक्षसों की भक्ति के कारण ही स्व० दीनेशचन्द्र सेन को कहना पड़ा—कृत्तिवासी-रामायण को पढ़कर राम-रावण का भीषण युद्ध-स्थल गैरिक-रेणु-रंजित संकीर्त्तन-भूमि प्रतीत होता है।[3] कृत्तिवास के कई राक्षस-पात्र युद्धस्थल में पहुँच कर धनुष-बाण फेंक कर अश्रु-वर्षा करते हुए राम की स्तुति करने लगते हैं। इसी प्रकार रावण भी धनुष पृथ्वी पर फेंक गले में वस्त्र डालकर राम की विनय करता है। वह बीसों हाथ जोड़ कर एक-दृष्टि खड़ा है, उसके बीसों नेत्रों से जलधार बह रही है—

हातेर धनुष बाण फेले भूमितले।
कर जुड़ि करे स्तव वस्त्र दिया गले॥
कुड़ि हस्त जुड़ि राजा एक दृष्टे रय।
कुड़ि चक्षे वारिधारा वहे अनिवार॥ लंका, पृ० ४१५

मानस में भी राक्षस भक्त दिखाये गये हैं, किन्तु वे कृत्तिवास के राक्षसों की तरह कभी भक्ति-कातर नहीं होते। वे अन्त समय तक अहंकार से तने रहते हैं, मरते समय भले ही राम-नाम स्मरण करलें। मानस में मित्र-पक्ष के भक्तों में अवश्य विह्वलता है। एक

१ मानस (७–११४–१५, १६) तथा (११५, २-४)
२ कृत्ति० रामा०, लंका०, पृ० २६६
३ वङ्ग भाषा ओ साहित्य-दीनेशचन्द्र सेन पृ० ७७

प्रकार से सभी मित्र पक्षीय पात्र राम की भक्ति करते हैं; यहाँ तक कि दशरथ और कौशल्या तक को राम-भक्त दिखाया है।

तुलसी की भक्ति में विवेक पक्ष—कृत्तिवास ने भक्ति का सहज-रूप प्रस्तुत किया है। तुलसी केवल भक्ति-विह्वलता से ही संतुष्ट न हुए। उन्होंने भक्ति को सभी साधना-पद्धतियों से श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए अपना समस्त पांडित्य लगा दिया। कृत्तिवास जहाँ भक्ति को मुक्ति का साधन ही बता कर रह गये, वहाँ तुलसी ने मुक्ति का भी निरादर कर भक्ति को स्वयं-साध्य सिद्ध कर उसे ज्ञानादि मार्गों से भी उच्च-स्थान प्रदान किया। तपस्या-रत अथवा मरणासन्न भक्त वर-प्राप्ति का अवसर आने पर सांसारिक ऐश्वर्य अथवा मुक्ति की आकांक्षा न कर प्रायः भक्ति की ही कामना करते हैं। भक्ति करने पर मुक्ति तो स्वयं अपने आप खिंच कर न चाहने पर भी प्राप्त हो जाती है। जिस प्रकार पृथ्वी के बिना जल नहीं रह सकता, उसी प्रकार भक्ति के बिना मोक्ष नहीं रह सकता।[1]

भक्ति की महत्ता सिद्ध करने के लिए वे मानस में कई बार कई पात्रों के मुख से भक्ति के सम्बन्ध में कथोपकथन कराते हैं। कहीं भक्ति और ज्ञान का भेद समझाया जा रहा है, कहीं भक्ति के साधन बताये जा रहे हैं, तो कहीं नवधा-भक्ति का निरूपण हो रहा है।

तुलसी के कुछ पात्र भी भक्ति विह्वल होते हैं, किन्तु वे सामान्य बुद्धि के पात्र नहीं हैं, वे हैं सुतीक्ष्ण अथवा काकभुशुंडि जैसे ज्ञान-गंभीर साधक। कृत्तिवास के पात्रों की भक्ति देखने से लगता है, वह केवल अधम एवं अज्ञ-पात्रों के लिए है।

तुलसी की भक्ति में सामाजिकता है। उन्होंने संसारिक सुखों की प्राप्ति के लिए राम-भक्ति का प्रचार नहीं किया। भक्ति को स्वयं-साध्य बना कर उन्होंने भक्तों के हृदय में निःस्वार्थ भाव जाग्रत किया। वे भक्ति की प्राप्ति के लिए स्थान-स्थान पर संत और सत्संग का महत्त्व बतलाते हैं।[2] भक्ति-प्राप्ति के कई साधनों में निष्कपट-व्यवहार, सरलता, परोपकार सदाचार आदि गुण भी हैं।[3] अयोध्याकांड के राम-वाल्मीकि-संवाद, अरण्य-कांड का राम-लक्ष्मण एवं राम-नारद-संवाद तथा उत्तरकांड के काकभुशुंडि और

---

१ जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भांति कोउ करै उपाई।
तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई। रहि न सकइ हरि भगति बिहाई॥
अस बिचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादर भगति लुभाने॥मानस ७–११८-५–७

२ भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी॥
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता॥
पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा॥ ७–४४–५–७
सरल सुभाव न मन कुटिलाई। जथा लाभ संतोष सदाई॥ मा० ७–४५–२

३ निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥ ५–४३–५
परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥७–४०–१
विषय अलंपट सील गुनाकर। पर दुख-दुख सुख-सुख देखे पर॥ ७–३७–१
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष वचन कबहुँ नहिं बोलहिं॥ ७–३७–८

गरुड़ संवाद आदि प्रसंगों के अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि राम की भक्ति का सच्चा अधिकारी वही हो सकता है जोकि तन-मन से सर्वथा शुद्ध हो, जो किसी का अहित न करे, जो पारिवारिक एवं सामाजिक कर्त्तव्यों का पालन करता हुआ सारे कार्य राम के लिए करे।

मानस के माध्यम से राम-भक्ति की शिक्षा पाने वाला व्यक्ति पूर्ण-मानवता के लिए अपेक्षित सभी गुणों से युक्त होता है।

५—नाम महात्म्य

राम-नाम-जप के महात्म्य के दो कारण थे—कलियुग में केवल नाम का आधार होना, और सगुण-निर्गुण समन्वय का प्रयास करना।

कृत्तिवासी-रामायण में केवल प्रथम कारण ही दृष्टिगत होता है। उन्होंने राम-नाम का महात्म्य निःश्रेयस एवं अभ्युदय दोनों की प्राप्ति के लिए बताया है। निर्गुण-सगुण के समन्वय की उनकी प्रवृत्ति नहीं है। बंगाल की विकट लौकिक एवं अवैदिक उपासनाओं के जंजाल के बीच उन्होंने राम की सरल-भक्ति का प्रचार कर नाम का महत्त्व दिखाया है। उनका कहना है कि राम-नाम के स्मरण-मात्र से मुक्ति पीछे दौड़ पड़ती है। मृत्यु के समय राम-नाम बोलने से व्यक्ति विमान पर चढ़ कर देवलोक जाता है। राम-नाम लेने की जो अभिलाषा करता है, वह सब पापों से मुक्त होकर बैकुंठ में वास करता है।

१—जांहार स्मरण मात्रे मुक्ति सङ्गे धाय—कृत्ति० अरण्य०, पृ० १६२

२—मृत्यु-काले यदि राम नाम वले डाके।
विमाने चड़िया जाय सेइ देवलोके।। कृत्ति० अरण्य०, पृ० १३६

३—राम-नाम लइते जे करे अभिलाष।
सर्व्व पापे मुक्त से बैकुण्ठे करे वास।। कृत्ति० उत्तर०, पृ० ५८२।

मुक्ति एवं बैकुंठ-प्राप्ति के अतिरिक्त लौकिक सुख की भी प्राप्ति दिखायी है। बताया है कि अपुत्रक भी राम-कथा सुनने एवं नाम लेने से पुत्र प्राप्त कर सकता है—

अपुत्रक शुने यदि पाय पुत्र फल—कृत्ति० उत्तर०, पृ० ५८२

निर्गुण एवं सगुण समन्वय तो नहीं किया किन्तु राम-नाम का महत्त्व बढ़ाने के लिए चारों वेदों का अध्ययन भी तुच्छ दिखाया है। चरों वेदों के अध्ययन से जितना पुण्य होता है, राम-नाम केवल एक बार ही कह देने से उतना फल मिल जाता है—

चारि वेद अध्ययने जत पुण्य हय।
एके बारे राम-नामे तत फलोदय।। कृत्ति० उत्तर०, पृ० ५८२

पुराण के अनुसार कलियुग में धर्म केवल एक टाँग पर खड़ा है।[१] इस युग तक लोग भोगवाद की ओर ऐसे उन्मुख हो गये कि वे सत्य, द्वापर और त्रेता युगों की भाँति इस काल में धर्म-परायण नहीं रहे। किन्तु कलियुग में एक विशेषता है, अन्य युगों में

१—प्रकट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान। मानस ७-१०३
कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना।
एक अधार राम गुन गाना।। मानस ७-१०२-५

अति कष्ट-साध्य तपस्या से भी जो प्राप्त नहीं हो सकता, उसकी प्राप्ति कलियुग में भगवन्नाम-स्मरण से ही हो जाती है। अतएव अपने उपास्यदेव के नाम-स्मरण का मुख्य-कारण यही बताया गया। कृत्तिवास एवं तुलसी ने भी इसीलिए राम-नाम का महत्त्व दर्शित किया है। गोस्वामी जी का कहना है कि भगवान् सत्ययुग में ध्यान से, त्रेता में यज्ञ से और द्वापर में पूजन से प्रसन्न होते हैं, किन्तु कलियुग में न कर्म है, न विवेक, केवल एक राम-नाम का आधार है—

ध्यानु प्रथम जुग मख बिधि दूजें।
द्वापर परितोषत प्रभु पूजें।। मानस १–२६–३
नहिं कलि करम न भगति बिबेकू।
राम नाम अवलंबन एकू।। मानस १–२६–७
चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ।
कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ।। मानस १-२१-८

तुलसीदास का यहाँ तक कहना है कि यदि कोई जंभाई लेते हुए भी राम का नाम ले दे तो वह सारे पापों से मुक्त हो जायगा[1]।

सगुण-निर्गुण-समन्वय—साकार के उपासकों में कृष्ण-भक्ति का प्रचार अधिक रहा है किंतु निर्गुण-उपासक ब्रह्म को राम-नाम प्रदान कर इसी नाम का जाप करते रहे हैं। कबीरादि ने दाशरथि-राम को नहीं माना है किन्तु वे भी राम-नाम के महत्त्व का वर्णन करते हैं। इस प्रकार नाना पंथों से प्रभावित जनता में एक ऐसा वर्ग भी था जो निर्गुण-राम का उपासक था। तुलसी ने यहाँ बड़ी कुशलता के साथ नाम की साखी (साखी) देकर निर्गुण एवं सगुण का समन्वय कर समाज-संगठन की दक्षता सिद्ध कर दी है। यदि यह भावना न होती और ईश्वर का किसी भी नाम से भजन करने से पुण्य लाभ हो जाता तो तुलसी यह न कहते कि यद्यपि प्रभु के अनेक नाम हैं किन्तु राम-नाम सबसे बढ़ कर है।

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका।
श्रुति कह अधिक एकतें एका।।
राम सकल नामन्ह ते अधिका।
होउ नाथ अघ खग गन बधिका।। मानस ३--४१-७, ८

तुलसी ने नाम को रूप से भी बड़ा मानकर निर्गुण-सगुण समन्वय किया है।

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा।
अकथ अगाध अनादि अनूपा।।
मोरे मत बड़ नामु दुहूँ तें।
किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें।। मानस १-२२-१-२

अब किसी को शिकायत रह ही नहीं गयी। दोनों नाम को मानते हैं। नाम यदि सगुण से बड़ा है तो निर्गुण से भी बड़ा है। अपने ग्रंथ में तुलसी ने जिस सगुण के रूप का

---

१ राम राम कहि जें जमुहाहीं।
तिन्हहि न पाप पुंज समुहाहीं।। २–१९३–३

वर्णन किया है उसे ही नाम के अधीन बना दिया। नाम और रूप में उन्होंने स्वामी और भृत्य का संम्बन्ध स्थापित कर कहा कि रूप नाम का अनुगमन करता है।[१] निर्गुण-उपासकों को संतुष्ट करने के लिए वे और भी आगे रूप के सामर्थ्य की सीमा एवं नाम-प्रभाव की असीम-शक्ति का वर्णन करते हैं—

राम एक तापस तिय तारी।
नाम कोटि खल कुमति सुधारी।। मा० १-२३-३

महत्त्व-वर्द्धन की कथाएँ—

उलटा नाम जप कर वाल्मीकि के ज्ञानी होने की कथा का वर्णन दोनों ने किया है। कृत्तिवास ने वाल्मीकि के दस्युजीवन से ही रामायण का प्रारंभ किया है, और मुनि के जीवन का विस्तृत चित्रण किया है। तुलसी ने केवल एक अर्धाली में कथा की ओर संकेत मात्र किया है—

जान आदि कवि नाम प्रतापू।
भयउ सुद्ध करि उलटा जापू।। मा० १-१८-५

कृत्तिवास ने एक स्वतन्त्र कथा की भी योजना की है। राजा दशरथ को अन्धमुनि पुत्र की हत्या से मुक्त करने के लिए वशिष्ठ-पुत्र वामदेव ने कहा कि तीन बार राम का नाम लेने से राजा पाप-मुक्त हो जायेंगे। वशिष्ठ को जब ज्ञात हुआ तो उन्होंने अपने पुत्र को चांडाल होने का शाप दिया। उन्होंने कहा, वामदेव, केवल एक बार राम-नाम लेने से ही करोड़ों ब्रह्महत्याओं से उद्धार हो जाता है, तूने तीन बार राम-नाम क्यों कहलाया।

शुनिया वशिष्ठ शाप दिलेन विशाल।
जाह वामदेव पुत्र हओगे चंडाल।।
एक राम नामे कोटि ब्रह्महत्या हरे।
तिन बार राम नाम बलालि राजा रे।। कृत्ति०, आदि०, पृ० ६८

तुलसी ने भी नाम-महत्त्व बढ़ाने के लिए एक स्वतंत्र-प्रसंग की कल्पना की है। अरण्य-कांड में उन्होंने राम-नारद संवाद इसी उद्देश्य से कराया है। नारद अपने शाप की

१ देखअहिं रूप नाम आधीना। रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना॥ मा० १-२०-४
समुझत सरसि नाम अरु नामी। प्रीति परस्पर प्रभु अनुगामी।। मा० १-२०-१

ग्लनि से मुक्त होने के लिए भगवान् से वर माँग लेते हैं कि यद्यपि प्रभु के अनेक नाम हैं किन्तु उन सब में राम-नाम का महत्व सबसे बढ़ कर हो।[१]

इस युग में महाराष्ट्र में भी राम-नाम-जप पर जोर दिया गया। रामभक्त एकनाथ जी ने भी कलियुग में राम-नाम को मुख्य-साधन बताया है। महत्व के लिए उन्होंने भी वाल्मीकि आदि के तारने की बात कही है, उन्होंने भी शूद्र और स्त्री के लिए राम-नाम जप का विधान किया है।[२]

---

१ मानस—३—४१—७—८

२ कलि युगीं मुख्य साधन। श्रीराम चें नाम जाण।
नामें वाल्मीकि चोरटा। कलि कालें घेतां झटा। (उत्तरकांड)
नामें पावन स्त्री शूद्र—सुन्दर-कांड—
(एकनाथ और तुलसी के काव्य की झलक—जगमोहन लाल चतुर्वेदी, पृष्ठ ११०—११५)

अध्याय ८

(काव्य-सौष्ठव का तुलनात्मक-अध्ययन)

१—कथा-संगठन

२—भाव-व्यंजना

३—प्रकृति-सौंदर्य

४—सौंदर्य-भावना

५—रचना-कौशल—

भाषा, छंद एवं अलंकार

गोस्वामी तुलसीदास की गणना हिन्दी-भाषी क्षेत्र के ही नहीं अपितु विश्व के महान् कवियों के साथ की जा सकती है। पांडित्य, प्रतिभा, रचना-कौशल, भाव-गांभीर्य आदि अनेक दृष्टि से वे अपूर्व हैं। उनका जन्म भी हिन्दी-साहित्य के स्वर्ण-युग में हुआ। उनके पूर्व ही विद्यापति, कबीर, जायसी तथा सूर आदि महाकवि हिन्दी का भंडार भरने लगे थे। कृत्तिवास का जन्म उस समय हुआ जबकि बँगला अभी उँगली छोड़ कर चलना भी नहीं सीख पायी थी। बंगला-साहित्य का भंडार रिक्त था। वे बंगला-भाषा के स्वर्ण-युग में आविर्भूत नहीं हुए थे। फलतः कृत्तिवास में काव्य-सौष्ठव की उत्कृष्टता के दर्शन नहीं होंगे। लोक-साहित्य में भी काव्य-सौन्दर्य होता है किन्तु उसमें सजावट-बनावट न होकर वर्ण्य-विषय का सीधा निरलंकृत वर्णन होता है। कृत्तिवास के काव्य में ऐसा ही सौन्दर्य है, किन्तु वह तुलसी के टक्कर का नहीं है।

तुलसीदास के काव्य-सौन्दर्य पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है। तुलनात्मक-दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कुछ अल्प-विषयों को लेकर ही यहाँ दोनों का अध्ययन अभीष्ट है।

कथा-संगठन

प्राचीन-काल में कथा-वस्तु के दो भेद माने गये—आधिकारिक (मुख्य) एवं प्रासंगिक। आज के साहित्य में केवल मुख्य कथा-वस्तु के वर्णन का आग्रह अधिक देखा जाता है, जिसके कारण कथावस्तु गठी हुई रहती है। प्राचीन-साहित्य के महाकाव्यों का कथानक मंथर-गति से अनेक लघु-प्रसंगों के नदी-नद समाहित करता हुआ चलता था। मुख्य-कथा एवं प्रमुख-चरित्रों के विकास के लिए कई प्रसंगों का भी समावेश रहता था; किन्तु फिर भी समस्त कथा-वस्तु में उद्देश्य की एक-सूत्रता भी रहती थी।

वाल्मीकि-रामायण की मुख्य-कथा राम के चरित्र से सम्बन्धित है, किन्तु उसमें ऐसे असंख्य-प्रसंगों का उल्लेख है जो राम से सीधे सम्बन्धित नहीं हैं। फिर उसमें अनेक प्रक्षेप भी मिल गये हैं। जो प्रसंग सामने आया, उसे ही लक्ष्य बना कर उसका बहुत विस्तृत एवं चरम-कोटि का सुन्दर वर्णन किया गया। सीता की खोज के लिए बानरों को देश-परिचय देते समय सुग्रीव अनेक देश, जातियों, वनस्पतियों आदि का जैसा सुन्दर चित्रात्मक वर्णन करता है, वह काव्य-रसिकों के लिए ही नहीं अपितु वनस्पति-शास्त्रियों नृतत्त्व-विशारदों, भूगोल-शास्त्रियों एवं ऐतिहासिकों के अध्ययन की वस्तु हो जाता है। केवल कथा-संगठन की दृष्टि से अध्ययन किया जाय तो हमें वह नहीं मिलेगा। कथा-संगठन का न रहना भी आदि-काव्य के लिए गौरव की बात हो सकती है। वह जैसा है वैसा ही ठीक है।

किन्तु भाषा-रामायण काल के पूर्व ही संस्कृत के ग्रंथों में भी कथा-वस्तु के संवारने, सजाने एवं अनावश्यक विस्तार से बचाने का प्रयत्न देखा जाता है। वाल्मीकि-रामायण

के विशद् एवं स्वतंत्र वर्णनों से कृत्तिवास ने भी बचने का प्रयत्न किया है। किन्तु फिर भी उनकी कथा में वह चारुता न आ सकी जो तुलसीदास जी की रामायण में है। उसके कुछ कारण हैं। (१) कृत्तिवास द्वारा वाल्मीकि-रामायण का अनुसरण, (२) पांचाली-काव्य के ढंग की रचना होना, (३) कृत्तिवासी-रामायण का बंगला का आदि-महाकाव्य होना, तथा (४) कथकों द्वारा कथा-परिवर्तन।

(१) वाल्मीकि-रामायण की कथा-वस्तु में शैथिल्य है, उसमें अनेक स्थलों पर पुनरुक्तियाँ हैं। कृत्तिवासी-रामायण में भी कई पुनरुक्तियाँ हैं। काव्य में सांकेतिकता रहनी चाहिए। जो बातें पाठकों को स्वयं ज्ञात हैं, अथवा जिनके सम्बन्ध में वह स्वयं कल्पना कर सकता है, उसका बार-बार वर्णन करना कला एवं रोचकता की दृष्टि से ठीक नहीं रहता। राम-सम्बन्धी समाचार ज्ञात करने की जिज्ञासा होने पर कृत्तिवास का कोई न कोई पात्र पूर्व घटित एवं वर्णित पूरी कहानी सुना जाना है। सीता-अनसूया[1] के वार्त्तालाप के समय सीता अपने स्वयंवर के साथ-साथ राम-कथा का वर्णन करती हैं। हनुमान संपाति[2] को राम-कथा सुनाते समय राम के जीवन में घटित होने वाले सभी प्रसंगों के साथ-साथ रत्नाकर दस्यु की कथा की भी पुनरुक्ति करते हैं। इसी प्रकार भरत-हनुमान भेंट[3] के समय भी हनुमान उन्हें पूरी राम-कथा सुनाते हैं।

गोस्वामी जी ऐसे अवसरों पर चतुरता से काम लेते हैं। वे प्राय: निम्न-प्रकार की उक्तियाँ कर पुनरुक्ति दोष से बच जाते हैं—

नर बानरहि संग कहु कैसें।
कही कथा भइ संगति जैसे ॥ ५-१२-११

वाल्मीकि-रामामण के कई प्रसंग उससे अलग कर दिये जायं तो कथा-विकास में कोई अवरोध उपस्थित न होगा। इसी प्रकार कृत्तिवासी-रामायण के कई प्रसंग काटे-छाँटे जा सकते हैं; बहुत से प्रसंगों का एकदम वहिष्कार किया जा सकता है, क्योंकि वे कथा-प्रवाह को बीच-बीच में मन्द ही बनाते हैं। मानस के बाल एवं उत्तर कांड में अवश्य कुछ ऐसी कथाएँ हैं जो कथा-संगठन की दृष्टि से बहुत आवश्यक नहीं थी[4] किन्तु दृष्टिकोण की एकता समस्त ग्रंथ में मिलेगी। यों ही प्रसंगवश अंतर्कथाओं की सृष्टि गोस्वामी जी नहीं करते, केवल उन्हीं कथा-प्रसंगों का वर्णन करते हैं जो राम-भक्ति प्रतिपादन में सहायक हैं।

---

१ कृत्तिवासी-रामायण, अयोध्या, पृ० १३३-३४

२ कृत्तिवासी-रामायण, किष्किंधाकांड—पृ० २०७-१०

३ कृत्तिवासी-रामायण लंकाकांड, पृ० ३९२

४ जैसे सती मोह, शिव-पार्वती-विवाह, शाप-वर से सम्बन्धित कई आख्यान और काक-भुशुंडि के कई जन्मों का वर्णन।

(२) बंगाल में पाँचाली-गायकों का खूब प्रचार था। कृत्तिवासी रामायण राम-पाँचाली कहलाती थी, तथा इसके वर्णन भी पांचाली-साहित्य जैसे हो गये हैं। अस्त्र-शस्त्र, भोजन, वाद्य एवं वनस्पतियों के वर्णन के समय लंबी तालिका बार-बार प्रस्तुत की गयी है। हिन्दी-भाषी क्षेत्र में आल्हा का प्रचार है, युद्ध-प्रसंग उपस्थित होने पर 'खटखट खटखट तेगा बाजै चलै छपक छपक तलवार' का वर्णन अवश्य ही होगा, चाहे उसका वर्णन दस-पन्द्रह बार ही क्यों न हो जाय। इसी प्रकार कृत्तिवासी-रामायण के अनेक स्थलों पर युद्ध के लिए जाते हुए वीरों के साथ विभिन्न वाद्य-ध्वनियों एवं अस्त्र-शस्त्र की सज्जाओं का वर्णन किया गया है। इन वर्णनों में भी पुनरुक्ति रहती है। निम्न-प्रकार का वर्णन कई स्थलों पर मिलेगा—

एक लक्ष दगड़, दुइ लक्ष करताल।
दुइ सहस्र घण्टा बाजे, मृदङ्ग विशाल ।।
भेउरी झाँझरी बाजे, तिन लक्ष काड़ा।
चारि लक्ष जयढाक, छय लक्ष पड़ा ।।
बाजिल चौरासी लक्ष शङ्ख आर वीणे।
तिन लक्ष तासा बाजे दामामार सने ।।
ढेमचा खेमचा बाजे दुइ लक्ष ढोल।
तिन लक्ष पाखोआज विस्तर मादल ।।
आदि.........आदि......पृ० २६६, लंका कांड

युद्ध के वर्णन के समय भी वीर पहले सम्मान करते हैं, फिर गाली-गलौज और अन्त में ठेला-ठेली तथा धर-पकड़ करते हैं।

प्रथमे गौरव द्वितीयेते गालागालि।
तृतीये ते ठैलाठैली परे चूला-चूलि ।। ३८८ लंका०
इस प्रकार के वर्णन की भी पुनरुक्तियां हैं।

तुलसीदास तालिका देने के पक्ष में नहीं रहे। वे संक्षेप में ही काम निकाल ले जाते हैं। आवश्यकता पड़ने पर एकाध प्रमुख वाद्य, अस्त्र-शस्त्र अथवा भोज्य पदार्थों का नाम ले देते हैं, नहीं तो ऐसे ही कह देते हैं, कि विविध भोजन परोसे गये, उनका बखान कौन करे[1], अथवा गह गहे बाजे बजने लगे।[2]

पाँचाली-शैली होने के कारण ही कृत्तिवास ने शब्दों का अपव्यय बहुत किया है। सुरसा और हनुमान की स्पर्धा के समय गोस्वामी जी केवल इतना कहते हैं—

जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा।
तासु दून कपि रूप देखावा ।। ५-१-८

---

१ विविध भाँति मेवा पकवाना। भोजन साजु न जाइ बखाना ।।१-३३२-४
२ अति गहगहे बाजने बाजे। सबहिं मनोहर मंगल साजे ।। मा० १-२८५-१

और कृत्तिवास इतने संक्षेप में नहीं चलते। वे क्रमशः पूर्ण-स्थिति से परिचित कराने की चेष्टा करते हैं। २०, ३०, ४०, ५०, ६०, ७०, ८० और १०० योजन तक मुख फैलाने की घटना का पूरा वर्णन मिलेगा। इसी प्रकार अन्य-स्थलों पर भी ऐसा किया है।

(३) तुलसीदासजी के पूर्व अवधी-भाषा के सूफी कवि छंद-भाषा-शैली आदि की दृष्टि से गोस्वामीजी का पथ परिष्कृत कर चुके थे, तथा उनमें स्वयं महती प्रतिभा थी। कृत्तिवास बंगला के आदि-महाकाव्य लेखक हैं, अतएव छंद-योजना आदि तथा कथानक में शैथिल्य रह गया, जोकि स्वाभाविक है।

(४) तुलसी की रामायण मूल-रूप में बहुत कुछ सुरक्षित है, किन्तु कृत्तिवासी-रामायण में बहुत अधिक परिवर्त्तन हुए हैं। जगनिक का आल्हा-काव्य लोक-गायकों की जीभों पर घिसता-घिसता तथा नये-नये प्रसंगों को समाविष्ट करता हुआ आज जिस रूप में उपलब्ध है वह मूल से सर्वथा भिन्न है। ठीक यही स्थिति कृत्तिवासी-रामायण की है। कथक-लोगों ने कृत्तिवासी-रामायण का गान करते समय भावावेश में आकर बहुत कुछ अपनी ओर से भी जोड़ा और तोड़ा-मरोड़ा है तथा अन्य प्रसिद्ध राम-कथा-लेखकों की कृतियों के अंश भी उसमें सम्मिलित कर दिये हैं। जिसके कारण उसकी कथा-वस्तु में विशृंखलता है।

रामचरित-मानस में भी ऐसे स्थल हैं जो रसिकपाठकों के लिए अरोचक हो उठते हैं। भक्त तुलसीदास रामभक्ति के श्रेष्ठत्व, राम के परब्रह्मत्व अथवा सदाचार के प्रचार के लिए जब सक्रिय दिखायी पड़ते हैं, वहाँ कथा-प्रवाह शिथिल हो जाता है। कृत्तिवासी-रामायण में तुलसीदास ने कसी हुई चुस्त भाषा में समस्त कथा वर्णित की है। कथा में नाटकीय चमत्कार प्रस्तुत करने का भी उन्हें ध्यान रहा है। धनु-भंग के पश्चात् राजाओं के विद्रोह एवं रनिवास की चिंता के मध्य क्रोध-मूर्त्ति परशुराम की अवतारणा जैसे प्रसंग नाटकीय चमत्कार से परिपूर्ण है।

सहज-प्रवाह, स्वाभाविकता, रोचकता, नाटकीय-चमत्कार एवं सांकेतिकता आदि अनेक गुणों के कारण मानस संस्कृत-रामायण के पाठकों को भी अपने कथा-सरोवर में अवगाहन के लिए आकृष्ट कर लेता है, जबकि कृत्तिवासी-रामायण वाल्मीकि-भक्तों को अधिक आकृष्ट नहीं कर पाती।

(२) भाव-व्यंजना

काव्य के विषय मनवेग हैं और वे हैं शाश्वत। जिस काल अथवा देश के साहित्य में मनोवेगों का चित्रण जितनी सच्चाई एवं गम्भीरता के साथ किया गया है, वह साहित्य उतना ही अधिक ख्याति अर्जित कर सका है। भारतीय-आचार्यों ने 'रस निरूपण' के नाम से मनोवेगों का शास्त्रीय-अध्ययन किया था।

महाकाव्य में पात्र विशेष अथवा कई पात्रों के जीवन का विशद चित्रण होता है, अतएव उसमें मनोवेगों का अधिकाधिक चित्रण हो जाना स्वाभाविक है फलतः भारतीय आचार्यों का रस निरूपण की दृष्टि से किसी कवि का मूल्यांकन करना ठीक ही था। कृत्तिवास पंडित एवं गोस्वामी जी के ग्रन्थों में भी नव-रसों का चित्रण मिलता है; उनका शास्त्रीय-अध्ययन भी किया जा सकता है। ये दोनों कवि विभावानुभाव-संचारी के संयोग से रस-निष्पत्ति के फेर में नहीं पड़े हैं। महान् राम की महान् कथा के भिन्न-भिन्न मार्मिक स्थलों का उन्होंने सहज स्वाभाविक ढंग से वर्णन किया है, उसी के अन्तर्गत अनेक रसों का सहज ही वर्णन हो गया है। गोस्वामी जी का काव्य-शास्त्रीय-ज्ञान स्वतः प्रकट हो गया है, उन्होंने कहीं प्रयास नहीं किया है। राम-सीता मिलन आदि स्थलों पर अनुभाव एवं संचारियों के अनेक रूपों का चित्रण हम देख सकते हैं।

भावों की गहराई तक पहुँचने में तुलसी की सजग राम-भक्ति कहीं-कहीं बाधा उपस्थित कर देती है। गंभीर-स्थलों का वर्णन करते-करते तुलसी तुरंत अंकुश लगाकर पाठक को मोह-निद्रा से जाग्रत कर बता देते हैं कि राम लीला कर रहे हैं, वे तो स्ववश, अविकारी, अनंत ब्रह्म हैं।

ब्याल पास बस भये खरारी।
स्वबस अनंत एक अधिकारी ।। ६-७२-११
नट इव कपट चरित कर नाना।
सदा स्वतंत्र एक भगवाना ।। ६-७२-१२

बार-बार राम के ब्रह्मत्व की याद दिलाने से पाठक के मन पर राम के ब्रह्मत्व की छाप निरंतर गहरी होती जाती है, उसे पग-पग पर ध्यान रहता है कि राम भगवान् हैं, वे तो कपट-लीला कर रहे हैं, फलतः गंभीरतम-प्रसंग की उपस्थिति में राम की अनुभूति मानव की अनुभूति नहीं लगती और पाठक को उनके सुख-दुःख में समरस होने से विरत करने लगती है। फिर भी तुलसी भावों की व्यंजना इतनी मार्मिकता एवं सफलता के साथ करते हैं कि पाठक 'नरगति भगत कृपालु दिखाई' का अंकुश बार-बार भूल कर मोह-ग्रस्त एवं भाव विभोर होने लगता है। इतना सब तो राम के संबंध में है, उनके अन्य पात्रों के भाव प्रकाश के संबंध में यह बात नहीं है।

वाल्मीकि-रामायण में मनोवेगों का प्रकाशन जिस उद्दामता के साथ होता है, वह कृत्तिवास एवं तुलसी दोनों में नहीं है। कृत्तिवास का वर्णन साधारण नर-नारी के सुख-दुःख का सहज वर्णन है। उसमें न अत्युक्ति है और न बहुत अधिक गांभीर्य। भाव-प्रकाशन पर कोई नियंत्रण नहीं है— न ब्रह्मत्व का, न मर्यादा एवं संयम का। शृङ्गार क्षेत्र के संयम को छोड़ कर उन्होंने हर्ष, शोक, क्रोध आदि मनोवेगों में कहीं भी नियंत्रण रख कर कृत्रिमता नहीं आने दी है। तुलसीदास जी का प्रत्येक पात्र संयमित है, अध्याय ६ में इसका वर्णन हो चुका है।

कवि की विशेषता तभी है, जबकि वह किसी मार्मिक-प्रसंग से अपने पाठकों तथा स्वयं को तटस्थ न रहने दे। दोनों लेखक अपने पाठकों को रसधारा में अवगाहन कराते चलते हैं। किन्तु अंतर यह है कि जहाँ कृत्तिवास पात्रों के चिल्लाने, आँसू बहाने, हाथ-पैर पटकने और धूल में लोटने[1] आदि की शारीरिक-क्रियाओं का वर्णन अधिक करते हैं, वहाँ तुलसीदास भाव-संघर्ष अथवा भाव-तन्मयता का अधिक चित्रण करते हैं। बहुत अधिक भाव-मग्न हो जाने पर ज्ञानेन्द्रियाँ अपना काम बंद कर देती हैं, व्यक्ति हतचेतन हो जाता है। इस प्रकार का वर्णन मानस में बहुत मिलेगा। राम को लौटाने में असमर्थ सुमंत्र जब सूना रथ लेकर लौट रहे हैं उस समय राम वियोग से दुःखी होकर एवं उनके वियोग में अयोध्या की भयंकर स्थिति की कल्पना कर उनकी क्या स्थिति हो जाती है—

लोचन सजल डीठि भइ थोरी।
सुनइ न श्रवन बिकल मति मोरी ।। मानस २-१४४-३
बिबरन भयउ न जाइ निहारी।
मारेसि मनहुँ पिता महतारी ।। मानस २–१४४–५.

अत्यधिक भाव-निमग्नता के कारण सुनायी और दिखायी न पड़ने वाली स्थिति भक्ति के क्षेत्र में भी दृष्टिगोचर होती है। सुतीक्ष्ण राम की भक्ति में विह्वल होकर कैसे हत ज्ञान हो गये हैं—

दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा।
को मैं चलेउ कहाँ नहिं बूझा ।।
कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई।
कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई ।। मानस ३–६–११, १२

इसी प्रकार की स्थिति शृङ्गार के क्षेत्र में भी मिलेगी। रति-भाव की व्यंजना में बड़े-बड़े धुरंधर-कवि भी अश्लीलता नामक दोष से सर्वथा मुक्त नहीं हो पाते, किंतु तुलसीदास जी ने संयम एवं शुचिता का ध्यान रखते हुए भी सीता के प्रेम की विह्वलता कम से कम शब्दों में चित्रित कर दी है। वे एक-टक होकर राम के रूप का नेत्रों द्वारा पान कर रही है। शरद्-ऋतु के पूर्ण-चंद्र से जिस प्रकार चकोरी अभिभूत हो जाती है, उसे अपने तन, बदन की सुधि नहीं रहती, उसी प्रकार राम की उपस्थिति में उनके प्रति उग्र-प्रेम भाव के कारण वे बाह्य-ज्ञान हीन हो गयी हैं। लज्जाशीला छुई-मुई रहने वाली सीता लोक-लाज एवं सखियों की उपस्थिति भूल कर जो 'भोरी' देह हो गयी हैं, वह 'अधिक स्नेह' के कारण ही।

---

१ (१) भूमे गड़ागड़ि जाय कौशल्या तापिनी।-कृत्ति० अयो०, ११६।
(२) गड़ागड़ि दशरथ जान भूमितले।-कृत्ति० अयो०, ११२।
(३) भूमे गड़ागड़ि जान हइया विकल।-(राम) कृत्ति० लंका० ४४१।
शोक की स्थिति में कृत्तिवासी-रामायण के अधिकांश पात्र गड़ागड़ि (लोट-पोट) करते दिखाये गये हैं।

अधिक सनेहं देह भै भोरी।
सरद ससिहि जनु चितव चकोरी ।। मानस १–२३१–६

जो व्यक्ति जितना अधिक शील-संपन्न होता है उसे भाव-संघर्ष का उतना ही अधिक सामना करना पड़ता है। साधारण-जन तो मन में उठे हुए भावों के अनुसार ही कार्य करने लगते हैं, किंतु शील-युक्त व्यक्ति को भावना और कर्तव्य के बीच संघर्ष का अनुभव करना पड़ता है। तुलसी के चरित्रों में भाव-संघर्ष अधिक है।

मानस के दशरथ को किसी भी रामायण के दशरथ से कम वेदना नहीं हुई। वे रात भर परकटे पक्षी के समान छटपटाते रहे। वे नहीं चाहते कि राम वन जायँ किंतु सत्यसंध दशरथ यह भी कैसे कहें कि न जायँ। बस, यही मनाते हैं कि भोर ही न हो। राम के आने पर वे उन्हें बार-बार छाती से लगाते हैं, कितनी बेचैनी है पर कहते कुछ नहीं, केवल ब्रह्म को मनाते रहते हैं कि कुछ ऐसा हो जाय कि राम बन को न जायँ।[1]

कृत्तिवास केवल शोक का वर्णन बड़ी तन्मयता के साथ करते हैं। उनके पात्रों के मन में संघर्ष नहीं रहता। वे जैसा अनुभव करते हैं, सहज मानव की भाँति उसी की अभिव्यक्ति करने लग जाते हैं। राम-विरह से पीड़ित दशरथ का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। राम का रथ चल पड़ा है। राजा नंगे पांव पागलों के समान रथ के पीछे दौड़ पड़े। राम से पिता की यह स्थिति न देखी गयी, उन्होंने जोर से रथ चलाने की आज्ञा दी।। राजा दौड़े, रथ न पकड़ सके, मूच्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

कांटा खोंचा भाङ्गि, राजा ऊर्द्ध श्वासे धान।
श्रीराम लक्ष्मण सीता कत दूरे जान।।
कत दूरे गिया रथ हइल अदर्शन।
भूमि ते पड़ेन राजा हये अचेतन ।। पृ० १११, अयो०, कृत्ति०।

कृत्तिवासी-रामायण में राम को भाव-संघर्ष का सामना करना पड़ा है। रावण-वध के उपरांत सीता से प्रथम-भेंट के समय राम लोक लाज के भय के कारण सीता को निष्ठुर वचन तो कह जाते हैं किन्तु उनकी आँखों से जलधारा प्रवाहित हो रही है।[2] वे मन ही मन कातर हो रहे हैं। लोक-लाज के कारण ही वे लक्ष्मण को चिता प्रस्तुत करने के लिए आज्ञा देते समय कहते हैं, सीता आग में जल मरे। लज्जा दूर हो।[3] किंतु सीता के अग्नि-प्रवेश करते ही राम की आँखों से आँसुओं की झड़ी लग

---

१ राम राम रट विकल भुआलू। जनु बिनु पंख बिहंग बेहालू।।
हृदयं मनाव भोरू जनि होई। रामहि जाइ कहै जनि कोई ।। २. ३६. १–२
सोक बिबस कछु कहै न पारा। हृदयं लगावत बारहिं बारा।।
बिधिहि मनाव राउ मन माहीं। जेहिं रघुनाथ न कानन जाहीं ।। २. ४३. ५, ६

२ वहिछे चक्षेर जल श्रीराम कातर।
सीतारे बलेन किछु निष्ठुर उत्तर। कृत्ति० लंका०–पृ० ४४०

३ दूअग्नि ते पुडुक सीता, रे जाक लाज। कृत्ति० लंका०–पृ० ४४१

गयी। इतने अधिक शोक-विह्वल हो गये कि मानस के सुमंत्र से भी बढ़ कर स्थिति हो गयी। वे पागलों जैसे हो गये, उन्हें संसार में कुछ दिखायी ही नहीं पड़ रहा है; वे धूल में लोट-पोट होने लगते हैं।[1]

कृत्तिवासी-रामायण में शृङ्गार के संयोगपक्ष का वर्णन कम है, किंतु वियोग-पक्ष का चित्रण सुन्दर है। सीता के चरित्र-चित्रण में इसका वर्णन हो चुका है। तुलसीदास ने भी यत्र-तत्र राम और सीता के वियोग-दुःख का वर्णन किया है, परन्तु राम के ब्रह्म तथा सीता के माया-सीता होने के कारण उनके विरह-वर्णन में कृत्तिवास जैसी गंभीर-व्यंजना नहीं है। दूसरी ओर तुलसी का संयोग-पक्ष बहुत सुन्दर है। सीता और राम का पूर्व-राग बड़ी सुन्दरता से चित्रित हुआ है। सीता की क्रिया-चातुरी,[2] जड़ता सात्विक-भाव,[3] मार्ग में पवित्र दाम्पत्य-भाव आदि का चित्रण तुलसी ने कुशलता के साथ किया है। सीता को श्रांत समझ कर राम पेड़ों के नीचे देर तक रुक-रुक कर चलते हैं।[4]

प्रस्तुत निबंध के कई स्थलों (अध्याय ५, ६ और ७) पर रति, शोक और भक्ति भावों का चित्रण प्रकारांतर से हो चुका है। यहाँ रसों के अन्तर्गत इन पर पुनः विचार करने पर पुनरुक्ति होने के भय से अधिक वर्णन न हो सकेगा।

तुलसी की अपेक्षा कृत्तिवास की रामायण में हास्य अधिक है। तुलसी के हास्य में शिष्टता अधिक है। कृत्तिवास के भी हास्य में फूहड़पन अथवा अश्लीलता नहीं है, किन्तु विदूषकता है। कृत्तिवास ने तरुणी-वेश्याओं द्वारा ऋष्य-शृङ्ग को बुद्धू बनाने में हास्य की सृष्टि की है। उनके हनुमान के चरित्र में मसखरापन है; कहीं हनुमान स्वयं मसखरापन करते हैं, तो कहीं वानर-सुलभ मनोवृत्ति के कारण हास्यास्पद क्रियाएँ करने लगते हैं। रावण-वध का समाचार सुन कर सीता सोच रही हैं हनुमान को क्या दें। हनुमान माँगते हैं—जिन राक्षसियों ने आपको तंग किया, इनके दाँत और बाल उखाड़ लेने दो, फिर इन्हें समुद्र के किनारे ले जाकर इनका मुँह बालू में घिसूँगा।[5]

---

१ कुण्ड मध्ये चान राम सीतारे ना देखि।
श्रीरामेर झुरिते लागिल दुटि आँखि॥
देखेन संसार शून्य जेमन पागल।
भूमे गड़ागड़ि जान हइया विकल॥ कृत्ति० लंका०, पृ०—४४१

२ देखन मिस मृग विहग तरु फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़इ प्रीति न थोरि॥ मानस १ २३४—

३ निज पानि मनि महुँ देखि अति सुरति सुरूप निधान की।
चालति न भुज बल्ली बिलोकनि बिरह भय बस जानकी॥

४ जानी श्रमित सीय मन माहीं। घरिक बिलंबु कीन्ह बट छाहीं। (२—११५—३ मानस)

५ दन्त उपाड़िया चुल छिंड़ि गोछे-गोछे।
आछड़िया प्राण लव बड़-बड़ गाछे॥
समुद्रेर तीरे आछे बालि खरशाण।
ताते मुख घयाड़िया लइव पराण॥ कृत्ति० लंका०, पृ० ४३७

नैषधीय-चरित में नल के साथी बराती लोग भोजन परोसने वाली सुन्दरियों के साथ अनेक प्रकार के अश्लील परिहास करते हैं। अन्त में उन्हें भी एक ऐसा पदार्थ परोस दिया जाता है जिसके खाते ही उनकी स्थिति दयनीय किन्तु मजेदार हो जाती है।[1] कृत्तिवास ने भी विभीषण द्वारा बानरों के साथ परिहास कराते समय झाललाड़ू खिलाया है, जिसे खाते ही बंदर घबड़ा कर थू-थू करने लगे।[2] कृत्तिवास का यह झाललाड़ू नैषधीय-चरित का ही पदार्थ-विशेष था।

नारद की कामासक्ति की विकल-अभिव्यक्ति[3] एवं 'शिवजी की बरात' के वर्णन द्वारा तुलसी ने भी हास्य की सृष्टि की है।

दोनों लेखकों ने संवादों द्वारा भी हास्य-सृष्टि की है। चौपाई जैसे छोटे छंद में उत्तर-प्रत्युत्तर द्वारा तुलसी ने कहीं-कहीं सुन्दर हास्य प्रस्तुत किया है। परशुराम-लक्ष्मण संवाद में लक्ष्मण का चापल्य अवश्य है, किन्तु आज भी जनता सूर्योदय हो जाने तक रामलीला में लक्ष्मण की उक्तियाँ सुन-सुन कर प्रसन्न होती रहती है।

कृत्तिवास के अंगद-रावण-संवाद में भी सुन्दर हास्य-उक्तियाँ हैं। रावण अंगद के सामने अनेक शर्तें रखता है। अंगद बड़ी गंभीरता के साथ स्वीकार करते जाते हैं कि राम अधीनता स्वीकार कर लेंगे, सेतु-भंग कर दिया जायगा लंकादाहक-हनुमान और विभीषण को भी रावण के हवाले कर दिया जायगा, सब कुछ हो जायगा, किन्तु एक ऐसी क्षति हो गयी है जो पूरी नहीं हो सकती—शूर्पणखा के कटे हुए नाक-कान कैसे[4] जुड़ेंगे ?

मानस में वात्सल्य-रस के संयोग और वियोग दोनों पक्षों के सुन्दर चित्रण हैं। कृत्तिवास में वात्सल्य के वियोग-पक्ष का चित्रण तो है किन्तु संयोग का नहीं। शिशु राम-लक्ष्मण के मृगया खेल कर देर से लौटने पर माताओं की स्थिति उस बाघिनी के समान हो जाती है, जिसका बच्चा खो गया हो। जब राम मिल जाते हैं तो उन्हें गोद में लेकर मुख पर लाखों चुम्बन जड़ दिये जाते हैं।

कौशल्या सुमित्रा आर कैकेयी कामिनी।
डम्बुर हाराये जेन फुकारे बाघिनी॥ आदि०, पृ० ६३

...   .

कौशल्या धाइया गिया रामे कैल कोले।

---

१ नैषधीय चरित-श्रीहर्ष–१६।७३, ७४,

२ झाल लाड़ू खाइते चबेते पड़े लोह।
बाप मा मरिले जेन पाइलेक मोह॥
गला आंचड़ाय केह केह करे थो थो।
बुड़ा बुड़ा करि बले हाथ बाड़िये थो॥ कृत्ति० लंका०, पृ० ४४६

३ पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। मा० १–१३४–२

४ सूर्पणखार नाक कान केमने जाबे जोड़ा। कृत्ति० लंका०, पृ० २७६

एक लक्ष चुम्ब दिल वदन कमले ।। कृत्ति० आदि०, पृ० ६३

तुलसी ने वत्सला कौशल्यादि माताओं का प्रेम प्रकट करने के लिए गाय की उपमा दी है। बछड़े के जन्म के पश्चात् गाय उसी के आस-पास मँडराती रहती है, किसान उसे बलात् हांक कर वन की ओर ले जाता है तो वह इधर-उधर दौड़ कर फिर वापस आने की चेष्टा करती है, किंतु परवश होने के कारण जाना ही पड़ता है। संध्याकाल जब वह लौटती है, उस समय स्तनों में दुग्ध और हृदय में प्रेम उमड़ सा पड़ता है। वह रँभाती हुई और दूध बहाती हुई घर की ओर दौड़ पड़ती है। चौदह वर्ष के उपरांत राम को देख कर ठीक इसी प्रकार माताएँ दौड़ पड़ीं—

कौशल्यादि मातु सब धाई।
निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई ।। ७–५–६
जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृहं चरन वन परबस गईं।
दिन अंत पुर रुख स्रवत थन हुँकार करि धावत भईं ।। ७-५-६ छंद

कृत्तिवास ने विश्वामित्र का चरित्र छोटा अवश्य किया है, किंतु भयानक रस के विभाव-पक्ष का सुन्दर वर्णन है। नर-मुंड एवं विप्र-चर्म-धारिणी-ताम्रवर्णा एवं लोमावली-युक्ता ताड़का को देख कर मुनि डर गये, तथा युद्ध-रव सुन कर अचेत हो गये, मरी हुई ताड़का को देख कर भय से कांप रहे हैं।[1]

मानस में लंका-वासियों पर ऐसा आतंक छाया है कि जब अंगद दूत बन कर जाता है तो सब डर कर बिना पूछे रास्ता बताने लगते हैं। अंगद जिसकी ओर दृष्टि उठा कर देखता है, उसी की दम निकल जाती है,—

भयउ कोलाहल नगर मझारी।
आवा कपि लंका जेहि जारी ।।
बिनु पूछें मगु देहिं दिखाई।
जेहि बिलोकि सोई जाइ सुखाई ।। ६-१७-८- १०.

लक्ष्मण के चरित्र के रूप में दोनों ने रौद्र-रस का अच्छा चित्रण किया है। विह्वल-भक्ति की प्रधानता होने के कारण कृत्तिवासी-रामायण में वीर-रस का वर्णन तुलसी के वीर-रस-चित्रण से बहुत हलका है। दोनों ने अद्‌भुत एवं वीभत्स रसों का भी चित्रण किया है। कृत्तिवास के पात्रों में निर्वेद न होने कारण शांत-रस का चित्रण नहीं हुआ है, वहाँ तुलसी के राम की 'प्रसन्नतांया न गताभिषेकतः' जैसी स्थिति नहीं है।

(३) प्रकृति-सौन्दर्य

प्राचीन-काल में वन-कांतार प्रदेशों का प्राचुर्य था। जनावास सघन नहीं था। मानव प्रकृति की उन्मुक्त-क्रोड़ का सुख ले सकता था। ऋषियों की तपोभूमि सघन-वनों में

१ कृत्ति० आदि०, पृ० ६३-७४

होती थी, जहाँ हिंस्र-पशु भी गो-सदृश्य सौम्य बन जाते थे। अनेक वनस्पतियों एवं नाना-प्रकार के जीव-जन्तुओं से जनता का परिचय रहता था। आयुर्वेद के ग्रंथों में वर्णित विभिन्न वनस्पतियों के रूप, रंग, गुण आदि के विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि हमारे पूर्वजों का प्रकृति-निरीक्षण कितना सूक्ष्म था। केवल वैदिक-ऋषि ही उषा, सूर्य, मरुत् आदि प्रकृति के नाना-रूपों से अभिभूत रहे हों सो बात नहीं है, बिजली की कड़क एवं चमक शोभित गरजते-मेघ, मयूरों का नृत्य, पपीहे की पुकार, शरद का स्वच्छ-हास, बसंत का विकास एवं धरा का पुष्प-संभार प्रभृति प्रकृति-व्यापार आदि-रामायणकार से लेकर मध्यकाल तक के संस्कृत-कवियों को चकित, छकित, प्रमुदित एवं प्रेरित करते आये हैं।

हिन्दी के भक्ति-साहित्य पर पुराणों एवं वैष्णवाचार्यों के सिद्धान्तों का प्रभाव अधिक है, अतएव जहाँ उन्होंने एक ओर शंकर के मत के अनुसार जड़-जगत को मिथ्या न मान कर भगवान् की लीलाभूमि माना और उसकी उपेक्षा नहीं की, वहाँ दूसरी ओर अपने आराध्य से संबंध-छिन्न जगत का स्वतंत्र वर्णन नहीं किया। संस्कृत-महाकाव्यों का विशद् एवं गरिमामय प्रकृति-चित्रण हिन्दी के ग्रंथों में उपलब्ध न होगा। हिन्दी-काव्य में आलंबन-रूप में प्रकृति का चित्रण न करते हुए भी अलंकरण के पारम्परिक रूप में प्रकृति का वर्णन अवश्य हुआ। समस्त-भारत के काव्यों में ही कमल, चन्द्र, भ्रमर, अहि, दाड़िम, बिंब, कपोत, सिंह, कदली आदि का उपयोग विभिन्न शारीरिक-अवयवों के लिए हुआ है।

हमारे भाषा-रामायणकारों के समय तक भारत के भूगोल में बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया था। वन-प्रदेशों का अभाव न था, किंतु संस्कृत-काव्यों में वर्णित प्रकृति का रूप धीरे-धीरे परिवर्त्तित हो रहा था।

षट-ऋतु-वर्णन—महाकाव्यों में बारहमासा एवं षट्-ऋतु वर्णन की प्रथा रही है। तुलसी के पूर्ववर्त्ती कवि जायसी ने विस्तृत बारह-मासा लिखा है। कृत्तिवास ने भी षट्-ऋतु-वर्णन किया है। उत्तरकांड में राम-सीता प्रेम-पूर्वक ऋतु-विहार करते हैं—

> बछर हाजार सात राम सीता सङ्गे।
> षड ऋतु वञ्चन करेन नाना रङ्गे॥ कृत्ति० उत्तर०, पृ० ५२१

उनका यह वर्णन लगभग ३५ पंक्तियों का है एवं संक्षिप्त है। उसमें कोई विशेषता नहीं है। इसके अतिरिक्त विभिन्न-स्थलों पर वर्षा, शरद ऋतुओं का पृथक वर्णन हुआ है, यह भी संक्षिप्त और सामान्य है।

> वर्षा— आवर्त सम्वर्त द्रोण आर जे पुष्कर।
> चारि मेघे वृष्टि करे पृथिवी उपर॥
> नद नदी सरोवर पूर्ण हैल जल।[1]
> अनावृष्टि घुचिल वृक्ष ते हैल फल॥

१ आवर्त, संवर्त, द्रोण और पुष्कर नामक चार मेघ पृथ्वी पर वृष्टि कर रहे हैं। नद, नदी, सरोवर जल से पूर्ण हो गये। अना-वृष्टि दूर हुई और वृक्षों में फल लग गये। कृत्ति० आदि०, पृ० ४०।

शरद— भेकेर निनाद गेल मेघेर गर्ज्जन ।
निर्मल चन्द्रमा तारा प्रकाशे गगन ।।[1]

तुलसीदास ने अलग से षट्-ऋतु-वर्णन नहीं किया। प्रसंग आने पर उन्होंने भी वर्षा, शरद एवं वसंत का वर्णन किया है। शंकर और नारद की तपस्या भंग करते समय कामदेव बसंत की सृष्टि करता है, तथा राम और लक्ष्मण के संवाद के रूप में किष्किंधा-कांड में वर्षा और शरद का वर्णन हुआ है। श्री मद्भागवत से प्रेरणा लेने के कारण तुलसी के वर्षा और शरद् वर्णन में उपदेशात्मकता आ गयी है। अर्धाली के एक चरण में प्रकृति का सुन्दर निरीक्षण रहता है एवं द्वितीय में कोई चुभती हुई[2] सूक्ति : दोनों का ही महत्व है। उनकी सूक्तियाँ शिक्षित एवं अशिक्षित दोनों को मुखस्थ हैं। यदि इन सूक्तियों की ओर ध्यान न भी दिया जाय एवं अर्धालियों के एक-एक चरण पर ही विचार किया जाय, तो तुलसी का ऋतु-वर्णन कृत्तिवास की अपेक्षा अधिक चित्रात्मक है तथा विस्तृत भी सिद्ध होगा।

अलंकरण के लिए प्रकृति चित्रण—कृत्तिवास ने अलंकार-स्वरूप प्रकृति का जो चित्रण किया है वह भी स्वल्प है। अवयवों के उपमान-स्वरूप चंद्र, कमल, विद्युत, बिंबफल, तिलफूल, कोकिल, केतकी-फूल[3] आदि का वर्णन कृत्तिवास ने किया है। तुलसीदास जी ने इनमें से अधिकांश का वर्णन करते हुए इससे भी विस्तृत वर्णन किया है। एक स्थान पर ही उन्होंने सीता के अंगों के लिए जितने उपमान जुटा दिये हैं उतने समस्त कृत्तिवासी-रामायण में न मिलेंगे।[4]

---

१ मेंढक का निनाद और मेघ का गर्जन समाप्त हो गया।
निर्मल चन्द्रमा और तारा आकाश में प्रकाशित हो गये।
कृत्ति० किष्किं०, पृ० १८२।

२ दामिनि दमक रह न घन माहीं। खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं ।।
बरषहिं जलद भूमि निअराएं। जथा नवहिं बुध विद्या पाएं ।।
बूंद अघात सहहिं गिरि कैसें। खल के बचन संत सह जैसें ।। ४. १३ १-४

३ (अ) सुधांशु जिनिया मुख करे झलमल। ५७
(ब) मिष्ट अन्न जल दिल वदन-कमले। ६०
(स) उङा-उङा करि कांदे जेन सौदामिनी। ५५
(द) पाका बिम्बफल तुल्य तांर ओष्ठाधर। ५५
(य) तिल फूल जिनि तांर नासिका उज्ज्वल। ६३
(र) कामिनीर मुखे गीत कोकिलेर ध्वनि। ४७
(ल) केतकी कुसुम जेन फुटे भाद्र मासे। –कृत्ति०, आदि० कांड, पृ० ६० ।

४ खंजन सुक कपोत मृग मीना : मधुप निकर कोकिला प्रवीना ।।
कुंद कली दाड़िम दामिनी। कमल शरद ससि अहि भामिनी ।।
बरुन पास मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा ।।
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं ।। ३, २६, १०-१३

तुलसी ने सादृश्य-मूलक अलंकारों के उपमान-स्वरूप प्रकृति के उपकरणों का वर्णन किया है। ऐसे स्थलों पर प्रकृति का स्वाभाविक सौंदर्य नेत्रों के समक्ष न आकर नारी, संत, भक्ति आदि के स्वभाव एवं विशेषताओं की कल्पना ही जाग्रत होती है। इन स्थलों में काव्य सौंदर्य न होकर तुलसी का पांडित्य दृष्टिगोचर होता है। कृत्तिवास ने तो कहीं भी पांडित्य प्रदर्शित नहीं किया है।

उद्दीपन—शृङ्गार-रसांतर्गत संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों के उद्दीपन के लिए प्रकृति का चित्रण तुलसी ने किया है। नारद को तप-भ्रष्ट करने के लिए काम ने प्रकृति में जो नवीन परिवर्त्तन उपस्थित कर दिया था, वह रतिभाव उद्दीप्त करने वाला था।

कुसुमित बिबिध बिटप बहुरंगा।
कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा॥
चली सुहावनि त्रिबिधि बयारी।
काम कृसानु बढ़ावनि हारी॥ मा० १-१२५-३, ४

सीता के वियोग में दुःखी राम को नभ में गरजते हुए बादल प्रिया की स्मृति दिला कर दुःखित कर देते है। सीता को भी राम के वियोग में प्रकृति दुःखदायिनी प्रतीत होती है। यहाँ भी पारंपरिक वर्णन है।

कहेउ राम वियोग तब सीता।
मो कहुँ सकल भए विपरीता॥
नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू।
काल निसा सम निस ससि भानू॥
कुबलय विपिन कुंत बन सरिसा।
बारिद तपत तेल जनु बरिसा॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा।
उरग स्वास सम त्रिविध समीरा॥ ५. १४. १-४

वियोग में संयोग-कालीन सुखदायी प्रकृति का दुःखदायी रूप में बदल जाने का वर्णन कृत्तिवास ने भी किया है। सीता से मिलने के समय राम कहते हैं—

सुधाकर ज्ञान करिताम दिवाकर।
ताप भये ताहार ना हताम गोचर॥
भ्रमर झङ्कार आर कोकिलेर ध्वनि।
शुनिले हइत ज्ञान दंशे जेन फणी॥[1] पृ० ४४१, लंकाकांड

सहानुभूति-दर्शन—काव्य के प्रमुख पात्रों के सुख-दुःख में समरस होने वाली प्रकृति का वर्णन अनेक कवियों ने ही किया है। सूफी-कवि जायसी ने समस्त प्रकृति को

१ मैं चन्द्रमा को सूर्य समझता था और उसके ताप के भय से सामने नहीं आता था। भ्रमर की झङ्कार और कोकिल की ध्वनि सुनने पर ऐसा लगता था मानों सर्प दर्शन कर रहा हो।

विरह-दुःख से पीड़ित दिखाया है। परन्तु तुलसी का वर्णन अन्य प्रकार का है। समस्त जग को सिया-राम मय मानने वाले गोस्वामी जी को आभासित होता है कि राम की उपस्थिति एवं उनके संस्पर्श से प्रकृति का कण-कण सप्राण एवं संवेदनशील हो उठता है।

१—जब तें आइ रहे रघुनायकु।
तवतें भयउ बनु मंगलदायकु॥
फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना।
मंजु बलित बर बेलि बिताना॥ २–१३६. ५–६

२—अवधपुरी प्रभु आवत जानी।
भई सकल सोभा कै खानी॥
वहइ सुहावन त्रिविध समीरा।
भइ सरजू अति निर्मल नीरा॥ ७.२.९,१०

सुकुमार राम को धूप के कष्ट से बचाने के लिए मेघ छाया करते फिरते हैं।[1]

राम के प्रिय होने के कारण भरत के प्रति प्रकृति उनसे भी अधिक सहानुभूति प्रकट करती है। भरत के कोमल-पदों का स्पर्श पाकर पृथ्वी अपनी कठोरता का स्मरण कर सकुच जाती है और भरत को सुख देने के लिए मृदुता धारण कर लेती है। कुश, कंटक, कंकड़ आदि कठोर अप्रिय-वस्तुओं को वह छिपाने लग जाती है। बादल छाया करते हैं; वृक्ष, तृण, मृग, खग आदि भी उनकी सेवा के लिए तत्पर हैं।[2]

राम एवं राम-परिवार के साथ सहानुभूति होने के कारण पशु-पक्षी भोजन करना छोड़ देते है।[3] सीता-हरण के समय भी उनके दुःख से चराचर जीव दुःखी दिखाये गये हैं।[4]

कृत्तिवासी-रामायण में भी प्रकृति यत्र-तत्र मानव के साथ सहानुभूति रखती दिखायी गयी है। कमल-नयन राम को रोता देख सभी वन्य पशु-पक्षी रो उठते हैं।[5]

---

१ जहं जहं जाहिं देव रघुराया।
करहिं मेघ तहं तहं नभ छाया॥ मा० ३,५,६

२ कोमल चरन चलत बिनु पनहीं। भइ मृदु भूमि सकुचि मन मनहीं॥
कुस कंटक कांकरी कुराई। कटुक कठोर कुबस्तु दुराई॥
सुमन बरषि सुर घन करि छाहीं। बिटप फूलि फलि तृन मृदुताहीं।
मृग बिलोकि खग बोलि सुबानी। सेवहिं सकल राम प्रिय जानी॥ २–३१०–४,५,७,८

३ पशु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारू। प्रिय परिजन कर कौन बिचारू।। २,२७६,८

४ सीता कै विलाप सुन भारी। भए चराचर जीव दुखारी॥ ३,२८,६,

५ कान्दिया विकल राम जले भासे आंखि।
रामेर क्रन्दने कान्दे वन्य पशु पाखी॥
(अरण्य०, कृत्तिवासी-रामायण, पृ० १५८)
बं० रा० ३८

आलंबन स्वरूप चित्रण—समस्त रामकथा पर भक्ति का प्रभाव अधिक है। केवल काव्य की दृष्टि से ग्रंथों का प्रणयन नहीं हुआ था, जिसके कारण अलग से प्राकृतिक-वर्णन भी नहीं किये गये। कृत्तिवास ने कहीं-कहीं दो एक पंक्ति में प्रकृति के आलंबन-रूप का भी वर्णन किया है—

मन्द-मन्द गन्धवह बहे सुललित ।
कोकिल पञ्चम स्वरे गाय कुहु गीत ।।
मधुकर मधुकरी भङ्कारे कानने ।
अप्सरारा नृत्य करे आनन्दित मने ।। कृत्ति० अयो०, पृ० १२८

तुलसीदास ने कृत्तिवास के समान ही यत्र-तत्र कुछ पंक्तियों में प्रकृति के इस रूप का चित्रण किया है फिर भी उनका वर्णन कृत्तिवास की अपेक्षा अधिक हुआ है—

झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं ।
मनहु निसान बिबिध बिधि बाजहिं ।।
चक चकोर चातक सुक पिक गन ।
कूजत मंजु मराल मुदित मन ।।
अलिगन गावत नाचत मोरा ।
जनु सुराज मंगल चहु ओरा ।।
बेलि बिटप तृन सफल सफूला ।
सब समाजु मुँद मंगल मूला ।।

(४) सौंदर्य-भावना

संस्कृत और हिन्दी के कवियों ने अपनी नायिकाओं के नख-सिख का निस्संकोच वर्णन किया है। संस्कृत के कवि बड़े रसिक रहे हैं। वाल्मीकि-रामायण के रचना-काल में शारीरिक-सौन्दर्य की चर्चा निंद्य नहीं मानी गयी थी। मध्यकाल के संस्कृत-कवियों ने भी सीता के कामोद्दीपक-रूप के वर्णन में आगा-पीछा नहीं किया है, यद्यपि इस काल तक सीता का लक्ष्मीत्व प्रचार पा चुका था। आनन्द-रामायण[1] एवं हनुमन्नाटक[2] में सीता के रूप एवं उनकी कामकेलियों का जैसा वर्णन हुआ है उसे हम अश्लीलतासे रहित नहीं कह सकते।

इन्हें जाने दीजिए, मर्यादावादी तुलसीदास जी ने अध्यात्म-रामायण का अनुसरण किया है। अध्यात्म-रामायण जैसे अध्यात्म-प्रधान ग्रंथ में भी वस्त्र के भीतर झलकते स्तनों

---

१ हेम कुंभ समानौ द्वौ कुचौ पीनौ शुभौ। वि० कां० २-५४, आनंद०
ततो विहस्य श्रीरामस्तामालिंग्य पुनः पुनः।
कराभ्यां तत्स्तनौ स्पृष्ट्वा पपौ बिंबाधरामृतं ।। राज्यकांड ५.६७, आ०

२ हनुमन्नाटक—२—१०

वाली सीता (वस्त्रान्तर्व्यञ्जितस्तनी) का वर्णन है, जो राम के गले में जयमाला डालते समय मुसका रही है।[1]

कृत्तिवास एवं तुलसी के पूर्ववर्त्ती कवियों ने साधारण नायक-नायिका अथवा राधाकृष्ण को काव्य का माध्यम बना कर कामोद्दीपक-रूप का वर्णन किया है। बंगाल में रति को ही सुख का सार मानने वाले तथा नितम्बिनि-गोपिकाओं का चित्रण करने वाले जयदेव के गीतों का प्रचार था। वयःसन्धि-प्राप्त अल्हड़ नवयौवनाओं के कुचाग्रों एवं प्रमदाओं की केलि-क्रीड़ाओं में रुचि रखने वाले विद्यापति से भी बंगाल परिचित था। रामा धोबिन के अनन्य-प्रेमिक चंडीदास के गीतों का प्रचार तो बंगाल में आज भी है। इसी प्रकार तुलसी के पूर्ववर्त्ती जायसी का सूफी-ग्रंथ 'पद्मावत' अपने नखशिख-चित्र एवं रत्नसेन-पद्मावती-भेंट प्रसंग के लिए प्रख्यात था। सूरदास के कृष्ण भी राधा के साथ लपक-झपट कर रहे थे। विद्वानों की धारणा है कि तुलसी के पूर्व भी रामायणें विद्यमान थीं। स्वयंभु नामक कवि की अपभ्रंश-रामायण का पता चला है, उसमें भी सीता का वर्णन करते समय कृश-कटि, पीन-स्तन एवं सुविस्तर नितंबों का वर्णन है—

किस मज्झारे णियंबे सुवित्थर।
अहिणव हुड्ड पिंड पीणत्थण ॥ पृ० ४८ (हिन्दी-काव्य-धारा)

मर्यादावादी-दृष्टिकोण होने के कारण हमारे भाषा-रामायणकारों ने परंपरागत कामोत्तेजक रूप का वर्णन नहीं किया। सीता के सम्बन्ध में उन्होंने स्तन, जंघा, कटि आदि का वर्णन तो किया नहीं, साथ ही अन्य नारियों का भी उन्होंने पूत-वर्णन ही किया है।

कालिदास वर्णित श्रोणीभार से अलस एवं स्तन-भार से विनत[2] नारी-सौन्दर्य का रस न पा सकने के कारण कुछ आलोचक कभी-कभी दबी जुबान से तुलसी की निन्दा कर जाते हैं। लेखकों पर परिस्थितियों का प्रभाव सर्व-मान्य है। कृत्तिवास एवं तुलसीदास के काल में नारियाँ समाज के सामने अंग-प्रत्यंग छिपा कर आती थीं। आज भी गाँवों में देवी-पूजन आदि के समय हमारी ग्रामीण-महिलायें वर्ण-वर्ण के चीर पहिन कर कंकण, किंकिणी और नूपुरों की रुनझुन के साथ गाती हुई निकल जाती हैं। वस्त्रों के रंग, सुगंध और अलंकारों की क्वणन-ध्वनि का अनुभव-मात्र होता है, शारीरिक-सौंदर्य के

१ दुकूलपरिसंवीता वस्त्रान्तर्व्यञ्जितस्तनी ॥ १,६,३०
रामस्योपरि निक्षिप्य स्मयमानामुदं ययौ ॥ १-६-३१ अध्यात्म० रामा०

२ तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी,
मध्ये क्षामा चकित हरिणी प्रेक्षणा निम्न नाभिः।
श्रोणी भारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां,
या तत्र स्याद्युवति विषये सृष्टिराद्येव धातुः ॥ उ० मे०, १९

(देह की छरहरी, उठते हुए यौवन वाली, नुकीले दाँतों वाली, पके कुंदरू से अधर वाली, कटि की क्षीण, चकित हिरनी की चितवन वाली, गहरी नाभि वाली, श्रोणी भार से चलने में अलसाती हुई, स्तनों के भार से कुछ झुकी हुई—ऐसी मेरी पत्नी वहाँ अलका की युवतियों में मानो ब्रह्मा की पहली-कृति है।)

दर्शन कहाँ होते। जब समाज में नारी अवगुंठिता और वस्त्रावृत्ता हो गयी तो साहित्य में भी वही हुआ। तुलसीदास ने जहाँ कहीं भी नारी-समूह[१] का चित्रण किया उन्होंने दो एक अलंकार, वस्त्र, गज-गति, कोकिल-कंठ आदि के सम्बन्ध में दो एक बातें कह दी हैं। कृत्तिवास की सीता भी पाट (रेशम) के पाछुड़ा[२] (उत्तरीय) से अपने को पूरी तरह ढक कर आती हैं। प्राचीन-काल की बात जाने दीजिए, मध्यकाल के संस्कृत-साहित्य की बात भी जाने दीजिये क्योंकि उसमें भी प्राचीन-काल की अर्ध-अनावृता नारी का परंपरानुगत चित्रण किया गया है। प्राचीन-काल में पुरुष-दृष्टि नारी के जिस रूप को सहज स्वीकार कर लेती थी वह मध्यकाल एवं आधुनिक काल में सह्य न हो सका। साधारण समाज में कुलीन नारी के सौंदर्य का मानदंड क्या था, लक्ष्मीधर की इस कविता से स्पष्ट हो जायगा—

शिरो यदवगुण्ठितं सहज रूढ लज्जानतं।
गतं च परिमन्थरं चरण कोटि लग्ने दृशौ।।
वच: परिमितं च यन्मधुर मन्द मन्दाक्षरं।
निजं तदियमङ्गना वदति नूनमुच्चैः कुलम्।।[३]

दोनों ही भाषा-कवियों ने ऐसी ही कुलीन-अङ्गना का वर्णन किया है, परम्परानुमोदित प्रमदाओं का नहीं। नारी-रूप-वर्णन के दृष्टिकोण में यही समानता है। रसिक-कवियों की दृष्टि नारी के जिन अंगों पर अधिक आबद्ध रही उन्हें छोड़ कर शेष का वर्णन दोनों ने किया है। दोनों ने मृगनयन, ललित-बाहु, चंद्रमुख, चरण-कमल, हंस-गति एवं मधुर-वचनों का ही उल्लेख कई बार[४] किया है। कृत्तिवास ने केवल एक स्थान पर

१ बिधु बदनीं सब सब मृगलोचनि। सब निज तन छवि रति मृदुमोचनि॥
पहिरे बरन बरन बर चीरा। सकल बिभूषन सजे सरीरा॥
सकल सुमंगल अंग बनाएं। करहिं गान कलकंठि लजाएं॥
कंकन किंकिनि नूपुर बाजहिं। चालि बिलोकि काम गज लाजहिं॥ (१,३१७,१-४)

२ पाटेर पाछड़ा दिल सकल शरीरे। आदि० कृत्ति०, पृ० ८६

३ प्राचीन बाङ्ला ओ बाङ्गाली, सुकुमार सेन, पृ० ५१ से संगृहीत।

४ कृत्तिवासी रामायण—
हरिणी नयने किवा शोभित कज्जल।
तिलफूल जिनि तांर नासिका उज्ज्वल॥
सुललित दुइ बाहु देखिले सुन्दर।
सुधांशु जिनिया रूप अति मनोहर॥
... ...
अरुण वरण तांर चरण-कमल।
ताहाते नूपुर बाजे शुनिते कोमल॥
राजहंसी भ्रम हय देखिले गमन।
अमृत जिनिया तांर मधुर वचन॥ आदि० कृत्ति० पृ० ६३-६४
बिधु बदनी मृग सावक लोचनि मानस—१-२९५.२
सुन कलरव कलकंठि लजानी। १.२९६-३
चरण कमल मृदु मंजु तुम्हारे। २-६१-६
हंस गवनि तुम नाहिं बन जोगू। २-६२-५

सहस्रार्जुन की जलकेलि निरत-रानियों को राज-नितम्बिनी[1] कहा है। तथा एक अन्य स्थान पर तरुणी निकषा राक्षसी की कटि और जंघाओं की चर्चा की है।[2] केवल एक स्थान पर सीता की क्षीण-कटि का वर्णन है जिसे कि मुष्टि में धारण किया जा सकता है।[3] मानस में सीताहरण के शोक से संतप्त राम के मुख से सीता के नख-शिख की ओर संकेत कराया है जिसमें अवश्य ही श्रीफल, कदलि और केहरि आदि उपमानों द्वारा सीता के स्तन, जंघा एवं कटि आदि अंग प्रत्यंग की ओर संकेत है।[4]

कृत्तिवास की सीता का रूप-वर्णन तत्कालीन कुलीन हिंदू कन्या के अनुरूप है। तुलसी की अपेक्षा उन्होंने नारी के प्रसाधन का अधिक चित्रण किया है। उनकी सीता तथा अन्य-नारियाँ तिल-फूल[5] जैसी नाक वाली हैं वे सदैव काजल, सिंदूर और हिंगुल (एक प्रकार की महावर) से सज्जित होकर ही सम्मुख आती है। कृत्तिवास सीता आदि नारियों की कौलीन्य-रक्षा के लिए तो तत्पर हैं किंतु वे सीता को जगत-जननी बनाने के फेर में नहीं हैं।

तुलसी 'सीता के रूप वर्णन, में पग-पग पर सजग हैं। अध्यात्म-रामायण के अनुसार 'दुकूल परिसंवीतां' के लिए कहा, 'सोह नवल तनु सुन्दर सारी'। किन्तु आगे के शब्द थे—'वस्त्रान्तर्व्यञ्जितस्तनी'।[6] गोस्वामी जी ने चौंक कर झट आगे कह दिया—जगत जननि अतुलित छबि भारी।[7] तुलसी सीता की रूप-राशि का ऐसा पुनीत-वर्णन करना चाहते हैं कि दर्शक मुग्ध होकर मन ही मन प्रणाम कर सकें—

> आवत दीखि बरातिन्ह सीता।
> रूप रासि सब भाँति पुनीता॥
> सबहिं मनहिं मन किए प्रनामा।
> देखि राम भए पूरन कामा॥१—३२२.२,३।

हम ऐसा नहीं कह सकते कि गोस्वामी जी को सौंदर्य-बोध नहीं था। मातृतुल्या जानकी के श्रृंगार-मय रूप का वर्णन वे कैसे करते। उनकी जग-जननी जानकी इतनी

---

१ भये राजनितम्बिनी केह नहे स्थिर-कृत्ति० उत्तर० पृ० ४६१

२ मृगेन्द्र जिनिया कटि, रामरम्भा उरु। कृत्ति० उत्तर० पृ० ४६६

३ मुष्टिते धरिते पारि सीतार कांकालि। आदि०, कृत्ति०, पृ० ६४,

४ बरुन पास मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा॥
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं॥ ३. २६. १२, १३

५ हरिणी नयने किवा शोभित कज्जल।
तिल फूल जिनि तांर नासिका उज्ज्वल॥ पृ० ६३-आदि०
नयने अञ्जन दिल अति सुशोभित।
अङ्गरागे सिन्दूर दिलेक उत्तमाङ्गे। पृ० ४३८, लंका०
मुष्टि ते धरिते पारि सीतार कांकालि।
हिङ्गुले मण्डित तांर पायेर अङ्गुलि॥ पृ० ६४, आदि०, कृत्ति०

६ अध्यात्म-रामायण—१-६-३०, ३१

७ मानस—१-२४७-२ .

अधिक पुनीत सुन्दर हैं कि साधारण नायिकाओं के जूंठे उपमान तुलसी को जँचते ही नहीं। उन्हें सभी उपमाएँ हीन लगती हैं।[१] इसीलिए उन्हें अद्भुत रूपक बाँधने पड़ते हैं। वे सीता को लक्ष्मी के समान कहना चाहते हैं, किंतु खारी समुद्र को कठोर-कच्छप, मंदराचल एवं नागराज की सहायता से मथने के फलस्वरूप साधारण लक्ष्मी का जन्म हुआ था। मंथन करने वाले भी दुर्बल एवं भीत देवता तथा विकट-दर्शन राक्षस थे। यह लक्ष्मी सीता की समता कहाँ कर सकती है। हाँ, यदि सुन्दरता के अमृतसागर को परम-रूप-मय-कच्छप, शोभा के रज्जु एवं शृंगार के मंदराचल से स्वयं कामदेव मंथन करे तो जो लक्ष्मी उत्पन्न हो तो वह भी संकोच के साथ सीता का उपमान कही जायगी—

जौं छबि सुधा पयोनिधि होई।
परम रूप मय कच्छप सोई॥
सोभा रजु मंदरू सिंगारू।
मथै पानि पंकज निज मारू॥ १—२४६.७,८ मा०

एहि बिधि उपजै लच्छि जब, सुन्दरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सीय सम तूल॥ १. २४७ मा०

कृत्तिवास ने भी सीता की अत्यधिक सुकुमारता का वर्णन इस प्रकार किया है। सीता धूप में कातरा होकर चल रही है। हिंगुल से रंजित उनकी श्वेत-पंदागुलियों को देख कर लगता है कहीं नवनीत की पुतलियों के समान पिघल न जायँ।[२] एक स्थान पर कृत्तिवास सुन्दरी स्त्रियों के निर्मल-कोमल अंगों के लिए जूही के फूलों की उपमा देते हैं।[३]

सभीत मृगछौने से चकित नेत्रों वाली, सुन्दरता के भवन में दीप-शिखा के समान देदीप्यमान लावण्यवाली मानस की सीता जिस समय फुलवारी में अपने सौंदर्य से जगमगा उठी, उस समय राम का भी सहज पुनीत मन डोल गया था।[४] कृत्तिवास की सीता के भी प्रत्येक लोभ-कूप से इस प्रकार लावण्य विकीर्ण हो रहा था कि उनके रूप से दसों दिशाएँ भास्वर हो उठीं।[५]

---

१ सिया सोभा नहिं जाइ बखानी। जगदंबिका रूप गुन खानी॥
उपमा सकल मोहि लघु लागीं। प्राकृत नारि अंग अनुरागीं॥ १. '२४६–', १, २
सब उपमा कबि रहे जुठारी। केहिं पटतरौं बिदेह कुमारी १. २२९, ८ मा०।

२ दिवाकर किरण उत्तापे उत्तापिता।
चलिल कातरा अति जनक दुहिता॥
हिङ्गुल मण्डित तांर पायेर अंगुलि।
आतपे मिलाय जेन ननीर पुत्तली॥ कृत्ति० अयो०, ११५,

३ निर्म्मल कोमल अंग जेन जूथी फूल। कृत्ति०, अयो०, पृ० १२८

४ सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई। छबि गृहं दीप शिखा जनु बरई॥ १. २२९–७ मा०
पूजन गौरि सखी लै आईं। करत प्रकासु फिरइ फुलवाईं॥
जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मनु छोभा॥ १–२३०, १, २

५ दश दिके आलो करे जानकी रुपे :
लावण्य निःसरे कत प्रतिलोम कूपे॥ पृ० ६४, आदि०, कृत्ति०॥

राम-रूप वर्णन

वाल्मीकि-रामायण एवं रघुवंश में वर्णित राम के सौन्दर्य की अपेक्षा भाषा-रामायणों के राम-सौंदर्य में सुकुमारता अधिक है। संस्कृत एवं भाषाओं के रामकथा-साहित्य में राम के शील-शक्ति एवं सौंदर्य-युक्त चरित्र का चित्रण है। भाषा-रामायणों का युग भक्ति का युग था। वीर-योद्धा राम की अपेक्षा भक्तों के दुःख से द्रवित होने वाले राम अधिक प्रिय थे। उस युग में निष्क्रिय-निर्गुण की अपेक्षा सक्रिय-सगुण अधिक वांछित लगा, क्योंकि वह पीड़ितों को त्राण दे सकता था। यदि सगुण ईश्वर स्वयं दयालु, सुशील, एवं द्रवणशील न हुआ तो वह शरणागतों की रक्षा कैसे करेगा। वैष्णवों ने अपने-अपने उपास्य-देवों की भक्त-वत्सलता का खूब वर्णन किया है। आंतरिक-सौंदर्य का प्रभाव वाह्य-रूप पर भी पड़ता है, अतएव कोमल-हृदय प्रभु कोमल-तन भी हो गये।

दोनों भाषा-रामायणकारों ने वाल्मीकि के वीर-राम के सुपुष्ट-अंगों का भी वर्णन किया है। कृत्तिवास के अनुसार वे प्रकांड-पुरुष एवं सुदृश्य-शरीर हैं। उनकी भुजाएँ आजानुलंबित हैं, नाभि गंभीर, नासिका सुदीर्घ एवं कपाल श्रीखंड सदृश्य हैं।[१] तुलसी द्वारा वर्णित 'दसरथ के रन बांकुरे'[२] राम भी 'वृषभकंध 'केहरि ठवनि, बलनिधि बाहु बिसाल' हैं।[3]

कृत्तिवास ने सीता के रूप-वर्णन में जितनी रुचि दिखायी है उतनी ही तुलसी ने राम के रूप-चित्रण में। पुष्प-वाटिका में पुष्प चयन-करते हुए सलोने कुँवर राम पर सीता की सखी लुट गयी। वे सिर पर मोरपंख लगाये थे। घुँघराले केशों में कलियों के गुच्छे खोंसे थे। ललाट पर तिलक एवं कानों में अलंकार धारण किये थे। भृकुटी वंकिम हो रही थी, कमल जैसे नेत्र रतनारे हो रहे थे। चिबुक, नासिका एवं कपोल सभी सुन्दर थे। मृदु मुस्काने पर इन अंगों की शोभा और भी बढ़ जाती थी। उर एवं कंबुग्रीव में मणिमाला धारण किये थे। काम-रूपी गज-शिशु की सूँड़ के समान उनकी भुजाएँ थीं। सिंह जैसी कटि में पीत दुपट्टा शोभा को प्राप्त हो रहा था।[४] कई प्रसंगों के बहाने तुलसी ने राम के शिशु, दुलह, पथिक, योद्धा एवं राजा आदि रूपों का वर्णन किया है।

---

१ प्रकाण्ड पुरुष राम सुदृश्य शरीर।
आजानुलम्बित बाहु नाभि सुगभीर॥
सुदीर्घ नासिका तार श्रीखण्ड कपाल।
फल मूल खान तबु विक्रमे विशाल॥ कृत्ति० लंका०,–पृ० २६५

२ जीति को सक संग्राम, दसरथ के रन बांकुरे। मानस १. २४५

३ मानस। १–२४३

४ मोर पंख सिर सोहत नीके। गुच्छ बीच बिच कुसुम कली के॥ १.२३२.२
भाल तिलक श्रम बिंदु सुहाए। श्रवन सुभग भूषन छवि छाए॥ १.२३२.३
बिकट भ्रकुटि कच घूघर वारे। नव सरोज लोचन रतनारे। १.२३२.४
चारु चिबुक नासिका कपोला। हास बिलास लेत मनु मोला॥— ५
... ...

रूप-सौकुमार्य—वाल्मीकि के राम का सौंदर्य अंगों की समान एवं सुन्दर गठन का है, उनका वर्णन भी स्निग्ध है[१] किन्तु भाषा-रामायणों में वर्णित प्रभु राम की सुकुमारता पुराणों के अनुरूप है। दोनों लेखक राम की सुकुमारता एवं नयनरंजक रूप के लिए नील-कमल एवं दूर्वादल[२] की उपमा बार-बार देते हैं। कृत्तिवास के राम-लक्ष्मण ऐसे कोमल हैं कि धूप में निकलते ही उनके मुँह कुम्हला गये।[३] उनके राम नवनीत के समान कोमल हैं।[४]

तुलसी के राम को तो फूल चुनने में ही इतना श्रम हो गया कि मस्तक पर स्वेद-कण झलक आये।[५] तुलसी को राम के शरत्-ऋतु के चन्द्रमा जैसे सुकुमार मुख पर प्रस्वेद-बिन्दु बड़े प्रिय लगते हैं, तभी वे बार-बार वर्णन भी करते हैं।[६]

तुलसी ने राम को कुसुम सा कोमल चित्रित करते हुए भी बज्र सा कठोर भी बताया है। युद्ध-क्षेत्र में वे कहीं कातर अथवा शिथिल नहीं दिखायी पड़ते। कृत्तिवासी-रामायण में राक्षसों से युद्ध करते समय कोमल राम का मुख सूख कर कुम्हला जाता है, बाँहें शर संधान-करते-करते भर आती हैं। थकित राम का मुख राहु-ग्रसित चन्द्र सा प्रतीत होने लगता है।

शुकाइल मुख चन्द्र नाहि चले बाहु।
पूर्णिमार चन्द्र जेन गरासिल राहु।। कृत्ति० लंका०, पृ० ३५३

तुलसी ने राम की सुकुमारता कम न करते हुए भी रणक्षेत्र में स्थित उनके वीर-रूप का भी सुन्दर वर्णन किया है। कोदंड और शर पर भुजदंड फेरते हुए राम रुधिर-कणों से शोभित अनुपम लगते हैं। श्याम-तन पर रक्त की बूँदें ऐसी लगती हैं मानों तमाल-तरु पर रायमुनी नामक चिड़ियाँ बैठीं सुख पाती हैं—मा० ६–१०२–११–६०२।

प्रभाव—राम के सुकुमार-सौन्दर्य का दर्शकों पर क्या प्रभाव पड़ता है, तुलसी ने इसका भव्य-चित्रण किया है। ग्रामीण लोग तीनों प्रिय-पथिकों के अरुणारे मृदुल-चरणों की

उर मनि माल कंबु कल ग्रीवा। काम कलभ कर भुज बल सींवा।।— ७
... ...

केहरि कटि पट पीत पट सुषमा सील निधान।
देखि भानु कुल भूषनहिं बिसरा सखिन्ह अपान।। १.२३३

१ समःसमविभक्तांगः स्निग्धवर्णः प्रतापवान्।
पीन वक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभ लक्षणः।। १.१.११ वा०

२ दुर्व्वादल श्याम तनु अति मनोहर।
कन्दर्प जिनिया रूप देखिते सुन्दर।। कृत्ति०, लंका०, पृ० २६५.

३ आतपे हइल म्लान दोंहार आनन। आदि०, कृत्ति० ७२,

४ नवनीत जिनिया कोमल कलेवर। आदि०, कृत्ति० ५७,

५ भाल तिलक श्रम बिंदु सुहाए। मानस १,२३२–३

६ जटा मुकुट सीसनि सुभग उर भुज नयन बिसाल।
सरद परब बिधु बदन बर लसत स्वेद कन जाल।। २–११५

कोमलता से इतने प्रभावित हैं कि उन्हें प्रतीत हो रहा है, मानों कठोर पृथ्वी उनका स्पर्श कर सकुचा रही है। ग्रामीण कामना करते हैं कि यदि विधाता ने इनके भाग्य में वन जाना ही लिखा था तो कम से कम इन कोमल-पद-गामियों के पथ पर पुष्प ही बिछा देते।[1]

राक्षसी-सेना भी धनुर्धर-राम के रूप से ऐसी अभिभूत हुई कि अस्त्र-शस्त्र संभाले ज्यों की त्यों खड़ी रह गयी, प्रहार ही नहीं करते बनता—

प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी।
थकित भई रजनीचर धारी॥ ३–१८–१

कृत्तिवासी-रामायण में भी राम के अल्हड़ एवं रण–श्रांत सौंदर्य पर तरणी सेन नामक राक्षस तरस खाकर कातर हो उठता है। राम के कोमल अंगों को बाण से बींध जर्जर कर वह बहुत दुःखी है।[2] भयंकरी ताड़का राक्षसी भी उनके दूर्वादल श्याम रूप को देख कर एक क्षण के लिए जड़वत स्थिर रह गयी थी।

वसिया राक्षसी सेइ एक दृष्टे चाय।
दूर्व्वादल श्याम रूप देखिल तथाय॥ कृत्ति० आदि०, पृ० ७३

चेष्टा-सौन्दर्य—तुलसी ने नारी की चेष्टाओं का उत्तम अंकन किया है। मनोभावों की सफल-अभिव्यक्ति के लिए कभी-कभी केवल वचन पर्याप्त नहीं होते। वचनों के साथ-साथ भावानुसार भ्रू–नेत्रादि का संचालन भी प्रयोजनीय होता है। कभी-कभी तो वचनों से अधिक ये चेष्टाएँ प्रभावी सिद्ध होती हैं।

नेत्र हृदय के दर्पण होते हैं। मन के समस्त भावों की प्रतिच्छाया उनमें तरंगित हो जाती है। अतएव कवि लोग सुन्दरता का चित्रण करते समय नेत्र-सौंदर्य के वर्णन की उपेक्षा नहीं कर सकते। प्रणय-व्यापार का चित्रण करते समय तुलसी ने सीता के नेत्रों का अनेक प्रकार से प्रचुर वर्णन किया है। सीता के चकित नेत्र,[3] ललचाते नेत्र[4] दृग कोरों में

---

१ परसत मृदुल चरन अरुनारे। सकुचति महि जिमि हृदय हमारे॥
जौं जगदीश इन्हइ बनु दीन्हा। कस न सुमन मय मारगु कीन्हा॥ २–१२०–३,४

२ तरणी बाछिया मारे खर तर शर।
बिन्धिया कोमल अंग करिल जर्ज्जर॥
... ...
अस्थिर हइल रणे राम रघुमणि।
रामेरे कातर देखि भाविछे तरणी॥
श्रीरामेर परिश्रम हयेछे अधिक।
... ... कृत्ति० लंका०, पृ० ३५३

३ चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी सभीत। १, २२९,

४ देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहचाने॥ १.२३१–४

आँसू छिपाते नेत्र[१] एवं राम के रूप को पीकर छके हुए मीलित नेत्रों[२] का वर्णन मानस में हुआ है। तुलसी को भौंह के बाँकेपन के साथ सैना करते हुए नेत्र बड़े प्यारे लगते हैं। भारतीय नारियाँ व्रीडा-भाव उत्पन्न होने पर अपने अंग छुपाने लग जाती हैं।[३] सीता भी ग्राम-बधुओं को प्रिय राम का परिचय देते समय अंचल से सिर ढक कर भौंह और नेत्रों की मधुर चेष्टाओं द्वारा पति होने का संकेत करती हैं।[४]

कृत्तिवास की सीता भी भ्रू-भंग कर पुलक-मंडित कपोलों को अल्प विकसित कर तथा लज्जावनत होकर बिना बोले इंगित द्वारा परिचय देती हैं—

नवीन कमल मुख भ्रूभङ्ग रचित।
पुलके मण्डित गण्ड अल्प विकसित॥
लाजे अधोमुखी सीता न बलेन आर।
इङ्गिते बुझान, स्वामी इनि जे आभार॥ कृत्ति० अयो०, पृ० ११५

कपट-स्नेह दिखा कर नेत्रादि के संचालन द्वारा नारी ऐसा अभिनय कर जाती है कि बड़े-बड़े दिग्गज महारथी उसके जाल में फँस कर तड़प-तड़प कर प्राण देते हैं। मानस की कैकेयी राजा दशरथ को फँसाने के लिए किस प्रकार आँख-मुँह मटका कर हँसती हुई कपट-प्रेम प्रकट कर रही है—

कपट सनेहु बढ़ाइ बहोरी।
बोली बिहसि नयन मुहु मोरी॥ २.२६.८.

तुलसीदास ने बाल-सुलभ चेष्टाओं का भी चित्रण किया है। बच्चे कौए को पास बुलाने के लिए रोटी आदि के टुकड़े दिखा कर पकड़ने के लिए किलकते हैं। कौए के पास न आने पर बच्चे रो पड़ते हैं और कहीं रोटी का टुकड़ा लेने के लिए कौआ झपट ही पड़ा तो रोकर भागते हैं। बाल-राम और काकभुशुंडि की क्रीड़ाओं में राम की बाल-चेष्टाएँ बड़ी मधुर हैं—

किलकत मोहि धरन जब धावहिं।
चलउं भागि तब पूप देखावहिं॥ ७.७६.१०.
आवत निकट हंसहि प्रभु भाजत रुदन कराहिं।
जाउं समीप गहन पद फिरि-फिरि चितइ पराहिं॥ ७.७७ (क)

---

१ लोचन जलु रह लोचन कोना। जैसें परम कृपन कर सोना॥ १.२५८.२

२ थके नयन रघुपति छबि देखें। पलकन्हि हूँ परिहरीं निमेषें॥ १.२३१.५
लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हें पलक कपाट सयानी॥ १.२३१-७

३ मंदोदरी रावण को प्रणाम कर आंचल संभाल लेती है—
चरन नाइ सिरु अंचल रोपा। ६.५.४.

४ बहुरि बदनु बिधु अंचल ढांकी। पिय तन चितय भौंह करि बांकी॥
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सयननि॥ २.११६-६-७.

भूख लगने पर यदि शिशु के समीप से माँ निकल जाय तो वे निम्न प्रकार की चेष्टा द्वारा अपना मनोभाव व्यक्त कर देते हैं–

सजल नयन कछु मुख करि रूखा ।
चितइ मातु लागी अति भूखा ।। ७.८७.६

कृत्तिवासी-रामायण में इस प्रकार का सौंदर्य चित्रित नहीं हुआ है ।

राम सीता के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकार के पात्रों के रूप का भी वर्णन दोनों ने किया है । कृत्तिवास भयंकर एवं वीभत्स-रूपों का भी चित्रण सफलता के साथ करते हैं ।[१] हनुमान द्वारा धारण किया हुआ उनका ज्योतिषी[२] का रूप दर्शनीय है । तुलसी ने भी कभी-कभी तो थोड़े ही शब्दों में रूप-चित्रण किया है । हनुमान के विराट् रूप के लिए 'कनक भूधराकार सरीरा'; तथा कुंभकर्ण के लिए नाथ भूधराकार सरीरा कह कर गिने-चुने एवं एक-समान शब्दों द्वारा ही दो प्रकार का रूप प्रस्तुत दिया है ।

———

(५) रचना-कौशल-भाषा

मध्यकाल तक भारत के विभिन्न-प्रदेशों में प्राकृत एवं अपभ्रंश से उद्भूत कई भिन्न भाषाएं चल पड़ी थीं । भाषाओं की शब्दावली पर संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत एवं अपभ्रंश का प्रभाव अधिक था । इधर मुसलमानों के संसर्ग के कारण अरबी, फारसी के अनेक शब्दों का समावेश भारतीय भाषाओं में हो गया था । विभिन्न धर्म-उपासनाओं में प्रचलित शब्द भी घुल-मिल गये थे । ऐसे समय में ही भक्ति-आन्दोलन का विकास हुआ । वैदिक-संस्कृत के विकास-क्रम में ही भक्ति-आंदोलन का स्थान आता है । सगुण-भक्ति के प्रतिपादक-आचार्य वेदज्ञ एवं प्रकांड-विद्वान् थे, उन्होंने अपने वाद-विशेष को वैदिक मान्यता देने का प्रयास किया । इन आचार्यों की प्रेरणा से देशी-भाषाओं में संस्कृत के तत्सम-शब्दों के प्रयोग का आधिक्य हुआ ।

कृत्तिवासी-रामायण आज जिस रूप में हमारे सामने उपस्थित है, उसके लिये हम जयगोपाल तर्कालंकार को धन्यवाद का पात्र समझें अथवा भर्त्सना का यह दूसरी बात है, किंतु इतना स्पष्ट है कि अधुना-प्रचारित कृत्तिवासी-रामायण की भाषा आधुनिक है, तथा जयगोपाल आदि द्वारा संशोधित है । अतएव व्याकरण अथवा भाषा-विज्ञान की दृष्टि से उस पर विचार नहीं किया जा सकता । तुलसी के मानस का भी अभी सर्वथा विशुद्ध पाठ उपलब्ध नहीं है, ऐसा कहा जा सकता है । डा० विश्वनाथप्रसाद जी मिश्र की अध्यक्षता में विद्वन्मंडली अभी भी पाठ की शुद्धता के लिए प्रयत्न कर रही है । फिर भी कृत्तिवास की अपेक्षा तुलसी की भाषा का अधिकांश-रूप हमारे सामने सुरक्षित है ।

१ देखिए-कृत्ति० रामा० विराधवध अरण्य०,१३५, चामुण्डा, सुन्दर०२२२,और ताड़का-आदि० पृ० ७३-७४

२ कृत्ति० लंका०, पृष्ठ ४२७

बंगला-भाषा में संस्कृत-शब्दों का प्राचुर्य है। आदिकाल से लेकर आधुनिक साहित्य तक में शुद्ध संस्कृत-शब्दों के प्रयोग की अभिरुचि देखी जाती है। साथ ही संस्कृत-शब्दों को उनके वास्तविक रूप में भी प्रस्तुत किया जाता है। आज भी बंगाली-लेखक धर्म्म, कर्म्म, कार्य्य, पुष्पाञ्जलि, मण्डप, गङ्गा लिखते जा रहे हैं। कृत्तिवासी-रामायण में भी इसी प्रकार के प्रयोग हैं।

कृत्तिवासी-रामायण में विशेषणों के लिंग भी संस्कृत के अनुसार हैं—

दिवाकर किरण उत्तापे उत्तापिता—
चलिल कातरा अति जनक दुहिता ॥[१]

तुलसी ने भी कर्म[२], रहस्य[३], श्रम[४], दुर्लभ[५], धर्म[६], दुंदुभि[७], अस्थि[८], मित्र[९] और श्रुति[१०] आदि अनेक संस्कृत शब्दों का प्रयोग किया है। जायसी की ठेठ-अवधी के स्थान पर उन्होंने परिमार्जित भाषा का व्यवहार किया है किंतु शब्दों की शुद्धता के प्रति बंगाली लेखकों जैसा आग्रह नहीं दिखाया है। हलंत पंचम वर्ण के लिए वे अनुस्वार का प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार श के लिए स[११] एवं ण के लिए न[१२] का प्रयोग किया गया है। बंगला-भाषियों के भी सभी श,ष और स का उच्चारण 'श' हो जाता है। तथा 'ण' का उच्चारण 'न' ही होता है किंतु वे लिखते शुद्ध रूप में हैं। तुलसी ने बोलने और लिखने का एक ही रूप रखा है।

तुलसी ने भाषा के एक और प्रकार का प्रयोग किया है, उन्होंने संस्कृत के तद्भव[१३] शब्दों में अनुस्वार लगा कर अथवा संस्कृत के शब्दों का उत्तर-प्रदेशीय उच्चारण[१४] बना कर प्रयोग किया है। यह भाषा न हिन्दी है और न संस्कृत, अपितु मिली-जुली है। संस्कृत से अपरिचित अथवा अल्प-परिचित जनता संस्कृत के श्लोकों के पाठ इसी प्रकार करती है। यहाँ उन्होंने संस्कृत की ओर आकृष्ट करने के लिए ऐसा प्रयोग किया है।

अरबी-फारसी के शब्द

दोनों के काल में मुसलमानों का आधिपत्य होने के कारण बोलचाल की भाषा में अरबी-फारसी के कई शब्दों का समावेश हो गया था। शासन, युद्ध एवं वाद्य आदि के

१ कृत्ति० रामा० अयो०, पृ० ११५
२ ७-११३-१ ३ ७-११३-२
४ ७-११३-३ ५ ७-११३-४
६ १-१०५-१ ७ ४-६-१२
८ ४-६-१२
९—१० (४-६-६)
११ विस्वनाथ मम नाथ पुरारी। १-१०६-७ मा०
१२ तरुन अरुन अंबुज सम चरना। १-१०५-७ मा०
१३ कत कृत्य बिभो सब बानर ए।
निरखंति तवानन सादर ए॥ ६-११० छंद-पंक्ति १७ मानस
१४ गुन ग्यान निधान अमान अजं। नित राम नमामि बिभुं बिरजं। ६-११० छं० पंक्ति ६

सम्बन्ध में ही दोनों लेखकों ने इन भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया है। कृत्तिवास द्वारा प्रयुक्त अरबी-फारसी के कुछ शब्द इस प्रकार हैं—

देवान-(अरबी दीवान)-लंका०, पृ० ३०५
हुकुम (अरबी हुक्म) लंका०, पृ० २६६
तल्लास (तुर्की तलाश) अयो०, पृ० १०७
दामामा (फारसी दमामा) लंका०, पृ० ४३६
मशाल (अरबी) लंका, पृ० ३३६
नफर (फारसी नफर) उत्तर, पृ० ४६७
शिरोपा (फारसी सिरोपाव) लंका, पृ० ३३८
शानाइ (फारसी शहनाई) लंका पृ० २८३

तुलसीदासीदास के कुछ विदेशी शब्द—
दरबार (फारसी) २-७५-६
गरीब नेवाजू (गरीब-अरबी+नेवाज-फारसी) १-१२-७
सजाई (पनरसी सजा) २-१८-५
गनी (अरबी ग़नी) १-२७-६
नफीरि (फारसी नफीरी) ६-४०-३
साहिब (अरबी साहब) १-१२-७
जमात (अरबी जमाअत) १-६२-६ छंद
चौगाना (फारसी चौगान) ६-२६-५
सहनाई (फारसी शहनाई) १-२६२-१

भाषा-सौंदर्य

सफल-कवियों के काव्य की भाषा भावों के संकेत पर नर्त्तन करती है। भाषा पर तुलसी का पूर्ण आधिपत्य है। भावों के अनुसार ही उनकी भाषा भी कोमल अथवा कठोर-वर्ण वाली हो जाती है। कृत्तिवासी-रामायण में भी भाषा के विविध प्रयोग मिल जाते हैं। मानस के 'कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयं गुनि' ॥[1]—जैसी भाषा कृत्तिवास ने भी प्रयुक्त की है। सुन्दरियों के रूप-वर्णन में उनकी भाषा भी कोमल एवं मधुर हो जाती है।

रतन रञ्जित तार पदाङ्गुलि सब।
राज हंस जिनि ध्वनि नूपुरेर रव॥
करे शङ्ख कङ्कण किङ्किणी कटि माझे।
रतन नूपुर पाय रुणु-झुनु[2] बाजे॥ किष्कि०, पृ० २००

---

१ मानस --२२६-१
२ रुणु का बंगला उच्चारण रुनु।

साथ ही वे क्रुद्ध लक्ष्मण के लिए तुलसी के समान[1] कठोर-वर्णों की आवृत्ति करते हैं।

प्रबोध ना माने काल सर्प जेन गर्ज्जे।
सुमित्राकुमार शिशु घन-घन तर्ज्जे ।। अयो०, पृ० १०५

सर्प-बाण की भयंकरता एवं उसके मुख में 'धक-धक' जलती हुई आग का वर्णन वे इस प्रकार करते हैं–

मुखेते दारुण अग्नि ज्वले धिकि-धिकि। लंका०, २८७

तुलसी का अवधी, ब्रज एवं संस्कृत भाषाओं पर पूरा अधिकार था। उन्होंने भावों के अनुकूल एकदम उपयुक्त (फिट) शब्दों का प्रयोग किया है। साधारण बोल-चाल की भाषा से भी उन्होंने शब्द लेकर ऐसा सुन्दर प्रयोग किया है कि कभी-कभी एक ही शब्द बड़ी गंभीर-व्यंजना करता है। निम्न अर्धाली का 'बिसूरति' शब्द यहाँ कितना सार्थक हो गया है।

जानि कठिन सिव चाप बिसूरति।
चली राखि उर स्यामल मूरति ।। मानस १-२३४-१

प्रेमाधिक्य के कारण सीता जैसी सतोगुणी नारी की स्थिति एक 'भोरी' शब्द ही प्रकट कर देता है।

अधिक सनेहं देह मैं भोरी।
सरद ससिह जनु चितव चकोरी ।। मानस १-२३१-६

'च' के अनुप्रास द्वारा चकित होने का चित्र इस प्रकार है—

चितवति चकित चहूँ दिसि सीता।
कहं गए नृप किसोर मनुं चिंता ।। मानस १-२३१-१

कृत्तिवास ने भी लोक-प्रचलित हामागुड़ि एवं गड़ागड़ि[2] आदि शब्दों का प्रयोग किया है। शब्द-चयन की तुलसी जैसी क्षमता कृत्तिवास में नहीं है। उनके वर्णन में सरलता है।

विशेष-उक्तियाँ—समस्त मानस ही विशेष-उक्तियों से भरा पड़ा है। तुलसी की सैकड़ों अर्धालियां भिन्न-भिन्न अवसरों पर वेद-वाक्य के समान प्रयुक्त होती हैं। उनकी अनेक अर्धालियाँ सूक्तियों एवं लोकोक्तियों में परिणत हो गयी हैं।[3]

---

१ माखे लखनु कुटिल भइं भौंहें।
रदपट फरकत नयन रिसौंहें ।। मानस १-२५१-८

२ छ मासेर हैल राम देन हामागुड़ि।
हासिया मार कोले जान गड़ागड़ि ।। कृत्ति० आदि०, पृ० ६१
{ हाम गुड़ि—घुटनों के बल चलना।
{ गड़ागड़ि—लोट-पोट होना।

३ छुद्र नदीं भरि चलीं तोराई।
जस थोरेहुँ धन खल इतराई ।। मानस ४-१३-५
महावृष्टि चलि फूटि किआरीं।
जिमि सुतंत्र भएं बिगरहिं नारीं ।। मानस ४-१४-७

इस प्रकार की ख्याति अन्य कवि नहीं प्राप्त कर सके। कृत्तिवास में ऐसी उक्तियां खोजना व्यर्थ प्रयास होगा। उन्होंने कहीं-कहीं लोक-प्रसिद्ध मुहावरों का अवश्य प्रयोग किया है—

१—मरते समय चींटी के पर जमना—
पिपिड़ार पाखा उठे मरिवार तरे। कृत्ति० किष्कि०, पृ० १८३।
२—अपने पैर में कुठार मारना—
आपनि कुठार मारि आपनार पाय। कृत्ति० लंका०, पृ० २७७
३—सीधे को सीधा और टेढ़े को टेढ़ा होना—
सोजा प्रति सोजा हन बांका प्रति बांका। कृत्ति० उत्तर०, पृ० ४६१
४—मन में सात पाँच करना—विचार में पड़ जाना—
मने सात पाँच भावे रावण विशेष। कृत्ति० सुन्दर०, पृ० २२७

छंद

संस्कृत एवं हिन्दी में शब्दों के उच्चारण का एक निश्चित रूप है, अतएव मात्रा की गणना का भी एक निर्दिष्ट नियम है। बँगला-छंद में अक्षर की मात्रा एवं छंदों-बंध की प्रकृति बहुश: श्वासाघात पर निर्भर करती है।[1] संस्कृत एवं हिन्दी छंद में जल शब्द की दो मात्रायें मानी जायँगी किन्तु बंगला-छंद के अनुसार इसमें एक या दो मात्रायें हो सकती हैं। जिस प्रकार गायक मात्राओं की कमी किसी अक्षर के दीर्घ-उच्चारण के द्वारा पूरा कर लेता है, उसी प्रकार बंगला-छंद में प्राय: ऐसा ही होता है। अतएव बंगला-छंद की मात्रा पर विचार करते समय छंद की परिपाटी का ज्ञान आवश्यक है। ऐसा होने पर ही प्रत्येक अक्षर का सत्य-उच्चारण एवं मात्रा का स्थिर कर सकना संभव हो सकेगा।[2]

बंगला-छंद का स्तवक (STANZA) दो या अधिक चरण का होता है। प्रत्येक चरण में २, ३ या ४ पर्व (BAR) होते है, प्रत्येक पर्व पर्वांशों (BEAT) में विभाजित होता है। नीचे कृत्तिवास के पयार छंद के एक चरण के पर्व और पर्वांशों को स्पष्ट किया जाता है—

चारि पुत्र लये राजा सुखी बहुतर ॥

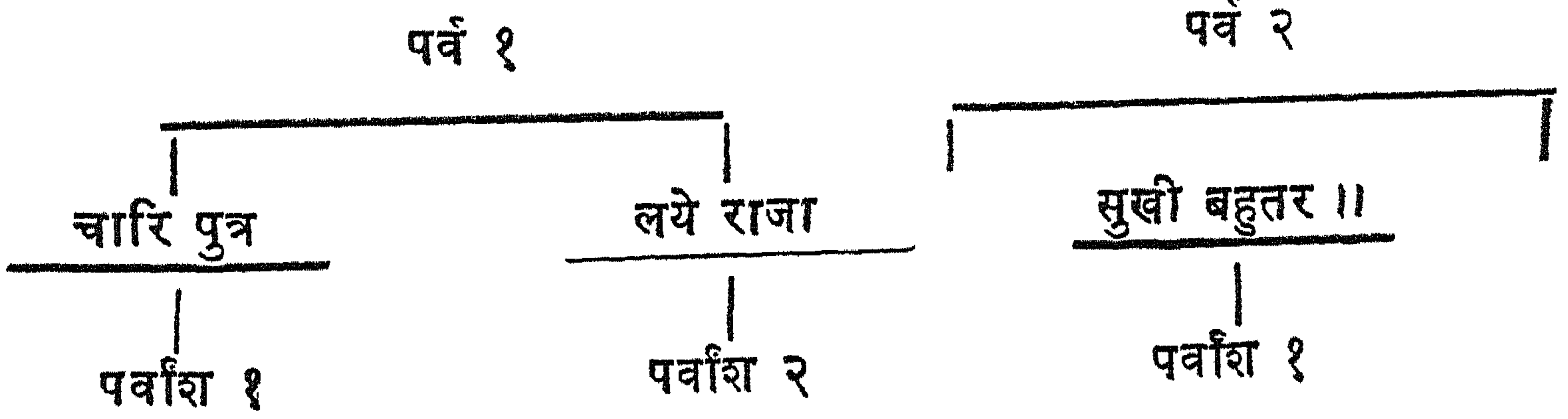

१ बांग्ला छन्देर मूलसूत्र—अमूल्यधन—मुखोपाध्याय, पृ० १३,१४
२ ....वही........................पृ० १५

यह चरण दो पर्वों में एवं प्रथम पर्व दो पर्वांशों में विभाजित है। यह विभाजन स्वर-गांभीर्य के अनुसार होता है। प्रत्येक पर्व का स्वरगांभीर्य प्रारंभ में अधिक और अंत में सबसे कम होता है। पुनः अगला पर्व इसी प्रकार प्रारंभ होता है। पर्व में भी शब्द अथवा अक्षरों में विराम रहता है, जिससे पर्वांश बनते हैं।

महाकाव्य में प्रयुक्त-छन्द

जिस प्रकार संस्कृत के अनेक महाकाव्यों में अनुष्ठुप-छंद का प्रयोग हुआ है, उसी प्रकार अवधी-हिन्दी के महाकाव्यों में दोहा-चौपाई-बंगला में पयार एवं उर्दू में मसनवी छन्द का प्रयोग हुआ है।

दोनों के प्रमुख-छन्द

कृत्तिवास ने लगभग समस्त कथा पयार-छन्द में कह डाली है और तुलसी की कथा का मुख्य-भाग भी दोहा-चौपाइयों में कथित हुआ है। तुलसी ने अन्य कई छन्दों का प्रयोग किया है। वे प्रत्येक काण्ड के प्रारंभ में शार्दूल-विक्रीड़ित, इंदवज्रा, वंशस्थ आदि संस्कृत-श्लोकों का प्रयोग करते हैं, इसके अतिरिक्त मध्य-भाग में भी अनेक छन्दों का प्रयोग करते जाते हैं। डा० रामकुमार वर्मा ने तुलसी द्वारा प्रयुक्त १८ छन्दों का उल्लेख किया है, वे इस प्रकार हैं—

मात्रिक—दोहा, चौपाई, सोरठा, तामर हरिगीतिका, चवपैया, त्रिभंगी।

वर्णिक—अनुष्ठुप, रथोद्धता, स्रग्धरा, मालिनी, तोटक, वंशस्थ, भुजंग-प्रयात्, नगस्वरूपिणी, वसंत-तिलका इन्द्रवज्रा शार्दूल-विक्रीडित।[1]

कृत्तिवास ने मुख्यतः पयार छन्द का प्रयोग किया है, जिसमें १४, १४ कक्षरों अथवा मात्राओं के दो चरण होते हैं तथा प्रत्येक चरण में ८, ६ मात्राओं के दो पर्व होते हैं। कृत्तिवास का दूसरा छन्द त्रिपदी है, जिसे नर्त्तक, लाचाड़ी अथवा नाचाड़ी भी कहते हैं। पहले लाचाड़ी शब्द ही था, यह लाच (नाच) से बना है।[2] इसी का शुद्ध-रूप नर्त्तक कर दिया गया। तीन पर्व होने के कारण इसे त्रिपदी कहते हैं। डा० दीनेशचन्द्र सेन गीत-गोविंद के छन्दों से इसका गठन मानते हैं, तथा इसे लहरी शब्द से विकृत लाचाड़ी स्वीकार करते हैं।[3]

प्राचीन-काल में त्रिपदी के मुख्य दो प्रकार थे–दीर्घ और लघु। दीर्घ-त्रिपदी में पर्व-विभाग ८-८-१० अथवा ८-८-१२ का होता है, तथा लघु-त्रिपदी में ६-६-८ का। कृत्तिवास ने दीर्घ-त्रिपदी में पर्व-विभाग ८-८-१० का माना है।

दीर्घ-त्रिपदी—रावणे छाड़िनु आमि, विनाश करह तुमि,
एत बलि हइल अन्तर्द्धान।
नाचे गाय कपि गण, प्रेमानन्दे नारायण,
नवमी करिल समाधान॥ लंका, पृ० ४२५

---

१ हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—रा० कु० वर्मा पृ० ४२४
२ बांग्ला छन्देर मूलसूत्र—अमूल्यधन मुखोपाध्याय—पृ० १८, १६
३ बङ्ग भाषा ओ साहित्य—दीनेशचन्द सेन —पृ० २६, २८

लघु-त्रिपदी—तवे दुइ दल, कोपे ते पागल,
परस्परे हाराहारि ।
अनल निकरे, विरल तिमिरे,
करितेछे मरामारि ।। लंका०, पृ० ३३७

कृत्तिवास ने एक अन्य प्रकार की त्रिपदी का भी प्रयोग किया है, जिसे तान-प्रधान त्रिपदी कहते हैं। कृत्तिवास द्वारा प्रयुक्त तान-प्रधान-त्रिपदी दो प्रकार की है—प्रथम में ६–६–६ पर विराम होता है और द्वितीय में ८–८–८ पर। किन्तु उनके द्वारा प्रयुक्त ये छंद दोष-पूर्ण हैं।

तान-प्रधान त्रिपदी (१)

तवे देखि ताहारे, सेइमत द्वारे,
प्लवङ्ग मगन ।
तारा तरु शिखरी, करेते धरि,
रहे सुखी मन ।। कृत्ति० लंका०, पृ० २६५

तान-प्रधान त्रिपल (२)

अर्द्ध नाभिकूपे लये रे जखन डुबाय ।
शत शमन आसि तारे
मन कि करिते धारे
पातकी तराते श्रीरामेर नामटि
ओगो एसेछे संसारे ।।ध्रु०।। कृत्ति० लंका० पृ० ४०८

छंद-परिवर्तन का कारण—

दोनों लेखकों ने अपने प्रिय-छंद पयार अथवा दोहा-चौपाई छंद को छोड़ कर अन्य छंदों का तभी प्रयोग किया है, जब कोई पात्र किसी की स्तुति करता है अथवा कोई उद्वेग-कारक प्रसंग उपस्थित है।

कृत्तिवास ने शोक,[1] प्रसन्नता[2], एवं स्तवन[3] के लिए त्रिपदी-छंद का प्रयोग किया है।

तुलसी ने भी छंद-परिवर्तन भावावेग-मय स्थलों पर किया है। कहीं पात्र भक्ति-गद्गद् होकर स्तुति करते हैं, तो कहीं युद्ध एवं वीर रस से संबंधित चित्र प्रस्तुत किये जाते हैं। स्तुतियाँ तो सारी रामायण में भरी पड़ी हैं।

---

१ नाग पाश-बद्ध राम को देख सीता का विलाप–२२८, कुम्भकरण अतिकाय और मेघनाद की मृत्यु पर रावण का विलाप, लंका० ३१७, ३२४ और ३७६, लवकुश से परास्त होने पर राम का विलाप–५६३—६४ आदि।

२ रामाभिषेक–६४, राम-जन्म का उल्लास–५६, मेघनाद-वध से राम और देवताओं को आनन्द–३७६–७७ आदि।

३ गंगा–स्तुति–२५; हनुमान की पर्वत से स्तुति–३३४, राम और देवों द्वारा परस्पर-स्तुति ४२२, २३,२५

तुलसीदास का छंद-परिवर्त्तन बहुत ही महत्त्वपूर्ण रहता है। वे भाषा एवं छंद की सहायता से भावों की सशक्त व्यंजना करते हैं। वैसे तो दोहा-चौपाई छंदों में ही उन्होंने कमाल कर दिया है, किन्तु विशेष प्रसंगों पर वे इनका मोह छोड़ कर हिन्दी अथवा संस्कृत के कुछ बड़े छंदों का प्रयोग करने लगते हैं। एकाकी राम पर खरदूषण की प्रचंड सेना के आक्रमण की सूचना देने के पश्चात् तुलसी ने राम के वीर-वेश और उत्साह के वर्णन के लिए छंद-परिवर्त्तन किया है।[1]

कृत्तिवास ने पयार के स्थान पर त्रिपदी-छंद का प्रयोग किया है। त्रिपदी धीर मंथर-गति वाला होता है। अतएव उसका प्रयोग वर्णनात्मक कथा-प्रसंग उपस्थित करने के लिए ठीक रहता है, अथवा शोक प्रकट करने के लिए—

हाय हाय कि हइल, क्रूर विधि करिल,
प्राणाधिक भाइ निल हरि।
कि करिव कोथा जाव, कोथा गेले तारे पाव,
ता बिने कि रूपे प्राण धरि॥ लंका०, पृ० ३१७

तान-प्रधान-त्रिपदी का अधिक प्रयोग ऐसे अवसरों पर हुआ है, जब लेखक स्वयं मग्न होकर राम का भजन करने लगता है, अथवा अपने मन को राम-नाम का जप करने के लिए समझाता है।

अलंकार—

बंगवासी और बंगला-काव्य स्वभाव से ही भाव-प्रवण हैं। हृदयोद्गारों के प्रकाशन के लिए अलंकार का चमत्कार बंगला-कवियों को मान्य नहीं हुआ। हिंदी-काव्य में सभी प्रकार की विशेषताएँ उपलब्ध हैं। शब्द और अर्थ दोनों की ही साधना करने वाले कवियों ने हिंदी-काव्य को समृद्ध किया है। चमत्कार-वादी केशव तुलसी के अग्रजन्मा समकालीन थे, किन्तु हिन्दी का रीति-काल केशव एवं तुलसी के पश्चात् ही विकास में आया। कहने का तात्पर्य यह है कि कृत्तिवास एवं तुलसी का युग चमत्कारिक-कविता का युग न था। दोनों ने काव्य के अलंकरण की अपेक्षा भावों की सफल अभिव्यक्ति की ओर अधिक ध्यान दिया है।

गोस्वामी जी ने मानस के प्रारम्भ में वर्ण, अर्थ, रस, छंद एवं मंगल के करने वाले वाणी और विनायक की वंदना की है। उन्होंने काव्य में शब्द और अर्थ का महत्त्व समझकर उचित उपयोग किया है। चमत्कारी कवि न बनते हुए भी उन्होंने अलंकारों का यथास्थान एवं यथावश्यक प्रयोग किया है।

---

१ देखि राम रिपु दल चलि आवा। बिहसि कठिन कोदंड चढ़ावा॥३-१७-१३
कोदंड कठिन चढ़ाइ सिर जट जूट बाँधत सोह क्यों।
मरकत सयल पर लरत दामिनि कोटि सों जुग भुजग ज्यों॥
कटि कसि निषंग बिसाल भुज गहि जाय बिसिख सुधारि कै।
चितवत मनहुँ मृगराज प्रभु गजराज घटा निहारि के॥मा० ३-१७-१३ छंद

दोनों कवियों ने बिंब-ग्रहण कराने के लिए अलंकारों का प्रयोग किया है। गोस्वामी जी ने अलंकारों का कहीं-कहीं ऐसा सार्थक प्रयोग किया है कि लगता है, बिना इन प्रयोगों के इतनी सशक्त भाव-व्यंजना संभव न होती। राम-वियोग में छटपटाते दशरथ कौशल्या के प्रिय-प्रबोध-वचन सुनकर दुःसह यंत्रणा के बीच कुछ शांति पाकर आँख खोल देते हैं। उनकी इस स्थिति को हम भली-प्रकार तभी समझ पाते हैं जब कि मछली की उत्प्रेक्षा से हम परिचित हो जाते हैं। पानी के बाहर छटपटाती मछली पर ठंडे पानी के छींटें की उत्प्रेक्षा कौशल्या के प्रिय बचनों के लिए की गयी है।

प्रिया बचन मृदु सुनत नृपु चितयउ आँखि उघारि।
तलफत मीन-मलीन जनु सींचत सीतल बारि॥ मा० २-१५४

बन में राम सीता और लक्ष्मण की संभाल कैसे करते हैं जैसे पलक स्वयं आघात झेलकर नेत्र गोलक की—

जोगवहि प्रभु सिय लखनहिं कैसे।
पलक बिलोचन गोलक जैसे॥ २-१४१-१

कृत्तिवास ने अलंकारों का प्रयोग बहुत कम किया है, जहाँ किया है वहाँ उनका उद्देश्य अर्थ-स्पष्ट करना ही है। बिंब-ग्रहण कराने में उन्हें गोस्वामी जैसी सफलता नहीं मिली। उनकी अधिकांश उपमाओं में नई सूझ नहीं है। पुराण-प्रसिद्ध, काव्य-परम्परानुमोदित अथवा लोक-प्रचलित उपमान ही उन्होंने प्रस्तुत किये हैं। मुनियों के मध्य बैठे भरद्वाज ऋषि के लिए उन्होंने तारागण के मध्य चन्द्रमा की उत्प्रेक्षा की है—

मुनि गणे वेष्ठित वसिया भरद्वाज।
तारागण मध्ये जेन शोभे द्विजराज॥अयो०, पृ० ११४

राम सीता के रूप के लिए सजल-जलद एवं सौदामिनी की उत्प्रेक्षा करते हैं—

अग्रे राम जान, पाछे श्रीराम रमणी।
सजल-जलद सह जेन सौदामिनी॥ अयो०, पृ० ११५

विवर्ण दुःखी भरत के मुख की उपमा मेघाच्छन्न चंद्र[1] से दी है। रावण के चंगुल में फंसी सीता को गरुड़ के मुख में नागिनी के समान बताया है।[2] कृत्तिवास को केतकी के फूलों की उपमा बहुत प्रिय है। बंगाल में केतकी प्रचुरता से फूलती है। यह उपमा उनकी अपनी है, बंगाल की है। रावण जब दस-जोड़ी बत्तीसी विकसित कर हँसता होगा उस समय भाद्र-मास की केतकी याद आती होगी—

दशमुख मेलिया रावण राजा हासे।
केतकी कुसुम जेने फुटे भाद्र मासे॥ आदि०, पृ० ६०

---

१ शशधर जेमन हइल मेघाच्छन्न।
विवर्ण भरत अति तेमनि विषण्ण॥अयो०, पृ० १२३

२ सीतार विलाप कत लिखिबे लेखनी।
गरुड़ेर मुखे जेन पड़िल सापिनी॥अरण्य०, पृ० १५४

सादृश्यमूलक कुछ गिने-चुने अलंकारों को छोड़कर अलंकारों का प्रयोग कृत्तिवास ने नहीं किया है। तुलसी ने अनेक प्रकार के अलंकारों का प्रयोग किया है, जिससे उनका इस विषय का पांडित्य भी प्रकट होता है। कभी-कभी भक्ति के आवेश एवं स्वमत प्रतिपादन के उत्साह में तुलसीदास लम्बे रूपकों एवं उपमाओं[1] की झड़ी लगाने लग जाते हैं। ऐसे स्थलों पर भी उनकी अपूर्व प्रतिभा लक्षित होती है, यद्यपि कथा-प्रवाह की एकता की दृष्टि से ये प्रसंग अधिक वांछनीय नहीं हैं।

अप्रस्तुत-विधान—प्रस्तुत का सफल बिंब उपस्थित करने के लिए दो बातों की आवश्यकता रहती है—कवि की सूक्ष्म-निरीक्षण शक्ति एवं उसका यथास्थान अनायास-प्रयोग। बहुत से लेखकों का निरीक्षण बहुत सूक्ष्म नहीं होता है, यदि होता है तो यथा-स्थान प्रयोग करने की उनकी क्षमता नहीं होती। बहुत से ऐसे व्यापार होते हैं जो सभी की दृष्टि में पड़ जाते हैं, किन्तु उनका काव्य में उपयोग सभी नहीं कर पाते।

तुलसीदास जी ने कृषि, विभिन्न-जाति के स्वभाव, जीवों एवं वनस्पतियों के गुण, धातुओं, रंगों आदि के अप्रस्तुत-विधान द्वारा अनेक सफल बिंब प्रस्तुत किये हैं। सारा मानस उनके इस प्रकार के अनुभवों से भरा पड़ा है। तुलसी ने नये प्रयोग किये हैं किंतु प्रयोग के लिए प्रयोग उनका उद्देश्य नहीं है।

कृषि—धनुष पर डोरी न चढ़ा सकने के कारण रनिवास उदास था किंतु राम ने धनु-भंग कर उसकी निराशा दूर कर इस प्रकार हर्षित किया, जैसे सूखते धानों में पानी पड़ा हो।[2]

जीव-वनस्पति—गोस्वामी जी ने मछलियों से सम्बन्धित बहुत सी उपमाएँ दी हैं—

नयन सजल तन थर थर कांपी।
माजहि खाइ मीन जनु मापी ॥मा० २५३–४
कंठु सूख मुख आव न बानी।
जनु पाठीनु दीन बिनु पानी ॥मा० २–३४–२

बिच्छू,[3] जोंक,[4] मधु-भक्षिका[5] आदि जीवों के स्वभाव से सम्बन्धित कई उपमान प्रयुक्त किये हैं।

---

१ राम-नाम-महात्म्य, निर्गुण-सगुण, संत-असंत एवं ज्ञान-भक्ति आदि से सम्बन्धित-प्रसंग।

२ सखिन्ह सहित हरषी अति रानी।
सूखत धान परा जनु पानी ॥ मानस १–२६२

३ नगर व्यापि गइ बात सुतीछी।
छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी ॥ मा० २–४५–६
(बिच्छू का विष तेजी से चढ़ता है इसी प्रकार दुःखदायी समाचार शीघ्रता से फैल गया।)

४ जलइ जोंक जल बक्र गति, जद्यपि सलिलु समान ॥२–४२

५ तन कृस मन दुखु बदन मलीने।
बिकल मनहुँ माखी मधु छीने ॥२–७५–४

इसी प्रकार कदली,[१] बांस[२] आदिके सम्बन्ध में भी उनकी निरीक्षण-शक्ति का चमत्कार दिखायी पड़ता है।

नौ-विद्या-ज्ञान—समुद्र में फँसे हुए जहाज,[३] अनुकूल वायु पाये हुए जहाज आदि के उपमान[४] उनके इस क्षेत्र की सूझ के द्योतक हैं। चंद को देख समुद्र में ज्वार आना[५] नौकारूढ़ व्यक्ति को संसार चलायमान दिखलायी पड़ना[६] आदि जैसे व्यापारों का भी उन्होंने उपयोग किया है।

कृत्तिवास ने भी अपनी रामायण में कहीं-कहीं निरीक्षण-शक्ति का परिचय दिया है, परंतु ऐसे स्थल बहुत कम हैं।

(१) कृत्तिवास-काल के आगे पीछे बंगाल में हाथियों का बाहुल्य था। सामरिक-शक्ति के लिए शासक हाथियों की बड़ी संख्या अपनी सेना में रखते थे। ऐतिहासिक ग्रन्थों के वृत्तों[७] से ज्ञात है कि बंगाल से कई बार हाथी पकड़ कर मँगाये गये थे। हाथी पकड़ने की विशेष विधि पृथ्वी में गढ़ा खोद कर खाद्य के लोभ में पालतू हाथियों की सहायता से जंगली हाथी को बन्दी बनाना था। कृत्तिवास ने विभीषण-रावण-संवाद में हाथियों के पकड़ने की इस विधि का दृष्टान्त दिया है।[८]

(२) सांप के विष का जोर रोकने के लिए तागा बाँधकर दूषित रक्त निकाल दिया जाता है। किंतु यदि सिर में सर्पदंश हुआ तो क्या किया जाय, कहाँ तागा बाँधा जाय। किसी अपराधी के लाइलाज हो जाने के लिए इसकी उपमा दी है—

शिरे कैल सर्पाघात कोथा बांधवि तागा लंका०, पृ० २७७,।

(३) छाती पर बाण लगने पर सैनिक किस प्रकार चर्खी जैसा चक्कर खाता है, इसके लिए परकटे पक्षी के उड़ने की उपमा दी है—

बुके बाण बाजिया नाटाइ हेन घुरे।
डाना भाङ्गा पाखी जेन उड़े धीरे धीरे ।। आदि०, पृ० ७७।

---

१ काटेहिं पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच। मा० ५-५८

२ बेनु मूल सुत भयहु घमोई—मा० ६-६-३

३ राम बचन सुनि सभय समाजू।
जनु जलनिधि महुँ बिकल जहाजू।।

४ सुनि गुरगिरा सुमंगल मूला।
भउय मनहुँ मारुत अनुकूला ।।मा० २-२४८-१,२

५ नौकारूढ़ चलत जग देखा। मा० ७-७२-५

६ सज्जन सकृत सिंधु सम कोई।
देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई ।। मा० १-७-१४

७ राज-तरंगिणी में गौड़ देश की गजसेना का वर्णन हुआ है, जिसे ललितादित्य ने गौंड़ेश्वर को परास्त कर अपनी सेना के अन्तर्भुक्त कर लिया था। गजों की जन्म-भूमि कलिंग बतायी गयी है। राजतरंगिणी-चतुर्थ तरंग-पृ० १४७-४६

८ कृत्ति० लंका०, पृ० २४६

अध्याय ६

उपसंहार

भारतीय पारिवारिक-जीवन में रामकथा नमक और जल के समान ऐसी घुल मिल गयी है कि उसके प्रभाव से अपने को पृथक कर भारतीय-व्यक्ति अपनी सांस्कृतिक-विशेषताओं को जीवित नहीं रख सकता। पं० कृत्तिवास और गो० तुलसीदास अपने-अपने क्षेत्रों के प्रमुख रामकथा-कार हैं, इसी नाते दोनों का तुलनात्मक-अध्ययन किया गया है। तुलसीदास के पितामह-प्रपिता-मह के जीवन-काल में कृत्तिवास ने रामायण का सृजन किया होगा। इस दृष्टि से भी उनका महत्त्व है, क्योंकि उनके युग में भाषाओं का रूप एवं साहित्य अधिक पुष्ट एवं संपन्न न था। निस्संदेह तुलसीदास महान् प्रतिभावान् थे, किंतु उनके समय तक भाषा और शैली में प्रौढ़ता आगयी थी, जिसका उन्होंने पूर्ण उपयोग कर लिया। कृत्तिवास का काव्य-सौन्दर्य एवं दार्शनिक-चिंतन तुलसी के टक्कर का नहीं है, किन्तु इससे वे छोटे नहीं हो जाते। स्थान-स्थान पर संकेत कर दिया है कि उनका काव्य पांचाली-शैली से प्रभावित है। पांचाली-(पंचालिका ?) काव्य एक प्रकार का लोक-काव्य है, जिसका आधार लौकिक अथवा पौराणिक आख्यान होता है। बंगाल में अभी भी पांचाली-गायक मिल जायँगे। प्रमुख-गायक बाएँ हाथ में चामर, दाहिने में मंजीर और पैरों में नूपुर धारण कर पांचाली-काव्य का गायन करते थे। उनके साथ मृदंग-वादक और दोहार (ध्रुवकार) भी रहते थे। दोहार प्रमुख-गायक के साथ तान अलापता था। कृत्तिवासी-रामायण एक ओर महाकाव्य के गुणों से युक्त है तो दूसरी ओर लोक-काव्य के गुणों—सरलता और सहज प्रवाह—को भी धारण किये है। महाकाव्य के शास्त्रीय-विवेचन, मानव-चरित्र के उत्कृष्ट एवं आदर्श-चित्रण और अपने देश-काल की सीमा तोड़ कर मानवता के संदेश-प्रदान की व्यापकता की दृष्टि से तुलसी बहुत ऊँचे हैं। वाल्मीकि के पश्चात् अन्य कोई रामकथा-कार तुलसी के समकक्ष स्थान नहीं पा सकता, अपने चरित्रों के अद्भुत-संयम में उन्होंने वाल्मीकि से भी अधिक सफलता पायी है।

तुलनात्मक-अध्ययन के समय लेखकों की समकालीन-परिस्थितियों का ज्ञान नितांत प्रयोजनीय रहता है। प्रत्येक कवि अपने परिवेश एवं प्रादेशिक-संस्कृति की विशेषताओं से प्रभावित रहता है। मैंने दोनों कवियों की तुलनात्मक-समीक्षा करते समय तत्कालीन समाज और संस्कृति के अध्ययन का विशेष ध्यान रखा है। दोनों रामायणों में वर्णित रोचक लोक-रीतियाँ एवं बंगाल के अनेक प्रकार के तत्कालीन परिधान, अलंकार तथा अन्य सामग्रियों में मैंने विशेष रुचि ली है। संस्कृति-समाज के चित्रण की दृष्टि से कृत्तिवासी-रामायण मानस से किसी बात में हीन नहीं है। हिन्दी-साहित्य के पाठक के लिए उसमें वंग-प्रान्त की सांस्कृतिक विशेषताओं का अच्छा परिचय मिल जाता है।

दोनों रामायणों के युगीन-चित्रण एवं रचना के दृष्टिकोण में पर्याप्त साम्य है। एक ही पूत-कथा एक-समान विचारधारा लेकर अपने-अपने प्रादेशिक-वैशिष्ट्य के साथ अभिव्यक्त हुई है। अनेक विभिन्नताओं के मध्य भी भारतीय-संस्कृति का मूल-स्वर एक है, ऐसा इन रामायणों के अध्ययन से भी सिद्ध हो जाता है।

परिशिष्ट

कृत्तिवास का जीवन-परिचय

(१)

कृत्तिवास का जीवन-परिचय

कृत्तिवास के सम्बन्ध में उनके आत्मविवरण के अतिरिक्त अन्य सामग्री नहीं मिलती। १३०५ बंगाब्द में कवि की आत्मकथा सर्व-प्रथम श्री नगेन्द्रनाथ द्वारा अंशत: प्रकाशित हुई थी। इसके पश्चात् १६०१ ई० में स्वर्गीय श्री दीनेशचन्द्र सेन ने इसे पूर्णत: प्रकाशित किया। आत्मकथा में दिन, तिथि एवं मास का नाम दिया है किन्तु संवत् का नाम नहीं[1], अतएव अभी तक यह निर्णीत न हो सका कि कृत्तिवास का जन्म-काल क्या था। साथ ही कवि ने किसी गौड़ेश्वर द्वारा सम्मानित होना भी लिखा है। ये राजा गणेश माने जाते हैं। आत्म-कथा में वर्णित श्री पंचमी तिथि, आदित्यवार एवं पूर्ण माघ-मास के आधार पर गणना करने पर अध्यापक श्री योगेशचन्द ने दो सन् खोज निकाले—१३३७ एवं १४३२ ई०। द्वितीय तिथि मान्य हुई, किंतु कठिनाई यह थी कि इस तिथि और राजा गणेश के शासन-काल (१४१४–१८ ई०) के साथ मेल नहीं होता था। अब पूर्ण माघ-मास को 'पुण्य-माघ' मास माना गया और पुन: गणना करने पर योगेश बाबू ने १३६८ ई० का आविष्कार किया। बहुत से विद्वानों ने इसे ही सत्य माना है। क्योंकि तब गणेश के शासन-काल तक कवि की युवावस्था सिद्ध हो जाती है।

कुछ विद्वान् तीन कारणों से इसका खंडन करते हैं—१—जिस पोथी से आत्म-परिचय प्राप्त हुआ है वह अब प्राप्य नहीं है अतएव प्रत्यक्ष प्रमाण का अभाव है। २–आत्म-परिचय की भाषा कृत्तिवास की नहीं है, जबकि पोथी के खोजकर्ता हाराधन बाबू इसे १५०१ ई० का मानते हैं। ३–गणेश के यहाँ कवि का समादृत होना और इस राजा के साथ तिथियों का सम्बन्ध बिठालना अटकल-बाजी है।[2]

आज तक बंगाली विद्वान् कृत्तिवास की जन्म-तिथि का निश्चित पता नहीं लगा सके हैं, यह वसुमती के निम्न विज्ञापन से ही स्पष्ट हो जाता है—

कवि कृत्तिवास का जन्म कब हुआ ?

रामायण के सुविख्यात पद्यानुवाद, शिवरामेर युद्ध, रुक्मांगद राजार एकादशी, योगाद्यार वन्दना, प्रभृति ग्रन्थों के रचयिता महाकवि कृत्तिवास के जन्म-काल के सम्बन्ध में नाना लोगों ने नाना मत प्रचारित किये हैं।

(१) स्वर्गीय प्रफुल्लचन्द वन्द्योपाध्याय के मतानुसार–१३५५ ई०

(२) स्वर्गीय त्रैलोक्य नाथ भट्टाचार्य के मतानुसार–१३६० ई०

(३) प्राच्य विद्यार्णव स्वर्गीय नगेंद्रनाथ वसु–१४०८–१४२० ई० के मध्य।

(४) डा० दीनेशचन्द सेन के मतानुसार–१४४० ई० अथवा इसके आस-पास।

---

१ आदित्यवार श्री पञ्चमी पुण्य (पूर्ण) माघ मास।
तथि मध्ये जन्म लइलाम कृत्तिवास॥ कृत्तिवासेर आत्म-विवरण (कृत्ति० रामा० ५८४)

२ बाङ्गाला साहित्येर इतिहास—(१) सुकुमार सेन, पृ० ८५,६७

कवि कृत्तिवास का काल आज भी अनिर्दिष्ट है । ठीक दिन निश्चित करना उचित है, किन्तु आज के बंगाल में कौन निश्चित करेगा ?

मासिक वसुमती फाल्गुण—१३६० बंगाब्द ।

कृत्तिवास की निश्चित-तिथि ज्ञात न होने पर भी हम उनके रचना-काल का अनुमान कर सकते हैं । जयानंद ने 'चैतन्य-मंगल' काव्य १६ वीं शताब्दी के सप्तम-दशक में लिखा था, उसमें उन्होंने कृत्तिवास का नाम आदर से लिया है । कृत्तिवास की एक उत्तरकांड की लिपि की पुष्पिका में १५०२ शकाब्द (१५८१ ई०) तिथि दी है ।[1] हम कम से कम यह कह सकते हैं कि वे १५८१ ई० के पश्चात् नहीं हो सकते । कृत्तिवास की रचना में चैतन्त महाप्रभु जैसे महान् व्यक्तित्व का उल्लेख स्पष्ट अथवा संकेत किसी भी रूप में नहीं हुआ जब कि उनके शिष्यों की रचनाओं में कृत्तिवास का हुआ है । अतएव कृत्तिवास को चैतन्य महाप्रभु से वयोज्येष्ठ माना जाता है । चैतन्य महाप्रभु का जन्म १४८६ ई० हुआ था । चैतन्य महाप्रभु के ख्याति-लाभ (अर्थात् १६ वीं शताब्दी के प्रारंभ) के पूर्व ही वे जीवित नहीं थे ।

डा० सुकुमार सेन उन विद्वानों में एक हैं जो कृत्तिवास का काल अन्य विद्वानों द्वारा निर्धारित समय से तीन चौथाई शताब्दी पश्चात् का मानते हैं । उन्होंने भी कृत्तिवास को सन् १४७५ के आस-पास जीवित स्वीकार कर लिया है ।[2]

लगभग सभी विद्वानों द्वारा निर्धारित तिथियों में कम से कम एक समानता है कि कृत्तिवास का युवाकाल १५ वीं शताब्दी में बीता । कोई इस शताब्दी के प्रारम्भ और कोई अन्त की ओर उनका युवा होना मानते हैं । अतएव अनुमान लगाया जा सकता है कि कृत्तिवास ने अपनी रामायण की रचना १५ वीं शताब्दी में ही की होगी । इस प्रकार कृत्तिवास-रामायण एवं मानस के रचना काल में लगभग एक शताब्दी का अन्तर है ।

कवि की आत्म-कथा पूर्णतः सत्य नहीं मानी जाती, किन्तु जितना अंश असंदिग्ध है उससे पता चलता है कि उनके पिता का नाम वनमाली और माता का नाम मानिकी अथवा मेनका था । उनका जन्म फुलिया गाँव में श्रीपंचमी, आदित्यवार को माघ मास में हुआ था । वे कुमारावस्था में बड़ी गंगा (पद्मा) पार कर पढ़ने गये थे । अध्ययन समाप्त करने के उपरांत वे किसी गौड़ेश्वर (?) की राजसभा में गये । वहाँ उनका उचित सम्मान हुआ ।

———

१ श्री सुकुमार सेन का कहना है कि यह पोथी इतनी पुरानी नहीं है, अपितु जिस मूल-प्रति से इसकी प्रतिलिपि हुई उसी की यह तिथि है । इस प्रकार वे कृत्तिवास की शेष सीमा स्वीकार करते हैं ।
बाङ्गाला साहित्येर इतिहास (१) सुकुमार सेन पृ० १०२

२ बाङ्गाला साहित्येर इतिहास (१) सुकुमार सेन, पृ० ९८

सहायक ग्रन्थों की सूची

।। संस्कृत ग्रंथ ।।

१.	ऋग्वेद	सं० सातवलेकर, औंध	
२.	अथर्ववेद	निर्णय सागर प्रेस, बंबई	१८९५ ई०
३.	ऐतरेय आरण्यक	आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना	१८९८ ई०
४.	ऐतरेय ब्राह्मण	आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना	१९३१ ई०
५.	छांदोग्य उपनिषत्	गीता प्रेस, गोरखपुर	१९९४ वि०
६.	ईशावास्य उपनिषत्	सं० रूपनारायण टंडन, कानपुर	२००९ वि०
७.	बौधायन धर्मसूत्र	चिन्नस्वामी, चौखम्बा, बनारस	१९९१ वि०
८.	निरुक्त	निघंटु भाष्य, वैदिक मंत्रालय, अजमेर	१९७७ वि०
९.	गीता	गीता प्रेस, गोरखपुर	
१०.	मनुस्मृति	—	
११.	वाल्मीकि रामायण	(दाक्षिणात्य संस्करण) चतुर्वेदी द्वारिकाप्रसाद शर्मा, प्रयाग	२००६ वि०
१२.	वाल्मीकि रामायण	(गौड़ीय पाठ समन्वित) लोकनाथ चक्रवर्ती नगेन्द्र दत्त, अमरेश्वर ठाकुर-कलकत्ता	
१३.	अध्यात्म-रामायण	गीता प्रेस, गोरखपुर	२००८ वि०
१४.	आनन्द-रामायण	गोपाल नारायण एण्ड, संस, प्रिंसेज स्ट्रीट, बम्बई	
१५.	अद्भुत रामायण	सिमला स्ट्रीट, कलकत्ता	१२९५ वंगाब्द
१६.	रामायण-मंजरी	क्षेमेन्द्र-निर्णय सागर प्रेस, बम्बई	
१७.	महाभारत	चित्रशाला प्रेस, पूना	१९३३ ई०
१८.	पद्म पुराण	आनन्दाश्रम प्रेस पूना	१८९४ ई०
१९.	श्रीमद्भागवत पुराण	गीता प्रेस, द्वितीय संस्करण	२००८ वि०
२०.	श्रीमद्देवी भागवत पुराण	वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई	
२१.	ब्रह्म-वैवर्त-पुराण	वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई	१९८८ वि०
२२.	वृहद्धर्म पुराण	हरप्रसाद शास्त्री, कलकत्ता	१८८८ ई०
२३.	कालिका पुराण	वेंकटेश्वर, प्रेस बम्बई	
२४.	जैमिनी भारत	(बंगला अनुवाद) चंदनाथ वसु, कलकत्ता द्वि० सं०	१३१७ वि०
२५.	अनर्घ राघव	निर्णय सागर, बम्बई	१९२९ ई०
२६.	प्रसन्न राघव	निर्णय सागर, बम्बई	१८४३ वि०
२७.	हनुमन्नाटक	वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई	१९९० वि०
२८.	रघुवंश	(कालिदास) निर्णय सागर प्रेस, बंबई	१८९८ वि०

२९.	मेघदूत	(कालिदास) सं० वा०श० अग्रवाल, राजकमल प्रकाशन	२०१० वि०
३०.	नैषधीय चरित	(श्री हर्ष) नारायणीय टीका सहित, निर्णय सागर प्रेस	१९४२ ई०
३१.	भर्तृहरित्रय-शतक	प्रकाशन विष्णुदत्त	१८१० शक सं०
३२.	राज तरंगिणी	(कल्हण) निर्णय सागर प्रेस, बम्बई	१८९२
३३.	गीता-गोविन्द	(जयदेव) सं० नागार्जुन-इलाहाबाद	१९५५ ई०
३४.	आचारांग सूत्र	(प्राकृत) सिद्ध-चक्र-प्रचारक-समिति, बम्बई	१९९२ वि०
३५.	वाचस्पत्य वृहत् संस्कृताभिधान	वाचस्पति तारानाथ कलकत्ता	१८७३ ई०
३६.	पंचतंत्र	— काशी	१९३८ ई०

।। हिन्दी ग्रंथ ।।

१.	अकबर की राज्यव्यवस्था	शेषमणि त्रिपाठी, प्रयाग	१९७८ वि०
२.	उत्तर भारत की संत परम्परा	परशुराम चतुर्वेदी, प्रयाग	२००८ वि०
३.	एकनाथ व तुलसीदास	जगमोहनलाल चतुर्वेदी, औरंगाबाद	१९५४ ई०
४.	कवितावली	तुलसीदास, गीता प्रेस	२००९ वि०
५.	कबीर की विचारधारा	गोविंद त्रिगुणायत कानपुर	२००९ वि०
६.	कीर्तिलता	(विद्यापति) सं० बाबूराम सक्सेना प्रयाग	१९८६
७.	कुरान शरीफ	अहमद बशीर, लखनऊ	
८.	गीतावली	(तुलसीदास) सं० वामदेव शर्मा, प्रयाग	१९२६
९.	गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय साधना भाग१व२	व्योहार सिंह का० ना० प्र० स०	२००५ वि०
१०.	तुलसी और उनका युग	राजपति दीक्षित, काशी	२००९ वि०
११.	तुलसी की जीवन भूमि	चंद्रवली पांडे, काशी	२०११ वि०
१२.	तुलसी शब्द-सागर	हरगोविंद तिवारी, प्रयाग	१९५४ ई०
१३.	तुलसीदास	माताप्रसाद गुप्त, प्रयाग	१९४२ ई०
१४.	तुलसीदास	राजवली पाँडे, प्रयाग	२००५ वि०
१५.	तुलसी-रसायन	भगीरथ मिश्र, लखनऊ	१९५४
१६.	नाथ-संप्रदाय	हजारीप्रसाद द्विवेदी, इलाहाबाद	१९५०
१७.	प्राङ्-मौर्य विहार	डा० देवसहाय त्रिवेद, पटना	१९५४
१८.	प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद	हजारीप्रसाद द्विवेदी, बम्बई	१९५२ ई०

१९.	प्राचीन भारतीय-वेशभूषा	डा० मोतीचंद, प्रयाग	२००७ वि०
२०.	पदमावत (जायसी)	सं० वासुदेव शरण अग्रवाल, चिरगांव	२०१२ वि०
२१.	भारतीय-दर्शन	बलदेव उपाध्याय, काशी	१९४२ ई०
२२.	भारतीय संस्कृति का विकास (वैदिक धारा)	मंगलदेव शास्त्री, बनारस	१९५६ ई०
२३.	भारतीय संस्कृति का ऐतिहासिक अवलोकन (भाग २)	मोहनलाल विद्यार्थी, कानपुर	१९५४
२४.	भारत में जाति-भेद	क्षिति-मोहन सेन, प्रयाग	१९५२ ई०
२५.	भारतीय इतिहास की भूमिका	राजवली पांडे, दिल्ली	१९४९ ई०
२६.	भागवत-संप्रदाय	बलवेद-उपाध्याय, काशी	१९९८
२७.	मुगल कालीन भारत (१)	आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, आगरा	१९५२ ई०
२८.	मध्यकालीन श्रृंगारिक प्रवृत्तियाँ तथा नव निबंध	परशुराम चतुर्वेदी, बनारस	१९५५ ई०
२९.	मानस की रूसी भूमिक	ए० पी० बरान्निकोफ, लखनऊ	१९५५ ई०
३०.	रामचरित मानस	१ गीता प्रेस प्रकाशित १४ वां सं०	२००७ वि०
		२ विजयानंद त्रिपाठी की विजया टीका सहित, काशी	२०११ वि०
		३ डा० माताप्रसाद गुप्त संपादित	१९४९ ई०
		४ राम नरेश त्रिपाठी की टीका सहित	१९५१ ई०
३०.	रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ	पीताम्बर बड़थ्वाल, ना० प्र० स०	२०१२ वि०
३१.	रामचरित मानस में लोकवार्त्ता	चन्द्रभानु, आगरा	२०१२ वि०
३२.	राम-कथा	फा० कामिल बुल्के, प्रयाग	१९५० ई०
३३.	रामचरित	(सूरदास) सं० प्रभुदयाल मित्तल, मथुरा	२००९ वि०
३४.	रामायणी-कथा	(दिनेशचन्द्र सेन) अनु० भगवानदास हालना, प्रयाग	१९२२ ई०
३५.	संत तुलसीदास और उनके संदेश	राजपति दीक्षित, काशी	२०१० वि०
३६.	संस्कृति संगम	क्षिति-मोहन सेन, प्रयाग	२००७
३७.	शैवमत	डा० यदुवंशी, पटना	१९५५
३८.	सुजान-चरित	सूदन कवि ना० प्र० स० तृतीय संस्करण	१९८० वि०

३९. १६वीं शती के हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि — रत्न कुमारी, दिल्ली — १९५६ ई०

४०. विश्वधर्म दर्शन — सांवलिया बिहारीलाल वर्मा, पटना — १९५३

४१. विनय पत्रिका — (तुलसीदास) सं० भगवानदीन — १९७२ वि०

४२. विश्व साहित्य में रामचरित मानस का स्थान — राजबहादुर लमगोड़ा, कानपुर

४३. वेद-धरातल — गिरीशचन्द्र अवस्थी, काशी — २०१० वि०

४४. वैदिक भक्ति तथा हिन्दी के भक्तिकालीन काव्य में उसकी अभिव्यक्ति — डा० मुन्शीराम शर्मा की डा० लिट् उपाधि का अप्रकाशित निबंध, कानपुर — २०१३ वि०

४५. वैष्णव-धर्म — परशुराम चतुर्वेदी, प्रयाग — १९५३ ई०

४६. हिन्दी-साहित्य की दार्शनिक पृष्ठ-भूमि — विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, आगरा — २०१२

४७. हर्ष-चरित एक सांस्कृतिक अध्ययन — वासुदेवशरण अग्रवाल, पटना — १९५३ ई०

४८. हमारे कुछ प्राचीन लोकोत्सव — मन्मथनाथ राव, प्रयाग — १९५३ ई०

४९. हुमायूँ नामा — (गुलबदन बेगम) ब्रजरत्नदास

५०. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास — रामकुमार वर्मा, प्रयाग तृ० सं० — १९५४

५१. हिन्दी-साहित्य का इतिहास — रामचन्द्र शुक्ल काशी

५२. हिन्दी-साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव — सरनामसिंह शर्मा, प्रयाग — १९५२ ई०

५३. हिन्दू-परिवार, मीमांसा — हरिदत्त वेदालंकार, कलकत्ता — २०११ वि०

५४. ऋतंभरा — सुनीतिकुमार चटर्जी, इलाहाबाद

बंगला ग्रंथ

१. कृत्तिवासी रामायण — सं० रामानन्द चट्टोपाध्याय प्रवासी प्रेस अष्टम संस्करण — १३५३ बंगाब्द

२. ,, ,, — सं० दीनेशचन्द्र सेन भट्टाचार्य संस लि० त्रयो० संस्करण — १९५२ ई०

३. ,, ,, — सुबोध मजुमदार झापापुकुर लेन चतुर्ल संस्करण — १३३७ ई०

४. ,, ,, — विश्वंभर लाहा कलकत्ता — १२५७ वं०

५. ,, ,, — दुर्गाचिरण गुप्ता कलकत्ता — १२८९ वं०

६. ,, ,, — हरिदास घोष कलकत्ता — १२९६ वं०

७. कृत्तिवासी रामायण सुबलचन्द मित्र कलकत्ता १९०८ ई०

८. ,, ,, पूर्णचन्द दे कलकत्ता १३१३ वं०

९. ,, ,, नटवर चक्रवर्ती कलकत्ता १३१३ वं०

१०. ,, ,, योगेन्द्रनाथ वसु कलकत्ता १३१५ वं०

११. ,, ,, सतीशचन्द्र शील कलकत्ता १३१६ वं०

१२. ,, ,, उपेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय कलकत्ता १३२१ वं०

१३. ,, ,, नव कृष्ण भट्टाचार्य कलकत्ता १३३३

१४. ,, ,, असित बसु कलकत्ता

१५. कृत्तिवासी रामायण
(आदिकांड) सं० नलिनीकांत भट्टशाली, कलकत्ता १९३६ ई०

१६. ,, ,,(अयोध्याकांड) संहीरेन्द्रनाथ दत्त वं०सा०प०कलकत्ता १३०७ वं०

१७. ,, ,,(उत्तरकांड) सं० हीरेन्द्रनाथ दत्त कलकत्ता १३१० वं०

१८. आशुतोष मुखर्जी
सभापतीय भाषण, एन० चटर्जी कालेज स्ट्रीट कलकत्ता १३२२ वं०

१९. कृत्तिवास-परिचय-संग्रह हरिश्चन्द्र मित्र ढाका १८७० ई०

२०. प्राचीन बांग्ला ओ
बांगाली सुकुमार सेन विश्वभारती ग्रंथालय

२१. प्रबंध संग्रह प्रथम चौधरी ,, ,, १९५२ ई०

२२. बांग्ला छंदेर मूलसूत्र अमूल्यधन मुखोपाध्याय चतु० सं० १९४९ ई०

२३. बांग्ला सहित्येर इतिहास भूदेव चौधरी कलकत्ता द्वि० सं० १९५७ ई०

२४. बांग्लार नव जाग्रति विनयघोष कलकत्ता १९५५ ई०

२५. बांगला साहित्येर कथा कुमारसेन कलकत्ता वि० १९५० ई०

२६. बांगला साहित्येर
इतिहास (१) सुकुमार सेन कलकत्ता द्वि० सं० १९४८ ई०

२७. बांग्ला साहित्येर
रूपरेखा गोपाल हाल्दार कलकत्ता प्र० सं १३६१ वं०

२८. बांगालीर इतिहास
(आदि खंड नीहार राय) कलकत्ता प्र० सं० १३५६ वं०

२९. वंग भाषा ओ साहित्य दीनेशचन्द्र सेन कलकत्ता अष्ट० सं० १३५६ वं०

३०. श्री चैतन्य भागवत वृंदावनदास ठक्कर गौड़ीय मठ
प्रकाशन द्वि० सं० १९३२ ई०

३१. श्री चैतन्य मंगल जयानन्द बं सा० परिषद कलकत्ता १९०५ ई०

३२. साहित्य पाठकेर डायरी हरिप्रसाद मित्र कलकत्ता १९५१ ई०

३३. शब्द-बोध-अभिधान आशुतोष देव द्वि० सं० १३४९ वं०

३४. चलंतिका (अभिधान) राजशेखर वसु कलकत्ता अष्ट सं० १३६२ वं०

गुजराती

संस्कृत साहित्य मां वनस्पति बापालाल भ० वैद्य अहमदाबाद १९५३ ई०

पत्र पत्रिकाएँ

वसुमती बंगला मासिक (फाइल १३५१–६३) बंगाब्द

प्रवासी बंगला मासिक क्षितिमोहन सेन का लेख आषाढ़ १३२९ बं०

आलोचना (हिन्दी) प्रकाशचन्द गुप्त का लेख अक्टूबर १९५१ ई०

इतिहास विशेषांक रांगेयराघव का लेख अक्टूबर १९५२ ई०

अन्य पत्र-पत्रिकाएँ-कल्पना, युगचेतना, अजंता, (हिन्दी), भारती, चतुरंग (बंगला), एवं माडर्न रिव्यू (अंग्रेजी)।

ENGLISH BOOKS

1.	Age of Imperial Unity. vol 2	Editor R. C. Majumdar, Bombay 2nd Edition,	1953
2.	Ain-I-Akbari	Blochmann, Calcutta,	1939
3.	Ain-I-Akbari	Jarret & Sarkar, Cal.	1949
4.	Akbar Nama (Abul Fazal)	Elliot & Dawson, Cal. II Ed	1953
5.	An Advanced History of India Part II	R. C. Majumdar, London,	1949.
6.	A Short History of Muslim Rule In India	Ishwari Pd. Allahabad,	1939
7.	Bengali Literature	J. C. Ghosh, London,	1948
8.	Bengali Literature in 19th Century.	S. K. Dey, Calcutta University,	1919
9.	Bengal in 16th Century A. D.	J. N. Dasgupta, Calcutta,	1914
10.	Chachnam (History of Sind vol. II	Elliot & Dawson, Cal. II Ed.	1955
11.	Classical Age	Editor R. C. Majumdar Bombay II Ed.	1954
12.	Chaitanya & his Age	Dinesh Chandra Sen, C. U.	1922
13.	Collected works of Sir R. G. Bhandarkar, vol. 4th	Poona,	1929
14.	Firoz Shah:	Tarikh-I-Firozshahi-Shama-I-Siraj-Afif, Futuhat-I-Firozshahi-S. Firozshah···Trans. Elliot & Dawson, Cal. II Ed.	1953

15. Hinduism & Buddhism vol. II — Charles Elliot.
16. Hindu Gods & Heroes — Lionel D. Barnett, London, 1922
17. Hymns of the Alwars — J. S. M. Hooper, Oxford, 1927
18. Khazainul Futuh (Amir Khusrau) — Translated by M. Habib, Madras, 1931.
19. Life and Conditions of the People of Hindustan (1200-1550 A. D.) — K. M. Ashraf, 1935
20. Military system in Ancient India — B. K. Majumdar, Cal, 1955
21. Naishadh charita of Shriharsha — Krishna Kanta Handiqui, Lahore, 1934
22. Outline of Islamic Culture — A.M.A. Shustery Banglore, 1954
23. Origin & Development of the Bengali Language — Suniti Kumar Chatterji, C. U., 1926
24. Outline of History — H. G. Wells, Newyork. 1920
25. Religion of The Rigveda — H. D. Griswold, 1923
26. Sanskrit English Dictionary — Monier-william, oxford, 1951
27. Some Contribution of South India to Indian Culture — S. Krishnaswami Aiyangar 1953
28. Sultan Mahmud of Gaznin — M. Habib, Aligarh, 1927
29. Tabkat-I-Nasiri (Minhaj-UI-Siraj) — Hoyal Asiatic Society of Bengal, 1881
30. Tarikh-I-Firozshahi (Ziau-DDin-Barni) — (History of India vol. III Elliot & Dawson) London, 1871
31. The History of Dharmasastra vol. I Part II — P. V. Kane. Poona. 1441
32. War in Ancient India — V. R. Ram Chandra Dixitar Madras, 1948